सार्थ चण्डी

श्रीदुर्गा सप्तशती

अर्थ एवं व्याख्या

प्रकाशक
परा-वाणी आध्यात्मिक शोध-संस्थान
अलोपी-देवी मार्ग, प्रयाग-६

मूल्य २५०/-

सार्थ चण्डी

श्रीदुर्गा सप्तशती

अर्थ एवं व्याख्या

सम्पादक
रमादत्त शुक्ल
ऋतशील शर्मा

प्रकाशक
पण्डित देवीदत्त शुक्ल स्मारक
परा-वाणी आध्यात्मिक शोध-संस्थान
कल्याण मन्दिर प्रकाशन
श्रीचण्डी-धाम, प्रयाग-राज-२११००६ ☎ ९२३५९१००७१

प्रकाशक :
परा-वाणी आध्यात्मिक शोध-संस्थान
कल्याण मन्दिर प्रकाशन
श्रीचण्डी-धाम, प्रयाग-राज-२११००६
दूर-भाष : ९२३५९१००७१

तीसरा संशोधित एवं संवर्धित संस्करण
महानन्दा नवमी, २०६४ वि०
१८ दिसम्बर, २००७

मूल्य : ३५०/-

मुद्रक :
परा-वाणी प्रेस
'अलोपी'-देवी मार्ग, प्रयाग-राज (उ०प्र०)-२११००६

पूज्य शुक्ल जी

दो शब्द
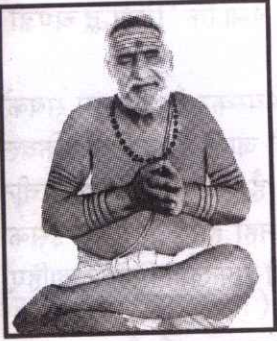
'चण्डी'-पत्रिका के प्रवर्त्तक **'कौल-कल्पतरु' पण्डित देवीदत्त शुक्ल जी 'दुर्गा-सप्तशती' के परम भक्त** थे। **भगवती चण्डिका** के प्रति आपकी दृढ़ निष्ठा थी क्योंकि आपका जन्म ही उत्तर प्रदेश के **'उन्नाव'**-जनपद में अवस्थित **चण्डी-क्षेत्र** में हुआ था, जहाँ आज भी **'सुरथ-समाधि-पूजिता' 'चण्डिका'** व **'अम्बिका'** की दो प्राचीन प्रस्तर-मूर्तियाँ एक भव्य मन्दिर में प्रतिष्ठित हैं। वहाँ **'राजा का चौतरा'** व **'बनेवा की कुटी'** नामों से **सुरथ व समाधि के दो साधना-स्थलों** के अवशेष भी विद्यमान हैं। ठीक **गङ्गा जी** के तट पर स्थित **'बकसर'** ग्राम में बाल्यावस्था एवं युवावस्था व्यतीत करने से **शुक्ल जी** को **'चण्डिका जी' के नित्य दर्शनों का सौभाग्य** निरन्तर प्राप्त रहा। फलत: **चण्डी-उपासना** के प्रति आपका अनुराग दिन-प्रति-दिन बढ़ता ही गया। सम्भवत: आपने अपने इसी अनुराग के कारण **'चण्डी'** नामक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया।

पूज्य शुक्ल जी की सुदृढ़ मान्यता थी कि **'सप्तशती'** में वर्णित आख्यान और उससे सम्बन्धित सभी पात्र—**मार्कण्डेय, मेधस, सुरथ, समाधि** एवं **जगदम्बा के समस्त अवतार** इतिहास सिद्ध हैं। **'सप्तशती'** के प्राचीन टीकाकारों द्वारा भी ऐतिहासिक दृष्टि से ही उसकी व्याख्या की गई है। **नागो जी भट्ट, भास्कर राय (गुप्तवती), शन्तनु चक्रवर्ती (शान्तनवी), राजाराम (दंशोद्धार), चतुर्धर (चतुर्धरी), गोपाल चक्रवर्ती (तत्त्व-प्रकाशिका), पञ्चानन तर्क-रत्न (देवी-भाष्य)** ऐसे ही टीकाकार रहे हैं। इसके अतिरिक्त **काशीनाथ, गोविन्दराम सिद्धान्त-वागीश, पुण्डरीकाक्ष विद्यासागर, नरसिंह चक्रवर्ती** की भी टीकाएँ इसी प्रकार की उपलब्ध रही हैं। इन टीकाओं में दार्शनिक ज्ञान की बातों की भी यथा स्थान चर्चा हुई है, किन्तु **'सप्तशती'** के आख्यान को मात्र प्रतीकात्मक ठहराने का प्रयत्न कहीं नहीं हुआ है। **श्री रासमोहन चक्रवर्ती** द्वारा बङ्गाल में **'श्रीदुर्गा सप्तशती'** का एक ऐसा संस्करण प्रकाशित किया गया, जिसमें उक्त सभी टीकाओं की सहायता लेते हुए उक्त आख्यान की ऐतिहासिकता भले प्रकार प्रतिपादित की गई। **पूज्य शुक्ल जी** उस संस्करण से इतने प्रभावित हुए कि उसमें उद्धृत विशिष्ट प्रसङ्गों को **'सप्तशती की विशेष बातें'** शीर्षक से हिन्दी में लिखवाकर **'चण्डी'**-पत्रिका में प्रकाशित करवाया। आपकी हार्दिक इच्छा थी कि उक्त बङ्गला-संस्करण के समान ही हिन्दी में भी **'श्रीदुर्गा सप्तशती'** का वैसा ही संस्करण प्रकाशित हो, जिससे लोगों में वास्तविक तथ्यों का ज्ञान हो सके।

'विशुद्ध चण्डी' के रूप में जब **'श्रीदुर्गा सप्तशती के छः अङ्गों का शोध-पूर्ण संस्करण'** प्रकाशित हुआ, तब इस बात की माँग उठी कि **'विशुद्ध चण्डी' की हिन्दी-टीका** और **व्याख्या** भी प्रकाशित होनी चाहिए।

श्री जगदम्बा के अनुग्रह से **पूज्य शुक्ल जी** की स्मृति में उक्त कार्य प्रस्तुत **सार्थ-चण्डी श्रीदुर्गा सप्तशती** के रूप में पूर्ण हुआ है। प्रस्तुत **'सार्थ चण्डी श्रीदुर्गा सप्तशती'** में **मूल सप्तशती**

के साथ-साथ उनके **छः अङ्गों** की भी टीका व व्याख्या प्रकाशित की गई है, जैसा कि '**विशुद्ध चण्डी**' के प्रेमी पाठकों की माँग रही है।

'**श्रीदुर्गा सप्तशती**' का '**पाठ**' करना हम सभी के लिए कितना श्रेयस्कर है, यह हम सबको भली-भाँति ज्ञात है। इसके '**पाठ**'-मात्र से लोगों की सभी कामनाएँ पूरी हो जाती हैं। कठिनाई केवल यह है कि '**सप्तशती**' नामक स्तव प्रसिद्ध '**मार्कण्डेय-पुराण**' का अंश है, जो हजारों वर्ष प्राचीन है। इसके विभिन्न शब्दों एवं विशिष्ट सन्दर्भों का ठीक-ठीक अर्थ हमें ज्ञात नहीं होता और हम इसका भाव-पूर्ण '**पाठ**' नहीं कर पाते, जिसका परिणाम यह होता है कि हमें जितनी सफलता मिलनी चाहिए, वह नहीं मिल पाती।

प्रस्तुत '**सार्थ चण्डी श्रीदुर्गा सप्तशती**' द्वारा उक्त कठिनाई दूर हो जाती है क्योंकि इसमें अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण '**सप्तशती'-स्तव** के विभिन्न शब्दों एवं विशिष्ट सन्दर्भों पर सरल हिन्दी भाषा में प्रामाणिक रूप से प्रकाश डाला गया है। इसके अध्ययन द्वारा हम लोग प्रसिद्ध '**सप्तशती'-स्तव** का **भाव-पूर्ण** '**पाठ**' कर सकते हैं, इसमें सन्देह नहीं।

'**सार्थ चण्डी श्रीदुर्गा सप्तशती**' में '**सप्तशती'-स्तव** की विभिन्न बातों को स्पष्ट करने के लिए जिन प्रामाणिक ग्रन्थों के उद्धरण प्रस्तुत हुए हैं, उनके कुछ नाम नीचे अ-कारादि क्रम में दिए जा रहे हैं। इससे भी यह स्पष्ट हो जाता है कि यह '**सार्थ चण्डी श्रीदुर्गा सप्तशती**' हम सबके लिए कितना महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थ है—

१. अमर-कोष, २. आगम, ३. आयुर्वेद, ४. ईशोपनिषत्, ५. उपनिषद्, ६. कात्यायनी तन्त्र, ७. कालिका-पुराण, ८. कुमार-सम्भव, ९. कौटिल्य का अर्थशास्त्र, १०. गीता, ११. गुप्तवती टीका, १२. चिदम्बर-संहिता, १३. चतुर्धरी टीका, १४. तन्त्र-शास्त्र, १५. तत्त्व-प्रकाशिका-टीका, १६. दुर्गा-प्रदीप टीका, १७. देवी-पुराण, १८. देव्यथर्व-शीर्ष, १९. देवी-भाष्य, २०. देवी-कवच, २१. धनुर्वेद (वैशम्पायन), २२. धनुर्वेद (शार्ङ्धर), २३. नागो जी भट्ट की टीका, २४. नील-कण्ठ की टीका, २५. पुराण, २६. ब्रह्म-वैवर्त्त-पुराण, २७. बह्वृच्-उपनिषद्, २८. ब्रह्म-सूत्र, २९. ब्रह्माण्ड-पुराण, ३०. भरत मुनि रचित नाट्य शास्त्र, ३१. भुवनेश्वरी संहिता, ३२. मत्स्य-सूक्त, ३३. मत्स्य-पुराण, ३४. मधुसूदन सरस्वती का प्रस्थान-भेद, ३५. मनु-स्मृति, ३६. महा-भारत, ३७. महा-निर्वाण तन्त्र, ३८. मारीच कल्प, ३९. मार्कण्डेय-पुराण, ४०. मुण्डकोपनिषद्, ४१. मेदिनी-कोष, ४२. योग-रत्नावली, ४३. युक्ति-कल्पतरु, ४४. रहस्य तन्त्र, ४५. रहस्यागम, ४६. लक्ष्मी तन्त्र, ४७. लघु चण्डी, ४८. वराह-पुराण, ४९. वृहत्-संहिता, ५०. वृहदारण्यक उपनिषद्, ५१. विश्व-प्रकाश-कोष, ५२. वामन-पुराण, ५३. वासिष्ठ-रामायण, ५४. वाराही-तन्त्र, ५५. शान्तनवी टीका, ५६. शिशुपाल-वध, ५७. शुक्र-नीति, ५८. षट्-कर्म-दीपिका, ५९. सूत्र-संहिता, ६०. सुश्रुत कल्प, ६१. हरिवंश-पुराण, ६२. हितोपदेश, ६३. श्रीमद्-देवी-भागवत, ६४. श्रुति।

आशा है कि '**श्रीदुर्गा सप्तशती**' सम्बन्धी प्रस्तुत अनूठे प्रकाशन से '**श्रीदुर्गा सप्तशती**' के भक्तों को इसके ऐतिहासिक स्वरूप की तथ्यात्मक प्रतीति होकर विशेष आनन्द की प्राप्ति होगी और इसी में हमारे परिश्रम की सार्थकता है।

श्रीचण्डी-धाम, प्रयागराज — **सम्पादक**

अनुक्रम

द्वादश: अध्याय: **२४८**

चण्डी (सप्तशती) पाठ के अङ्ग

'**कात्यायनी तन्त्र**' में कहा है कि—

अङ्ग-हीनो यथा देही, सर्व-कर्मसु न क्षमः।
अङ्ग-षट्क-विहीना तु, तथा सप्तशती-स्तुतिः॥
तस्मादेतत् पठित्वैव, जपेत् सप्तशतीं पराम्।
अन्यथा शापमाप्नोति हानिं च पदे पदे॥
रावणाद्याः स्तोत्रमेतदङ्ग-हीनं निषेविरे।
हता रामेण ते यस्मान्नाङ्ग-हीनं पठेत् ततः॥

अर्थात् जिस प्रकार अङ्गों से हीन होने पर शरीर-धारी प्राणी कर्म करने में समर्थ नहीं होता, उसी प्रकार छः अङ्गों से रहित '**सप्तशती-स्तोत्र**' फल नहीं देता। इसलिए इन अङ्गों का पाठ करके ही श्रेष्ठ **सप्तशती का पाठ** करना चाहिए। अन्यथा पाठ करनेवाले को शाप मिलता है और उसे पग-पग पर हानि होती है। उदाहरण के लिए **रावण** आदि ने इस स्तोत्र का पाठ बिना अङ्गों के किया था, जिससे वे **राम** के द्वारा मारे गए। अतः **अङ्ग-हीन पाठ** नहीं करना चाहिए।

सप्तशती के उक्त छः अङ्गों को स्पष्ट करते हुए कहा है कि—

अङ्ग-षट्कं विजानीयाद्, कवचार्गल-कीलकैः।
रहस्य - त्रितयेनैव, सहितैर्मनुजेश्वर!॥

अर्थात् हे राजन्! छः अङ्गों को इस प्रकार जानना चाहिए—**१ कवच**, **२ अर्गल**, **३ कीलक**, **४-५-६ रहस्य-त्रितय** (प्राधानिक-रहस्य, वैकृतिक-रहस्य और मूर्ति-रहस्य)।

इन छः अङ्गों के अतिरिक्त कुछ अन्य स्तोत्रों व मन्त्रों को भी '**सप्तशती**'-**पाठ** के अङ्ग-रूप में ग्रहण किया जाता है, जिनसे '**अधिकस्य अधिकं फलम्**' अर्थात् जितना अधिक किया जाएगा, उतना ही अधिक फल मिलेगा, इस सिद्धान्त के अनुसार पाठ करनेवाले भक्तों का अधिकाधिक कल्याण होता है। उदाहरण के लिए '**मारीच कल्प**' में कहा है कि—

रात्रि-सूक्तं पठेदादौ, मध्ये सप्तशती-स्तवम्।
प्रान्ते तु पठनीयं वै, देवी-सूक्तमिति क्रमः॥

अर्थात् पहले '**रात्रि-सूक्त**', बीच में **सप्तशती-स्तव** और अन्त में '**देवी-सूक्त**' का पाठ करे, यह क्रम है।

'**चिदम्बर-संहिता**' की एक उक्ति यह भी है कि **नवार्ण** से पुटित कर स्तोत्र को मध्य में रखकर सदा अभ्यास करे—

मध्ये नवार्ण-पुटितं, कृत्वा स्तोत्रं सदाभ्यसेत्।

इस सम्बन्ध में '**डामर-तन्त्र**' में कहा है कि—

शतमादौ शतं चान्ते, जपेन्मन्त्रं नवार्णकम्।
चण्डीं सप्तशतीं मध्ये, सम्पुटोऽयमुदाहृतः॥

अर्थात् आदि में सौ बार और अन्त में सौ बार **नवार्ण-मन्त्र** का जप कर बीच में **सप्तशती चण्डी** का जप करे। इसे **सम्पुट** कहा गया है।

'**मार्कण्डेय पुराण**' में तो और भी अधिक कहा है कि—

चरिते चरिते राजन्! जपेन्मन्त्रं नवाक्षरम्।
शतमादौ शतं चान्ते, विधानेन तु सुव्रत!॥
बीजं बिना महा-स्तोत्रं, न सिद्ध्यति कदाचन।
तस्मात् सर्व-प्रयत्नेन, बीज-युक्तं सदा पठेत्॥

अर्थात् हे राजन्! प्रत्येक चरित के आदि और अन्त में सौ-सौ बार विधि-पूर्वक **नवाक्षर-मन्त्र** का जप करना चाहिए। बीज के बिना महा-स्तोत्र कभी सिद्ध नहीं होता। इससे सब प्रयत्न करके सदा बीज-युक्त ही पाठ करना चाहिए।

'**वाराही तन्त्र**' में **प्रणव** द्वारा पुटित करने का निर्देश दिया गया है। यथा—

प्रणवं चादितो दत्वा, स्तोत्रं वा संहितां पठेत्।
अन्ते च प्रणवं दद्यादित्युवाचादि - पूरुषः॥

अर्थात् आदि में **प्रणव (ॐ या ह्रीं)** लगाकर स्तोत्र या संहिता का पाठ करना चाहिए और अन्त में भी **प्रणव का उच्चारण** करना चाहिए, ऐसा आदि-पुरुष का वचन है।

इस प्रकार उक्त **छः अङ्गों** के अतिरिक्त **१. रात्रि-सूक्त, २. देवी-सूक्त, ३. नवार्ण** और **४. प्रणव** को भी '**श्री दुर्गा-सप्तशती**' के पाठ के अङ्ग-रूप में निर्दिष्ट किया गया है। इनमें से '**रात्रि-सूक्त**' और '**देवी-सूक्त**' के दो-दो रूप—एक **वैदिक** और दूसरा **स्मार्त्त** या **तान्त्रिक**—मिलते हैं। इनके अतिरिक्त '**शापोद्धार**' एवं '**उत्कीलन**' के अनेक प्रकार के मन्त्र और विधि-विधान अलग दृष्टि-गत होते हैं। साथ ही **कुञ्जिका स्तोत्र, देव्यथर्वशीर्ष, क्षमापन स्तोत्र** आदि का पाठ भी वाञ्छनीय बताया गया है। इस वृहद् विधान के भीतर से अपने लिए **उचित पाठ-क्रम** का चुनाव करना कठिन हो जाता है और यहीं **सद्-गुरु के मार्ग-दर्शन की आवश्यकता** का अनुभव होता है। अपने गुरुदेव के निर्देशानुसार भक्त लोग सहज ही यह निश्चित कर सकते हैं कि '**सप्तशती**' के पाठ के अङ्ग के रूप में उन्हें क्या-क्या स्वीकार करना चाहिए।

❋❋❋

सार्थ अर्गला स्तोत्र

'अर्गल' या 'अर्गला' का महत्त्व

श्री दुर्गा-सप्तशती या **श्री चण्डी** के मूल भाग अर्थात् **त्रयोदश अध्यायों का पाठ** करने के पहले उसके अङ्ग-स्वरूप **अर्गल, कीलक** और **कवच** का पाठ करने का विधान है। '**वाराही तन्त्र**' में कहा गया है कि—

अर्गलं कीलकं चादौ, पठित्वा कवचं पठेत्।
जपेत् सप्तशतीं पश्चात्, क्रम एष शिवोदितः॥

अर्थात् पहले **अर्गल, कीलक** और **कवच** का पाठ करना चाहिए—यही **भगवान् शिव** द्वारा बताया गया क्रम है।

परन्तु '**योग-रत्नावली**' का निर्देश है कि—

कवचं बीजमादिष्टमर्गला शक्तिरुच्यते।
कीलकं कीलकं प्राहुः, सप्तशत्या महा-मनोः॥

यथा सर्व-मन्त्रेषु बीज-शक्ति-कीलकानां प्रथममुच्चारणं तथा सप्तशती-पाठेऽपि कवचार्गला-कीलकानां प्रथमः पाठः स्यात्।

अर्थात् '**कवच**'—बीज माना गया है, '**अर्गला**'—शक्ति कही गई है और '**कीलक**' को कीलक कहा है। जिस प्रकार सब मन्त्रों में बीज, शक्ति और कीलक का पहले उच्चारण होता है, उसी प्रकार **सप्तशती-पाठ** में भी **कवच, अर्गल, कीलक** का पहले पाठ होना चाहिए।

इस प्रकार इन तीनों अङ्गों के पाठ के दो क्रम मिलते हैं—(१) पहले **अर्गला** का पाठ करे, तब **कीलक** का और उसके बाद **कवच** का पाठ कर **सप्तशती-पाठ** करे।

(२) पहले **कवच** का पाठ करे, तब **अर्गला** और उसके बाद **कीलक** का पाठ कर **सप्तशती-पाठ** करे।

इन दोनों क्रमों में से पहला क्रम तर्क-सङ्गत है, तथापि अपने गुरुदेव का जैसा निर्देश हो, उसी के अनुसार पाठ करना चाहिए।

अर्गल, कीलक, कवच और **चण्डी-पाठ** का फल '**मत्स्य-सूक्त**' के एक वचन में संक्षेप में वर्णित है। यथा—

अर्गलं दुरितं हन्ति, कीलकं फलदं भवेत्।
कवचं रक्षयेन्नित्यं, चण्डिका त्रितयं तथा॥

अर्थात् '**अर्गल**' पापों का नाश करता है, '**कीलक**' फल प्रदान करता है, '**कवच**' नित्य रक्षा करता है और '**चण्डी-पाठ**' से उक्त तीनों फल प्राप्त होते हैं।

'**अर्गल**' (या अर्गला) शब्द का अर्थ है द्वार बन्द करनेवाला काष्ठ-दण्ड या लोहे की जञ्जीर। जिस प्रकार घर के द्वार को **अर्गला** से बन्द रखा जाता है, जिससे कोई भीतर प्रवेश न कर सके, उसी प्रकार **सप्तशती चण्डी का पाठ** करने के पूर्व '**अर्गल-स्तोत्र**' (या **अर्गला-स्तोत्र**) का पाठ कर लेने से बाह्य विषयों द्वारा चित्त में उद्विग्नता नहीं उत्पन्न होने पाती। **तन्त्र-शास्त्र** में कहा है कि—

अर्गलं हृदये यस्य, स चार्गल-मयः सदा।
भविष्यतीति निश्चित्य, शिवेन रचितं पुरा॥

अर्थात् जिसके हृदय में **अर्गल स्तोत्र** विराजमान है, वह सदा **अर्गल**-मय होकर रहता है अर्थात् **अर्गल** से अवरुद्ध घर में सुरक्षित रहने के समान वह निरापद रह सकेगा, ऐसा निश्चय कर **भगवान् शिव** द्वारा प्राचीन काल में इस **अर्गल-स्तोत्र** की रचना की गई है।

अर्गल-स्तोत्र की '**दुर्गा-प्रदीप**' नामक टीका में कहा गया है कि—

सिद्धि-प्रतिबन्धकं पापमर्गला-सदृशत्वाद् अर्गला।
तन्नाशक-स्तोत्रस्यादि तत्तल्लक्षणया अर्गलेति संज्ञा॥

अर्थात् सिद्धि का प्रतिबन्धक पाप **अर्गला** के समान है। लक्षणा द्वारा उस पाप का नाशक स्तोत्र भी '**अर्गला**' नाम से प्रसिद्ध है।

इस '**अर्गला-स्तोत्र**' द्वारा साधक **भगवती से रूप, जय, यश पाने और शत्रुओं के नाश करने की प्रार्थना** करता है। **सौभाग्य, आरोग्य, परम सुख, कल्याण, विपुला श्री, विद्या** और **महद् बल** पाने के लिए वह जगदम्बा से स्पष्ट शब्दों में विनय करता है। अभ्युदय चाहनेवाले प्रवृत्ति-मार्गी सकाम साधक के द्वारा जो-जो अभीष्ट कामनाएँ हो सकती हैं, वे सभी इस स्तोत्र में उल्लिखित हैं। **ऋग्वेद** में भी इसी प्रकार के बहुत से प्रार्थना-मन्त्र हैं। निःश्रेयस चाहनेवाले निवृत्ति-मार्गी निष्काम साधक उक्त अभीष्ट कामनाओं का लौकिक अर्थ न लेकर उनका आध्यात्मिक तात्पर्य ध्यान में रखते हुए इस स्तोत्र का पाठ करते हैं। **महेश ठक्कुर** कृत '**दुर्गा-प्रदीप**' टीका में तथा **नागो जी भट्ट** आदि अन्य टीकाकारों द्वारा आध्यात्मिक तात्पर्यों को स्पष्ट किया गया है, जिनको इस ग्रन्थ में '**व्याख्या**' के अन्तर्गत पाठक पढ़कर जान सकते हैं।

अर्गला-स्तोत्र के पाठान्तर

१ प्रचलित सामान्य पाठ के अनुसार केवल २५ श्लोक '**अर्गला-स्तोत्र**' में मिलते हैं, जब कि '**विशुद्ध चण्डी**' में मैथिल क्रम के अनुसार ३० श्लोक प्रकाशित किए गए हैं। इस प्रकार प्रचलित पाठ करनेवाले पाँच श्लोक कम पढ़ते रहे हैं। देखिए '**विशुद्ध चण्डी**' के **अर्गला-स्तोत्र** के श्लोक सं० ४, ६, ७, ९ और ३०। शेष २५ श्लोक वही हैं, जो '**विशुद्ध चण्डी**' में प्रकाशित **अर्गल-स्तोत्र** के श्लोक सं० १, २, ३, ५, ८, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १९, २०, २१, २२, २३, २४, २५, २६, २७, २८, २९ के रूप में दिए गए हैं। इन २५ श्लोकों के क्रम

में भिन्नता मिलती है। साथ ही श्लोक सं० ३, ५, ८, १०, २० और २२ में **पाठ-भेद** भी हैं, जो निम्न प्रकार हैं—

श्लोक-संख्या	'विशुद्ध चण्डी' का पाठ	प्रचलित पाठ
३	विद्रावि-विधातृ-वरदे	विद्रावि-विधात्रि-वरदे
५	निर्णाश	निर्णाशि
५	विधात्रि वरदे	भक्तानां सुखदे
८	कुलोच्छेद-विधात्रि वरदे! नमः	वधे देवि चण्ड-मुण्ड-विनाशिनि
१०	शुम्भ-राक्षस-संहार-विधात्रि वरदे! नमः	शुम्भस्यैव निशुम्भस्य धूम्राक्षस्य च मर्दिनि
२०	च मां कुरु	जनं कुरु
२२	दर्पघ्नि	दर्पघ्ने

'विशुद्ध चण्डी' में **मैथिल पाठ** के अनुसार **अर्गला-स्तोत्र** इसलिए दिया गया है क्योंकि अनेक दृष्टियों से वही अधिक शुद्ध और बुद्धि-सम्मत है। उदाहरणार्थ **'विधात्रि'**-शब्द का प्रयोग अनेक बार हुआ है, तो सर्वत्र उसे एक ही अर्थ का बोधक मानना अधिक समीचीन है। भिन्न अर्थ देनेवाला पाठ उपयुक्त नहीं है। इसी प्रकार जिन असुरों का नाश **भगवती चण्डिका** ने किया, उनका उल्लेख जब अभीष्ट है, तो वह क्रमानुसार और स्पष्टतया होना ही उचित है। **'विशुद्ध चण्डी'** में प्रकाशित **'अर्गला-स्तोत्र'** में ये सभी विशेषताएँ हैं। साथ ही पहली बार **'फल-श्रुति'** के श्लोकों को भी निर्दिष्ट कर दिया गया है।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि **'अर्गला-स्तोत्र'** के **विनियोगादि** में भी अनेक मत मिलते हैं। **'विशुद्ध चण्डी'** में **मैथिल-क्रम** के अनुसार **विनियोगादि** दिए गए हैं। कहीं-कहीं **विनियोगादि** से रहित पाठ मिलता है अर्थात् केवल **मूल स्तोत्र-पाठ** का ही विधान मिलता है। **प्रचलित विनियोग** में केवल **ऋषि, छन्द, देवता** का उल्लेख है, किन्तु **शक्ति** और **बीज** का उल्लेख नहीं है। **दक्षिण-भारतीय-क्रम** में सर्वथा भिन्न प्रकार के **विनियोगादि** मिलते हैं। यथा—

विनियोग—ॐअस्य श्रीअर्गल-स्तोत्रस्य महा - मन्त्रस्य सर्वाकर्षण - भैरव ऋषिः। अनुष्टुप् छन्दः। दश-कर्णिका देवता। अं बीजं। वं शक्तिः। सः कीलकं। मम देवी-प्रसाद-सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

कर-न्यास—आं अंगुष्ठाभ्यां। ईं तर्जनीभ्यां। ऊँ मध्यमाभ्यां। ऐं अनामिकाभ्यां। औं कनिष्ठकाभ्यां। अः करतल-करपृष्ठाभ्यां। एवं हृदयादि। भूर्भुवस्वरों दिग्-बन्धः।

ध्यान—प्रकाश-मध्य-स्थित-चित्-स्वरूपां, वराभये सन्दधतीं त्रि-नेत्राम्।
सिन्दूर-वर्णामति-कोमलाङ्गीं, माया-मयीं तत्त्व-मयीं नमामि॥

स्पष्ट है कि इस सम्बन्ध में कितने शोध की आवश्यकता है। जब तक शोध-पूर्वक प्रामाणिक विधि का प्रतिपादन नहीं होता, तब तक अपने गुरुदेव के निर्देशानुसार ही **'अर्गला-स्तोत्र'** का पाठ करना उचित है।

मूल अर्गल-स्तोत्र की सार्थ व्याख्या

जय त्वं देवि चामुण्डे! जय भूतार्ति-हारिणि!
जय सर्व-गते देवि! काल-रात्रि! नमोऽस्तु ते॥१

अर्थ—हे देवि **चामुण्डे!** तुम्हारी जय हो। हे **पृथिवी की सन्ताप-हारिणि**, तुम्हारी जय हो। **सर्व-व्यापिनी देवि**, तुम्हारी जय हो, हे **काल-रात्रि**, तुम्हें नमस्कार है।

व्याख्या—देवी के अनन्त नाम और अनन्त मूर्तियाँ हैं। इस स्तोत्र में अनेक नामों का उल्लेख हुआ है, जो उनके विभिन्न गुणों और शक्तियों के प्रतीक-स्वरूप हैं। इनकी सहायता से देवी के विशेष गुणों और शक्तियों का ध्यान किया जाता है। **'देवी-पुराण'** (अध्याय ३७।१०४) में देवी के कुछ नामों का तात्पर्य (निरुक्ति) दिया गया है। वहाँ बताया है कि—

अप्येकं वेत्ति यो नाम, धात्वर्थ - निगमैर्नरः।
स दुःखैर्वर्जिता सर्वैः, सदा पापाद् विमुच्यते॥

अर्थात् जो मनुष्य देवी के (असंख्य नामों में से) एक भी नाम का तात्पर्य जान लेता है, वह सब प्रकार के दुःखों से सदा रहित होकर पाप से मुक्त हो जाता है।

१ चामुण्डा—**'देवी-पुराण'**, ३७।१७ में कहा है कि—

हत्वा रुरुं महा-दैत्यं, ब्रह्म-विष्णु-भयङ्करम्।
तस्य प्रवृत्तं वै चर्म, मुण्डं वाम-करे तथा॥
गृहीत्वा निर्गता तूमा, सा चामुण्डा ततः स्मृता॥

अर्थात् **उमा** ने **ब्रह्मा-विष्णु** आदि देव-गण को भय देनेवाले **रुरु** नामक महाऽसुर का वध कर उसके चर्म और मुण्ड को अपने बाँएँ हाथ में धारण किया। तब से वे **'चामुण्डा'**-नाम से प्रसिद्ध हुईं।

श्री दुर्गा-सप्तशती चण्डी (७।२७) में **'चामुण्डा'**-नाम की व्याख्या (निरुक्ति) अन्य प्रकार से की गई है। यथा—

यस्माच्चण्डं च मुण्डं च, गृहीत्वा त्वमुपागता।
चामुण्डेति ततो लोके, ख्याता देवि! भविष्यसि॥

अर्थात् क्योंकि **चण्ड** और **मुण्ड** नामक दो असुरों को लेकर तुम मेरे पास आई हो, अतः हे देवि! संसार में तुम **'चामुण्डा'** नाम से विख्यात होगी।

२ भूतार्ति-हारिणि (भूताप-हारिणि)— १. भू-ताप-हारिणि अर्थात् जिन्होंने **पृथिवी के सन्ताप** को दूर किया, २. **भूतार्ति-हारिणि, भूत-अपहारिणि** अर्थात् जिन्होंने **विघ्न-कारक भूत-गण** को मार भगाया।

३ **काल-रात्रि**—प्रलय-कालीन रात्रि-स्वरूपा, जिसमें **ब्रह्मा का लय** होता है।

जयन्ती मङ्गला काली, भद्र-काली कपालिनी।
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री, स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते॥२

अर्थ—तुम **जयन्ती, मङ्गला, काली, भद्र-काली, कपालिनी, दुर्गा, क्षमा, शिवा, धात्री, स्वाहा** और **स्वधा** हो। तुम्हें नमस्कार है।

व्याख्या—१ **जयन्ती**—**दुर्गा-प्रदीप-टीका** के अनुसार **ब्रह्म-स्वरूपिणी भगवती देवी** सभी पदार्थों की मूल-भूत कारण होने से सबसे श्रेष्ठ हैं, अत: उन्हें '**जयन्ती**' कहते हैं। **देवी-पुराण** (३७-१२) में कहा है कि—**जयन्ती जयेनाख्याता।** अर्थात् देवी सर्वत्र ही जय प्राप्त करती हैं, अत: उनका नाम '**जयन्ती**' है।

२ **मङ्गला**—**दुर्गा-प्रदीप-टीका** में कहा है—

मङ्गं जनन-मरणादि-रूपं सर्पणं भक्तानां लाति नाशयति सा मोक्ष-प्रदा मङ्गला इत्युच्यते।

अर्थात् बार-बार जन्म-मृत्यु के आवागमन को '**मङ्ग**' कहते हैं। भक्तों के जन्म-मृत्यु-रूप आवागमन को नष्ट करने से देवी का नाम '**मङ्गला**' है।

३ **काली**—जो प्रलय के समय इस सारे संसार को खा जाती है, वही '**काली**' हैं—

कलयति भक्षयति सर्वमेतत् प्रलय-काले इति काली (प्रदीप:)।

'**महा-निर्वाण तन्त्र**', ४।३१ में **सदा-शिव** ने कहा है कि—

कलनात् सर्व-भूतानां, महा-काल: प्रकीर्तित:।
महा-कालस्य कलनात्, त्वमाद्या कालिका परा॥

अर्थात् सब प्राणियों को खाने से '**महा-काल**' कहे गए हैं। **महा-काल** को खाने से तुम '**आद्या परा कालिका**' कहलाती हो।

४ **भद्र-काली**—जो भक्तों का '**भद्र**' अर्थात् मङ्गल करती है या उन्हें सुख देना स्वीकार करती है—

भद्रं मङ्गलं सुखं कलयति स्वीकरोति भक्तेभ्यो दातुमिति भद्र-काली (प्रदीप:)।

'**रहस्यागम**' में कहा है कि—**भद्र-काली** सुख-प्रदा अर्थात् सुख-प्रदायिनी हैं।

५ **कपालिनी**—जो प्रलय के समय **ब्रह्मा** आदि को नष्ट कर उनके कपाल को अपने हाथों में लेकर विचरण करती हैं। '**रहस्यागम**' में लिखा है कि—

प्रपञ्चाम्बुज-हस्ता च, कपालिन्युच्यते परा।

अर्थात् **परा देवी** इस प्रपञ्च (संसार) रूपी कमल को अपने हाथ में धारण करती हैं, अत: '**कपालिनी**' कही जाती हैं।

'**देवी-पुराण**' (३७।१६) में कहा है कि—

कपालं ब्रह्मकं जातं, करे धार्यते सदा।
कपाला तेन सा प्रोक्ता, पालनाद् वा कपालिनी॥

अर्थात् ये सदा हाथ में **ब्रह्म-कपाल** लिए रहती हैं अथवा ये विश्व का पालन करती हैं, इसलिए '**कपालिनी**' कहलाती हैं।

'**मेदिनी कोश**' में इस नाम की व्याख्या यह दी है कि—

ब्रह्मादीन् निहत्य तेषां कपालं गृहीत्वा प्रलय-काले अटतीति कपालिनी।

अर्थात् **ब्रह्मादि** का नाश कर उनके कपाल को लेकर प्रलय-काल में जो रहती है, वह '**कपालिनी**' है।

६ दुर्गा—जो दु:ख से अर्थात् अष्टाङ्ग-योग और पूजा-कर्मों व उपासना-रूपी कठिन तपस्या द्वारा प्राप्त होती है (**प्रदीप**)—

दु:खेन अष्टाङ्ग-योग-सर्व-कर्मोपासना-रूपेण क्लेशेन गम्यते प्राप्यते सा ।

'**देवी-पुराण**' (३७।९) में कहा है कि—

स्मरणादि-भये दुर्गे, तारिता रिपु-सङ्कटे।
देवाः शक्रादयो यस्मात्, तेन दुर्गा प्रकीर्तिता॥

अर्थात् स्मरण मात्र करने से ही देवी ने **इन्द्रादि देवताओं** का शत्रु-सङ्कट दूर कर दिया था, जिससे वे '**दुर्गा**' नाम से प्रसिद्ध हुईं।

'**देव्यथर्वशीर्ष**' में कहा है कि—

तां दुर्गां दुर्गमां देवीं, दुराचार-विघातिनीम्।

अर्थात्—कठिनाई से हृदयङ्गम होनेवाली देवी **दुराचार को नष्ट करनेवाली** हैं, वही '**दुर्गा**' हैं।

७ शिवा—चिद्-रूपिणी (**प्रदीप**)। '**देवी-पुराण**' ३७।३ में कहा है कि—

शिवा मुक्तिः समाख्याता, योगिनां मोक्ष-गामिनी।
शिवाय यो जपेद् देवी, शिवा लोके ततः स्मृता॥

अर्थात् '**शिवा**' मुक्ति को कहते हैं। देवी योगियों को मोक्ष देती हैं। '**शिव**' या कल्याण के लिए देवी का जप करते हैं। अत: देवी संसार में '**शिवा**' कही जाती हैं।

'**सूत-संहिता**' का कथन है कि—

चिन्मात्राश्रय-मायायाः, शक्त्याकारे द्विजोत्तमाः।
अनु-प्रविष्टा या संविन्निर्विकल्पा स्वयं-प्रभा॥
सदाकारा सदानन्दा, संसारोच्छेद-कारिणी।
सा शिवा परमा देवी, शिवाभिन्ना शिवङ्करी॥

अर्थात् वह **शिवा** परमा देवी **शिव** से अभिन्न है, कल्याण-कारिणी है। सद्-रूपिणी, सदा आनन्द-मयी है और संसार से मुक्त करनेवाली है। चिन्मात्र (**ब्रह्म**) की आश्रय-भूत-माया के शक्ति-स्वरूप में प्रवेश कर रहनेवाली वह स्वयं-प्रकाशा संविद्-रूपा और विकल्पों से रहित है।

८ क्षमा—देवी भक्त और अभक्त लोगों के सभी अपराधों को सहन करती हैं और क्षमा करती हैं क्योंकि सबकी जननी हैं। वे अत्यन्त करुणा-मयी हैं। इसी से उन्हें '**क्षमा**' कहते हैं।

९ धात्री—सारे प्रपञ्च (सृष्टि) को धारण करनेवाली—

सर्व-प्रपञ्च-धारण-कर्त्री (प्रदीप:)।

'**देवी-पुराण**' ३७।२९ में कहा है कि—

धात्री मात्रा समाख्याता, धारणे चोपगीयते।
त्रयाणां चैव लोकानां, नाम त्रैलोक्य-धात्रिका॥

अर्थात् '**धात्री**' का अर्थ माता प्रसिद्ध है। धारण करने से यह नाम है। तीनों लोकों की माता है। अत: **त्रैलोक्य-धात्री** नाम है।

'**श्रुति**' (श्रीदेव्यथर्वशीर्ष) की उक्ति है कि—

अहं रुद्रैर्वसुभिश्चरामि। अहमादित्यैरुत विश्वे-देवै:।
अहं मित्रा-वरुणावुभौ बिभर्मि। अहमिन्द्राग्नी अहमश्विनावुभौ॥

अर्थात् मैं **रुद्रों** और **वसुओं** के रूप में सञ्चार करती हूँ। मैं **आदित्यों** और **विश्वेदेवों** के रूप में घूमा करती हूँ। मैं **मित्र** और **वरुण**, **इन्द्र** और **अग्नि**, **दोनों अश्विनीकुमारों** को धारण (पालन-पोषण) करती हूँ।

१० स्वाहा—देव-पोषिणी (प्रदीप:)। '**चण्डी**' (सप्तशती), ४।८ में कहा है कि—

यस्या: समस्त-सुरता समुदीरणेन,
तृप्तिं प्रयान्ति सकलेषु मखेषु देवि! स्वाहाऽसि वै…

अर्थात् हे देवि! सभी यज्ञों में '**स्वाहा**' का ठीक-ठीक उच्चारण करने से सभी देवों को तृप्ति होती है। अत: तुम्हीं '**स्वाहा**' हो।

११ स्वधा—पितृ-पोषिणी (प्रदीप:)। '**चण्डी**' (**सप्तशती**) ४।८ में कहा है कि—

...पितृ-गणस्य च तृप्ति-हेतुरुच्चार्यसे त्वमत एव जनै: स्वधा च।

अर्थात् पितृ-गण की तृप्ति के लिए लोगों द्वारा उच्चारण की जानेवाली '**स्वधा**' तुम्हीं हो।

मधु-कैटभ-विद्रावि! विधात्रि! वरदे! नम:।
रूपं देहि, जयं देहि, यशो देहि, द्विषो जहि॥३

अर्थ—**हे मधु-कैटभ-नाशिनी!** हे वर देनेवाली! तुम्हें नमस्कार। रूप दो, जय दो, यश दो, शत्रुओं का नाश करो।

व्याख्या—**मधु** और **कैटभ** नामक दो असुर **ब्रह्मा** को मारने के लिए उद्यत हुए, तो **ब्रह्मा** ने देवी की स्तुति की। देवी ने प्रसन्न होकर **विष्णु** को सचेत किया और उन्होंने उन असुरों का वध किया। यह घटना '**चण्डी**' (**सप्तशती**) के पहले अध्याय में वर्णित है।

यहाँ पाठ-भेद के अनुसार '**विधातृ-वरदे**' पाठ भी मिलता है, जिसके अनुसार अर्थ होता है कि '**हे ब्रह्मा को वर देनेवाली!**' उक्त घटना के अनुसार **ब्रह्मा द्वारा स्तुति** करने पर देवी ने उन्हें वरदान दिया था। यह घटना '**देवी-भागवत**' के प्रथम स्कन्ध में भी वर्णित है।

चण्डी-पाठ से अभ्युदय अर्थात् **सांसारिक भोगैश्वर्य** और **पारलौकिक स्वर्ग** एवं **मुक्ति** दोनों की प्राप्ति होती है। इसी के अनुसार अधिकारी-भेद से उक्त प्रार्थना के दो-दो अर्थ हैं। यथा—

रूपं देहि—१ माँ, हमें **रूप (सौन्दर्य)** प्रदान करो।

२ रूप्यते ज्ञायते इति रूपं परमात्म-वस्तु (प्रदीपः)

अर्थात् एक-मात्र निरूपण करने योग्य वस्तु है—'**परमात्मा**'। वही '**रूप**' है। हे माँ, हमें परमात्म-तत्त्व को प्राप्त कराओ।

आगम में कहा है कि— **रूपं भवेद् विन्दुरमन्द-कान्तिः।**

अर्थात् '**रूप**' बिन्दु या अमन्द (तीव्र) कान्ति (तेज) को कहते हैं। उसे प्रदान करो।

जयं देहि—१ माँ, जीवन-संग्राम में हमें **जय** दिलाओ।

२ जयत्यनेन परमात्मनः स्वरूपमिति जयो वेद-स्मृति-राशिः। (प्रदीपः)

अर्थात् जिसके द्वारा परमात्मा के स्वरूप को जय किया जाए; जाना जाए; वही '**जय**' या **वेद की स्मृति-राशि** है। हे माँ, हमें **श्रुतियों** का और **स्मृतियों** का ज्ञान कराओ, जिससे हम **ब्रह्म-स्वरूप** को जान सकें।

यशो देहि—१ हे माँ, हमें **यशस्वी** बनाओ।

२ 'सह नौ यशः' इति-श्रुति-प्रसिद्धं तत्त्व-ज्ञान-सम्पादन-जन्यं यशस्तद् देहि (प्रदीपः)

अर्थात् श्रुतियों में प्रसिद्ध **तत्त्व-ज्ञान** होने से मिलनेवाला '**यश**' हमें प्रदान करो।

द्विषो जहि—१ हे माँ, हमारे **शत्रुओं का नाश** करो।

२ काम-क्रोधादीन् शत्रून् जहि। (प्रदीपः)

अर्थात् काम-क्रोधादि रूपी शत्रुओं का नाश करो। '**गीता**', ३।४३ में **भगवान्** ने **अर्जुन** से कहा है कि— **जहि शत्रुं महा-बाहो! काम-रूपं दुरासदम्।**

अर्थात् हे वीर **अर्जुन!** काम-रूप दुर्जय शत्रु को मारो।

महिषासुर-सैन्यान्त-विधात्रि! वरदे! नमः।
रूपं देहि, जयं देहि, यशो देहि, द्विषो जहि॥४

अर्थ—हे **महिषासुर-सैन्य** का अन्त करनेवाली! वर देनेवाली! तुम्हें नमस्कार। रूप दो, जय दो, यश दो, शत्रुओं का नाश करो।

व्याख्या—देवी द्वारा **महिषासुर** की सेनाओं के नाश की घटना '**चण्डी**' **(सप्तशती)** के दूसरे अध्याय में वर्णित है।

महिषासुर-निर्णाश - विधात्रि! वरदे! नमः।
रूपं देहि, जयं देहि, यशो देहि, द्विषो जहि॥५

अर्थ—**हे महिषासुर-नाशिनी!** वर देनेवाली! तुम्हें नमस्कार! रूप दो, जय दो, यश दो, शत्रुओं का नाश करो।

व्याख्या—देवी द्वारा **महिषासुर** के वध की घटना '**चण्डी**' **(सप्तशती)** के तीसरे अध्याय में वर्णित है।

धूम्र-लोचन - दर्पान्त - विधात्रि! वरदे! नमः।
रूपं देहि, जयं देहि, यशो देहि, द्विषो जहि॥६

अर्थ—हे **धूम्र-लोचन** का वध करनेवाली! हे वर देनेवाली! तुम्हें नमस्कार। रूप दो, जय दो, यश दो, शत्रुओं का नाश करो।

व्याख्या—देवी द्वारा **धूम्र-लोचन** के वध की घटना **'चण्डी'(सप्तशती)** के छठे अध्याय में वर्णित है।

चण्ड-मुण्ड-प्रमथन - विधात्रि! वरदे! नमः।
रूपं देहि, जयं देहि, यशो देहि, द्विषो जहि॥७

अर्थ—हे **चण्ड-मुण्ड** का नाश करनेवाली! हे वर देनेवाली! तुम्हें नमस्कार। रूप दो, जय दो, यश दो, शत्रुओं का नाश करो।

व्याख्या—**चण्ड-मुण्ड** के नाश की घटना **'चण्डी'(सप्तशती)** के सातवें अध्याय में वर्णित है।

रक्त-बीज-कुलोच्छेद-विधात्रि! वरदे ! नमः।
रूपं देहि, जयं देहि, यशो देहि, द्विषो जहि॥८

अर्थ—हे **रक्त-बीज** का वध करनेवाली! हे वर देनेवाली देवि! तुम्हें नमस्कार। रूप दो, जय दो, यश दो, शत्रुओं का नाश करो।

व्याख्या—**रक्त-बीज** के वध की घटना **'चण्डी'(सप्तशती)** के आठवें अध्याय में वर्णित है।

निशुम्भ-प्राण-संहार - विधात्रि! वरदे! नमः।
रूपं देहि, जयं देहि, यशो देहि, द्विषो जहि॥९

अर्थ—हे **निशुम्भ** के प्राणों का नाश करनेवाली! हे वर देनेवाली! तुम्हें नमस्कार। रूप दो, जय दो, यश दो, शत्रुओं का नाश करो।

व्याख्या—**निशुम्भ** के वध की घटना **'चण्डी'(सप्तशती)** के नवें अध्याय में वर्णित है—

शुम्भ-राक्षस-संहार -विधात्रि! वरदे ! नमः।
रूपं देहि, जयं देहि, यशो देहि, द्विषो जहि॥१०

अर्थ—हे **शुम्भ** राक्षस का संहार करनेवाली! हे वर देनेवाली! तुम्हें नमस्कार। रूप दो, जय दो, यश दो, शत्रुओं का नाश करो।

व्याख्या—**शुम्भ** के वध की घटना **'चण्डी'(सप्तशती)** के दसवें अध्याय में वर्णित है।

वन्दितांघ्रि-युगे देवि! सर्व-सौभाग्य-दायिनि!
रूपं देहि, जयं देहि, यशो देहि, द्विषो जहि॥११

अर्थ—हे देवि! तुम्हारे दोनों चरण **ब्रह्मादि देवों द्वारा वन्दित** हैं। तुम सब प्रकार के सौभाग्य की देनेवाली हो। रूप दो, जय दो, यश दो, शत्रुओं का नाश करो।

अचिन्त्य-रूप-चरिते! सर्व-शत्रु-विनाशिनि!
रूपं देहि, जयं देहि, यशो देहि, द्विषो जहि॥१२

अर्थ—हे देवि! तुम्हारा रूप और चरित चिन्ता के परे हैं। तुमने सभी शत्रुओं का नाश कर दिया। रूप दो, जय दो, यश दो, शत्रुओं का नाश करो।

व्याख्या—'**श्रुति**' में कहा है कि परम तत्त्व को वाणी द्वारा नहीं जाना जा सकता—

यतो वाचो निवर्तन्ते।

नतेभ्यः सर्वदा भक्त्या, चण्डिके! दुरितापहे!
रूपं देहि, जयं देहि, यशो देहि, द्विषो जहि॥१३

अर्थ—हे देवि **चण्डिके**! जो तुम्हें सदा भक्ति से प्रणाम करते हैं, उनके पापों को तुम नष्ट कर देती हो। रूप दो, जय दो, यश दो, शत्रुओं का नाश करो।

व्याख्या—उक्त श्लोक में एक पाठ-भेद '**चण्डिके**' के स्थान पर '**अपर्णे**' मिलता है। '**अपर्णा**' भगवती का ही एक नाम है, जिसका स्पष्टीकरण निम्न प्रकार है—

अपर्णा—पर्वत-राज **हिमालय** के घर में जन्म लेकर **दुर्गा** ने **शिव** को पति-रूप में पाने के लिए कठिन तप किया। उस समय उन्होंने पत्तों तक का खाना छोड़ दिया था, जिससे उनका नाम '**अपर्णा**' पड़ गया। **महा-कवि कालिदास** ने इसी सम्बन्ध में अपने महा-काव्य '**कुमार-सम्भव**', ५।२८ में लिखा है कि—

स्वयं विशीर्ण-द्रुम-पर्ण-वृत्तिता, परा हि काष्ठा तपस्तया पुनः।
तदप्यपाकीर्णमतः प्रियम्वदां, वदन्त्यपर्णेति च तां पुरा-विदः॥

अर्थात् वृक्ष से अपने आप गिरे हुए सूखे पत्तों पर ही जीवन धारण करना तपस्या की चरम सीमा है, किन्तु **पार्वती** ने पत्तों का खाना भी त्याग दिया। अतः पुराण-शास्त्र के ज्ञाता लोग उस प्रियम्वदा को '**अपर्णा**' कहते हैं।

स्तुवद्भ्यो भक्ति-पूर्वं त्वां, चण्डिके! व्याधि-नाशिनि!
रूपं देहि, जयं देहि, यशो देहि, द्विषो जहि॥१४

अर्थ—हे **चण्डिके!** जो भक्ति से तुम्हारी स्तुति करते हैं, उनके रोगों को तुम नष्ट कर देती हो। रूप दो, जय दो, यश दो, शत्रुओं का नाश करो।

चण्डिके! सततं ये त्वामर्चयन्तीह भक्तितः।
रूपं देहि, जयं देहि, यशो देहि, द्विषो जहि॥१५

अर्थ—हे **चण्डिके!** इस संसार में जो निरन्तर भक्ति-पूर्वक तुम्हारा अर्चन करते हैं, उन्हें रूप दो, जय दो, यश दो, शत्रुओं का नाश करो।

देहि सौभाग्यमारोग्यं, देहि मे परमं सुखम्।
रूपं देहि, जयं देहि, यशो देहि, द्विषो जहि॥१६

अर्थ—हे देवि! मुझे सौभाग्य और आरोग्य दो तथा परम सुख प्रदान करो। रूप दो, जय दो, यश दो, शत्रुओं का नाश करो।

विधेहि देवि! कल्याणं, विधेहि परमां श्रियम्।
रूपं देहि, जयं देहि, यशो देहि, द्विषो जहि॥१७

अर्थ—हे देवि! कल्याण करो, बहु ऐश्वर्य प्रदान करो। रूप दो, जय दो, यश दो, शत्रुओं का नाश करो।

विधेहि द्विषतां नाशं, विधेहि बलमुच्चकैः।
रूपं देहि, जयं देहि, यशो देहि, द्विषो जहि॥१८

अर्थ—शत्रुओं का नाश करो, अत्यन्त ऊँचा बल प्रदान करो। रूप दो, जय दो, यश दो, शत्रुओं का नाश करो।

व्याख्या—**उच्चकैः-अतिशयेन उच्चम्** (प्रदीपः)। श्रुति '**मुण्डक**', ३।२।४ में लिखा है—

नायमात्मा बल-हीनेन लभ्यः।

अर्थात् बल-हीन व्यक्ति इस आत्मा को प्राप्त नहीं कर सकता। अतः हे माँ, हमें महद् बल प्रदान करो, जिससे हम तुम्हें पा सकें।

सुरासुर - शिरो - रत्न - निघृष्ट - चरणेऽम्बिके!
रूपं देहि, जयं देहि, यशो देहि, द्विषो जहि॥१९

अर्थ—हे देवि! सुर और असुर-गण के मस्तक में स्थित रत्नों से तुम्हारे चरण-कमल घर्षित होते हैं अर्थात् तुम **सुरासुर-वन्दिता** हो। रूप दो, जय दो, यश दो, शत्रुओं का नाश करो।

व्याख्या—**सुर** और **असुर** स्वभावतः एक-दूसरे के वैरी हैं, किन्तु यहाँ इन दोनों द्वारा साथ-साथ **भगवती की वन्दना** का उल्लेख किया गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि **भगवती की आराधना** होने से संसार में '**निर्वैरता**' और '**अद्वैत-भाव**' का प्रसार होता है।

विद्या-वन्तं यशस्वन्तं, लक्ष्मी-वन्तं च मां कुरु।
रूपं देहि, जयं देहि, यशो देहि, द्विषो जहि॥२०

अर्थ—हमें विद्या से युक्त, यशस्वी और श्री से सम्पन्न करो। रूप दो, जय दो, यश दो, शत्रुओं का नाश करो।

व्याख्या—**विद्या-वन्तं**—विद्या दो प्रकार की होती है—**१ परा, २ अपरा**।'**मुण्डकोपनिषद्**' (१।१।४) में लिखा है कि—

द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म, यद् ब्रह्म-विदो वदन्ति परा चैवापरा च।

अर्थात् **ब्रह्म-विद्** लोग कहते हैं कि **परा** और **अपरा** इन दो विद्याओं को जानना चाहिए।

तत्रापरा ऋग्वेदो, यजुर्वेदः, साम-वेदोऽथर्व-वेदः, शिक्षा, कल्पो, व्याकरणं, निरुक्तं, छन्दो, ज्योतिषमिति। अथ परा यया तदक्षरमधि-गम्यते। (१।१।५)

अर्थात् **ऋग्वेद, यजुर्वेद, साम-वेद, अथर्व-वेद, शिक्षा** (उच्चारणादि का बोधक वेदाङ्ग), **कल्प** (वैदिक क्रिया-कलाप-बोधक वेदाङ्ग), **व्याकरण, निरुक्त** (वेद-व्याख्या के नियमादि का बोधक वेदाङ्ग), **छन्द** और **ज्योतिष**—ये **अपरा विद्या** हैं। जिसके द्वारा **अक्षर पुरुष** को जाना जाता है, वही **परा विद्या** है।

उक्त श्लोक में '**च मां**' के स्थान पर पाठान्तर '**जनं**' मिलता है। '**जनं**' का अर्थ है—'**स्व-भक्तं**' अर्थात् अपने भक्त को विद्यावान्, यशस्वी और लक्ष्मीवान् करो।

देवि! प्रचण्ड-दोर्दण्ड-दैत्य-दर्प-विनाशिनि!

रूपं देहि, जयं देहि, यशो देहि, द्विषो जहि॥२१

अर्थ—हे देवि! तुमने अपने प्रचण्ड भुज-दण्डों से दैत्य-गण का घमण्ड चूर-चूर कर दिया। (अथवा इन सभी दैत्यों का भुज-दण्ड प्रचण्ड था, तुमने उनका घमण्ड नष्ट कर दिया)। रूप दो, जय दो, यश दो, शत्रुओं का नाश करो।

प्रचण्ड-दैत्य-दर्पघ्नि, चण्डिके! प्रणताय मे।

रूपं देहि, जयं देहि, यशो देहि, द्विषो जहि॥२२

अर्थ—प्रचण्ड दैत्यों के घमण्ड का नाश करनेवाली हे **चण्डिके!** तुम्हारे चरणों में नत-मस्तक हूँ। मुझे रूप दो, जय दो, यश दो, शत्रुओं का नाश करो।

चतुर्भुजे चतुर्वक्त्र - संस्तुते परमेश्वरि!

रूपं देहि, जयं देहि, यशो देहि, द्विषो जहि॥२३

अर्थ—हे **चतुर्भुजे! चतुर्मुख ब्रह्मा** तुम्हारी स्तुति करते हैं। हे **परमेश्वरि!** रूप दो, जय दो, यश दो, शत्रुओं का नाश करो।

कृष्णेन संस्तुते देवि! शश्वद् भक्त्या सदाऽम्बिके!

रूपं देहि, जयं देहि, यशो देहि, द्विषो जहि॥२४

अर्थ—हे **अम्बिके!** तुम सदा **कृष्ण** द्वारा भक्ति-पूर्वक संस्तुता हो। रूप दो, जय दो, यश दो, शत्रुओं का नाश करो।

व्याख्या—**श्रीकृष्ण-द्वारा भगवती की उपासना** करने की कथा **'श्रीमद्-देवी-भागवत'** महा-पुराण की प्रसिद्ध है।

हिमाचल-सुता-नाथ-संस्तुते! परमेश्वरि!

रूपं देहि, जयं देहि, यशो देहि, द्विषो जहि॥२५

अर्थ—हे परमेश्वरि! **हिमालय-कन्या उमा** के पति अर्थात् **महा-देव** द्वारा तुम संस्तुता हो। रूप दो, जय दो, यश दो, शत्रुओं का नाश करो।

इन्द्राणी-पति-सद्भाव-पूजिते! परमेश्वरि!

रूपं देहि, जयं देहि, यशो देहि, द्विषो जहि॥२६

अर्थ—हे परमेश्वरि! तुम **शची-पति इन्द्र** द्वारा भक्ति-पूर्वक पूजिता हो। रूप दो, जय दो, यश दो, शत्रुओं का नाश करो।

व्याख्या—**इन्द्राणी-पति-सद्भाव-पूजिते**—**'गुप्तवती'** टीका में इस पद के दो अर्थ किए गए हैं—**१ इन्द्राणी के पति** अर्थात् **इन्द्र** द्वारा भक्ति-पूर्वक पूजिता, **२ इन्द्राणी** द्वारा **पति** अर्थात् **इन्द्र** के अवस्थान को जानने के लिए पूजिता। **पुराण** की कथा है कि **दुर्वासा मुनि** के शाप से **इन्द्र** श्री-हीन हो गए और लज्जित होकर किसी सरोवर के कमल के नाल के भीतर छिपकर रहने

लगे। **इन्द्राणी** ने **दुर्गा की आराधना** कर उनके छिपने के स्थान का पता जाना और तब उनके पास गईं।

देवि! भक्त-जनोद्दाम - दत्ताऽनन्दोदयेऽम्बिके!
रूपं देहि, जयं देहि, यशो देहि, द्विषो जहि॥२७

अर्थ—हे देवि **अम्बिके!** तुम ऐकान्तिक भक्तों को आनन्दोदय अर्थात् मोक्ष प्रदान करती हो। रूप दो, जय दो, यश दो, शत्रुओं का नाश करो।

व्याख्या—**भक्त-जनोद्दाम-दत्तानन्दोदये—भक्त-जनेषु ये उद्दामाः, तेभ्यः दत्त आनन्दोदयः मोक्षः यया** (गुप्तवती)। अर्थात् भक्तों में जो उद्दाम अर्थात् **ऐकान्तिक भक्ति-विशिष्ट** लोग हैं, उन्हें जो **आनन्दोदय (मोक्ष)** देती है।

पत्नीं मनोरमां देहि, मनो-वृत्तानुसारिणीम् ।
तारिणीं दुर्ग - संसार - सागरस्य कुलोद्भवाम्॥२८

अर्थ—हे देवि! दुर्गम संसार सागर से पार करानेवाली, कुलीन वंश में उत्पन्न, सुन्दर पत्नी मुझे प्रदान करो, जो मेरे मन की भावनाओं के अनुरूप व्यवहार करे।

व्याख्या—'**तारिणी पत्नी**' से आशय है '**मार्कण्डेय पुराण**' में प्रसिद्ध '**मदालसा**' और '**वासिष्ठ रामायण**' में प्रसिद्ध '**चूड़ाला**' जैसी पत्नी से। **मदालसा** के द्वारा पुत्र का और **चूड़ाला** के द्वारा पति का उद्धार (तारण) हुआ है।

फल-श्रुति

इदं स्तोत्रं पठित्वा तु, महा - स्तोत्रं पठेन्नरः।
सप्तशतीं समाराध्य, वरमाप्नोति सु-दुर्लभम् ॥२९

अर्थ—मनुष्य इस स्तोत्र का पाठ कर **महा-स्तोत्र (चण्डी, देवी-माहात्म्य या सप्तशती)** का पाठ करे। **सप्तशती की आराधना** कर वह दुर्लभ वर को प्राप्त करता है।

व्याख्या—**सप्तशती**—सात सौ मन्त्रों से युक्त '**चण्डी**' या **देवी-माहात्म्य।**

उक्त श्लोक के पाठान्तर में दूसरा चरण निम्न प्रकार मिलता है—

स तु सप्तशती-संख्या - वरमाप्नोति सम्पदः।

अर्थात् वह **सप्तशती** के 'संख्या - वर' अर्थात् उसके उचित रूप से उच्चारण द्वारा मिलनेवाले '**वर**' या फल को पाता है तथा अन्य सम्पत्तियाँ प्राप्त करता है।

अर्गलं पाप-जातस्य, दारिद्र्यस्य तथाऽर्गलम्।
इदमादौ पठित्वा तु, पश्चात् श्रीचण्डिकां पठेत्॥३०

अर्थ—पूर्वार्जित पापों का यह '**अर्गल**' है और दरिद्रता का यह '**अर्गल**' है अर्थात् इस '**अर्गला-स्तोत्र**' के पाठ से **पाप और दरिद्रता का नाश** होता है। इसे पहले पढ़कर, तब **चण्डी (सप्तशती)** का पाठ करना चाहिए।

❋❋❋

सार्थ कीलक स्तोत्र

'कीलक' का महत्त्व

जिसके द्वारा बाँधा जाय, उसे '**कील**' या '**कीलक**' कहते हैं—

कीलति बध्नाति अनेन इति कीलः, स्वार्थे कन्।

मन्त्रों के फल की सिद्धि में बाधा डालनेवाले शाप को '**कीलक**' कहते हैं। '**कीलक-स्तव**' एक विशेष प्रकार का **शापोद्धार** है। '**चण्डी**' या '**देवी-माहात्म्य**' के सम्बन्ध में **महा-देव** का '**कीलक**' है। उस '**कीलक**' को दूर किए बिना '**चण्डी-पाठ**' करने से अभीष्ट फल नहीं मिलता। उक्त शाप या '**कीलक**' का वास्तविक रहस्य है—अधिकार-निर्णय। '**कीलक-स्तव**' का पाठ करने से साधक को '**चण्डी-तत्त्व**' के समझने की योग्यता मिलती है।

इसके महत्त्व को निम्न उक्ति भी प्रतिपादित करती है—

कीलकं हृदये यस्य, स कीलित - मनोरथः।
भविष्यति न सन्देहो, नान्यथा शिव - भाषितम्॥

अर्थात् जिसके हृदय में '**कीलक**' विद्यमान है, वह कीलित-मनोरथ हो जाएगा, इसमें सन्देह नहीं। **शिव** का यह कथन व्यर्थ नहीं है।

'**रहस्य-तन्त्र**' में जो '**गुरु-कीलक पटल**' है, उससे ज्ञात होता है कि संसार में शीघ्र सिद्धि दिलानेवाले '**चण्डी-स्तोत्र**' के प्रचलन से **ब्रह्म-काण्ड, ज्ञान-काण्ड** और **तन्त्र-काण्ड** का प्रचार रुक गया। अतः इन तीनों काण्डों की सार्थकता को पुनः प्रतिष्ठित करने के लिए **महा-देव** ने '**चण्डी**' को **कीलक** द्वारा बाँध दिया—

तदारभ्य च मन्त्रोऽयं, कीलकेनास कीलितः।
न सर्वेषां भवेत् सिद्ध्यै, ये कीलक-पराङ्-मुखाः॥
ये नराः कीलकेनेमं, जपन्ति परया मुदा।
तेषां देवी प्रसन्ना स्यात्, ततः सर्वाः समृद्धयः॥

अर्थात् तब से यह मन्त्र (**चण्डी-सप्तशती - स्तोत्र**) कीलक से कीलित (बँधा हुआ) है। जो '**कीलक**' की उपेक्षा करते हैं, उन्हें सिद्धि नहीं मिलती। जो लोग परम आनन्द के साथ इस '**कीलक**' का जप करते हैं, उन पर देवी प्रसन्न होती हैं और सभी प्रकार की समृद्धि साधक को मिलती है।

कीलक-स्तोत्र के पाठान्तर

प्रचलित सप्तशती में '**कीलक-स्तोत्र**' के केवल १४ श्लोक ही पाए जाते हैं, जब कि '**विशुद्ध चण्डी**' में १७ श्लोक प्रकाशित किए गए हैं। इस प्रकार लोग अन्तिम तीन श्लोकों का कम पाठ करते रहे हैं। शेष १४ श्लोकों में **पाठ-भेद** भी मिलते हैं, जिनमें से कुछ निम्न प्रकार हैं—

श्लोक-संख्या	'विशुद्ध चण्डी' का पाठ	प्रचलित पाठ
२	सर्वमेतद् विजानीयान्	सर्वदैव पठेद् यस्तु
२	मपि कीलकम्	मभि कीलकम्
२	जप्य	१ जप, २ जाप्य
३	कर्माणि	वस्तूनि
३	देवी स्तोत्र-वृन्देन भक्तित:	देवि! स्तोत्र-मात्राणि सिद्ध्यति
४	तस्य	तत्र
४	जप्येन	जाप्येन
४	सिद्ध्यन्ति	सिद्ध्येत
५	सिद्ध्यन्ति	सेत्स्यन्ति
५	लोके शङ्का	लोक-शङ्का
६	गुह्यं	गुप्तं
६	स प्राप्नोति सु-पुण्येन	१ समाप्नोति सु-पुण्येन, २ समाप्तिर्न च पुण्यस्य
६	निमन्त्रणाम्	१ निमन्त्रिणाम्, २ नियन्त्रणाम्
७	सर्वमेव न	१ सर्वमेतन्न, २ सर्वमेवं न
८	प्रसीदति	प्रसिद्ध्यति
९	चण्डीं जपति नित्यश:	नित्यं जपति संस्फुटम्
१०	चैवापाटवं	चैवाप्यटत:
१०	क्वापि न	१ क्वापि हिं, २ क्वापीह
१०	मृते च मोक्षमाप्नुयात्	मृतो मोक्षमवाप्नुयात्
११	ह्यकुर्वाणो	न कुर्वाणो
११	बुधै:	जनै:
११	सम्पूर्णमिदं	सम्पन्नमिदं
१२	जप्यमिदं	जाप्यमिदं

वङ्गीय 'कीलक-स्तव' के अन्त में दो श्लोक सर्वथा भिन्न मिलते हैं, जिनका उल्लेख व्याख्या के अन्तर्गत आगे किया गया है।

'**कीलक-स्तोत्र**' के **विनियोगादि** में भी अन्तर मिलता है। **प्रचलित 'सप्तशती'** के **विनियोग** में '**वीज**' और '**शक्ति**' का अभाव है तथा **ऋष्यादि** और **देवता** का ध्यान भी नहीं दिया गया है। '**विशुद्ध चण्डी**' में प्रकाशित **विनियोगादि** में ऐसी त्रुटियाँ नहीं हैं।

दक्षिण-भारत के पाठ में इस स्तोत्र का **विनियोगादि** सर्वथा भिन्न है। यथा—

विनियोग—ॐ अस्य श्रीकीलक-स्तोत्र-महा-मन्त्रस्य विशुद्ध-ज्ञान-रुद्र ऋषिः। अनुष्टुप् छन्दः। दश-कर्णिका देवता। कं बीजं। लं शक्तिः। ईं कीलकं। मम देवी-प्रसाद-सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

कर-न्यास—क्लां अंगुष्ठाभ्यां। क्लीं तर्जनीभ्यां। क्लूं मध्यमाभ्यां। क्लैं अनामिकाभ्यां। क्लौं कनिष्ठिकाभ्यां। क्लः करतल-कर-पृष्ठाभ्यां एवं हृदयादि भूर्भुवस्वरों दिग्-बन्धः।

ध्यान—हेम-प्रभं सोम-कलावतंसं, पाणि स्फुरत् पञ्च-शरेषु चापम्।
प्राण-प्रियं नौमि पिनाक-पाणेः, कोण-त्रयस्थं कुल-दैवतः सः॥

'सप्तशती का पाठ'

शापों के कारण '**सप्तशती**' के पाठ करने से जितना फल मिलना चाहिए, उतना नहीं मिलता।

'**सप्तशती**' के पाठ करनवालों को पहले '**शाप-मोचन मन्त्र**' का **दस माला 'जप'** करना चाहिए और बाद में प्रत्येक '**पाठ**' करने के पूर्व **२१ बार 'शाप-मोचन'** तथा **२१ बार 'उत्कीलन'** का जप करना चाहिए। इस प्रकार '**सप्तशती**' का पाठ करने से उचित फल मिलता है।

'**उत्कीलन**' इस प्रकार करना चाहिए – **ॐ क्लीं ह्रीं क्लीं विशुद्ध-ज्ञान-देहाय, त्रि-वेदी-दिव्य-चक्षुषे। श्रेयः प्राप्ति-निमित्ताय, नमः सोमार्द्ध-धारिणे ह्रीं ऐं स्वाहा॥**

– गुप्तावतार बाबाश्री

देखिए, मुमुक्षु मार्ग (रहस्योद्घाटन)

मूल 'कीलक'-स्तोत्र की सार्थ व्याख्या

विशुद्ध-ज्ञान-देहाय, त्रि-वेदी-दिव्य-चक्षुषे।
श्रेयः प्राप्ति-निमित्ताय, नमः सोमार्द्ध-धारिणे॥१

अर्थ—**मार्कण्डेय ऋषि** (शिष्यों से) बोले कि **विशुद्ध ज्ञान** जिनके देह का स्वरूप है, **वेद-त्रय** जिनके दिव्य चक्षु-स्वरूप हैं, जो **मङ्गल-प्राप्ति** के कारण हैं और जो (ललाट पर) **अर्द्ध-चन्द्र** धारण किए हैं, उन **महा-देव** को नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या—यह श्लोक **कुमारिल भट्ट** कृत **'मीमांसा-वार्त्तिक'** ग्रन्थ के मङ्गला-चरण-श्लोक रूप में भी मिलता है। यहाँ यही **'कीलक'-मन्त्र** रूप में प्रयुक्त हुआ है क्योंकि अगले श्लोक में **'सर्वमेतद्'** अर्थात् **'इस सबको'** पद से यही श्लोक इङ्गित होता है। अत: बहुत से भक्त साधक इस प्रथम श्लोक को ही **सप्तशती का 'कीलक'-मन्त्र** मान कर जपते हैं।

जो लोग ऐसा नहीं मानते, उनके लिए यह श्लोक मङ्गलाचरण-रूप है और शेष श्लोक-समुदाय **कीलक-स्तोत्र** है, किन्तु प्रथम पक्ष ही अधिक तर्क-सङ्गत है क्योंकि श्लोक २ और उसके आगे के श्लोक तो **'फल-श्रुति'** के हैं, जैसा कि उनके अर्थ से स्पष्ट है।

फल-श्रुति

सर्वमेतद् विजानीयान्, मन्त्राणामपि कीलकम्।
सोऽपि क्षेममवाप्नोति, सततं जप्य-तत्परः॥२

अर्थ—इसे मन्त्र-समूह का **'कीलक'** सम्पूर्ण रूप से जाने। जो सदा **कीलक-स्तव** का पाठ करता है, वह कल्याण को पाता है।

व्याख्या—वर्ष ३६ की **'चण्डी'-पत्रिका** के सातवें अङ्क में जयपुर के **पं० हरिशास्त्री दाधीच** ने अपने **'सप्तशती में उत्कीलन-विधान'** शीर्षक लेख में यह प्रतिपादित किया है कि **'सर्वमेतद्'** पद वास्तव में **'सप्तशती'** के मूल **१३ अध्यायों** को इङ्गित करता है। अत: इस **'कीलक-स्तोत्र'** में जो फल-श्रुति कही गई है, वह **'सप्तशती'** के पाठ के ही सम्बन्ध में समझनी चाहिए।

सिद्ध्यन्त्युच्चाटनादीनि, कर्माणि सकलान्यपि।
एतेन स्तुवतां देवीं, स्तोत्र-वृन्देन भक्तितः॥३

अर्थ—जो इस स्तोत्र-समूह के द्वारा **देवी की स्तुति** भक्ति के साथ करता है, उसे उच्चाटन आदि सभी कर्म सिद्ध हो जाते हैं।

व्याख्या—**उच्चाटनादि**–'उच्चाटन' आदि अभिचार-कर्म। '**अभिचार**'-शब्द से **विपद्-निवारण** और तज्जन्य याग-यज्ञादि या मन्त्रोच्चारण-पूर्वक काम्य-सिद्धि प्राप्त करना समझा जाता है। भारत में ही नहीं, संसार के सभी देशों में मन्त्र या गुप्त क्रिया द्वारा **शत्रु-नाश** करने या **अभीष्ट सिद्धि** पाने में विश्वास देखा जाता है।

तन्त्र-शास्त्र में अभिचार-क्रियाओं का उल्लेख '**षट्-कर्म**' नाम से किया गया है। '**षट्-कर्म-दीपिका**' के अनुसार वे छः प्रकार के हैं—

शान्ति-वश्य-स्तम्भनानि, विद्वेषोच्चाटने तथा।
मारणान्तानि शंसन्ति, षट्-कर्माणि मनीषिणः॥

अर्थात् १ शान्ति-कर्म, २ वशीकरण, ३ स्तम्भन, ४ विद्वेषण, ५ उच्चाटन और ६ मारण। पण्डित इन्हीं छः कर्मों को **षट्-कर्म** कहते हैं।

रोग-कृत्या-ग्रहादीनां, निरासः शान्तिरीरिता।
वश्यं जनानां सर्वेषां, विधेयत्वमुदीरितम्॥

अर्थात् जिन कर्मों द्वारा रोग, कुकृत्या और ग्रहों आदि का दोष शान्त होता है, उन्हें '**शान्ति-कर्म**' और जिनसे सभी प्राणी अपने वशीभूत हों, उन्हें '**वश्य-कर्म**' कहते हैं।

प्रवृत्ति-रोधः सर्वेषां, स्तम्भनं समुदाहृतम्।
स्निग्धानां द्वेष-जननं, मिथो विद्वेषणं मतम्॥

अर्थात् जिन क्रियाओं से सभी प्राणियों की प्रवृत्ति में रुकावट होती है, उन्हें '**स्तम्भन**' और जिनसे प्रेम करनेवाले लोगों में द्वेष उत्पन्न होता है, उन्हें '**विद्वेषण**' कहते हैं।

उच्चाटन स्वदेशादेर्भ्रंशनं परि-कीर्त्तितम्।
प्राणिनां प्राण-हरणं, मारणं समुदाहृतम्॥

अर्थात् जिन कर्मों से कोई व्यक्ति अपने स्थान से हटा या भगा दिया जाए, उन्हें '**उच्चाटन**' और जिनसे प्राणियों की मृत्यु हो, उन्हें '**मारण**' कहते हैं।

न मन्त्रो नौषधं तस्य, न किञ्चिदपि विद्यते।
विना जप्येन सिद्ध्यन्ति, सर्वमुच्चाटनादिकम्॥४

अर्थ—उस व्यक्ति के कार्य की सिद्धि के लिए मन्त्र, औषध या अन्य किसी बात की आवश्यकता नहीं होती। उच्चाटनादि सभी कर्म उन-उन मन्त्रों के जप के बिना ही (केवल '**कीलक-स्तव**' के पाठ से) उसे सिद्ध होते हैं।

व्याख्या—श्लोक १ की व्याख्या के अनुसार यह सिद्धि '**चण्डी-सप्तशती**' के पाठ करनेवालों को प्राप्त होती है।

समग्राण्यपि सिद्ध्यन्ति, लोके शङ्कामिमां हरः।
कृत्वा निमन्त्रयामास, सर्वमेवमिदं शुभम्॥५

अर्थ—'**चण्डी**'-**पाठ** से सभी अभिलाषाएँ पूरी होती हैं या नहीं, संसार में इस आशङ्का के होने के प्रति **महा-देव** सबका आह्वान कर कहते हैं कि यही स्तोत्र मङ्गल-दायक है।

स्तोत्रं वै चण्डिकायास्तु, तच्च गुह्यं चकार सः।
स प्राप्नोति सु-पुण्येन, तां यथा-वन्निमन्त्रणाम्॥६

अर्थ—फिर उन्होंने '**चण्डी**' के उस स्तव को गुप्त कर दिया। जो लोग यथा-विधि **देवी का ध्यान** करते हैं, वे ही लोग पुण्य-वश उन्हें प्राप्त करते हैं।

व्याख्या—**गुह्यं चकार**—'**कीलक**' द्वारा **महा-देव** ने '**चण्डी-स्तव**' को छिपा दिया।

निमन्त्रणाम्—**ध्यान-पराणाम्**। जिस प्रकार ध्यान-परायण व्यक्ति देवी का दर्शन पाते हैं, उसी प्रकार जो साधक '**कीलक-स्तव**' का पाठ कर **देवी-माहात्म्य** का पाठ करते हैं, वे भी उक्त पाठ के पुण्य के प्रभाव से **देवी का दर्शन** पाकर कृतार्थ हो जाते हैं।

पाठ-भेद के अनुसार यहाँ '**नियन्त्रणाम्**' पद मिलता है, जिसका भावार्थ यह है कि प्रथम मत (अर्थात् केवल '**कीलक-स्तोत्र**' के पाठ से सिद्धि) का सङ्कोच कर यथार्थ को समझ कर (अर्थात् पूरी **सप्तशती** के पाठ से सिद्धि) अभीष्ट को प्राप्त करे।

सोऽपि क्षेममवाप्नोति, सर्वमेव न संशयः।
कृष्णायां वा चतुर्दश्यामष्टम्यां वा समाहितः॥७
ददाति प्रति-गृह्णाति, नान्यथैषा प्रसीदति।
इत्थं रूपेण कीलेन, महा-देवेन कीलितम्॥८

अर्थ—वे सब प्रकार के कल्याण को प्राप्त करते हैं, इसमें सन्देह नहीं। जो **कृष्ण पक्ष** की '**चतुर्दशी**' और '**अष्टमी**' में एकाग्र-चित्त होकर देवी को दान देते हैं और प्रति-ग्रहण करते हैं, उनके प्रति वे प्रसन्न होती हैं—अन्य किसी प्रकार से प्रसन्न नहीं होतीं। इसी रूप में **महा-देव**-कृत यह '**चण्डी**' कीलित (आबद्ध-बँधी हुई) है।

व्याख्या—**ददाति प्रति-गृह्णाति**—देवी को अपना सर्वस्व अर्पित कर उनके प्रसाद-रूप उसमें से कुछ प्रति-ग्रहण कर शास्त्र के अनुसार जीवन-यापन करना चाहिए। कुल आय के पाँच भाग करे, जिनमें से तीन भाग अपने लिए, एक भाग पञ्च-महा-यज्ञ के अनुष्ठान में और एक भाग गुरु-देव या उनके पुत्रादि को प्रदान करे। इसी को **तन्त्र-शास्त्र** में '**दान-प्रतिग्रह अनुष्ठान**' कहते हैं। '**रहस्य-तन्त्र**' में '**गुरु-कीलक-पटल**' में इस अनुष्ठान का वर्णन विस्तार से किया है—

त्वत्-प्रसूतस्त्वदाज्ञप्तस्त्वद्-दासस्त्वत्-परायणः।
त्वन्नाम-चिन्तन-परस्त्वदर्थेऽहं नियोजितः॥
मयाऽर्जितमिदं सर्वं, तव स्वं परमेश्वरि!
राष्ट्रं बलं कोश-गृहं, सैन्यमन्यच्च साधनम्॥

त्वदधीनं करिष्यामि, यत्रार्थे त्वं नियोक्ष्यसि।
तत्र देवि! सदा वर्त्ते, तवाज्ञामेव पालयन्॥

अर्थात् साधक **देवी से निवेदन** करे कि—"मैं तुमसे उत्पन्न हुआ हूँ, तुम्हारी आज्ञा का पालन करनेवाला हूँ, तुम्हारा दास हूँ, एक-मात्र तुम्हारा ही आश्रय मानता हूँ, तुम्हारे ही नाम का चिन्तन करता रहता हूँ और तुम्हारे ही कार्य में लगा रहता हूँ। हे परमेश्वरि! मेरे द्वारा अर्जित सब कुछ तुम्हारी ही सम्पत्ति है। राष्ट्र, बल, कोश, गृह, सैन्य और अन्य सभी साधन मैं तुम्हारे अधीन करता हूँ। तुम मुझे जिस कार्य में लगाओगी, हे देवि! मैं तुम्हारे आदेश का पालन करता हुआ सदा उसी में लगा रहूँगा।"

समर्पयेन्महा-देव्यै, स्वार्जितं सकलं धनम्।
राष्ट्र-बलं कोश-गृहं, नवं यद् यदुपार्जितम्॥

अर्थात् मन में इस प्रकार चिन्तन करते हुए **कृष्ण-पक्ष** की **अष्टमी** या **चतुर्दशी** के दिन एकाग्र-चित्त होकर अपने द्वारा अर्जित समस्त धन, राष्ट्रीय, बल, कोष-गृह तथा जो कुछ नवीन उपार्जित किया हो, वह सब **महा-देवी** को समर्पित करे।

अस्मिन् मासि मया देवि! तुभ्यमेतत् समर्पितम्।
इति ध्यात्वा ततो देव्याः, प्रसादात् प्रतिगृह्य च॥
विभज्य पञ्चधा सर्वं, त्र्यंशान् स्वार्थं प्रकल्पयेत्।
देव - पित्रतिथीनां च, क्रियार्थं त्वेकमादिशेत्॥
एकांशं गुरवे दद्यात्, तेन देवी प्रसीदति।
तस्य राज्यं बलं सैन्यं, कोशः साधु विवर्द्धते॥

अर्थात् **'हे देवि! इस महीने में मैं तुम्हें यह सब अर्पित करता हूँ'**—इस प्रकार ध्यान कर देवी के प्रसाद-रूप में उसे पुनः ग्रहण कर (प्रतिग्रहण) सारे धन को पाँच भागों में बाँटे। उनमें से तीन भाग अपने काम में लगाए और एक भाग **देव-कार्य, पितृ-कार्य** एवं **अतिथि-सेवा** में व्यय करे तथा शेष एक भाग **गुरु को दान** करे। ऐसा करने से देवी प्रसन्न होती हैं। उस व्यक्ति के राज्य, बल, सैन्य, कोश में उत्तम रूप से वृद्धि होती है।

इस **'ददाति प्रति-गृह्णाति'** के नियम के पालन की संक्षिप्त विधि इस प्रकार है कि **अष्टमी** या **चतुर्दशी** के दिन निम्न प्रकार सङ्कल्प-पूर्वक भगवती को अपना समस्त धन अर्पित करे—

हे मातः! इत आरभ्य इदं सर्व-धनं मदीयं तुभ्यं दत्तमस्ति।

अर्थात् **'हे मातः! अब से मेरा यह सारा धन आपको समर्पित है।'** फिर मन में यह भावना करे कि भगवती ने निम्न प्रकार उस धन को प्रसाद-रूप में उसे दे दिया है—

गृहाणेदं मम द्रव्यं मम प्रसाद-भूतम्।

अर्थात् **'इस मेरे द्रव्य को मेरे प्रसाद-रूप में ग्रहण करो।'** इस प्रकार अपने धन को प्रसाद-रूप में भगवती से मिला हुआ मान कर उसका उचित रूप से उपयोग करे।

योनिष्कीलां विधायैनां, चण्डीं जपति नित्यशः।

स सिद्धः स गणः सोऽपि, गन्धर्वो जायते नरः॥९

अर्थ—जो व्यक्ति इस **चण्डी** को **कीलक**-शून्य करके नित्य इसका पाठ करता है, वह निश्चय ही **सिद्ध-गण** अथवा **गन्धर्व** का जन्म पाता है।

व्याख्या— **सिद्ध**—अणिमा आदि सिद्धियों से युक्त विशेष देव-योनि।

गण—भगवान् रुद्र के सेवक।

गन्धर्व—स्वर्ग के गायक देव-गण।

न चैवापाटवं तस्य, भयं क्वापि न जायते।

नाप-मृत्यु-वशं याति, मृते च मोक्षमाप्नुयात्॥१०

अर्थ—उसका कोई कार्य अधूरा नहीं रहता, उसे कहीं भय नहीं होता, उसकी अकाल मृत्यु नहीं होती और मृत्यु होने पर उसे मोक्ष मिलता है।

ज्ञात्वा प्रारभ्य कुर्वीत, ह्यकुर्वाणो विनश्यति।

ततो ज्ञात्वैव सम्पूर्णमिदं प्रारभ्यते बुधैः॥११

अर्थ—इस प्रकार जानकर पहले पाठ करे। फिर **चण्डी-पाठ** करे। जो ऐसा नहीं करता, वह नाश को प्राप्त होता है। अतः विद्वान् लोग इसे पूरी तरह जानकर **चण्डी-पाठ** करते हैं।

विनश्यति—सिद्धि से हीन होकर रहता है (**गुप्तवती**)।

सौभाग्यादि च यत् किञ्चिद्, दृश्यते ललना-जने।

तत् सर्वं तत्-प्रसादेन, तेन जप्यमिदं शुभम्॥१२

अर्थ—स्त्रियों में सौभाग्यादि जो कुछ दिखाई देता है, वह सब **चण्डी-पाठ** का ही प्रसाद है। अतः इसका पाठ सदा करना चाहिए।

शनैस्तु जप्यमानेऽस्मिन्, स्तोत्रे सम्पत्तिरुच्चकैः।

भवत्येव समग्राऽपि, ततः प्रारभ्यमेव तत्॥१३

अर्थ—इस **चण्डी** का **धीरे-धीरे पाठ** करने से कुछ ही फल मिलता है। **उच्च स्वर से पाठ** करने से पूरा फल मिलता है। अतः **चण्डी-पाठ** इसी प्रकार करना चाहिए।

शनैस्तु—धीरे-धीरे अर्थात् केवल अपने कान को सुनाई पड़े, ऐसा पाठ करने से यत्-किञ्चित् सिद्धि मिलती है और **उच्च स्वर से पाठ** करने से पूर्ण सिद्धि मिलती है।

ऐश्वर्यं तत्-प्रसादेन, सौभाग्यारोग्य - सम्पदः।

शत्रु-हानिः परो मोक्षः, स्तूयते सा न किं जनैः॥१४

अर्थ—**श्री चण्डी** की कृपा से **ऐश्वर्य, सौभाग्य, आरोग्य** मिलता है, **शत्रु-नाश** होता है और **परम मोक्ष** की प्राप्ति होती है। तब संसार में कौन उसका स्तवन न करेगा!

प्रथमं पठते देव्या, ह्यग्रे भूत्वा शुचिस्तथा।

कीलकेयं समाख्याता, पश्चात् सप्तशती-स्तुतिः॥१५

अर्थ—पहले पवित्र होकर इस स्तोत्र का पाठ देवी के सम्मुख करे। यही '**कीलक**' कहा गया है। बाद में '**सप्तशती-स्तुति**' का पाठ करे।

व्याख्या—**वङ्गीय** '**कीलक-स्तव**' में उक्त श्लोक के स्थान पर निम्न श्लोक है—

चण्डिकां हृदयेनापि, यः स्मरेत् सततं नरः।

हृद्यं काममवाप्नोति, हृदि देवी सदा वसेत्॥

अर्थात् जो व्यक्ति **मन-ही-मन सदैव चण्डी का स्मरण** करता रहता है, वह अपनी आन्तरिक वाञ्छित वस्तु को प्राप्त करता है और उसके हृदय में देवी सदा वास करती है।

निष्कीलकं ततः कृत्वा, ख्याता निष्कील-कारणात्।

देव्याश्चैव महा-भक्त्या, तेनाभीष्ट-फला भवेत्॥१६

अर्थ—निष्कीलन करने के कारण प्रसिद्ध निष्कीलक को तब अति भक्ति से करे, जिससे देवी उसे (पाठ करनेवाले को) अभीष्ट फल प्रदान करती है।

व्याख्या—**वङ्गीय क्रम** में उक्त श्लोक के स्थान पर निम्न श्लोक मिलता है—

अग्रतोऽमुं महा-देव-कृतं कीलक - वारणम् ।

निष्कीलं च तथा कृत्वा, पठितव्यं समाहितैः॥

अर्थात्—**महादेव-कृत सिद्धि-विघ्न-नाशक** इस '**कीलक-स्तव**' का पहले पाठ कर **चण्डी** को **कीलक-हीन** कर ले। तब **एकाग्र-चित्त से चण्डी का पाठ** करे।

कीलक-वारणम्—सिद्धि के विघ्न को '**कीलक**' कहते हैं, उसे दूर करनेवाला अर्थात् **कीलक-स्तोत्र**।

निष्कीलं च कृत्वा—सिद्धि के प्रतिबन्ध को दूर करके।

यः स्तोत्रमेतदनुवासरमम्बिकायाः,

श्रेयस्करं पठति वा यदि वा शृणोति ।

स ह्यैहिकं फलमवाप्य विराजतेऽसौ,

जायेत स प्रिय-तमो मदिरेक्षणानाम् ॥१७

अर्थ—जो अम्बिका के इस कल्याण-कारी स्तोत्र का प्रति-दिन पाठ या श्रवण करता है, वह सांसारिक अभीष्ट फलों को पाकर शोभायमान होता है और सुनयना कामिनियों का सबसे अधिक प्रिय-पात्र होता है।

❋❋❋

सार्थ कवच स्तोत्र

'कवच' का महत्त्व

'**कवच**' का शब्दार्थ है—अङ्ग-रक्षक या वर्म। '**कवच**' को पहनकर युद्ध में जाने पर शत्रु के अस्त्र-शस्त्रों की चोटों से सैनिक का शरीर सुरक्षित रहता है। इस प्रकार **इष्ट-देवता के नामों से शरीर के अङ्गों को आवृत्त कर** जीवन-संग्राम में तत्पर होने से साधक सभी आपत्तियों से बचा रहता है। यही कारण है कि ऐसे स्तोत्रों को '**कवच**' कहा जाता है।

प्रस्तुत '**देवी-कवच**' में कहा है कि—

देव्यास्तु कवचेनैवमरक्षित - तनुः सुधीः।
पादमेकं न गच्छेत् तु, यदीच्छेच्छुभमात्मनः॥

अर्थात् यदि कोई बुद्धिमान् व्यक्ति अपना कल्याण चाहता है, तो इस '**देवी-कवच**' से अपने शरीर को रक्षित किए बिना एक पग भी न चले।

इसका आशय यह है कि **देवी का स्मरण** किए बिना एक क्षण का भी समय न बिताना चाहिए—

क्षण-मात्रमपि देवी-स्मरणं विना न क्षपणीयम् इति तात्पर्यम् (प्रदीपः)।

पुराण में कहा है कि—

स्वपंस्तिष्ठन् ब्रजन् मार्गे, प्रलपन् भोजने रतः।
कीर्त्तयेत् सततं देवीं, स वै मुच्यते बन्धनात्॥

अर्थात् जो सोते, बैठते, मार्ग में चलते-फिरते, बातचीत करते और भोजन करते समय **निरन्तर देवी का चिन्तन** करता है, वह संसार के बन्धनों से छूट जाता है।

प्रस्तुत '**देवी-कवच**' में शरीर के विभिन्न अङ्ग-प्रत्यङ्गों का उल्लेख है और उन सभी अङ्गों की रक्षा के लिए **जगदम्बा के विविध नामों का स्मरण** करते हुए प्रार्थना करने का विधान है। इसका आध्यात्मिक आशय यह है कि साधक अपनी सत्ता के भिन्न-भिन्न अंशों में **माँ की दिव्य शक्ति और ज्योति का आवाहन** करे, जिससे **माँ की दया** से वे सब दिव्य रूप में कार्य कर सकें। **पूर्ण आत्म-समर्पण** और **आत्म-उन्मीलन** के द्वारा **भगवती शक्ति** को अपनी सत्ता के माध्यम से सक्रिय होने का अवसर देने से साधक **दिव्य स्वरूप** को प्राप्त कर सकता है। **शरीर, मन** और **प्राण** को इस प्रकार **भगवती-चेतना** द्वारा समुचित रूप से उद्‌बुद्ध और रूपान्तरित कर जो **दिव्य जीवन** मिल सकता है, उसका स्पष्ट सङ्केत इस '**देवी-कवच**' में मिलता है। **तन्त्रोक्ति** है कि—

कवचं हृदये यस्य, स वज्र-कवचं खलु।
भविष्यतीति निश्चित्य, ब्रह्मणा निर्मितं पुरा।।

कवच-स्तोत्र के पाठान्तर

'**विशुद्ध चण्डी**' में प्रकाशित '**देवी-कवच**' में कुल ६१ श्लोक हैं, जब कि '**दुर्गा-सप्तशती**' के अन्य प्रकाशित संस्करणों में केवल ५५ पूरे श्लोक और एक अर्द्ध-श्लोक मिलता है। **मैथिल-क्रम** के पाठ में मिलनेवाले एक अतिरिक्त श्लोक को '**विशुद्ध चण्डी**' के **देवी-कवच** की फल-श्रुति में यदि मिला लिया जाए, तो **कवच** की श्लोक-संख्या ६२ हो जाती है। इस प्रकार साढ़े छ: श्लोकों का पाठ नहीं होता रहा है।

मैथिल-क्रम के '**कवच**' में ५९ श्लोक और एक अर्द्ध-श्लोक है, जिनमें से एक श्लोक अन्य क्रम के पाठों में नहीं मिलता। वह श्लोक यह है—

य इदं कवचं धृत्वा, संग्रामं प्रविशेन्नरः।
जित्वा च स रिपून् सर्वान्, कल्याणी-गृहमाप्नुयात्।।४९

इसके अतिरिक्त निम्न पंक्ति भी अतिरिक्त दिखाई देती है—

कुलिशं च त्रि-शूलं च, पट्टिशं मुद्गरं तथा।।१५

वङ्गीय-क्रम के '**कवच**' में श्लोकों की संख्या ६० है। इन तीनों क्रमों के श्लोकों का मिलान करने से जिन पाठ-भेदों का पता चलता है, उनमें से कुछ का विवरण नीचे दिया जा रहा है—

श्लोक-संख्या	विशुद्ध चण्डी का पाठ	प्रचलित पाठ
३	शैल-पुत्रीति	शैलपुत्री च
३	चण्ड-घण्टेति	चन्द्र-घण्टेति
४	कात्यायनी तथा	कात्यायनीति च
४	काल-रात्रीति	काल-रात्री च
५	सिद्धि-दात्रीति	१ सिद्धि-दात्री च, २ सिद्धिदा प्रोक्ता
६	दह्य-मानास्तु शत्रु-मध्य-गता	दह्य-मानस्तु शत्रु-मध्ये गतो
६	वाऽपि	चैव
७	आपदं न च पश्यन्ति	नापदं तस्य पश्यामि
७	शोक-दुःख-भयं नहि	शोक-दुःख-भयङ्करीं
८	नित्यं तेषां वृद्धिः	१ नूनं तेषां सिद्धिः, २ नूनं तेषामृद्धिः
१३	सुशोभनैः	सुशोभितैः
१४	मूषला	मुसला

श्लोक-संख्या	विशुद्ध चण्डी का पाठ	प्रचलित पाठ
१५	च खड्गं च शार्ङ्गायुधमनुत्तमं	त्रिशूलं च शार्ङ्गमायुधमुत्तमं
१६	देवानां च हिताय वै	देवतानां हिताय वै
१७	महोत्साहे	महा-काये
१९	दक्षिणे चैव	१ दक्षिणेऽवतु, २ याम्यां रक्षतु, ३ दक्षिणे रक्ष
१९	वायु-देवता	मृग-वाहिनी
२०	दिशि कौबेरी ऐशान्यां	१ पातु कौमारी ऐशान्यां, २ रक्ष कौमारी ईशान्यां
२०	ब्राह्मी च मां	१ ब्रह्माणि मे, २ ब्राह्मी च मे
२१	मामग्रत: पातु	१ मे चाग्रत: पातु, २ में चाग्रत: स्थातु
२२	शिखां मे द्योतिनी	शिखामुद्योतिनी
२३	भ्रुवोर्मध्ये	भ्रुवौ रक्षेद्
२३	नेत्रयोश्चित्र-नेत्रा च	१ त्रिनेत्रा च भ्रुवोर्मध्ये, २ त्रिनेत्रा च भ्रुवौ रक्षेद्
२३	तु पार्श्वके	च नासिके
२४	च शङ्करी	तु शाङ्करी
२६	मध्ये	देशे
२७	कामाख्या	कामाक्षी
२८	स्कन्धयो: खड्गिनी रक्षेद्	खड्ग-धारिण्युभौ स्कन्धौ
२९	सुरेश्वरी···नरेश्वरी	१ शूलेश्वरी···कुलेश्वरी, २···नलेश्वरी
२९	चांगुलीषु च	चांगुलीस्तथा
३१	मेढ्रं रक्षतु दुर्गन्धा पायुं मे गुह्य-वासिनी	१ पूतना कामिका मेढ्रं गुदे महिष-वाहिनी, २ भूत-नाथ च मेढ्रं च अरू महिष-वाहिनी
३२	रक्षेदूरू मे घन-वासिनी	१ रक्षेज्जानुनी विन्ध्यवासिनी, २···घन-वाहना
३२	रक्षेज्जानू माधव-नायिका	१ रक्षेत् सर्व-काम-प्रदायिनी, २ प्रोक्ता जानु-मध्ये विनायकी
३३	च कौषिकी	१ तु तैजसी, २ ऽमितौजसी
३३	पादांगुली: श्रीधरी च, तलं पाताल-वासिनी	पादांगुलीषु श्री रक्षेत्, पादाधस्तल-वासिनी

श्लोक-संख्या	विशुद्ध चण्डी का पाठ	प्रचलित पाठ
३४	कूपानि कौमारी···योगेश्वरी	कूपेषु कौबेरी···वागीश्वरी
३५	रक्तं मांसं वसां मज्जामस्थि मेदश्च	रक्त-मज्जा-वसा-मांसान्यस्थि-मेदांसि
३५	अन्त्राणि काल-रात्री च पित्तं	आन्त्राणि काल-रात्रिश्च पित्तं
३६	कक्षे	कफे
३७	ब्रह्माणी मे रक्षेच्	ब्रह्माणि रक्षेच्च
३७	रक्षेन्मे धर्म-धारिणी	रक्ष मे धर्म-चारिणि
३८	तु मे रक्षेत् प्राणान् कल्याण-शोभना	च मे रक्षेत् प्राणं कल्याण-दायिनी
३९	शब्दे स्पर्शे	शब्द-स्पर्शे
४०	रक्षन्तु मातर:	रक्षतु वैष्णवी
४०	सदा रक्षतु वैष्णवी	१ धनं विद्या च चक्रिणी, २ सदा रक्षतु मातर:
४१	मिन्द्राणी मे रक्षेत् पशून्	मिन्द्राणि मे रक्षेत् पशून्
४१	रक्षेच्च चण्डिका	१ मे रक्ष चण्डिके, २ रक्षतु चण्डिका
४१	रक्षतु भैरवी	रक्षतु वैष्णवी
४२	धनं धनेश्वरी	धनेश्वरी धनं
४२	पन्थानं···क्षेमङ्करी तथा	मार्गं क्षेमङ्करी रक्षेद् विजया सर्वत: स्थिता
४४	सर्वं रक्षतु मे देवी	तत्सर्वं रक्ष मे देवि
४४	जयन्ती पाप-नाशिनी	दुर्गे दुर्गापहारिणि
४७	यत्रैव गच्छति	१ यत्रावतिष्ठते, २ यत्र हि गच्छति
४७	लाभ: स्याद् विजय: सार्व-कालिका:	लाभश्च विजय: सार्व-कामिक:
४८	तं प्राप्नोति निश्चितम्	१ तं प्राप्स्यते भूतले, २ तमाप्नोति लीलया
४८	प्राप्नोत्यविकल: पुमान्	१ प्राप्स्यते भूतले पुमान्, २ प्राप्स्यते भूतले पुन:
५१	देवी वश्या···त्रैलोक्ये चापराजित:	दैवी कला···त्रैलोक्येष्वपराजित:
५२	वापि	चापि

श्लोक-संख्या	विशुद्ध चण्डी का पाठ	प्रचलित पाठ
५३	कुलजाश्चोपदेशजा:	१ कुलजाश्चोपदेशिका:, २ सर्वजाश्चौपदेशिका:, ३ जलजाश्चौपदेशिका:
५४	सहजा: कुलिका नागा	सहजा कुलजा माला
५४	शाकिनी तथा	शाकिनीति च
५४	अन्तरीक्ष…महा-रवा:	अन्तरिक्ष…महा-बला:
५६	कवचेनावृतो हि	कवचे हृदि संस्थिते
५६	वृद्धि: परा भवेत्	वृद्धि-करं परम्
५७	यशोवृद्धिर्भवेद् पुंसां कीर्ति-वृद्धिश्च जायते	यशसा वर्द्धते सोऽपि कीर्ति-मण्डित-भूतले
५७	भक्त्या	भक्त:
५८	तु कवचं पुर:	१ तु कवचं पुरा, २ कवचमग्रत:, ३ कवचमादित:
५८	निर्विघ्नेन	अविघ्नेन
५९	जप-कर्तुर्हि सन्तति:	सन्तति: पुत्र-पौत्रिकी
६०	सम्प्राप्नोति मनुष्योऽसौ	प्राप्नोति पुरुषो नित्यं
६१	स्थानं शिवेन सह मोदते	रूपं शिवेन समतां व्रजेत्

दक्षिण भारतीय क्रम के अनुसार '**कवच**' के भी **विनियोगादि** सर्वथा भिन्न हैं; यथा—

विनियोग—ॐ अस्य श्री देवी-कवच-स्तोत्र-महा-मन्त्रस्य मार्कण्डेय ऋषि:। अनुष्टुप् छन्द:। शक्ति-त्रय-स्वरूपिणी श्रीमहा-लक्ष्मी: देवता। श्रीं वीजं। ह्रीं शक्ति:। ह्लां कीलकं। मम श्री चण्डिका देवी-प्रसाद-सिद्ध्यर्थं जपे विनियोग:।

कर-न्यास—श्रां अंगुष्ठाभ्यां। श्रीं तर्जनीभ्यां। श्रूं मध्यमाभ्यां। श्रैं अनामिकाभ्यां। श्रौं कनिष्ठिकाभ्यां। श्र: कर-तल-कर-पृष्ठाभ्यां। एवं हृदयादि।

ध्यान—शङ्खं पाश-शरासने च दधतीं विभ्रामितां तर्जनीम्।
सव्यैश्चक्रमसिं महेषुमितरैस्तिर्यक् त्रि-शूलं भुजै:॥
सन्नद्धां विविधायुधै: परिवृतां मन्त्री कुमारी जनैर्ध्याये-
दिष्ट-वर-प्रदां त्रि-नयनां सिंहाधिरूढां शिवाम्॥

❋❋❋

मूल 'कवच'-स्तोत्र की सार्थ व्याख्या

॥ॐ मार्कण्डेय उवाच॥

ॐॐॐ यद् गुह्यं परमं लोके, सर्व-रक्षा-करं नृणाम्।
यन्न कस्यचिदाख्यातं, तन्मे ब्रूहि पितामह!॥१

अर्थ—**मार्कण्डेय** ने कहा कि हे पितामह! संसार में जो अत्यन्त गोपनीय और मनुष्यों का सर्व-रक्षक है, जिसका वर्णन अन्य किसी से न किया हो, उसे मुझे बताइए।

व्याख्या—पाठान्तर में '**शतानीक उवाच**' भी मिलता है। **शतानीक**—एक मुनि, जो **व्यास** के शिष्य थे। इनके स्थान पर '**मार्कण्डेय ने कहा**' ऐसा प्रचलित पाठ मिलता है। **कवच** का सेतु '**त्रि-प्रणव**' निर्दिष्ट किया गया है। अतः **कवच** के स्तोत्र का पाठ करने के पूर्व और अन्त में **प्रणव (ॐ) का तीन बार उच्चारण** करने का नियम है।

॥ ब्रह्मोवाच ॥

अस्ति गुह्य-तमं विप्र! सर्व-भूतोपकारकम्।
देव्यास्तु कवचं पुण्यं, तच्छृणुष्व महा-मुने!॥२

अर्थ—**ब्रह्मा** ने कहा कि हे विप्र! सभी जीवों का हित-कारी और अत्यन्त गोपनीय देवी का पवित्र **कवच** है। हे महा-मुनि! तुम उसे सुनो।

प्रथमं शैल-पुत्रीति, द्वितीयं ब्रह्म-चारिणी।
तृतीयं चण्ड-घण्टेति, कूष्माण्डेति चतुर्थकम्॥३
पञ्चमं स्कन्द-मातेति, षष्ठं कात्यायनी तथा।
सप्तमं काल-रात्रीति, महा-गौरीति चाष्टमम्॥४
नवमं सिद्धि-दात्रीति, नव-दुर्गाः प्रकीर्त्तिताः।
उक्तान्येतानि नामानि, ब्रह्मणैव महात्मना॥५

अर्थ—**१ शैल-पुत्री, २ ब्रह्म-चारिणी, ३ चण्ड-घण्टा, ४ कूष्माण्डा, ५ स्कन्द-माता, ६ कात्यायनी, ७ काल-रात्रि, ८ महा-गौरी** और **९ सिद्धि-दात्री**—ये '**नव-दुर्गा**' कही गई हैं। **महात्मा ब्रह्मा** द्वारा यह नाम-समूह कहा गया है।

व्याख्या—**नव-दुर्गा**—योगियों के काय-व्यूह के समान एक ही **दुर्गा** के ये **नौ भेद विविध उपासकों के ध्यान के लिए** शास्त्र में कहे गए हैं—

योगिनः काय-व्यूह-वद् एकस्या एव दुर्गाया एते नव-भेदा ये शास्त्रे ध्येयत्वेन प्रोक्तास्ते मया कीर्तिता इत्यर्थः (प्रदीपः)।

१ **शैल-पुत्री**—शैल-राज **हिमायल** के घर में जन्म लेने से **दुर्गा** को '**शैल-पुत्री**' कहते हैं। **देवी पुराण**, ३७।३५ में कहा है कि—

जाता शैलेन्द्र-गेहे सा, शैल-राज-सुता ततः।

२ **ब्रह्म-चारिणी**—सच्चिदानन्द-रूप **ब्रह्म** को प्राप्त करना ही जिनका स्वभाव है, वे ही '**ब्रह्म-चारिणी**' कही जाती हैं—

ब्रह्म सच्चिदानन्द-रूप तच्चारयितुं शीलं यस्याः सा ब्रह्मचारिणी ब्रह्म-रूप-प्रदा इत्यर्थः (प्रदीपः)।

देवी ही जीव को **ब्रह्म का ज्ञान** कराती हैं। **ब्रह्म-स्वरूप** को अवगत करा देती हैं, इसी से उनका एक नाम '**ब्रह्म-चारिणी**' है। **देवी पुराण**, ३७।२७ में कहा है कि—

वेदेषु चरते यस्मात्, तेन सा ब्रह्म-चारिणी।

अर्थात् समस्त वेदों में विचरण करती हैं, इससे देवी का नाम '**ब्रह्म-चारिणी**' है।

३ **चण्ड-घण्टा**—'**दुर्गा-प्रदीप**' टीका में पाठान्तर '**चन्द्र-घण्टा**' नाम के दो अर्थ दिए हैं—

१ चन्द्र-वन्निर्मला घण्टा, यस्याः सा चन्द्र-घण्टा।

२ चन्द्रं घण्टयति प्रति-वादितया भाषते यस्याह्लाद - कारित्वाभिमानेनेति चन्द्र-घण्टा। चन्द्रापेक्षयाऽपि अतिशयेन लावण्य-वतीत्यर्थः।

अर्थात् चन्द्रमा के समान जिसका घण्टा है अथवा जो चन्द्रमा की अपेक्षा अधिक लावण्य (सौन्दर्य) वाली और आह्लाद (आनन्द) करनेवाली है, उसे '**चन्द्र-घण्टा**' कहते हैं। '**रहस्यागम**' में कहा है कि—

आह्लाद-कारिणी देवी, चन्द्र-घण्टेति कीर्तिता।

अर्थात् आह्लाद—आनन्द करनेवाली देवी '**चन्द्र-घण्टा**' कही गई है।

'**कालिका-पुराण**' में '**चण्ड-घण्टा**' नाम उल्लिखित है—'**चण्डा घण्टा यस्याः**' अर्थात् जिसका घण्टा प्रचण्ड शब्द करनेवाला है।

४ **कूष्माण्डा**—इस नाम की व्याख्या '**प्रदीप**'-टीका में निम्न प्रकार है—

कुत्सित ऊष्मा सन्तापस्ताप-त्रय-रूपो यस्मिन् संसारे, स 'कूष्मा' सो अण्डे मांस-पेश्यां उदर-रूपायां यस्याः, सा 'कूष्माण्डा'। त्रि-विध-ताप-युक्त-संसार-भक्षण-कर्त्रीत्यर्थः।

अर्थात् '**कु**' = कुत्सित, '**ऊष्मा**' = सन्ताप-त्रय जिस संसार में हैं, वह संसार जिसके '**अण्ड**' (उदर) में विद्यमान है, वही '**कूष्माण्डा**' है। तीन प्रकार के दुःखों से युक्त संसार का नाश करनेवाली।

५ **स्कन्द-माता**—इस नाम की व्याख्या '**प्रदीप**'-टीका में यह की गई है कि—

सनत्कुमारस्य भगवती - वीर्याद् उद्भूतस्य 'स्कन्द' इति संज्ञा। तथा च ज्ञानिभिरपि यदुद्रे जन्माभिलषणीयम् इत्यति-शुद्धा इत्यर्थः (प्रदीपः)।

अर्थात् भगवती के वीर्य से उत्पन्न **सनत्कुमार** का नाम '**स्कन्द**' है। जिसके पेट से जन्म लेने की अभिलाषा ज्ञानी लोग भी करते हैं अर्थात् अत्यन्त शुद्धा हैं, उन्हें '**स्कन्द-माता**' कहते हैं।

६ कात्यायनी—महर्षि कात्यायन ने इन्हें अपनी कन्या माना, अतः ये '**कात्यायनी**' कहलाईं। ये कुमारी रहीं, पति के अधीन नहीं, जिससे इनका स्वतन्त्र भाव सिद्ध होता है।

७ काल-रात्रि—सबको मारनेवाले '**काल**' की भी जो '**रात्रि**' अर्थात् नाश करनेवाली हैं। प्रलय-काल में '**काल**' का भी नाश हो जाता है। देखिए '**प्रदीप**'-टीका—

प्रलय-काले कालस्यापि नाशत्वात् (प्रदीपः)।

८ महा-गौरी—'**कालिका-पुराण**' के ५वें अध्याय में कथा है कि एक बार हँसी में **शिव** ने देवी को **काली** अर्थात् कृष्ण-वर्णवाली कहकर सम्बोधित किया, जिससे रूठ कर देवी ने तप किया और स्वर्ण के समान उज्ज्वल गौर-वर्ण प्राप्त किया, तब से वे '**महा-गौरी**' कहलाईं।

९ सिद्धि-दात्री—सिद्धि अर्थात् मोक्ष की देनेवाली।

अग्निना दह्य-मानास्तु, शत्रु-मध्य-गता रणे।
विषमे दुर्गमे वाऽपि, भयार्त्ताः शरणं गताः॥६
न तेषां जायते किञ्चिदशुभं रण - सङ्कटे।
आपदं न च पश्यन्ति, शोक-दुःख-भयं नहि॥७
यैस्तु भक्त्या स्मृता नित्यं, तेषां वृद्धिः प्रजायते।

अर्थ—जो अग्नि द्वारा जल रहे हों, युद्ध-क्षेत्र में शत्रुओं के बीच जो पड़े हों या कठिन सङ्कट से जो डरे हुए हों, वे देवी की शरण में आते हैं। युद्ध के सङ्कट में उनका कोई अहित नहीं होता और शोक, दुःख, भीषण विपत्तियाँ उनके पास नहीं आतीं। जो सदा भक्ति के साथ देवी का स्मरण करते हैं, उनकी सम्पत्ति सदा बढ़ती है।

प्रेत-संस्था तु चामुण्डा, वाराही महिषासना॥८
ऐन्द्री गज - समारूढा, वैष्णवी गरुडासना।
नारसिंही महा-वीर्या, शिव - दूती महा-बला॥९
माहेश्वरी वृषारूढा, कौमारी शिखि - वाहना।
ब्राह्मी हंस - समारूढा, सर्वाभरण - भूषिता॥१०
लक्ष्मीः पद्मासना देवी, पद्म-हस्ता हरि-प्रिया।
श्वेत-रूप-धरा देवी, ईश्वरी वृष - वाहना॥११
इत्येता मातरः सर्वाः, सर्व - योग - समन्विताः।
नानाभरण-शोभाढ्या, नाना-रत्नोप-शोभिताः॥१२

अर्थ—शव पर सवार **चामुण्डा**, महिष पर सवार **वाराही**, हाथी पर सवार **इन्द्राणी**, गरुड़ पर सवार **वैष्णवी**, अति पराक्रमवाली **नारसिंही**, अति बलवाली **शिवदूती**, बैल पर सवार **माहेश्वरी**, मोर पर सवार **कौमारी**, हंस पर सवार सभी आभूषणों से सजी हुई **ब्राह्मी**, कमल

के आसन पर बैठी और हाथ में कमल लिए विष्णु-प्रिया **लक्ष्मी**, बैल पर सवार श्वेत वर्णवाली **ईश्वरी** देवी—ये सभी **मातृकाएँ** सब प्रकार के योगैश्वर्य से युक्त होकर और विविध प्रकार के आभूषणों तथा रत्नों से शोभायमान हैं।

व्याख्या—**मातरः = मातृका-गण। 'चण्डी सप्तशती'** के अध्याय ८, श्लोक १२-२१ के विवरण से ज्ञात होता है कि **शुम्भ-निशुम्भ** के विनाश और देवताओं की विजय के लिए **ब्रह्मा, शिव, कार्तिकेय, विष्णु, वराह, नृसिंह** और **इन्द्र** के शरीर से उनकी शक्तियाँ निकलीं और उन्हीं का स्वरूप धारण कर **भगवती चण्डिका** के पास आईं। जिस देवता का जैसा आकार, आभूषण और वाहन था, उसी के अनुसार उसकी शक्ति भी वैसा ही आकार, आभूषण और वाहन लेकर असुरों का नाश करने के लिए युद्ध-भूमि में पधारीं। ब्रह्मा की शक्ति **ब्राह्मी या ब्रह्माणी**, महेश्वर या शिव की शक्ति **माहेश्वरी**, कार्तिकेय की शक्ति **कौमारी**, विष्णु की शक्ति **वैष्णवी**, वराह की शक्ति **वाराही**, नृसिंह की शक्ति **नारसिंही** और इन्द्र की शक्ति **ऐन्द्री** या **इन्द्राणी** नाम से कही गई है। इनमें से प्रत्येक **'मातृका'** नाम से प्रसिद्ध है।

'वराह-पुराण' के अनुसार **अन्धकासुर** को मारने के लिए जब **रुद्र** को क्रोध हुआ, तब उनके मुख-मण्डल से अग्नि-शिखा प्रकट हुई, जिससे **'योगेश्वरी'** का आविर्भाव हुआ। इन्हें ही **प्रथम व मुख्य 'मातृका'** रूप में कहा गया है। फिर क्रमशः **महेश्वर, विष्णु, ब्रह्मा, कार्तिकेय, इन्द्र, यम** और **वराह** के तेज से एक-एक **मातृका**-रूप प्रकट हुआ। इस प्रकार कुल **आठ मातृकाएँ** उत्पन्न हुईं। **काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, पैशुन्य** और **असूया**—इन्हें भी **'अष्ट-मातृका'** कहा गया है। इनमें से **१ काम = योगेश्वरी, २ क्रोध = माहेश्वरी, ३ लोभ = वैष्णवी, ४ मद = ब्रह्माणी, ५ मोह = कौमारी, ६ मात्सर्य = इन्द्राणी, ७ पैशुन्य = दण्ड-धारिणी** और **८ असूया = वाराही।**

'मत्स्य-पुराण' के अनुसार जब **महा-देव** ने **अन्धकासुर** को मारने के लिए उसे शूल मारा, तो उससे आहत होकर उसके शरीर से जो रक्त गिरा, उससे सहस्रों असुर उत्पन्न होने लगे। यह देखकर असुर के रक्त को पीने के लिए **महा-देव** ने बहुत-सी **मातृकाओं** को उत्पन्न किया। **'मत्स्य-पुराण'** में इन **मातृकाओं के नाम** दिए हैं। (देखिए **मत्स्य-पुराण**, १७९)।

इस **'कवच-स्तोत्र'** के आगे के श्लोकों में अनेक **'मातृका'-शक्तियों** का नामोल्लेख हुआ है।

श्रेष्ठैश्च मौक्तिकैः सर्वा, दिव्य-हार-प्रलम्बिभिः।
इन्द्र - नीलैर्महा - नीलैः, पद्म-रागैः सुशोभनैः॥१३
दृश्यन्ते रथमारूढा, देव्यः क्रोध - समाकुलाः।
शङ्खं चक्रं गदां शक्तिं, हलं च मूषलायुधम्॥१४

अर्थ—दिव्य हारों (मातृका-देवियों द्वारा पहनी हुई मालाओं) से लटकते हुए **श्रेष्ठ मोतियों, इन्द्रनील - महानील - पद्मराग रत्नों से शोभायमाना** ये सभी देवियाँ क्रोध-युक्त होकर रथ पर चढ़ी हुई दिखाई दे रही हैं। **शङ्ख, चक्र, गदा, शक्ति, हल** और **मूषल शस्त्र।**

व्याख्या—**इन्द्र-नील, महा-नील**—जिस नील-मणि में इन्द्र-धनुष जैसी चमक दिखाई दे, वह '**इन्द्र-नील**' कहलाती है और जिसमें रङ्ग इतना गहरा हो कि सौ गुने दूध में भी उसे डालने से वह सारे दूध को नीले वर्ण का बना दे, उसे '**महा-नील**' कहते हैं। इस सम्बन्ध में विस्तृत विवरण **भोज-देव** कृत '**युक्ति-कल्पतरु**' नामक ग्रन्थ में दिया है। '**शिशुपाल-वध**' काव्य की टीका (१।१६) में **मल्लिनाथ** का कथन है कि **अगस्त्य मुनि** के अनुसार **सिंहल द्वीप** में उत्पन्न होनेवाली '**इन्द्र-नील मणि**' को ही '**महा-नील**' कहते हैं।

पद्म-राग—इस मणि की विविध प्रकार की चमकों का परिचय '**वृहत् संहिता**' आदि ग्रन्थों में दिया गया है। किसी की चमक भौंरे के समान, तो किसी की अञ्जन या जामुन की भाँति होती है। कोई-कोई '**पद्म-राग मणि**' मिश्रित चमकवाली होती है (**वृहत् संहिता**, अध्याय ८१)।

खेटकं तोमरं चैव, परशुं पाशमेव च।
कुन्तायुधं च खड्गं च, शार्ङ्गायुधमनुत्तमम् ॥१५
दैत्यानां देह-नाशाय, भक्तानामभयाय च।
धारयन्त्यायुधानीत्थं, देवानां च हिताय वै॥१६

अर्थ—तथा **खेटक (ढाल), तोमर, परशु, पाश, कुन्त, खड्ग** एवं **शार्ङ्ग** आदि उत्तम शस्त्र दैत्यों की देहों को नष्ट करने, भक्तों को अभय देने और देवताओं का हित करने के लिए धारण किए हुए हैं।

व्याख्या—**शार्ङ्ग**—'**युक्ति-कल्पतरु**' में बताया गया है कि धनुष दो प्रकार के होते हैं—**१. शार्ङ्ग** और **२. वांश**—

धनुस्तु द्विविधं प्रोक्तं, शार्ङ्गं वांशं तथैव च।

'**शार्ङ्ग**' अर्थात् शृङ्ग या सींग से बना हुआ और '**वांश**' अर्थात् बाँस का बना हुआ। महिष आदि पशुओं की सींग को गलाकर, उसे जमाया जाता है, फिर उससे जो धनुष बनता है, उसे '**शार्ङ्ग**' कहते हैं।

कुन्त—एक विशेष प्रकार का बर्छा। '**शुक्र-नीति**' के अनुसार यह दस हाथ लम्बा होता है और इसके शिरो भाग में लोहे का तीक्ष्ण फल रहता है। मूल भाग लोहे की पतली शलाका का बनता है।

नमस्तेऽस्तु महा - रौद्रे, महा-घोर-पराक्रमे!
महा-बले! महोत्साहे!, महा-भय-विनाशिनि!॥१७

अर्थ—हे अति भयङ्करी, अति प्रचण्ड पराक्रमवाली, अत्यधिक शक्ति-शालिनी, महान् उत्साह से भरी हुई, बड़े-से-बड़े भय को नष्ट करनेवाली! तुमको नमस्कार।

व्याख्या—**महा-बले**—'प्रदीप'-टीका के अनुसार **माया-शक्ति-रूपी महान् बल** से सम्पन्ना—

'माया-शक्ति-रूप-महत्-बल-युक्ता'।

महोत्साहे—जगत् की रक्षा करने में जिसे महान् उत्साह रहता हो।

महा-भय-विनाशिनि—जो मृत्यु-रूपी महान् भय को ज्ञान देकर नष्ट कर देती हैं।

त्राहि मां देवि दुष्प्रेक्ष्ये! शत्रूणां भय-वर्द्धिनि!
प्राच्यां रक्षतु मामैन्द्री, आग्नेय्यामग्नि-देवता॥१८

अर्थ—शत्रुओं के भय को बढ़ानेवाली हे दुर्दर्शनीये देवि! मेरी रक्षा करो। पूर्व (प्राची) दिशा में **इन्द्राणी** और अग्नि-कोण में **अग्नि-देवता** रक्षा करें।

व्याख्या—**दुष्प्रेक्ष्ये**—दुर्दर्शनीये—कठिनाई से देखी जा सकनेवाली। '**श्रुति**' में कहा है कि—

न सन्दृशे तिष्ठति रूपमस्य, न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्।
हृदा मनीषा मनसाऽभिक्लृप्तो, य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्ति॥

अर्थात् भगवती का रूप दर्शन का विषय नहीं है, कोई भी इन्हें आँख से देख नहीं सकता। हृदय, संशय-रहित बुद्धि और मनन के द्वारा इनका ज्ञान मिलता है। जो इन्हें जान लेते हैं, वे अमर हो जाते हैं।

शत्रूणां—काम-क्रोधादि शत्रुओं का।

दक्षिणे चैव वाराही, नैर्ऋत्यां खड्ग-धारिणी।
प्रतीच्यां वारुणी रक्षेद्, वायव्यां वायु-देवता॥१९

अर्थ—दक्षिण में **वाराही**, निर्ऋति-कोण में '**खड्ग-धारिणी**', पश्चिम (प्रतीची) में **वारुणी** और वायु-कोण में **वायु-देवता** रक्षा करें।

व्याख्या—**खड्ग-धारिणी**—यह निर्ऋति की शक्ति है। '**निर्ऋति**' **पाप-देवी** का नाम है।

उदीच्यां दिशि कौबेरी, ऐशान्यां शूल-धारिणी।
ऊर्ध्वं ब्राह्मी च मां रक्षेदधस्ताद् वैष्णवी तथा॥२०

अर्थ—उत्तर (उदीची) दिशा में **कौबेरी**, ईशान-कोण में **शूल-धारिणी**, ऊर्ध्व दिशा में **ब्राह्मी** और अधो दिशा में **वैष्णवी** मेरी रक्षा करें।

व्याख्या—**शूल-धारिणी**—ईशान की शक्ति।

एवं दश दिशो रक्षेच्चामुण्डा शव - वाहना।
जया मामग्रतः पातु, विजया पातु पृष्ठतः॥२१
अजिता वाम-पार्श्वे तु, दक्षिणे चापराजिता।
शिखां मे द्योतनी रक्षेदुमा मूर्ध्नि व्यवस्थिता॥२२

अर्थ—इसी प्रकार शव पर सवार **चामुण्डा** दसों दिशाओं में रक्षा करे। आगे की ओर **जया** और पीछे की ओर **विजया** मेरी रक्षा करे। बाँईं ओर **अजिता** और दाईं ओर **अपराजिता**, शिखा में **द्योतिनी** तथा मस्तक (मूर्ध्नि) में रहकर **उमा** मेरी रक्षा करें।

व्याख्या—**भगवती चामुण्डा** दसों दिशाओं में **दश दिक्-पाल देवताओं** की दस विविध मूर्तियों में आविर्भूत होकर अपने भक्त की सर्वत्र रक्षा करती हैं। यथा—

	दिशा	दिक्-देव	देव-शक्ति
१	पूर्व	इन्द्र	ऐन्द्री
२	अग्नि-कोण	अग्नि	अग्नि-देवता
३	दक्षिण	यम	वाराही
४	नैर्ऋत-कोण	निर्ऋत	खड्ग-धारिणी
५	पश्चिम	वरुण	वारुणी
६	वायु-कोण	मरुत	वायु-देवता
७	उत्तर	कुबेर	कौबेरी
८	ईशान-कोण	ईश	शूल-धारिणी
९	ऊर्ध्व-दिक्	ब्रह्मा	ब्राह्मी
१०	अधोदिक्	अनन्त	वैष्णवी

भगवती के उक्त स्वरूपों से हर दिशा में अपनी रक्षा हेतु भक्त प्रार्थना करता है। इसी प्रकार अन्य देवी-स्वरूपों से अपने शरीर के अङ्गों आदि की रक्षा के लिए प्रार्थना की जाती है।

अजिता—जिसे कोई जीत न सके। **'देवी-पुराण'**, ३७।१२ में कहा है कि—

अजिता न जिता क्वचित्।

विजया, अपराजिता—पद्म नामक असुर को जीतने से देवी इन नामों से प्रसिद्ध हुईं। **'देवी-पुराण'**, ३७।१३ में कहा है कि—

विजित्य पद्म-नामानं, दैत्य-राजं महा-बलम्।
विजया तेन सा देवी, लोके चैवापराजिता॥

माला-धरी ललाटे च, भ्रुवोर्मध्ये यशस्विनी।
नेत्रयोश्चित्र-नेत्रा च, यम-घण्टा तु पार्श्वके॥२३

शङ्खिनी चक्षुषोर्मध्ये, श्रोत्रयोर्द्वार-वासिनी।
कपोलौ कालिका रक्षेत्, कर्ण-मूले च शङ्करी॥२४

नासिकायां सुगन्धा च, उत्तरौष्ठे च चर्चिका।
अधरे चामृत-कला, जिह्वायां च सरस्वती॥२५

दन्तान् रक्षतु कौमारी, कण्ठ-मध्ये तु चण्डिका।
घण्टिकां चित्र-घण्टा च, महा-माया च तालुके॥२६

कामाख्या चिबुकं रक्षेद्, वाचं मे सर्व-मङ्गला।
ग्रीवायां भद्र-काली च, पृष्ठ-वंशे धनुर्द्धरी॥२७

अर्थ—ललाट में **माला-धरी** और भौंहों के बीच में **यशस्विनी**, दोनों आँखों में **चित्र-नेत्रा** और दोनों बगलों (पार्श्वों) में **यम-घण्टा**; दोनों आँखों के बीच में **शङ्खिनी**, दोनों कानों में **द्वार-**

वासिनी, दोनों गालों में **कालिका** और दोनों कानों के मूल-भाग में **शङ्करी** रक्षा करे; नाक में **सुगन्धा**, ऊपरी ओठ में **चर्चिका**, नीचे के ओठ में **अमृत-कला** और जीभ में **सरस्वती**, दाँतों को **कौमारी**, कण्ठ के बीच में **चण्डिका**, घण्टिका को **चित्र-घण्टा** और तालु में **महा-माया** रक्षा करे; मेरी ठोड़ी (चिबुक) को **कामाख्या**, वाणी को **सर्व-मङ्गला**, गर्दन में **भद्र-काली** और रीढ़ (पृष्ठ-वंश-मेरु-दण्ड) में **धनुर्द्धरी** रक्षा करे।

व्याख्या—**सर्व-मङ्गला**—**'देवी-पुराण'**, ३७।१ में बताया है कि भगवती लोगों के हृदय में स्थित शुभ और मङ्गल-कारी अभिलाषाओं को प्रदान करती हैं, इसी से उनका यह नाम है—

सर्वाणि हृदयस्थानि, मङ्गलानि शुभानि च।
ददाति ईप्सिताँल्लोके, तेन सा सर्व-मङ्गला॥

नील-ग्रीवा बहिः-कण्ठे, नलिकां नल-कूबरी।
स्कन्धयोः खड्गिनी रक्षेद्, बाहू मे वज्र-धारिणी॥२८

हस्तयोर्दण्डिनी रक्षेदम्बिका चांगुलीषु च।
नखान् सुरेश्वरी रक्षेत्, कुक्षौ रक्षेन्नरेश्वरी॥२९

स्तनौ रक्षेन्महा-देवी, मनः-शोक-विनाशिनी।
हृदये ललिता देवी, उदरे शूल - धारिणी॥३०

नाभौ च कामिनी रक्षेद्, गुह्यं गुह्येश्वरी तथा।
मेढ्रं रक्षतु दुर्गन्धा, पायुं मे गुह्य-वासिनी॥३१

कट्यां भगवती रक्षेदूरू मे घन-वासिनी।
जङ्घे महा-बला रक्षेज्जानू माधव-नायिका॥३२

अर्थ—कण्ठ के बाहर **नील-ग्रीवा**, कण्ठ की नली में **नल-कूबरी**, दोनों कन्धों में **खड्गिनी** और मेरी दोनों भुजाओं की **वज्र-धारिणी** रक्षा करे; दोनों हाथों में **दण्डिनी** और अँगुलियों में **अम्बिका** रक्षा करे, नाखूनों को **सुरेश्वरी** रक्षा करे, कोख (पेट के भीतरी भाग) में **नरेश्वरी** रक्षा करे; दोनों स्तनों में **महा-देवी**, मन को **शोक-विनाशिनी**, हृदय में **ललिता देवी**, उदर में **शूल-धारिणी** रक्षा करे; नाभि में **कामिनी** और गुह्याङ्ग में **गुह्येश्वरी** रक्षा करे, लिङ्ग (मेढ्र) को **दुर्गन्धा**, मेरी गुदा की **गुह्य-वासिनी** रक्षा करे; कमर में **भगवती**, मेरे दोनों ऊरु को **घन-वासिनी** रक्षा करे, दोनों जाँघों को **महा-बला**, दोनों घुटनों को **माधव-नायिका** रक्षा करे।

गुल्फयोर्नारसिंही च, पाद-पृष्ठे च कौषिकी।
पादांगुलीः श्रीधरी च, तलं पाताल-वासिनी॥३३

नखान्दंष्ट्रा कराली च, केशांश्चैवोर्ध्व-केशिनी।
रोम-कूपानि कौमारी, त्वचं योगेश्वरी तथा ॥३४

रक्तं मांसं वसां मज्जामस्थि मेदश्च पार्वती।
अन्त्राणि काल-रात्री च, पित्तं च मुकुटेश्वरी॥३५

पद्मावती पद्म-कोषे, कक्षे चूडा-मणिस्तथा!
ज्वाला-मुखी नख-ज्वालामभेद्या सर्व-सन्धिषु॥३६

शुक्रं ब्रह्माणी मे रक्षेच्छायां छत्रेश्वरी तथा।
अहङ्कारं मनो बुद्धिं, रक्षेन्मे धर्म-धारिणी॥३७

अर्थ—दोनों गुल्फों में **नारसिंही** और पैरों के ऊपरी भाग में **कौशिकी**, पैरों की अँगुलियों को **श्रीधरी** और तलवों को **पाताल-वासिनी**, नाखूनों को **दंष्ट्रा-कराली** और केशों को **ऊर्ध्व-वासिनी**, रोओं के छिद्रों को **कौमारी** और खाल को **योगेश्वरी**, रक्त, मांस, चर्बी, मज्जा, हड्डियों और मेद को **पार्वती**, आँतों को **काल-रात्रि** और पित्त को **मुकुटेश्वरी**, श्वास-यन्त्र (पद्म-कोष) में **पद्मावती** और काँख में **चूड़ा-मणि**, नाखूनों की चमक को **ज्वाला-मुखी**, सभी जोड़ों में **अभेद्या**, मेरे वीर्य (शुक्र) को **ब्रह्माणी** और छाया को **छत्रेश्वरी** रक्षा करे, मेरे अहङ्कार, मन और बुद्धि की **धर्म-धारिणी** रक्षा करे।

प्राणापानौ तथा व्यानमुदानं च समानकम्।
वज्र-हस्ता तु मे रक्षेत्, प्राणान् कल्याण-शोभना॥३८

रसे रूपे च गन्धे च, शब्दे स्पर्शे च योगिनी।
सत्त्वं रजस्तमश्चैव, रक्षेन्नारायणी सदा॥३९

आयू रक्षतु वाराही, धर्मं रक्षन्तु मातरः।
यशः कीर्तिं च लक्ष्मीं च, सदा रक्षतु वैष्णवी॥४०

गोत्रमिन्द्राणी मे रक्षेत्, पशून् रक्षेच्च चण्डिका।
पुत्रान् रक्षेन्महा-लक्ष्मीर्भार्यां रक्षतु भैरवी॥४१

धनं धनेश्वरी रक्षेत्, कौमारी कन्यकां तथा।
पन्थानं सुपथा रक्षेन्मार्गं क्षेमङ्करी तथा॥४२

अर्थ—मेरे प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान प्राणों की रक्षा कल्याण-शोभना **वज्र-हस्ता** करे; रस, रूप, गन्ध, शब्द और स्पर्श में **योगिनी**, सत्त्व, रज और तम की रक्षा सदा **नारायणी** करे। आयु की रक्षा **वाराही** करे, धर्म की रक्षा **माताएँ** करें, यश, कीर्ति और लक्ष्मी की रक्षा सदा **वैष्णवी** करे। मेरे गोत्र की **इन्द्राणी** और पशुओं की रक्षा **चण्डिका** करे, पुत्रों की **महा-लक्ष्मी**, भार्या की **भैरवी** रक्षा करे। धन की **धनेश्वरी** व कन्या की रक्षा **कौमारी** करे, यात्रा की **सुपथा** व मार्ग की रक्षा **क्षेमङ्करी** करे।

व्याख्या—**यशः कीर्ति**—'**यश**' और '**कीर्ति**'—ये दो शब्द यद्यपि एक ही अर्थ के सूचक हैं, किन्तु इन दोनों का प्रायः एक साथ प्रयोग होता है। यथा—

स जीवति यशो यस्य, कीर्तिर्यस्य स जीवति।
यशः-कीर्ति-परिभ्रष्टो, जीव-बद्धो न जीवति॥

वस्तुतः दान आदि देने से '**कीर्ति**' होती है और वीरता आदि दिखाने से '**यश**' मिलता है। इस प्रकार दोनों शब्दों में सूक्ष्म अन्तर अनुभव होता है। एक मत यह भी है कि '**यश**' की व्याप्ति सीमित प्रदेश में होती है, जब कि '**कीर्ति**' बहु-देश-व्यापिनी होती है।

राज-द्वारे महा-लक्ष्मी, विजया सर्वतः स्थिता।
रक्षेन्मे सर्व-गात्राणि, दुर्गा! दुर्गाप-हारिणी॥४३
रक्षा-हीनं तु यत् स्थानं, वर्जितं कवचेन च।
सर्वं रक्षतु मे देवी, जयन्ती पाप-नाशिनी॥४४

अर्थ—राज-द्वार में **महा-लक्ष्मी**, सब स्थानों में **विजया** और मेरे सारे शरीर में स्थित रहनेवाली कठिन आपत्तियों को दूर करनेवाली **दुर्गा** रक्षा करे; मेरे जो स्थान कवच से रहित होकर बिना रक्षा के हों, उन सबकी पापों को नाश करनेवाली **जयन्ती देवी** रक्षा करे।

फल-श्रुति अर्थात् कवच-पाठ का फल

सर्व-रक्षा-करं पुण्यं, कवचं सर्वदा जपेत्।
इदं रहस्यं विप्रर्षे! भक्त्या तव मयोदितम्॥४५

अर्थ—सभी प्रकार की रक्षा करनेवाले इस पवित्र **कवच** का सदा पाठ करे। हे श्रेष्ठ विप्र! तुम्हारी भक्ति के कारण मैंने यह रहस्य बताया है।

देव्यास्तु कवचेनैवमरक्षित-तनुः सुधीः।
पदमेकं न गच्छेत् तु, यदीच्छेच्छुभमात्मनः॥४६

अर्थ—बुद्धिमान् व्यक्ति यदि अपना मङ्गल चाहता है, तो इस '**कवच**' से शरीर को सुरक्षित किए बिना एक कदम भी न चले।

व्याख्या—**पदमेकं न गच्छेत्**—कवच के बिना एक कदम भी न चले अर्थात् क्षण भर भी देवी का स्मरण किए बिना न बिताए। कहा भी है कि—

स्वपँस्तिष्ठन् व्रजन् मार्गे, प्रलपन् भोजने रतः।
कीर्तयेत् सततं देवीं, स वै मुच्येत् बन्धनात्॥

अर्थात् सोते हुए, बैठे हुए, मार्ग में चलते, बात करते और खाते समय बराबर **देवी का कीर्तन** करता रहे, तो बन्धन से छुटकारा मिल जाता है।

कवचेनावृतो नित्यं, यत्र यत्रैव गच्छति।
तत्र तत्रार्थ-लाभः स्याद्, विजयः सार्व-कालिकः॥४७

अर्थ—'**कवच**' से आवृत होकर प्रति-दिन जहाँ-जहाँ वह जाता है, वहाँ-वहाँ उसे अर्थ-लाभ होता है और सभी समय विजय मिलती है।

यं यं चिन्तयते कामं, तं तं प्राप्नोति निश्चितम्।
परमैश्वर्यमतुलं, प्राप्नोत्यविकलः पुमान्॥४८

अर्थ—जिस-जिस कामना की वह चिन्ता करता है, उसको वह निश्चित रूप से प्राप्त करता है। विकार-रहित वह व्यक्ति परम अतुलनीय ऐश्वर्य को पाता है।

निर्भयो जायते मर्त्यः, संग्रामेष्वपराजितः।
त्रैलोक्ये च भवेत् पूज्यः, कवचेनावृतः पुमान्॥४९

अर्थ—मरण-शील व्यक्ति '**कवच**' से आवृत होकर निर्भय और युद्धों में अजेय रहता है तथा तीनों लोकों में पूजनीय होता है।

इदं तु देव्याः कवचं, देवनामपि दुर्लभम्।
यः पठेत् प्रयतो नित्यं, त्रि-सन्ध्यं श्रद्धयाऽन्वितः॥५०
देवी वश्या भवेत् तस्य, त्रैलोक्ये चापराजितः।
जीवेद् वर्ष - शतं साग्रमप - मृत्यु - विवर्जितः॥५१

अर्थ—देवी का यह '**कवच**' देवताओं के लिए भी दुर्लभ है। जो इसे नित्य संयत होकर श्रद्धा के साथ **तीनों सन्ध्याओं** में पढ़ता है, देवी उसके वश में हो जाती हैं और तीनों लोकों में अजेय होकर **अप-मृत्यु** से दूर रहता हुआ सौ वर्षों तक जीवित रहता है।

व्याख्या—**वर्ष-शतं**—श्रुतियों का वचन है कि मानव की आयु सौ वर्ष की है—

शतायुर्वै पूरुषः।

'**ईशोपनिषत्**', २ में भी कहा है कि कर्म करता हुआ मनुष्य इस लोक में सौ वर्षों तक जीवित रहने की इच्छा करता है—

कुर्वन्नेह कर्माणि, जिजीविषेच्छतं समाः।

नश्यन्ति व्याधयः सर्वे, लूता-विस्फोटकादयः।
स्थावरं जङ्गमं वापि, कृत्रिमं वापि यद् विषम्॥५२

अर्थ—उसके **लूता** और **विस्फोटक** आदि सभी रोग और **स्थावर**, **जङ्गम** या कैसे भी विष हों, नष्ट हो जाते हैं।

व्याख्या—**लूता**—एक विशेष रोग, मार्मिक अङ्ग का घाव, वृक्का। लूता या मकड़े के काटने से उसके विष के प्रभाव से यह रोग होता है। इसी से इसका नाम '**लूता रोग**' पड़ा है। '**लूता**' का विष बहुत ही भयानक है। '**सुश्रुत कल्प**' के आठवें अध्याय में इस रोग का विवरण और चिकित्सा-विधि देखें।

विष—आयुर्वेद के अनुसार तीन प्रकार के '**विष**' होते हैं—**१ स्थावर, २ जङ्गम** और **३ कृत्रिम**। विशिष्ट पौधों के १ मूल, २ पत्र, ३ फल, ४ पुष्प, ५ त्वक्, ६ क्षीर, ७ सार, ८ निर्यास, ९ धातु और १० कन्द—इन दस भागों में से किसी में '**स्थावर विष**' रहता है। साँप, बिच्छू आदि

जन्तुओं के डसने पर जो 'विष' शरीर में व्याप्त होता है, उसे '**जङ्गम विष**' कहते हैं। विभिन्न वस्तुओं को एक-दूसरे से मिलाने से जो 'विष' तैयार होता है, वह '**कृत्रिम विष**' कहलाता है।

अभिचाराणि सर्वाणि, मन्त्र-यन्त्राणि भू-तले।
भूचराः खेचराश्चैव, कुलजाश्चोपदेशजाः॥५३

सहजाः कुलिका नागा, डाकिनी शाकिनी तथा।
अन्तरीक्ष-चरा घोरा, डाकिन्यश्च महा - रवाः॥५४

ग्रह-भूत-पिशाचाश्च, यक्ष - गन्धर्व - राक्षसाः।
ब्रह्म - राक्षस - वेतालाः, कूष्माण्डा भैरवादयः॥५५

नश्यन्ति दर्शनात् तस्य, कवचेनावृतो हि यः।
मानोन्नतिर्भवेद् राज्ञस्तेजो - वृद्धिः परा भवेत्॥५६

अर्थ—पृथ्वी पर होनेवाले सभी **अभिचार-कर्म** और **मन्त्र-यन्त्र** नष्ट हो जाते हैं और **भूचर** (पृथ्वी-वासी), **खेचर** (आकाश के जीव), **कुलजा** (दुष्ट देव), **उपदेशजा** और **सहजा** नामक क्षुद्र देव, **कुलिक** नामक साँप, **डाकिनी**, **शाकिनी**, आकाश-चारिणी, भयङ्करी, घोर शब्द करनेवाली डाकिनियाँ, **ग्रह**, **भूत**, **पिशाच**, **यक्ष**, **गन्धर्व**, **राक्षस**, **ब्रह्म-राक्षस**, **वेताल**, **कूष्माण्ड** और **भैरव** आदि उसे देखते ही नष्ट हो जाते हैं। जो **कवच** से आवृत है, उसे राजा से सम्मान मिलता है और उसकी तेजस्विता पराकाष्ठा को पहुँच जाती है।

व्याख्या—**यन्त्र**—देवता का निवास '**यन्त्र**' में रहता है। इसी से '**यन्त्र**' को अङ्कित कर उसमें **देवता का पूजन-तर्पण** किया जाता है। '**यन्त्र**' दो प्रकार के होते हैं—**१ पूजा-यन्त्र**, **२ धारण-यन्त्र**। जिस देवता की पूजा करनी हो, उसी का '**यन्त्र**' अङ्कित करना चाहिए।

यशो-वृद्धिर्भवेद् पुंसां, कीर्ति - वृद्धिश्च जायते।
तस्माज्जपेत् सदा भक्त्या, कवचं कामदं मुने!॥५७

अर्थ—इससे मनुष्यों के यश और कीर्ति की वृद्धि होती है। अतः हे मुनि! सदा भक्ति के साथ इस इष्ट-दायक **कवच** का जप करे।

जपेत् सप्तशतीं चण्डीं, कृत्वा तु कवचं पुरः।
निर्विघ्नेन भवेत् सिद्धिश्चण्डी-जप - समुद्भवा॥५८

अर्थ—पहले '**कवच**' का पाठ कर '**सप्तशती चण्डी**' का जप करे। इससे '**चण्डी**' के जप से होनेवाली सिद्धि बिना किसी विघ्न के मिलती है।

यावद् भू-मण्डलं धत्ते, स-शैल-वन-काननम्।
तावत् तिष्ठति मेदिन्यां, जप-कर्तुर्हि सन्ततिः॥५९

अर्थ—पर्वत और जङ्गलों के सहित इस पृथ्वी-मण्डल को जब तक (अनन्त नाग) धारण करते हैं, तब तक पृथ्वी पर इस '**कवच**' के जप करनेवाले की **वंश-परम्परा** विद्यमान रहती है।

देहान्ते परमं स्थानं, यत् सुरैरपि दुर्लभम्।
सम्प्राप्नोति मनुष्योऽसौ, महा-माया-प्रसादतः॥६०

अर्थ—देहान्त होने पर वह मनुष्य **महा-माया की कृपा** से उस श्रेष्ठ स्थान को प्राप्त करता है, जो देवताओं के लिए दुर्लभ है।

व्याख्या—**परमं स्थानं**—ज्ञान द्वारा मोक्ष-रूपी श्रेष्ठ पद मिलता है।

श्रुति का कथन है कि **महा-माया** सबकी कारण-स्वरूपा है, उसकी कृपा से ब्रह्म माया से आवृत्त रहता है। जो इस तत्त्व को जानता है, वही इसे प्राप्त करता है और आत्मा अपने स्वरूप को उसे स्पष्ट करती है। जो इस **माया-शक्ति** को जान लेता है, वह मृत्यु को जीत लेता है, पापों को पार कर जाता है और अमरता को पा लेता है—

महा-माया सर्व-कारणं, माया-शबलं, ब्रह्म तस्याः प्रसादतः।
यमेवैष वृणुते, तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्॥
य एतां माया-शक्तिं वेद, स मृत्युर्जयति,
स पाप्मानं तरति, सोऽमृतत्त्वं च गच्छति।

और भी **श्रुति-वचन** हैं कि भगवती स्वयं ही अपने इस रहस्य को देवताओं और मनुष्यों को बताती है—

अहमेव स्वयमिदं वदामि, जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।

'**सूत-संहिता**' में भी कहा है कि **पार्वती परमा विद्या** हैं और विशेष कर प्राणियों को **ब्रह्म-विद्या** प्रदान करनेवाली हैं, इसमें सन्देह नहीं—

पार्वती परमा विद्या, ब्रह्म-विद्या-प्रदायिनी।
विशेषेणैव जन्तूनां, नात्र सन्देह-कारणम्॥

'**श्रीमद्-भगवद्-गीता**', १५।१६ में '**परम स्थान**' का संक्षेप में वर्णन किया गया है। यथा—

न तद् भासयते सूर्यो, न शशाङ्को न पावकः।
यद् गत्वा न निवर्त्तन्ते, तद् धाम परमं मम॥

अर्थात् उस स्थान को न सूर्य प्रकाशित करता है, न चन्द्रमा और न अग्नि; जहाँ जाकर वापस नहीं आते, वही '**परम स्थान**' मेरा धाम है।

तत्र गच्छति भक्तोऽसौ, पुनरागमनं न हि।
लभते परमं स्थानं, शिवेन सह मोदते ॐॐॐ॥६१

अर्थ—वह भक्त उस स्थान को जाता है, जहाँ से फिर आना नहीं होता अर्थात् उसका पुनर्जन्म नहीं होता। वह **परम पद** को पाता है और **शिव के साथ आनन्द** करता है।

व्याख्या—'**वाराही तन्त्र**' के अनुसार इस '**कवच**' में '**सार्ध-पञ्चाशत्**' श्लोकों का संग्रह है। वहीं देवी के जो नाम '**कवच**' में आते हैं, उनका क्रमानुसार उल्लेख भी किया गया है, जिससे स्तोत्र में अधिकता या न्यूनता न होने पाए। यथा—

दश दिक्पाल-देव्यश्च, चामुण्डा च ततः परम्।
जया च विजया चैवाप्यजिता चापराजिता॥१

उद्योतिनी ततश्चोमा, माला - धारी यशस्विनी।
त्रिनेत्रा यम-घण्टा च, शङ्खिनी द्वार-वासिनी॥२

कालिका शाङ्करी पश्चात्, सुगन्धा चर्चिका तथा।
अमृतादि-कला पश्चात्, ततः स्यात् तु सरस्वती॥३

कौमारी चण्डिका चित्र-घण्टा माया महाऽऽदिका।
कामाक्ष्यनन्तरं सर्व-मङ्गला भद्र - कालिका॥४

धनुर्धरी नील - ग्रीवा, ततः स्यान्नल - कूबरी।
खड्ग-धारिणिका पूर्वं, वज्र-धारिण्यनन्तरम्॥५

दण्डिनी चाम्बिका मूलेशानी स्यात् तु बलेश्वरी।
मनः-शोक-विनाशा स्याल्ललिता शूल-धारिणी॥६

कामिनी गुह्य-पूर्वा स्यादीश्वरी च ततः परम्।
भूत-नाथा ततः स्यात् तु, महा-महिष-वाहिनी॥७

भगवत्यपि विन्ध्यस्था, महा-पूर्वा बला तथा।
विनायकी नारसिंही, ततः पश्चान्मितौजसी॥८

श्रीधर्यन्ते च पाताल-वासिन्यन्ते करालिनी।
ऊर्ध्व-केशी च कौबेरी, वागीशी पार्वती तथा॥९

काल-रात्रिश्च मुकुटेशानी पद्मावती तथा।
चूडामणिस्तथा ज्वाला-मुख्यभेद्या ततः स्मृता॥१०

ब्रह्माणी छत्र-पूर्वा स्यादीश्वरी धर्म-चारिणी।
चक्रिणीन्द्र-वधूश्चण्डी, महा-लक्ष्मीश्च भैरवी॥११

क्षेमं पूर्वाकरी पश्चाद्, विजया च जयन्तिका।
इत्येताः सम्यगाख्याताः कवचस्था शक्तयः॥१२

इस प्रकार '**चण्डी–श्रीदुर्गा-सप्तशती**' के **षडङ्गों** में से प्रारम्भ के तीन अङ्गों '**अर्गला**', '**कीलक**' और '**कवच**'—की जो **सार्थ-व्याख्या** यहाँ प्रस्तुत की गई है, उससे स्पष्ट होता है कि इन तीनों के सम्बन्ध में गवेषणा की कितनी आवश्यकता है। जब तक कोई सर्व-सम्मत निर्णय नहीं होता, अपनी **गुरु-परम्परा** के अनुसार ही इन अङ्गों का पालन उपासकों को करना चाहिए।

***

सार्थ रात्रि-सूक्त-वैदिक

यह **'रात्रि-सूक्त'** रात्रि-देवता का प्रतिपादन करता है। वह **रात्रि-देवता** दो प्रकार की है—**१ जीव-रात्रि, २ ईश्वर-रात्रि।** इनमें से **पहली रात्रि** तो प्रसिद्ध ही है, जिसमें मनुष्यादि सभी जीवों के व्यवहार नित्य लुप्त होते हैं। **दूसरी रात्रि** वह है, जिसमें ईश्वर के व्यवहार का लोप होता है। महा-प्रलय के काल में अन्य वस्तुओं का अभाव होने से केवल **ब्रह्म-मायात्मक वस्तु** रहती है, जो सबका कारण है और **'अव्यक्त'** नाम से जानी जाती है। वही **दूसरी रात्रि-देवता** है। **देवी-पुराण** में कहा भी है कि—

ब्रह्म-मायात्मिका रात्रिः, परमेश-लयात्मिका।
तदधिष्ठातृ - देवी तु, भुवनेशी प्रकीर्त्तिता॥

ॐ रात्री व्यख्यदायती पुरुत्रा देव्यक्षभिः। विश्वा अधि श्रियोऽधित॥१

अर्थ—**'अक्षभिः'**—महत् आदि तत्त्व-रूपी प्रकाशमान इन्द्रियों से, **'रात्री देवी'**—सब वस्तुओं को प्रकाशित करनेवाली रात्रि (ब्रह्म-मायात्मिका), **'पुरुत्रा'**—सब देशों में, **'आयती'**—आती हुई अर्थात् विद्यमान रहती हुई, **'व्यख्यत्'**—अपने द्वारा उत्पादित जगज्जाल—सदसत्-कर्मादि को विशेषतया देखती है। (तदनन्तर) उन-उन कर्मों के अनुरूप फल-रूप, **'विश्वा'**—सब, **'श्रियः अधि-अधित'**—विभूतियों को प्रदान करती है।

व्याख्या—**सर्व-कारण-भूता चिच्छक्ति** पूर्व-कल्प के जीवों के सदसत् कर्मों का अवलोकन कर उनके फलीभूत होने के लिए समय का अभाव होने से, ईश्वर-सहित सारे प्रपञ्च को अपने में लय कर लेती है और जब फल देने का समय आता है, तब महदादि द्वारा प्रपञ्च की पुनः रचना कर उन-उन प्राणियों को उन-उन के कर्मानुसार फल प्रदान करती है। इससे **भगवती भुवनेश्वरी रात्रि देवी** की सर्वज्ञता की अवर्णनीयता प्रकट होती है। समस्त **उपनिषद्**-साहित्य से इसकी पुष्टि होती है। इस प्रथम ऋचा में **रात्रि देवी** के प्रथम कृत्य का वर्णन हुआ है। दूसरे कृत्य का वर्णन अगली ऋचा में है—

ओर्वप्रा अमर्त्या निवतो देव्युद्वतः। ज्योतिषा बाधते तमः॥२

अर्थ—**'अमर्त्या'**—मरण-रहिता वह, **'देवी'**—देवन-शीला चिच्छक्ति भुवनेश्वरी रात्रि, **'ओरु'**—विस्तीर्ण अन्तरिक्ष से लेकर समस्त प्रपञ्च में, **'अ प्राः'**—अपने स्वरूप से व्याप्त है अर्थात् अपने अधिष्ठान-रूप से अभेद होकर विद्यमान रहती है और प्रपञ्च-गत, **'निवतो'**—नीचे को फैलनेवाली लता-गुल्मादि को तथा **'उद्वतः'**—ऊपर को बढ़नेवाले वृक्षादि को अपने तेज—

अधिष्ठान चैतन्य से, **(अ प्राः)** व्याप्त किए है। **'तमः'**—अज्ञान को, **'ज्योतिषा'**—अपने चैतन्य की ज्योति से, **'बाधते'**—नष्ट करती है।

व्याख्या—**भुवनेश्वरी रात्रि देवी** प्रपञ्च-गत प्राणियों में से उन प्राणियों के तमो-मूल अज्ञान का अपनी ज्ञान-ज्योति से नाश करती है, जिनके चित्त वेदोक्त अनुष्ठानादि के करने से शुद्ध हो जाते हैं।

किस प्रकार **अज्ञान का नाश** करती है, इसे अगली ऋचा में बताते हैं—

निरु स्व-सारमस्कृतोषसं देव्यायती। अपेदु हासते तमः॥३

अर्थ—**'आयती'**—आती हुई, **'देवी'**—द्योतन-शीला रात्रि अर्थात् **चिच्छक्ति भुवनेश्वरी**, **'स्व-सारं'**—अपनी भगिनी, **'उषसं'**—प्रकाश-रूपा अविद्या की आवरण-शक्ति-रूपा को, **'निरुस्कृत'**—प्रकट करती है, जिससे **'तमः अपेदु हासते'**—अज्ञानान्धकार का नाश हो जाता है।

व्याख्या—प्रारब्ध कर्मों का क्षय होने पर **निक्षेप-शक्ति** के नष्ट होने से **अज्ञान-रूप अन्धकार** दूर हो जाता है। **चिच्छक्ति-रूपा रात्रि-देवी** और **ब्रह्म-विद्या-रूपा उषा देवी**—इन दो शक्तियों के अतिरिक्त स्वरूप की आवश्यकता नहीं है। अब अगली ऋचा में **रात्रि-देवी की प्रार्थना** के लिए मन्त्र बताते हैं—

सा नो अद्य यस्या वयं नि ते यामन्न विक्ष्महि। वृक्षे न वसतिं वयः॥४

अर्थ—**'अद्य'**—इस समय, **'नो'**—मुझ पर, **'सा'**—वह **रात्रि देवी चिच्छक्ति भुवनेश्वरी** प्रसन्न हो, **'यस्या यामन्'**—जिसके आने पर अर्थात् जिसके प्रसन्न होने पर, **'वयं न्यविक्ष्महि'**—हम सुख से अपने स्वरूप में स्थिर होते हैं। यथा—**'वयः'**—पक्षि-गण, **'वृक्षेण'**—पेड़ों पर, **'वसतिं'**—रात्रि में निवास करते हैं।

व्याख्या—जिस प्रकार रात्रि में पक्षी-गण वृक्षों में स्थित अपने घोंसलों—आश्रय में विश्राम करते हैं, उसी प्रकार **रात्रि-देवी की कृपा** से जीवन सुख-मय हो, यह प्रार्थना है।

नि ग्रामासो अविक्षत नि पद्वन्तो नि पक्षिणः। नि श्येनासश्चिदर्थिनः॥५

अर्थ—**'ग्रामासः'**—सभी ग्राम-वासी, **'न्यविक्षत'**—उस **चिच्छक्ति-रूपा रात्रि** के विद्यमान होने पर सुख से सोते हैं, **'पद्वन्तः'**—पैरोंवाले गाय-घोड़े आदि, **'पक्षिणः'**—पङ्खवाले पक्षि-गण, **'अर्थिनः'**—किसी काम से जानेवाले पथिक (यात्री)-गण और **'श्येनासः'**—बाज आदि, **'नि'**—सोते हैं।

व्याख्या—जो प्राणी **परमेश्वरी** के नाम को भी नहीं जानते, वे भी **चिच्छक्ति भुवनेश्वरी रात्रि-देवी** की दया से सुख से सोते हैं अर्थात् स्वस्थ होते हैं। जिस प्रकार अत्यन्त मूर्ख बच्चे भी माता की दया पाकर विश्राम पाते हैं, उसी प्रकार की अति दयावाली **रात्रि-देवी है।**

यावया वृक्यं वृकं यवय स्तेनमूर्म्ये। अथा नः सुतरा भव॥६

अर्थ—'**ऊर्म्ये**'—हे रात्रि-रूपिणी भुवनेश्वरि! '**वृक्यं**'—नाना वासना-रूपी वृकी को और '**वृकं**'—वृक के समान घातक पाप को, '**नः**'—हमसे, '**यावय**'—दूर करो। '**स्तेनं**'—चोर को अर्थात् चित्त को चुरानेवाले कामादि को, '**यवय**'—दूर करो। '**अथा**'—बाद में, '**सुतरा**'—सुख से पार होनेवाली, कल्याण-कारिणी, मोक्ष-दायिनी, '**भव**'—हो जाओ।

उप मा पेपिशत्तमः कृष्णं व्यक्तमस्थित। उष ऋणेव यातय॥७

अर्थ—'**पेपिशत्**'—सब ओर व्याप्त, '**तमः**'—अज्ञान-रूप अन्धकार, '**कृष्णं**'—काले रङ्ग का, '**व्यक्तं**'—विशेषतया अपने स्वरूप को प्रकट करता हुआ, '**मा उपास्थित**'—मेरे पास आ पहुँचा है। '**उष**'—हे उषे! रात्रि-देवते! '**ऋण इव**'—कर्ज के समान, उसे '**यातय**'—दूर करो।

व्याख्या—जिस प्रकार भक्तों को धन देकर ऋण से मुक्त करती हो, उसी प्रकार **ज्ञान** देकर **अज्ञान** को हटा दो।

उप ते गा इवाकरं वृणीष्व दुहितर्दिवः। रात्रि स्तोमं न जिग्युषे ॥८

अर्थ—'**रात्रि**'—हे रात्रि! हे चिच्छक्ते भुवनेश्वरि! '**ते**'—तुम्हें, '**गा इव**'—दूध देनेवाली गाय के समान, '**उप आकरं**'—स्तुति, जयादि द्वारा अपनी ओर आकृष्ट करता हूँ। हे '**दिवः**'—परमाकाश-रूप आत्मा को, '**दुहितः**'—पुत्रि! तुम्हारी कृपा से कामादि शत्रुओं को, '**जिग्युषे**'—जय करता हूँ। तुम '**स्तोमं न**'—मेरे स्तोत्र की भाँति हविष्य अर्थात् यथा-शक्ति प्रस्तुत मेरे हवि को, '**वृणीष्व**'—स्वीकार करो।

विशेष—**साम-विधि** के अनुसार भी '**रात्रि-सूक्त**' है, जिसका रात्रि में केवल जप करने से ही सिद्धि मिलती है; मृत्यु-काल का ज्ञान होकर मोक्ष का लाभ मिलता है। यह मन्त्र भी देवी-परक है। यथा—

साम-विधानानुसार रात्रि-सूक्त

ॐ रात्रिं प्रपद्ये पुनर्भूं मयोभूं कन्यां शिखण्डिनीं पाश-हस्तां युवतीं कुमारिणी-मादित्यः श्रीचक्षुषेवान्तः प्राणाय सोमो गन्धायापः स्नेहाय मनोऽनुज्ञाय पृथिव्यै शरीरम्।

अर्थ—'**कन्यां**'—कुमारिणी (प्रत्यभिज्ञान से), '**रात्रिं**'—रात्रि-देवी, '**पुनर्भूं**'—असुर-वधार्थ नाना अवतार लेने से बारम्बार प्रकट होनेवाली, अतएव '**मयोभूं**'—प्राणियों को सुख देनेवाली, '**शिखण्डिनीं**'—मयूर-पङ्ख से विभूषिता, '**पाश-हस्तां**'—असुरों को बाँधने के लिए हाथ में पाश रखनेवाली, '**युवतीं**'—बाल्य-वार्द्धक्य अवस्थाओं से रहिता, सदा नव-यौवना—इस प्रकार की रात्रि-देवी के प्रभाव से '**आदित्यः**' '**श्रीचक्षुषेवान्तः**'—आदित्य नेत्रों की रक्षा करने को उद्यत होते हैं तथा '**मनः**'—मन की अधिष्ठात्री देवता, '**अनुज्ञाय**'—रक्षा करती है और '**पृथिव्यै शरीरं**'—पार्थिव शरीर की।

❋❋❋

देवी-वाहन सिंह-ध्यानम्

श्री चण्डी (दुर्गा-सप्तशती) के पाठ के पूर्व भगवती के वाहन **भगवान् सिंह का ध्यान** करना सिद्धि-दायक होता है। इस ध्यान के अनुसार स्वतन्त्र रूप से भी **भगवान् सिंह देव** के पूजनादि का प्रभाव-कारी विधान मिलता है। यथा—

ॐ ग्रीवायां मधु-सूदनोऽस्य शिरसि श्रीनील - कण्ठः स्थितः,
श्रीदेवी गिरिजा ललाट - फलके वक्षः - स्थले शारदा।
षड्-वक्त्रो मणि-बन्ध-सन्धिषु तथा नागास्तु पार्श्व-स्थिताः,
कर्णौ यस्य तु चाश्विनौ स भगवान् सिंहो ममास्त्विष्टदः॥१

अर्थ—इनकी ग्रीवा (गले) में **मधु-सूदन** (विष्णु), शिर पर **श्री नील-कण्ठ** (शिव) स्थित हैं, ललाट-फलक-मस्तक पर **श्री देवी गिरिजा**, वक्षःस्थल पर **शारदा**, मणि-बन्ध (कलाई) की सन्धियों में **षड्-वक्त्र (कार्तिकेय)** और पार्श्व में **नाग** स्थित हैं। जिनके दोनों कानों में **अश्विनीकुमार** हैं, ऐसे वे **भगवान् (पराक्रमी) सिंह** मेरे अभीष्ट को प्रदान करें।

ॐ यन्नेत्रे शशि-भास्करौ वसु-कुलं दन्तेषु यस्य स्थितम्,
जिह्वायां वरुणस्तु हुं-कृतिरियं श्रीचर्चिका चण्डिका।
गण्डौ यक्ष-यमौ तथौष्ठ-युगलं सन्ध्या-द्वयं पृष्ठके,
वज्री यस्य विराजते स भगवान् सिंहः ममास्त्विष्टदः॥२

अर्थ—जिनके नेत्रों में **सूर्य** और **चन्द्रमा**, दाँतों में आठों **वसु**, जिह्वा में **वरुण** और जिनके हुङ्कार (गर्जन) में **श्रीचर्चिका चण्डिका** हैं, गण्डों (कन-पटियों) में **यक्ष** और **यम**, दोनों ओठों में दोनों **सन्ध्याएँ** और पीठ में वज्र धारण करनेवाले **इन्द्र** विराजमान हैं, वे **भगवान् सिंह** मेरे अभीष्ट को प्रदान करें।

ॐ ग्रीवा-सन्धिषु सप्त-विंशति-मितान्यृक्षाणि साध्या हृदि,
प्रौढा निर्घृणता तमोऽस्य तु महा-क्रौर्यै समा पूतनाः।
प्राणे यस्य तु मातरः पितृ-कुलं यस्यास्त्यपानात्मकम्,
रूपे श्रीकमला कचेषु विमलास्ते केयूरे रश्मयः॥३

अर्थ—जिनके गले की सन्धियों में सत्ताइस **ऋक्ष** और **साध्या देवी** हृदय में, प्रौढ़ता में **तम**, क्रूरता में **पूतना**, प्राण में **माताएँ**, अपान में **पितृ-कुल**, रूप में **श्री कमला (लक्ष्मी)**, केशों में **विमला** और केयूर (अयाल) में **रश्मियाँ** हैं।

ॐ मेरु स्याद् वृषणेऽब्धयस्तु जनने स्वेद-स्थिता निम्नगाः,
लांगूले सह-देवतैर्विलसिता वेदा बलं वीर्यकम्।
श्रीविष्णोः सकला सुरा अपि यथा-स्थानं स्थिता यस्तु,
श्रीसिंहोऽखिल-देवता-मय-वपुर्देवी - प्रियः पातु माम्॥४

अर्थ—जिनके वृषण (अण्ड-कोष) में **मेरु**, जनन (लिङ्ग) में **समुद्र**, स्वेद (पसीने) में **निम्न कोटियाँ**, पूँछ में **सह-देवताओं की शोभा**, वीर्य में **वेदों की शक्ति** (चार शक्तियाँ) स्थित हैं। **श्री विष्णु** के सहित सभी देवता इस प्रकार यथा-स्थान जिनमें स्थित हैं, ऐसे **सकल देव-गण-समूह से युक्त** शरीरवाले, **देवी के प्रिय श्री सिंह** मेरी रक्षा करें।

ॐ यो बाल-ग्रह-पूतनादि-भय-हृद्यः पुत्र-लक्ष्मी-प्रदो यः,
स्वप्न-ज्वर-रोग-राज-भय-हृद्योऽमङ्गले मङ्गलः।
सर्वत्रोत्तम-वर्णनेषु कविभिर्यस्योपमा दीयते,
देव्या वाहनमेष रोग-भय-हृत् सिंहो ममास्त्विष्टदः॥५

अर्थ—जो **बाल-गृह, पूतनादि भय का नाश करनेवाले; पुत्र और लक्ष्मी के देनेवाले; दुःस्वप्न, ज्वर, रोग, राज-भय को दूर करनेवाले** और **अमङ्गल को मङ्गल बनानेवाले** हैं। सर्वत्र जिनकी उपमा कवियों द्वारा उत्तम वर्णनों में दी जाती है, ऐसे यह देवी के वाहन, **रोग और भय से रक्षा करनेवाले सिंह भगवान्** मेरे अभीष्ट को प्रदान करें।

व्याख्या—उक्त पाँच श्लोकों का पूरा ध्यान है। प्रायः तीन ही श्लोकों का ध्यान प्रचलित है, जो **'विशुद्ध चण्डी'** में दिया गया है। इस श्लोक-पञ्चक को **भगवान् सिंह** के स्तव-रूप में भी पाठ किया जाता है। उस दशा में पहले निम्न प्रकार **लघु ध्यान** करे—

ॐ सिंहस्त्वं हरि - रूपोऽसि, स्वयं विष्णुर्न संशयः।
पार्वत्या वाहनस्त्वं ह्यतः पूजयामि त्वामहम्॥

अर्थ—हे **भगवान् सिंह!** तुम स्वयं **हरि-रूप** हो, **विष्णु** हो, इसमें सन्देह नहीं। तुम **भगवती पार्वती के वाहन** हो। अतः मैं तुम्हारी पूजा करता हूँ।

इसके बाद यथा-शक्ति पञ्चोपचार से चित्र या मूर्ति-रूप में **भगवान् सिंह का पूजन** कर उक्त पञ्च-श्लोकात्मक स्तुति का पाठ करे। तब **सिंह के मन्त्र का जप** करे। मन्त्रोद्धार इस प्रकार है– **माया-द्वयं समुच्चार्य, सिंहाय महा-बलाय च। पुनर्माया-द्वयं देवि! मनुरेष प्रकीर्त्तितः॥ द्वादशाक्षरी महा-विद्या, सिंहस्य परिकीर्त्तिता। ध्यात्वा पाद्यादिकं दत्वा, एकधा मन्त्रमुच्चरेत्॥**

अर्थात् 'माया'-द्वय (**ह्रीं ह्रीं**) का उच्चारण कर **'सिंहाय महा-बलाय'** कहे। फिर 'माया'-द्वय (**ह्रीं ह्रीं**) कहे। यह मन्त्र कहा गया है। **सिंह** का यह मन्त्र **बारह अक्षर की महा-विद्या** माना गया है। **ध्यान** करके, **पाद्यादिक** देकर एक बार इस मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए– **ह्रीं ह्रीं सिंहाय महा-बलाय ह्रीं ह्रीं।** (१२ अक्षर)

***

प्रथम चरित न्यासादि

श्री चण्डी (दुर्गा-सप्तशती) में भगवती के तीन चरितों का वर्णन है। '**प्रथम चरित**' सप्तशती के पहले अध्याय में ही पूर्ण हो जाता है। '**मध्यम चरित**' दूसरे अध्याय से प्रारम्भ होकर चौथे अध्याय में और '**उत्तम चरित**' पाँचवें अध्याय से प्रारम्भ होकर दसवें अध्याय में पूर्ण होता है। इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिए '**विशुद्ध चण्डी**' में तीन चरितों का स्पष्ट उल्लेख यथा-स्थान किया गया है।

प्रत्येक चरित के आदि में '**विनियोग**' को पढ़ने की विधि है। इस विनियोग में '**चरित**' शब्द का ही उच्चारण करना चाहिए, जैसे कि '**विशुद्ध चण्डी**' में छापा गया है, '**चरित्र**' शब्द का नहीं, जैसा कि लोग प्राय: करते हैं। इन दोनों शब्दों का अर्थ एक ही जैसा प्रतीत होता है, किन्तु वास्तव में इनके अर्थों में बड़ा अन्तर है, जो ध्यान से विचार करने पर अनुभव में आ जाता है।

उक्त तीनों चरितों की देवता क्रमश: '**महा-काली**', '**महा-लक्ष्मी**' और '**महा-सरस्वती**' हैं। यह सच है कि इन देवताओं का नामोल्लेख '**सप्तशती**' के उक्त चरितों के वर्णन में नहीं मिलता, किन्तु ध्यान देने की बात यह है कि '**सप्तशती**' का वर्णन अधिकतर सूत्र-रूप में है। बहुत-सी बातों का स्पष्टीकरण अन्य ग्रन्थों से जाना जा सकता है। यथा—**वेद-व्यास** कृत '**लघु-चण्डी**' (मूल्य दस रुपए)। '**विशुद्ध चण्डी**' की प्रस्तुत अर्थ-व्याख्या में ऐसे प्रमुख प्रसङ्गों का उद्घाटन पाठकों को यथा-स्थान मिलेगा।

तीन चरितों की उक्त तीन देवताओं के प्रतिपादन के सम्बन्ध में मथुरा के **स्व० पण्डित लक्ष्मणदत्त शास्त्री चतुर्वेदी** का लेख '**सप्तशती-रहस्य-विवेचन**' कौल-कल्पतरु '**चण्डी**'-पत्रिका के वर्ष ३५, संख्या ११-१२ के पृष्ठ ५७ पर पढ़ने योग्य है। यहाँ उसी के आधार पर कुछ प्रमाण प्रस्तुत हैं :—

१—'**चिदम्बर-संहिता**' में लिखा है कि—

तदा सा चिन्मयी शक्तिः, काली-रूपा बभूव ह।
सैव कालान्तरे लक्ष्मीस्तथैव च सरस्वती॥
तासां कथानकं भद्रे! त्रिदशाध्याय-रूपकम्।
मार्कण्डेय-पुराणोक्तं, स्तवं सप्त-शताभिधम्॥

अर्थात् तब वह चिन्मयी शक्ति '**काली**'-रूप में आविर्भूत हुई। कालान्तर में वही '**लक्ष्मी**' और '**सरस्वती**' हुईं। उनका कथानक **तेरह अध्यायों** के रूप में '**मार्कण्डेय-पुराण**' में कहा गया है, जिसका नाम '**सप्त-शती**' है।

२—'**देवी भागवत**' के १०वें स्कन्ध के ११वें अध्याय के ३३ से ३५ श्लोकों में—

एवं देवी समुत्पन्ना, ब्रह्मणा संस्तुता नृप!
महा-काली महाराज! सर्व-योगेश्वरेश्वरी॥
महा-लक्ष्म्यास्तथोत्पत्तिं, निशामय मही-पते!
एवं लक्ष्मीः समुत्पन्ना, महिषासुर-मर्दिनी॥
राजन्! शृणु सरस्वत्याः, प्रादुर्भावो यथाऽभवत्।
विबुधैः संस्तुता तद्वत्, साक्षाद् वागीश्वरी परा॥

अर्थात् हे राजन्! इस प्रकार **ब्रह्मा** द्वारा स्तुति किए जाने पर सर्व-योगेश्वरी देवी **महा-काली** समुत्पन्न हुईं। उसी प्रकार **महा-लक्ष्मी** की उत्पत्ति को सुनो। इस प्रकार **महिषासुर को मारनेवाली लक्ष्मी** समुत्पन्न हुईं। **सरस्वती** का प्रादुर्भाव जिस प्रकार हुआ, उसे सुनो। देवताओं द्वारा स्तुति किए जाने पर साक्षात् **परा वागीश्वरी** उसी प्रकार समुत्पन्न हुईं।

३—**विनियोग** का स्वरूप निर्देश करते हुए बताया गया है कि—

सप्तशत्याश्चरिते तु, प्रथमे पद्म-भूर्मुनिः।
छन्दो गायत्रमुदितं, 'महा-काली' तु देवता॥
मध्यमस्य चरितस्य, विष्णुर्मुनिरुदाहृतः।
उष्णिक् छन्दो महा-लक्ष्मीर्देवता बीजमद्रिजा॥
उत्तमस्य चरितस्य, मुनिः शङ्कर ईरितः।
त्रिष्टुप् छन्दो देवताऽस्य, महा-पूर्वा सरस्वती॥

अर्थात् '**सप्तशती**' के **प्रथम चरित** में **मुनि ब्रह्मा** हैं, छन्द **गायत्री** और देवता '**महा-काली**' हैं। **मध्यम चरित** के **मुनि विष्णु** कहे गए हैं, छन्द **उष्णिक्** और देवता '**महा-लक्ष्मी**' हैं। **उत्तम चरित** के **मुनि शङ्कर** कहे गए हैं, **त्रिष्टुप्** छन्द और इसकी देवता '**महा-सरस्वती**' हैं।

इस प्रकार **सप्तशती** के तीन चरितों के तीन देवताओं के प्रमाण अनेकशः मिलते हैं। **विनियोगादि** के भी अनेक क्रम मिलते हैं। गुरुदेव के निर्देशानुसार ही इन सबको ग्रहण करना चाहिए।

***

सार्थ चण्डी (श्री दुर्गा सप्तशती)

प्रथम चरितम्

पूर्व-पीठिका

तपस्यन्तं महात्मानं, मार्कण्डेयं महा-मुनिम्।
व्यास-शिष्यो महा-तेजा, जैमिनिः पर्यपृच्छत॥

॥ जैमिनि उवाच ॥

मार्कण्डेय, महा-प्राज्ञ! सर्व-शास्त्र-विशारद!
श्रोतुमिच्छाम्यशेषेण, देवी-माहात्म्यमुत्तमम्॥

अर्थ—तपस्या करते हुए **महा-मुनि महात्मा मार्कण्डेय** से **व्यास** के शिष्य महा-तेजस्वी **जैमिनि** ने पूछा—'हे सब शास्त्रों में निपुण, **महान् ज्ञानी मार्कण्डेय** जी! मैं **उत्तम देवी-माहात्म्य** को पूर्ण रूप से सुनना चाहता हूँ।'

व्याख्या—**देवी-माहात्म्य (चण्डी या सप्तशती)** के यथार्थ रहस्य को हृदयङ्गम करने के लिए यह आवश्यक है कि **'मार्कण्डेय पुराण'** के जिस स्थल से इस **दिव्य चरित-कथा** का प्रारम्भ हुआ, उसके ठीक पहले के प्रसङ्ग को जान लिया जाए। **महर्षि वेदव्यास** के शिष्य **जैमिनि** ने **महा-मुनि मार्कण्डेय** से कुछ जिज्ञासाएँ कीं। उन्हें सब बातें बताने का अवकाश नहीं था। अत: उन्होंने **जैमिनि** को सब शास्त्रों के ज्ञाता **द्रोण मुनि** के चार पुत्रों—**पिङ्गाक्ष, विवोध (. विराध), सुपुत्र** और **सुमुख**—के पास भेजा। ये चारों पिता के शाप से पक्षियों के रूप में **विन्ध्य-पर्वत** की कन्दरा में रहते थे, किन्तु पक्षि-योनि में होते हुए भी इन्हें पूर्व-जन्म का सारा ज्ञान-विज्ञान प्राप्त था। **जैमिनि** के पूछने पर इन्होंने उनकी सभी जिज्ञासाओं का समाधान किया। अन्त में **जैमिनि** ने **१४ मन्वन्तरों** के सम्बन्ध में पूछा। इस सम्बन्ध में **महर्षि मार्कण्डेय** बहुत पहले **क्रोष्टुकि** (**भागुरि**) को बता चुके थे—**१ स्वायम्भुव, २ स्वारोचिष, ३ उत्तम, ४ तामस, ५ रैवत, ६ चाक्षुष** और **७ वैवस्वत**—इन सात मन्वन्तरों का वर्णन करने के बाद **मार्कण्डेय मुनि** ने **क्रोष्टुकि** को अगले आठवें **'सावर्णिक'** मन्वन्तर के विषय में बताना प्रारम्भ किया। उसी को पक्षि-रूप-धारी **मुनि-पुत्रों** ने **जैमिनि** को कह सुनाया। इस प्रकार छ: व्यक्ति (**१ क्रोष्टुकि, २-५ चार मुनि-पुत्र** और **६ जैमिनि**) के माध्यम से यह कथा प्रकाश में आई। इसी से **चण्डी (सप्तशती)** को **'षट्-संवाद-कथा'** भी कहते हैं।

प्रथमः अध्यायः

मधु-कैटभ का वध

मार्कण्डेय उवाच॥१

सावर्णिः सूर्य-तनयो, यो मनुः कथ्यतेऽष्टमः।
निशामय तदुत्पत्तिं, विस्तराद् गदतो मम॥२

अर्थ—**मार्कण्डेय बोले**—जो सूर्य-पुत्र **सावर्णि** आठवें मनु कहे जाते हैं, उनके जन्म-वृत्तान्त को विस्तार से कहते हुए मुझे सुनो।

व्याख्या—'**मनु**' चौदह हैं—**१ स्वायम्भुव, २ स्वारोचिषं, ३ उत्तम, ४ तामस, ५ रैवत, ६ चाक्षुष, ७ वैवस्वत, ८ सावर्णि, ९ दक्ष-सावर्णि, १० ब्रह्म-सावर्णि, ११ धर्म-सावर्णि, १२ रुद्र-सावर्णि, १३ देव-सावर्णि** या रौच्य, **१४ इन्द्र-सावर्णि** या **भौत्य**। एक-एक **मनु** एक-एक **मन्वन्तर** के स्वामी होते हैं। **७१ चतुर्युग** अर्थात् **३० करोड़ ६७ लाख २० हजार मानव वर्षों** का एक **मन्वन्तर** होता है। यही **इन्द्र, सप्त-ऋषियों** और **मनु** का अधिकार-काल है। आजकल **सातवाँ मन्वन्तर** चल रहा है, जिसके स्वामी '**वैवस्वत**' हैं। '**स्वारोचिष**' **मनु** के अधिकार-काल में अर्थात् **दूसरे मन्वन्तर में राजा सुरथ** ने **श्री चण्डी** की पूजा कर उनसे **आठवें मन्वन्तर** के स्वामी होने का वर प्राप्त किया था। उसी वर के फल-स्वरूप अगले अर्थात् **आठवें मन्वन्तर** में वे **सवर्णा** के गर्भ में **सूर्य** के वीर्य से जन्म लेकर '**सावर्णि**' नाम के **आठवें मनु** होंगे।

महा - मायाऽनुभावेन, यथा मन्वन्तराधिपः।
स बभूव महा - भागः, सावर्णिस्तनयो रवेः॥३

अर्थ—वे महा-भाग **सूर्य-पुत्र** '**सावर्णि**' महा-माया के अनुग्रह से जिस प्रकार मन्वन्तर के स्वामी हुए, (उसे सुनो)।

व्याख्या—**१ ऐश्वर्य, २ वीर्य, ३ यश, ४ श्री, ५ ज्ञान, ६ वैराग्य**—ये '**भग**' कहे जाते हैं। ऐश्वर्यादि छः सम्पत्ति-समूह को '**भग**' कहते हैं। इस प्रकार जो व्यक्ति ऐश्वर्यादि से अत्यन्त सम्पन्न हो, वही '**महा-भाग**' कहलाता है।

'**मन्वन्तराधिपः बभूव**' का शब्दार्थ है कि मन्वन्तर के स्वामी हुए, किन्तु दूसरे मन्वन्तर में **सुरथ** ने आगे आनेवाले-**आठवें मन्वन्तर** के स्वामी होने का वर पाया था। अतः उक्त पद का वास्तविक अर्थ यह है कि '**मन्वन्तर के स्वामी होने के अधिकारी हुए।**' कुछ टीका-कारों का मत है कि '**बभूव**' शब्द का अर्थ '**भविष्यति**' अर्थात् 'होगा' है। यथा—'**भाविनि भूतत्वारोपः**'।

स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्वं, चैत्र - वंश - समुद्भवः।
सुरथो नाम राजाऽभूत्, समस्ते क्षिति-मण्डले॥४

अर्थ—पूर्व-काल में '**स्वारोचिष**' मनु के अधिकार-काल में सारे भू-मण्डल में **चैत्र-वंश** में उत्पन्न '**सुरथ**' नामक राजा हुए।

व्याख्या—'**चैत्र**' नाम था '**स्वारोचिष**' **मनु** के ज्येष्ठ पुत्र का। उन्हीं के वंश में '**सुरथ**' का जन्म हुआ था।

तस्य पालयतः सम्यक्, प्रजाः पुत्रानिवौरसान्।
बभूवुः शत्रवो भूपाः, कोला-विध्वंसिनस्तदा॥५

अर्थ—उस काल में अपने पुत्रों के समान प्रजा-गण का समुचित रूप से पालन करते हुए उन (**सुरथ**) के **कोला-नगर** को नष्ट करनेवाले राजा शत्रु हो गए।

व्याख्या—टीका-कारों ने '**कोला-विध्वंसिनः**' का अर्थ विभिन्न प्रकार से किया है। यथा—१ '**कोल**' शब्द का अर्थ है शूकर (सुअर)। इस प्रकार शूकर-मांस के खानेवाले राजाओं से तात्पर्य हुआ। २ '**कोला**' नाम की **सुरथ** की दूसरी राजधानी थी। उसे नष्ट करनेवाले राजा। ३ एक विशेष प्रकार के शस्त्र का नाम है '**कोला**'। इस शस्त्र द्वारा विध्वंस करनेवाले राजा।

'**ब्रह्म-वैवर्त्त-पुराण**' के प्रकृति-खण्ड में **दुर्गा-उपाख्यान** है। उसमें यह उल्लेख है कि **सुरथ** की '**कोला**' नामक नगरी को घेर लिया गया—'**कोलां च वेष्टयामास सुरथस्य महा-मतेः**' (६२।३)। '**देवी भागवत**' के अनुसार **कोला-विध्वंसी** पर्वत-वासी म्लेच्छ थे—**म्लेच्छाः पर्वत-वासिनः......कोला-विध्वंसिनः प्राप्ताः**' (५, ३२/७-९)।

तस्य तैरभवद् युद्धमति-प्रबल-दण्डिनः।
न्यूनैरपि स तैर्युद्धे, कोला-विध्वंसिभिर्जितः॥६

अर्थ—अत्यन्त बली को भी दण्डित करनेवाले उन (**सुरथ**) का उन (म्लेच्छ राजाओं) के साथ युद्ध हुआ। कम होते हुए भी उन कोला-विध्वंस-कारियों द्वारा युद्ध में वे (**सुरथ**) पराजित हो गए।

व्याख्या—'**अत्यन्त बली**' से यहाँ दो आशय हैं—१ बहुत बली उपद्रवी या २ बहुत शक्ति-शाली शत्रु। **राजा सुरथ** इन दोनों को ही दण्ड देने में समर्थ थे, किन्तु शत्रुओं से वे हार गए।

ततः स्व-पुरमायातो, निज-देशाधिपोऽभवत्।
आक्रान्तः स महा-भागस्तैस्तदा प्रबलारिभिः॥७

अर्थ—तब वे (**सुरथ**) अपनी राजधानी में लौटकर अपने मूल देश के स्वामी हुए। उस समय वे महा-भाग (**सुरथ**) उन प्रबल शत्रुओं द्वारा आक्रान्त हुए।

व्याख्या—भावार्थ यह है कि शत्रुओं से हार जाने पर **राजा सुरथ** अपने सीमित मूल देश में लौट आए, किन्तु वहाँ भी शत्रुओं ने पहुँचकर उन्हें घेर लिया।

अमात्यैर्बलिभिर्दुष्टैर्दुर्बलस्य दुरात्मभिः।
कोषो बलं चापहृतं, तत्रापि स्व-पुरे ततः॥८

अर्थ—उसके बाद वहाँ अपनी राजधानी में भी दुष्ट, दुरात्मा, शक्ति-शाली मन्त्रियों द्वारा दुर्बल (**सुरथ राजा**) का खजाना और सैन्यादि छीन लिया गया।

व्याख्या—भाव यह है कि दुष्ट मन्त्रियों ने भी राजा को हारा हुआ देखकर विश्वास-घात किया।

ततो मृगया-व्याजेन, हृत-स्वाम्यः स भू-पतिः।
एकाकी हयमारुह्य, जगाम गहनं वनम्॥९

अर्थ—तब वे राजा (**सुरथ**) स्वामित्व छिन जाने पर शिकार के बहाने अकेले घोड़े पर चढ़कर घने जङ्गल को चल दिए।

स तत्राश्रममद्राक्षीद्, द्विज-वर्यस्य मेधसः।
प्रशान्त-श्वापदाकीर्णं, मुनि-शिष्योप-शोभितम्॥१०

अर्थ—उन्होंने वहाँ **द्विज-श्रेष्ठ मेधस्** का शान्त पशुओं से व्याप्त, मुनि के शिष्यों से शोभायमान आश्रम देखा।

व्याख्या—'**देवी-भागवत**' में '**सुमेधा**' और '**ब्रह्म-वैवर्त्त-पुराण**' में '**मेधस्**' नाम का उल्लेख हुआ है।

'**प्रशान्त-श्वापद**' से आशय है कि व्याघ्रादि हिंसक पशु हिंसा-भाव को छोड़कर आश्रम में शान्ति से रहते थे।

तस्थौ कञ्चित् स कालं च, मुनिना तेन सत्कृतः।
इतश्चेतश्च विचरंस्तस्मिन् मुनि-वराश्रमे॥११

अर्थ—और वे (**सुरथ**) उन मुनि (**मेधस्**) द्वारा आदर-सत्कार पाकर मुनि-श्रेष्ठ के उस आश्रम में इधर-उधर घूमते हुए कुछ समय ठहर गए।

सोऽचिन्तयत् तदा तत्र, ममत्वाकृष्ट-चेतनः॥१२

अर्थ—उस समय वहाँ ममता से वशीभूत चेतनावाले होकर वे (**सुरथ**) चिन्ता करने लगे।

व्याख्या—'**चेतना**' कहते हैं विवेक-वती बुद्धि को। ममत्व या मोह से अभिभूत होकर बुद्धि में विवेक अर्थात् ज्ञान-शक्ति नहीं रह जाती।

मत्पूर्वैः पालितं पूर्वं, मया हीनं पुरं हि तत्।
मद्-भृत्यैस्तैरसद्-वृत्तैर्धर्मतः पाल्यते न वा॥१३

अर्थ—पूर्व-काल में मेरे पूर्वजों द्वारा रक्षित और मेरे द्वारा छोड़ी गई वह नगरी मेरे उन दुष्ट नौकरों द्वारा धर्मानुसार पाली जा रही है या नहीं।

न जाने स प्रधानो मे, शूर-हस्ती सदा-मदः।
मम वैरि-वशं यातः, कान् भोगानुप-लप्स्यते॥१४

अर्थ—वह श्रेष्ठ, सदा मद बहानेवाला, मेरा बली हाथी मेरे शत्रुओं के वश में जाकर किन भोजनों को पाता होगा, (यह) नहीं जान पा रहा हूँ।

व्याख्या—**नागो जी भट्ट** ने '**स-प्रधानः**' पाठ माना है, जिसका अर्थ है प्रधानों या महा-मात्रों अर्थात् महावतों के साथ हाथी—'**प्रधानैः महा-मात्रैः सहितः।**'

ये ममानुगता नित्यं, प्रसाद-धन-भोजनैः।
अनुवृत्तिं ध्रुवं तेऽद्य, कुर्वन्त्यन्य-मही-भृताम्॥१५

अर्थ—जो पुरस्कार, वेतन और भोज्य पदार्थों द्वारा सदा मेरे पीछे चलनेवाले थे, निश्चय ही आज वे दूसरे राजाओं की सेवा करते होंगे।

असम्यग्-व्यय-शीलैस्तैः, कुर्वद्भिः सततं व्ययम्।
सञ्चितः सोऽति-दुःखेन, क्षयं कोषो गमिष्यति॥१६

अर्थ—अनुचित व्यय करनेवाले, निरन्तर व्यय करते हुए, उन (मन्त्रियों) के द्वारा अत्यन्त कष्ट से एकत्र किया हुआ वह खजाना खाली हो जाएगा।

एतच्चान्यच्च सततं, चिन्तयामास पार्थिवः।
तत्र विप्राश्रमाभ्यासे, वैश्यमेकं ददर्श सः॥१७

अर्थ—राजा इस और दूसरे विषय में निरन्तर सोचने लगे। उन्होंने वहाँ **विप्र** के आश्रम के निकट एक **वैश्य** को देखा।

व्याख्या—कुछ टीका-कार '**विप्र**' शब्द को **जैमिनि** के प्रति सम्बोधन-रूप में ग्रहण करते हैं। **महर्षि मार्कण्डेय** ने उन्हें ही **देवी-माहात्म्य** सुनाया था।

स पृष्टस्तेन कस्त्वं भो! हेतुश्चागमनेऽत्र कः।
स-शोक इव कस्मात् त्वं, दुर्मना इव लक्ष्यसे॥१८

अर्थ—उनके द्वारा वह **वैश्य** पूछा गया—'अरे, तुम कौन हो? और यहाँ आने में कारण क्या है? किस कारण से तुम दुःखी से—चिन्तित से दिखाई देते हो?'

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य, भू-पतेः प्रणयोदितम्।
प्रत्युवाच स तं वैश्यः, प्रश्रयावनतो नृपम्॥१९

अर्थ—उस **वैश्य** ने उन **राजा** के प्रेम से कहे इस वचन को सुनकर विनय से झुककर उन **राजा** को उत्तर दिया।

वैश्य उवाच ॥ २० ॥

समाधिर्नाम वैश्योऽहमुत्पन्नो धनिनां कुले।
पुत्र-दारैर्निरस्तश्च, धन-लोभादसाधुभिः॥२१

अर्थ—**वैश्य** बोला—मैं **समाधि** नामक **वैश्य** हूँ, धनी लोगों के वंश में जन्म हुआ है और धन के लोभ से दुष्ट स्त्रियों-पुत्रों द्वारा निकाला हुआ हूँ।

विहीनश्च धनैर्दारैः, पुत्रैरादाय मे धनम्।
वनमभ्यागतो दुःखी, निरस्तश्चाप्त-बन्धुभिः॥२२

अर्थ—स्त्रियों और पुत्रों द्वारा मेरा धन लिया जाकर सम्पत्तियों से विहीन होकर और सुहृद् बन्धुओं से त्यागा हुआ दु:खी होकर (मैं) वन में आया हूँ।

सोऽहं न वेद्मि पुत्राणां, कुशलाकुशलात्मिकाम्।

प्रवृत्तिं स्व-जनानां च, दाराणां चात्र संस्थित:॥२३

अर्थ—वही मैं यहाँ रहता हुआ पुत्रों, आत्मीयों और स्त्रियों के शुभ या अशुभ समाचार को नहीं जान पाता हूँ।

किं तु तेषां गृहे क्षेममक्षेमं किं नु साम्प्रतम्॥२४

कथं ते किं नु सद्-वृत्ता: दुर्वृत्ता: किं नु मे सुता:॥२५

अर्थ—इस समय उनके घर में कुशल है अथवा अकुशल? मेरे पुत्र कैसे हैं? सच्चरित्र हैं अथवा दुश्चरित्र?

राजोवाच ॥२६॥

यैर्निरस्तो भवाँल्लुब्धै:, पुत्र-दारादिभिर्धनै:॥२७

तेषु किं भवत: स्नेहमनुबध्नाति मानसम्॥२८

अर्थ—**राजा** बोले—आप धनों द्वारा ललचाए हुए जिन पुत्र, स्त्री आदि द्वारा निकाल दिए गए हैं, उनके प्रति आपका मन क्यों स्नेह से बँधा है?

वैश्य उवाच ॥२९॥

एवमेतद् यथा प्राह, भवानस्मद्-गतं वच:।

किं करोमि न बध्नाति, मम निष्ठुरतां मन:॥३०

अर्थ—**वैश्य** बोले—आपने मेरे सम्बन्ध में जैसी बात कही, वह ऐसी ही है (किन्तु) क्या करूँ, मेरा मन निष्ठुरता को नहीं पकड़ता।

यै: सन्त्यज्य पितृ-स्नेहं, धन-लुब्धैर्निराकृत:।

पति-स्वजन-हार्दं च, हार्दि तेष्वेव मे मन:॥३१

अर्थ—धन से ललचाए जिन (लोगों) के द्वारा पिता का स्नेह, पति और बन्धु-सम्बन्धी प्रेम छोड़ा जाकर (मैं) निकाला गया, उन्हीं में मेरा मन स्नेहासक्त है।

किमेतन्नाभि - जानामि, जानन्नपि महा-मते!

यत् प्रेम-प्रवणं चित्तं, विगुणेष्वपि बन्धुषु॥३२

अर्थ—हे महा-मते (अति बुद्धिमान्)! प्रतिकूल बन्धुओं में भी चित्त जो स्नेहासक्त है, इसे जानता हुआ भी क्यों समझ नहीं पाता।

तेषां कृते मे नि:श्वासो, दौर्मनस्यं च जायते॥३३

करोमि किं यन्न मनस्तेष्वप्रीतिषु निष्ठुरम्॥३४

अर्थ—उनके लिए मेरी लम्बी साँसें हैं और मन में अस्थिरता होती है। प्रीति-रहित उनके प्रति मन जो निष्ठुर नहीं (होता), इसके लिए क्या करूँ!

मार्कण्डेय उवाच॥३५॥

ततस्तौ सहितौ विप्र! तं मुनिं समुपस्थितौ॥३६

समाधिर्नाम वैश्योऽसौ, स च पार्थिव-सत्तमः।

कृत्वा तु तौ यथा-न्यायं, यथार्हं तेन संविदम्॥३७

उपविष्टौ कथाः काश्चिच्चक्रतुर्वैश्य-पार्थिवौ॥३८

अर्थ—**मार्कण्डेय** बोले—हे विप्र! तब वह **समाधि** नामक वैश्य और वह श्रेष्ट **राजा (सुरथ)**—दोनों साथ-साथ उन **मुनि (मेधस्)** के पास गए। **वैश्य** और **राजा**—दोनों यथा-विधि यथा-योग्य उनसे सम्भाषण कर बैठते हुए कुछ जिज्ञासा करने लगे।

राजोवाच॥३९॥

भगवंस्त्वामहं प्रष्टुमिच्छाम्येकं वदस्व तत्।

दुःखाय यन्मे मनसः, स्व-चित्तायत्ततां विना॥४०

अर्थ—**राजा** बोले—हे भगवन्! मैं आपसे एक (बात) पूछना चाहता हूँ, उसे बतलाइए। मेरा '**चित्त**' अपने वश में नही है, यह बात मेरे '**मन**' को बहुत दुःख देती है।

व्याख्या—'**मन**' में **सङ्कल्प** और **विकल्प** होते हैं। '**चित्त**' निर्णय कर निश्चय करता है। **सङ्कल्प-विकल्प से अस्थिर मन** को **निर्णय करनेवाले चित्त** या **बुद्धि** द्वारा जो नियन्त्रित नहीं कर पाता, वह दुःख का अनुभव करता है। यहाँ बुद्धि द्वारा यह समझने पर भी कि जिस विषय में शोक करना उचित नहीं है, उसी विषय में **राजा** का चञ्चल मन व्याकुल है। इसी कारण **राजा** पूछ रहे हैं।

ममत्वं गत-राज्यस्य, राज्याङ्गेष्वखिलेष्वपि।

जानतोऽपि यथाऽज्ञस्य, किमेतन्मुनि-सत्तम?॥४१

अर्थ—**हे मुनि-श्रेष्ठ!** जानते हुए भी, मूर्ख के समान राज्य के प्रति, राज्य के समस्त उपकरणों के प्रति भी मेरी ममता है, ऐसा क्यों है?

व्याख्या—'**राज्याङ्ग**' अर्थात् राज्य के अङ्ग सात कहे गए हैं—**१ स्वामी (राजा), २ अमात्य, ३ सुहृद्, ४ कोष, ५ राष्ट्र, ६ दुर्ग, ७ बल (सैन्य)**।

अयं च निकृतः पुत्रैर्दारैर्भृत्यैस्तथोज्झितः।

स्व-जनेन च सन्त्यक्तस्तेषु हार्दी तथाप्यति॥४२

अर्थ—और यह **वैश्य** भी पुत्रों द्वारा निकाला हुआ तथा स्त्रियों, सेवकों द्वारा त्यागा हुआ और आत्मीय लोगों द्वारा छोड़ा हुआ है, फिर भी उन्हीं में अत्यन्त स्नेहासक्त है।

एवमेष तथाऽहं च, द्वावप्यत्यन्त-दुःखितौ।
दृष्ट-दोषेऽपि विषये, ममत्वाकृष्ट-मानसौ॥४३

अर्थ—इस प्रकार यह (**वैश्य**) और मैं (**सुरथ**) दोनों ही बहुत दुःखी हैं। भोग्य वस्तु में दोष देखते हुए भी हम दोनों के मन ममता से खिंचे हुए हैं।

तत् केनैतन्महा-भाग-यन्मोहो ज्ञानिनोरपि॥४४
ममास्य च भवत्येषाऽविवेकान्धस्य मूढता॥४५

अर्थ—हे महा-भाग! मेरा और इस (**वैश्य**) का, ज्ञानी होते हुए भी जो मोह है, वह किस कारण से है? अविवेक से अन्धे (व्यक्ति) की ही ऐसी मूर्खता होती है।

व्याख्या—कौन-सी वस्तु '**नित्य**' है और कौन-सी '**अनित्य**', इसे जिस शक्ति द्वारा जाना जाता है, उसे '**विवेक**' कहते हैं। विवेक से रहित व्यक्ति किसी भी वस्तु के वास्तविक स्वरूप को नहीं जान पाता, जिससे उसे 'अन्धे' के समान माना जाता है।

'**ज्ञानिनोः अपि**'—ज्ञानी होते हुए भी—इस उक्ति द्वारा **सुरथ** ने जिस '**ज्ञान**' की चर्चा की, उसी को लेकर **मेधस् मुनि** ने अपना उपदेश प्रारम्भ किया। उक्त '**ज्ञान**' वास्तव में है विषयों का **इन्द्रियों द्वारा प्राप्त होनेवाला ज्ञान** अर्थात् **सामान्य ज्ञान**। इस ज्ञान से '**मोह**' दूर नहीं होता। किस प्रकार के '**ज्ञान**' से '**मोह**' दूर होता है और वह '**ज्ञान**' कैसे प्राप्त होता है, यही **मेधस् मुनि** बताते हैं।

पाठ-भेद—'**विवेकान्धस्य-विवेके अन्धस्य, विवेक-रहितस्य**' (विवेचन करने की शक्ति से रहित)

ऋषिरुवाच ॥४६॥

ज्ञानमस्ति समस्तस्य, जन्तोर्विषय-गोचरे।
विषयश्च महा-भाग! याति चैवं पृथक् पृथक्॥४७

अर्थ—**ऋषि** बोले—सभी प्राणियों का इन्द्रिय-ग्राह्य विषय में ज्ञान होता है। हे महा-भाग! इसी प्रकार विषय भी भिन्न-भिन्न (रूप से इन्द्रिय-ग्राह्य) होता है।

व्याख्या—पाँच इन्द्रियाँ हैं—**१ चक्षु, २ कर्ण, ३ नासिका, ४ जिह्वा, ५ त्वक्**। इन्हीं के पाँच विषय क्रमशः हैं—**१ रूप, २ शब्द, ३ गन्ध, ४ रस, ५ स्पर्श**। इन्द्रिय के साथ विषय का सम्पर्क होने पर '**ज्ञान**' उत्पन्न होता है। इस ज्ञान को इन्द्रिय-ग्राह्य या इन्द्रिय-जन्य '**विषय-ज्ञान**' कहते हैं। यह ज्ञान सभी प्राणियों में स्वाभाविक रूप से होता है।

दिवान्धाः प्राणिनः केचिद्, रात्रावन्धास्तथाऽपरे।
केचिद् दिवा तथा रात्रौ, प्राणिनस्तुल्य-दृष्टयः॥४८

अर्थ—कोई प्राणी दिन के समय अन्धे होते हैं और दूसरे रात के समय अन्धे रहते हैं, कोई दिन और रात में, कोई समान दृष्टिवाले होते हैं।

व्याख्या—**इन्द्रिय-जन्य विषय-ज्ञान** आँख और कान आदि इन्द्रियों से होता है। अत: जिस प्राणी की उस इन्द्रिय की जितनी शक्ति होती है, उतना ही ज्ञान उसे होता है। विभिन्न प्राणियों की चक्षु (आँख) इन्द्रिय की शक्ति भिन्न-भिन्न मात्रा की पाई जाती है। उदाहरण के लिए उलूकादि प्राणी दिन में, कौए आदि प्राणी रात में नहीं देख पाते। बिल्ली जैसे प्राणी दिन-रात दोनों में समान रूप से देखते हैं।

ज्ञानिनो मनुजाः सत्यं, किन्तु ते नहि केवलम्।
यतो हि ज्ञानिनः सर्वे, पशु-पक्षि-मृगादयः।।४९

अर्थ—मनुष्य लोग ज्ञानी हैं, (यह) सत्य है, किन्तु केवल वे ही नहीं क्योंकि पशु, पक्षी, मृग आदि सभी ज्ञानी होते हैं।

व्याख्या—यहाँ '**ज्ञान**' से आशय है आँख-कान आदि इन्द्रियों से होनेवाले रूप, शब्द आदि के साधारण ज्ञान से।

'**पशु**' का अर्थ पालतू (ग्राम्य) जानवर और '**मृग**' कहते हैं जङ्गली (वन्य) जानवरों को।

ज्ञानं च तन्मनुष्याणां, यत् तेषां मृग-पक्षिणाम्।
मनुष्याणां च यत् तेषां, तुल्यमन्यत् तथोभयोः।।५०

अर्थ—उन पशु-पक्षियों का जो विषय-ज्ञान है, (वह) मनुष्यों का भी है और मनुष्यों का जो (विषय-ज्ञान है), उनका (भी वही है)। उसी प्रकार अन्य (आहार-निद्रादि विषय भी) दोनों (मनुष्य और दूसरे प्राणियों) के समान हैं।

व्याख्या—कुछ टीका-कारों के अनुसार '**तुल्यमन्यत् तथोभयोः**' का अर्थ यह है कि **प्रकृत ज्ञान** या **तत्त्व-ज्ञान** के सम्बन्ध में मनुष्य और पशु-पक्षी दोनों एक जैसे हैं अर्थात् **तत्त्व-ज्ञान** न तो साधारण मनुष्यों को होता है और न पशु-पक्षियों को। उन्हें केवल विषयों का **सामान्य ज्ञान** होता है, जिससे **मोह की निवृत्ति** नहीं होती। जिस ज्ञान से मोह दूर हो, वही **यथार्थ ज्ञान** या **तत्त्व-ज्ञान** है। '**हितोपदेश**' में स्पष्ट कहा है कि—

आहार-निद्रा-भय-मैथुनं च, सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो, धर्मेण हीनाः पशुभिः समाना।।

अर्थात् भोजन, नींद, डर और मैथुन—ये पशुओं और मनुष्यों दोनों में एक ही जैसे हैं, किन्तु मनुष्यों में '**धर्म**' की विशेष बुद्धि होती है, जो पशुओं में नहीं होती। '**धर्म**' से रहित मनुष्य पशुओं के समान हैं।

ज्ञानेऽपि सति पश्यैतान्, पतङ्गाञ्छाव-चञ्चुषु।
कण-मोक्षाद् ऋतान्मोहात्, पीड्यमानानपि क्षुधा।।५१

अर्थ—ज्ञान होते हुए भी (कि बच्चे के भोजन करने से हमारी तृप्ति नहीं होगी) भूख से पीड़ित होकर भी मोह-वश बच्चों की चोंचों में (अन्न के) टुकड़ों के डालने में अनुरक्त इन पक्षियों को देखो।

मानुषा मनुज-व्याघ्र! साभिलाषाः सुतान् प्रति।
लोभात् प्रत्युपकाराय, नन्वेते किं न पश्यसि?॥५२

अर्थ—हे नर-श्रेष्ठ! ये मनुष्य लोग बदले में उपकार के लिए लोभ-वश पुत्रों के प्रति स्नेह-युक्त होते हैं, (यह) क्या नहीं देखते हो?

व्याख्या—भविष्य में, बूढ़े होने पर, पुत्रादि भोजनादि देकर उपकार का बदला देंगे, इस आशा से लोग उनका पालन करते हैं, यही '**प्रत्युपकाराय**' का अर्थ है। पशु-पक्षी आदि प्रत्युपकार की आशा से नहीं, अपितु केवल ममता-वश अपने बच्चों के प्रति आसक्त होते हैं। प्रत्युपकार के लोभी मनुष्य जो सन्तान पर स्नेह करते हैं, इसमें क्या आश्चर्य! सभी मोह-ग्रस्त हैं। इस **मोह का कारण** ऋषि बताते हैं।

तथापि ममतावर्ते, मोह-गर्ते निपातिताः।
महा-माया-प्रभावेण, संसार-स्थिति-कारिणः॥५३

अर्थ—फिर भी संसार की स्थिति करनेवाले (**विष्णु**) की **महा-माया की शक्ति** द्वारा (मनुष्य) **ममता के भँवर में-मोह के गढ़े** में गिराए जाते हैं।

व्याख्या—कुछ टीकाकार इस श्लोक का यह अर्थ करते हैं कि **महा-माया की शक्ति** से **ममता की भँवर में-मोह के गढ़े** में गिराए गए (मनुष्य) संसार की स्थिति करनेवाले होते हैं।

मनुष्य लोग यह जानते हैं कि '**मोह**' में पड़ने से ही सब प्रकार के दुःख होते हैं, फिर भी वे '**मोह**' में पड़ते हैं, इसका कारण है '**महा-माया**' का अनिवार्य प्रभाव।

तन्नात्र विस्मयः कार्यो, योग-निद्रा जगत्-पतेः।
महा-माया हरेश्चैतत्, तया सम्मोह्यते जगत्॥५४

अर्थ—**महा-माया** जगत् के स्वामी **विष्णु की योग-निद्रा** हैं। उनके द्वारा यह जगत् मोहित किया जाता है, अतः इस विषय में आश्चर्य नहीं करना चाहिए।

व्याख्या—'**तत्त्व-प्रकाशिका**' टीका में '**योग-निद्रा**' का अर्थ दिया है—'**योग-रूपा निद्रा, परमानन्द-मयी शक्तिः।**' नागोजी ने अर्थ किया है—'**तमः-प्रधाना शक्ति।**'

ज्ञानिनामपि चेतांसि, देवी भगवती हि सा।
बलादाकृष्य मोहाय, महा-माया प्रयच्छति॥५५

अर्थ—वह देवी भगवती **महा-माया** ज्ञानियों के भी चित्त-समूह को बल-पूर्वक आकर्षित कर मोह में डाल देती है।

व्याख्या—सब इन्द्रियों को '**द्योतन**' प्रबुद्ध करने से '**देवी**'; अचिन्तनीय ऐश्वर्य से युक्त होने से '**भगवती**' कहते हैं। विवेक-बुद्धि से युक्त लोगों को '**ज्ञानी**' कहा जाता है।

उक्त प्रसङ्ग में '**देवी-भागवत**' (५।३३।१४-१५) में **सुरथ** से **सुमेधा मुनि** कहते हैं कि—'मनुष्यों में तुम रजो-गुण से कलुषित एक साधारण क्षत्रिय-सन्तान मात्र नहीं हो, किन्तु तुम्हारी

बात क्या, वह **महा-माया** ज्ञानियों के चित्त को भी निरन्तर मोहित करती है। यही देखो कि **ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर** आदि **परम ज्ञानी** होते हुए भी **महा-माया की लीला** से विषयानुराग के वशीभूत होकर संसार में कितनी बार भ्रमण करते हैं, इसकी कोई सीमा नहीं है।'

तया विसृज्यते विश्वं, जगदेतच्चराचरम्।
सैषा प्रसन्ना वरदा, नृणां भवति मुक्तये॥५६

अर्थ—उन **महा-माया** के द्वारा यह सचेत और अचेतन जगत् सिरजा (रचा) जाता है। ऐसी (उक्त लक्षणोंवाली **महा-माया**) वे प्रसन्न होकर मनुष्यों को मुक्ति के लिए वर-दायिनी होती हैं।

व्याख्या—'**देवी-भागवत**', १०।१०।२५ में भी कहा है कि—

तस्या देव्याः प्रसादश्च, यस्योपरि भवेन्नृप!
स एव मोहमत्येति, नान्यथा धरणी-पते!॥

अर्थात् हे राजन्! जिसके ऊपर उन **देवी का अनुग्रह** होता है, वही व्यक्ति मोह को जीत पाता है, अन्यथा कोई मोह से नहीं छूट पाता।

सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतु - भूता सनातनी॥५७
संसार-बन्ध-हेतुश्च, सैव सर्वेश्वरेश्वरी॥५८

अर्थ—वे सनातनी (**महा-माया**) मुक्ति की कारण-स्वरूपा **परमा विद्या** (ब्रह्म-विद्या-स्वरूपिणी) हैं और वे ही संसार के बन्धन की कारण-स्वरूपा (**अविद्या**) हैं। (वे ही) **सभी ईश्वरों (ब्रह्मादि) की स्वामिनी** हैं।

व्याख्या—'**देवी-भागवत**', ५।३३।६३ में **सुमेधा ऋषि सुरथ** से कहते हैं कि—

तया निमित्त-भूतास्ते, ब्रह्म-विष्णु-महेश्वराः।
कल्पिताः स्व-स्व-कार्येषु, प्रेरिताः लीलया त्वमी॥

अर्थात् **महा-माया** ही **ब्रह्मा, विष्णु** और **महेश्वर** को क्रमशः उनके सृष्टि, स्थिति और संहार-कार्यों में नियुक्त करती हैं। वास्तव में वे स्वयं ही ये सब कार्य करती हैं, केवल लीला के लिए इन्हें इन कार्यों में प्रेरित करती हैं। अगले ६४वें श्लोक में कहा है कि—

ते तां ध्यायन्ति देवेशाः, पूजयन्ति परां मुदा।
ज्ञात्वा सर्वेश्वरीं शक्तिं, सृष्टि-स्थिति-विनाशिनीम्॥

अर्थात् वे देवेश शक्ति-स्वरूपिणी **महा-माया** को सृष्टि-स्थिति-लय-कारिणी और सर्व-प्रधाना रूप में जानकर उन्हीं का ध्यान करते हैं और परमानन्द के साथ उनका पूजन करते हैं।

राजोवाच॥५९॥

भगवन्! का हि सा देवी, महा-मायेति यां भवान्।
ब्रवीति कथमुत्पन्ना, सा कर्मास्याश्च किं द्विज?॥६०

अर्थ—**राजा** बोले—हे भगवन्! जिनको आप '**महा-माया**' इस (नाम से) प्रकार कहते हैं, वे देवी कौन हैं? वे कैसे उत्पन्न हुईं? और हे द्विज! इन (**महा-माया**) का क्या काम है?

यत्-स्वभावा च सा देवी, यत्-स्वरूपा यदुद्भवा।।६१

तत् सर्वं श्रोतुमिच्छामि, त्वत्तो ब्रह्म-विदां वर!।।६२

अर्थ—हे ब्रह्मज्ञ-श्रेष्ठ! वे देवी **(महा-माया)** जिस स्वभाववाली, जिस स्वरूपवाली, जिस प्रकार उत्पन्न होनेवाली हैं, आपसे वह सब सुनना चाहता हूँ।

व्याख्या—**नागोजी** के अनुसार '**ब्रह्म-विदां वर**' इस सम्बोधन से यह स्पष्ट होता है कि **मेधस् ऋषि** ने जो कुछ कहा है, वह वेद-सम्मत है।

ऋषिरुवाच।।६३

नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम्।।६४

तथापि तत् - समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयतां मम।।६५

अर्थ—ऋषि बोले—वे **(महा-माया)** सदा ही वर्तमाना हैं, वे जगत्-स्वरूपा हैं, उनके द्वारा यह सारा (जगत्) व्याप्त है। फिर भी (सदा वर्तमान होते हुए भी) बहुत प्रकार से उनका आविर्भाव (होता) है, (उसे) मुझसे सुनो!

व्याख्या—**महा-माया** का स्वभाव किस प्रकार का है, इस प्रश्न के उत्तर में बताया है कि वे '**नित्या**'—सदा रहनेवाली हैं। उनका स्वरूप कैसा है, इसके उत्तर में कहा है कि वे '**जगन्मूर्ति**' हैं अर्थात् इस जगत् की सारी वस्तुएँ उन्हीं का स्वरूप हैं। उनकी उत्पत्ति कैसे होती है, उसके उत्तर में ऋषि **महा-माया** के अनेक आविर्भावों का वर्णन करते हैं।

देवानां कार्य - सिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा।

उत्पन्नेति तदा लोके, सा नित्याऽप्यभिधीयते।।६६

अर्थ—वे **(महा-माया)** जब देवताओं के कार्य की सिद्धि के लिए संसार में आविर्भूत होती हैं, तब वे '**नित्या**' होती हुई भी 'उत्पन्न हुई'—इस प्रकार कही जाती हैं।

व्याख्या—इस प्रसङ्ग में '**देवी-भागवत**', ५।३३।५५-५९ का विवरण और भी विस्तृत है। यथा—

न चोत्पत्तिरनादित्वान्नृप! तस्याः कदाचन।
नित्यैव सा परा देवी, कारणानां च कारणम्।।
वर्त्तते सर्व-भूतेषु, शक्तिः सर्वात्मना नृप!
शव-वच्छक्ति-हीनस्तु, प्राणी भवति सर्वथा।।
चिच्छक्तिः सर्व-भूतेषु, रूपं तस्यास्तदेव हि।
आविर्भाव-तिरोभावौ, देवानां कार्य-सिद्धये।।
यदा स्तुवन्ति तां देवाः, मनुजाश्च विशाम्पते।
प्रादुर्भवति भूतानां, दुःख - नाशाय चाम्बिका।।

नाना-रूप-धरा देवी, नाना-शक्ति-समन्विता।
आविर्भवति कार्यार्थं, स्वेच्छया परमेश्वरी॥

अर्थात् हे राजन्! **महा-माया** के अनादि होने से उनकी किसी भी काल में उत्पत्ति नहीं होती। वे **परमा देवी** कारणों की भी कारण हैं, अत: '**नित्या**' हैं। वे सब प्राणियों में शक्ति-रूप से विद्यमान हैं। उस शक्ति से रहित होकर प्राणी शव के समान हो जाता है। सब प्राणियों में जो **चित्-शक्ति** है, वह उन्हीं का रूप है। ऐसी दशा में देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिए उनका आविर्भाव और तिरोभाव होता रहता है। जब भी देवता या मनुष्य लोग उनकी स्तुति करते हैं, तभी वे **अम्बिका** उनके दु:ख को दूर करने के लिए प्रकट होती हैं। इस प्रकार वे **परमेश्वरी** अपनी इच्छा से नाना रूप धारण करती हैं और नाना शक्तियों से युक्त होती हैं और भक्तों के कार्य को सिद्ध करती हैं।

योग - निद्रां यदा विष्णुर्जगत्येकार्णवी - कृते।
आस्तीर्य शेषमभजत्, कल्पान्ते भगवान् प्रभु:॥६७

तदा द्वावसुरौ घोरौ, विख्यातौ मधु - कैटभौ।
विष्णु-कर्ण - मलोद्भूतौ, हन्तुं ब्रह्माणमुद्यतौ॥६८

अर्थ—कल्प के अन्त में जगत् के एक कारण-समुद्र में परिणत होने पर **भगवान् प्रभु विष्णु** जब **शेषनाग** को शय्या-रूप में विस्तृत कर **योग-निद्रा** का भजन करने लगे, तब **विष्णु** के कान के मैल से उत्पन्न **मधु** और **कैटभ** नाम से प्रसिद्ध दो असुर **ब्रह्मा** को मारने के लिए उद्यत हुए।

व्याख्या—**१ सत्य, २ त्रेता, ३ द्वापर, ४ कलि**—इन चार युगों का एक '**महा-युग**' होता है। **७१ महा-युगों** का एक '**मन्वन्तर**' होता है। **एक सहस्त्र महा-युगों** का **ब्रह्मा का एक दिन**, एक '**कल्प**' या **सृष्टि-काल** होता है। उसके बाद **एक सहस्त्र महा-युगों** की **ब्रह्मा की एक रात्रि** या **प्रलय-काल** होता है। प्रलय में **ब्रह्मा** और उनके साथ उनकी सृष्टि का **माया में लय** हो जाता है तथा प्रलय के अन्त में पुन: **माया के द्वारा सृष्टि का उदय** होता है।

स नाभि-कमले विष्णो:, स्थितो ब्रह्मा प्रजापति:।
दृष्ट्वा तावसुरौ चोग्रौ, प्रसुप्तं च जनार्दनम्॥६९

तुष्टाव योग-निद्रां तामेकाग्र - हृदय - स्थित:।
विबोधनार्थाय हरेर्हरि - नेत्र - कृतालयाम्॥७०

अर्थ—**विष्णु** के नाभि-कमल पर बैठे हुए वे **प्रजापति ब्रह्मा** उन दोनों भीषण असुरों को और **जनार्दन (विष्णु)** को सोया हुआ देखकर, **विष्णु** के जगाने के लिए, एकाग्र-चित्त से अवस्थित होकर **विष्णु** की आँखों को आवास बनानेवाली **योग-निद्रा** की स्तुति करने लगे।

व्याख्या—**श्री चण्डी** के **प्रथम चरित** की देवता '**महा-काली**' हैं। **महा-काली** को ही यहाँ '**योग-निद्रा**' नाम से कहा गया है। यह स्वरूप **महा-माया** का तामसी प्रकाश है। '**मार्कण्डेय-पुराण**' के खिलांश में जो '**वैकृतिक रहस्य**' है, उसमें कहा है कि—

योग - निद्रा हरेरुक्ता, महा - काली तमोगुणा।
मधु - कैटभ - नाशार्थं, यां तुष्टावाम्बुजासनः॥

अर्थात् पद्मासीन **ब्रह्मा** ने **मधु-कैटभ** के नाश के लिए जिन देवी की स्तुति की थी, वे ही **विष्णु** की योग-निद्रा-स्वरूपिणी तमो-गुण-प्रधाना **'महा-काली'** नाम से कही गई हैं।

'श्री चण्डी' के **प्रथम, मध्यम** और **उत्तम (उत्तर) चरित**—इन तीन माहात्म्यों में **देवी के तीन विभिन्न स्वरूपों का वर्णन** हुआ है। ये एक ही **महा-माया** के विभिन्न प्रकाश मात्र हैं। **महा-माया** का तामसिक प्रकाश **'महा-काली'**, राजसिक प्रकाश **'महा-लक्ष्मी'** और सात्त्विक प्रकाश **'महा-सरस्वती'** नाम से प्रसिद्ध है। इस सम्बन्ध में **'देवी-भागवत'** (१।१।१९-२०) में कहा है कि—

निर्गुणा या सदा नित्या, व्यापिकाऽविकृता शिवा।
योग-गम्याऽखिलाधारा, तुरीया या च संस्थिता॥
तस्यास्तु सात्विकी शक्ती, राजसी तामसी तथा।
महा-लक्ष्मीः सरस्वती, महा-कालीति ताः स्त्रियः॥

अर्थात् जो **निर्गुणा नित्या शिवा निरन्तर सर्व-व्यापिनी** और **विकार-रहिता** हैं; योग से ही जो जानी जा सकती हैं; जो **सारी सृष्टि की आधार-स्वरूपा** हैं और जो **तुरीय चैतन्य-रूप में अवस्थिता** हैं, उन्हीं के (सगुणावस्था में) तीन स्वरूप हैं—सात्त्विकी शक्ति **'महा-सरस्वती'**, राजसी शक्ति **'महा-लक्ष्मी'** और तामसी शक्ति **'महा-काली'**। ये सभी स्त्री-रूपा हैं।

ब्रह्मोवाच ॥७१॥

विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं, स्थिति-संहार-कारिणीं।
स्तौमि निद्रां भगवतीं, विष्णोरतुल-तेजसः॥७२

अर्थ—**ब्रह्मा** बोले—सबकी स्वामिनी, जगत् को धारण करनेवाली, पालन और संहार करनेवाली, अतुलनीय तेजस्वी **विष्णु** की **निद्रा-स्वरूपिणी भगवती** की (मैं) स्तुति करता हूँ।

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि, वषट्कार-स्वरात्मिका॥७३
सुधा त्वमक्षरे नित्ये! त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता॥७४

अर्थ—हे **नित्ये** (सनातनि)! हे **अक्षरे** (परिणाम-रहिते) तुम **स्वाहा** हो, तुम **स्वधा** हो, तुम्हीं **वषट्-कार** और **स्वर-रूपिणी** हो। तुम **अमृत-स्वरूपा** हो और **त्रिविध-मात्रा-रूप से अवस्थिता** हो।

व्याख्या—**'श्री चण्डी'** के चौथे अध्याय में उल्लिखित है कि **'स्वाहा'**-शब्द के उच्चारण से सभी देवताओं की और **'स्वधा'** शब्द के उच्चारण से पितृ-लोक के पितरों की तृप्ति होती है। इस प्रकार **देव-यज्ञ** और **पितृ-यज्ञ** करनेवाले क्रमशः **'स्वाहा'** और **'स्वधा'** पदों से भगवती का ही स्मरण करते हैं।

मन्त्रों का पाठ करने में **१ उदात्त, २ अनुदात्त** और **३ स्वरित**—इन तीन स्वरों का प्रयोग किया जाता है। इन स्वरों के विधि-वत् प्रयोग से मन्त्र फल देते हैं। ये '**स्वर**' भगवती के ही स्वरूप हैं।

१ ह्रस्व, २ दीर्घ और **३ प्लुत**—ये तीन मात्राएँ हैं। इनके सम्बन्ध में उक्ति है—

एक-मात्रो भवेद् ह्रस्वो, द्वि-मात्रो दीर्घ उच्यते।
त्रि-मात्रस्तु भवेत् प्लुतो, व्यञ्जनं चार्ध-मात्रकम्॥

अर्थात् '**ह्रस्व-स्वर**' के उच्चारण में एक मात्रा, '**दीर्घ-स्वर**' में दो मात्रा, '**प्लुत**' में तीन मात्रा और '**व्यञ्जन**' के उच्चारण में आधी मात्रा लगती है। उक्त मात्राएँ भगवती के ही रूप हैं अथवा–

प्रणव (ॐ) की तीन मात्राएँ हैं—**१ अ, २ उ, ३ म्।** '**माण्डूक्य उपनिषद्**' में कहा है—

'ॐकारोऽधि-मात्रं पादा मात्रा, मात्राश्च पादा अकार उकार मकार इति।'

अर्थात् '**ॐकार**' के पाद **अकार, उकार** और **मकार** ही उसकी तीन मात्राएँ हैं। भगवती ही इन मात्राओं के रूप में स्थित हैं। अथवा—

उपनिषद् द्वारा प्रतिपाद्य **जाग्रत्, स्वप्न** और **सुषुप्ति**– इन तीन अवस्थाओं के अभिमानी तीन देवता—**१ विश्व, २ तैजस** और **३ प्राज्ञ**—इन तीन रूपों में भगवती ही हैं।

अर्ध-मात्रा-स्थिता नित्या, यानुच्चार्या विशेषतः।
त्वमेव सन्ध्या गायत्री, त्वं देवि! जननी परा॥७५

अर्थ—जो **विशेष रूप से उच्चारण के अयोग्य** (वाणी के अतीत) है, (वही) **नित्या** (ध्रुवा) **अर्द्ध-मात्रा** (तुरीया या निर्गुणा) रूप में अवस्थिता तुम्हीं हो; तुम **सन्ध्या गायत्री** हो; हे देवि! **परमा जननी** हो।

व्याख्या : व्यञ्जन-वर्ण-रूपा '**अर्ध-मात्रा**' तुम्हीं हो, जो स्वर के संयोग से रहित होने से अनुच्चारणीय है।

इसके पूर्व श्लोक (७४) में भगवती **तीन मात्रा-स्वरूपवाली** बताई गई हैं, किन्तु केवल ऐसी ही नहीं, वे तीन मात्राओं के अतीत—नाम-रूप के परे, शान्त-शिव-अद्वैत **अर्द्ध-मात्रा-रूप तुरीय पद** या **निर्गुण ब्रह्म-स्वरूपा** भी हैं। इसी तथ्य को '**माण्डूक्योपनिषद्**' में कहा है कि—

अमात्रश्च तूर्योऽव्यवहार्यः, प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैतः।

त्वयैतद् धार्यते विश्वं, त्वयैतत् सृज्यते जगत्।
त्वयैतत् पाल्यते देवि! त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा॥७६

अर्थ—हे देवि! तुम्हारे ही द्वारा सारा जगत् धारण किया जाता है; तुम्हारे द्वारा यह जगत् रचा जाता है; तुम्हारे द्वारा यह पाला जाता है और सदा अन्त (प्रलय-काल) में तुम (इसे) ग्रास करती हो।

व्याख्या—'**वृहदारण्यक उपनिषद्**', ५।८।९ में कहा है कि—

'एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि! सूर्या-चन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः, एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि! द्यावा पृथिव्यौ विधृते तिष्ठतः।'

अर्थात् हे **गार्गि**! इस अविनाशी **ब्रह्म** के शासन में **सूर्य-चन्द्र** विद्यमान रहते हैं। हे **गार्गि**! इसी अविनाशी **ब्रह्म** के शासन में **द्यु-लोक** और **भू-लोक** स्थिर रहते हैं।

विसृष्टौ सृष्टि-रूपा त्वं, स्थिति-रूपा च पालने।
तथा संहति - रूपान्ते, जगतोऽस्य जगन्मये॥७७

अर्थ—हे जगत्-स्वरूपे! इस जगत् के सृष्टि-काल में तुम **सृष्टि-रूपा**, पालन-काल में **स्थिति-रूपा** और प्रलय-काल में **संहार-रूपा** हो।

व्याख्या—**'ब्रह्म-सूत्र'**, १।१।२ है—**'जन्माद्यस्य यतः'**, जिसका भावार्थ है कि दिखाई देनेवाले इस जगत् के जन्म आदि अर्थात् उत्पत्ति, स्थिति और लय जिसके द्वारा होते हैं, वही **ब्रह्म** है। **देवी** स्वयं **ब्रह्म-रूपा** है।

महा-विद्या महा-माया, महा-मेधा महा-स्मृतिः।
महा-मोहा च भवती, महा-देवी महाऽसुरी॥७८

अर्थ—तुम **महा-विद्या, महा-माया, महा-मेधा, महा-स्मृति, महा-मोहा, महा-देवी** और **महा-असुरी** हो।

व्याख्या—**'तत्त्वमसि'** आदि महा-वाक्य-रूपिणी होने से देवी **'महा-विद्या'**, सबको मोहित करनेवाली अविद्या-रूपिणी होने से **'महा-माया'**, सर्वज्ञता-शक्ति-रूपिणी होने से **'महा-मेधा'**, वेद-विद्या-रूपिणी होने से **'महा-स्मृति'**, संसार के मूल कारण आसक्ति-रूपिणी होने से **'महा-मोहा'**, समस्त देव-शक्ति-रूपिणी होने से **'महा-देवी'** और समस्त आसुरी शक्ति-रूपा होने से **'महाऽसुरी'** कही गई हैं।

नागो जी ने व्याख्या की है कि प्रलय के अन्त में **ब्रह्मा** जिस **ब्रह्म-विद्या** का स्मरण कर सृष्टि करते हैं, वह **'महा-स्मृति'** देवी का ही स्वरूप है।

देवी-भाष्य में **'महा-स्मृतिः'** का विग्रह **'महा+अस्मृतिः'** किया है, जिसका अर्थ है कि तत्त्व-ज्ञान की विस्मृति-रूपा महती **अस्मृति देवी** का ही स्वरूप है।

प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य, गुण-त्रय-विभाविनी।
काल-रात्रिर्महा-रात्रिर्मोह-रात्रिश्च दारुणा॥७९

अर्थ : तुम सभी पदार्थों की मूल कारण-रूपा **प्रकृति** हो और **तीन गुणों की रचना करनेवाली** हो तथा **काल-रात्रि**, **महा-रात्रि** और **भीषण मोह-रात्रि** हो।

व्याख्या—**काशीनाथ** ने व्याख्या की है कि देवी गुण-त्रय को प्रतिपन्न करनेवाली या गुण-त्रय का विभाग करनेवाली हैं। **'देवी-भाष्य'** में कहा है कि गुण-त्रय के तारतम्य से विविध रूपों में सृष्टि करनेवाली हैं।

ब्रह्मा का भी लय करने से देवी को '**काल-रात्रि**', संसार का प्रलय करने से '**महा-रात्रि**' अज्ञान-रूप भीषण निशा में डालकर जीव को ममता के भँवर में फँसाने से '**मोह-रात्रि**' कहा है। इस **मोह-रात्रि** का प्रभाव केवल **ब्रह्म-ज्ञान** से दूर होता है, अन्य कोई मार्ग नहीं है—इसी से इसे '**दारुणा**' कहा है।

तान्त्रिक मत से '**काल-रात्रि**' = कार्तिक अमावास्या-युक्त चतुर्दशी की रात्रि, '**महा-रात्रि**' = महाष्टमी की रात्रि, '**मोह-रात्रि**' = जन्माष्टमी की रात्रि, '**मोह-रात्रि**' = मङ्गलवार-युक्त वैशाख शुक्ल तृतीया की रात्रि। इन सभी पुण्य कालों की अधिष्ठात्री देवता **महा-माया** हैं।

जिस प्रकार सारी जीव-सृष्टि रात्रि में कार्य-व्यापार छोड़कर विश्राम करती है, उसी प्रकार **महा-माया** में ही **ब्रह्म** से लेकर स्तम्ब तक सभी पदार्थ विश्राम पाते हैं। इसी से **महा-माया** रात्रि-रूपा मानी गई हैं। '**ऋग्वेद**' के '**रात्रि-सूक्त**' (दशम-मण्डल, १२७वाँ सूक्त) में देवी के इसी स्वरूप का वर्णन किया गया है। **चण्डी-पाठ** के पूर्व इस सूक्त के पाठ की विधि प्रचलित है।

त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं, ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोध-लक्षणा।
लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च॥८०

अर्थ—तुम **लक्ष्मी** हो, तुम **ऐश्वर्य-शक्ति-रूपा** हो, तुम **सङ्कोच-रूपिणी** हो, तुम **निश्चयात्मिका बुद्धि** हो, तुम **लज्जा, पुष्टि** (वृद्धि) एवं **सन्तोष-रूपिणी** हो, तुम्हीं **शान्ति** और **क्षमा-रूपिणी** हो।

व्याख्या—समस्त प्राणियों में देवी **श्री, ह्री, बुद्धि, लज्जा** आदि शक्तियों के रूप में विद्यमान है। पाँचवें अध्याय में इन समस्त शक्तियों की समष्टि-रूपा देवी की ही स्तुति की गई है। यथा—

या देवी सर्व-भूतेषु, बुद्धि-रूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः॥

श्रीः—चौथे अध्याय के ५वें श्लोक में कहा है कि '**या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेषु**' अर्थात् जो पुण्य-शील लोगों के घरों में स्वयं **लक्ष्मी**-स्वरूप से रहती है।

ह्रीः—निषिद्ध कार्य के करने में स्वभावतः होनेवाली झिझक। **काशीनाथ** ने इसकी व्याख्या की है—'**अकरण-वैमुख्यम्**'।

लज्जा—**काशीनाथ** द्वारा इसकी व्याख्या की गई है '**अकरणीये पर-शङ्कया अप्रवृत्तिः**' अर्थात् दूसरों की निन्दा के डर से निषिद्ध कार्य करने से रुकना।

शान्तिः—**तत्त्व-प्रकाशिका** टीका के अनुसार '**विषय-सुखानुसन्धान-राहित्यं**' अर्थात् विषय-सुख के भोग से इन्द्रियों की विरक्ति होने से मिलनेवाली अनुभूति।

तान्त्रिक दृष्टि से इस श्लोक से तीन वीजों का उद्धार होता है। यथा—**१ श्री** = लक्ष्मी-वीज '**श्रीं**', **२ ईश्वरी** = काम-वीज '**क्लीं**', **३ ह्री** = माया या भुवनेश्वरी-वीज '**ह्रीं**'।

खड्गिनी शूलिनी घोरा, गदिनी चक्रिणी तथा।
शङ्खिनी चापिनी वाण-भुशुण्डी-परिघायुधा॥८१

अर्थ—(तुम) **खड्ग-शूल-धारिणी** हो, **भयङ्करी** हो और **गदा-चक्र-धारिणी** हो, **शङ्ख-धनुष-वाण-भुशुण्डी-परिघ-अस्त्र-धारिणी** हो।

व्याख्या—प्रथम चरित की अधिष्ठात्री देवी '**महा-काली**' दश-भुजा हैं। अपने विभिन्न हाथों में वे भिन्न-भिन्न अस्त्र लिए हैं।

भुशुण्डी—'**धनुर्वेद**' के अनुसार यह प्राचीन अस्त्र तीन हाथ लम्बा, गाँठवाला और स्थूल होता है। रङ्ग काले साँप के समान और देखने में वैसा ही भयङ्कर है। घुमा कर या नीचे प्रहार कर इसे चलाया जाता है। यथा—

भुशुण्डी तु वृहद्-ग्रन्थिर्वृहद्-देहः सुमत्सरः।
बाहु-त्रय-समुत्सेधः, कृष्ण-सर्पोग्र-वर्ण-वान्।
पातनं घूर्णनं चेति, द्वे गती तत्-समाश्रिते।

परिघ—'**धनुर्वेद**' में बताया है कि यह गोलाकार अस्त्र साढ़े तीन हाथ लम्बा होता है। इसे विशेष बल लगाकर दूरस्थ शत्रु के ऊपर फेंककर प्रहार किया जाता है। यथा—

परिघो वर्तुलाकारस्ताल-मात्रः सुतारवः।
बलैक-साध्य-सम्पातस्तस्मिन् ज्ञेयो विचक्षणैः॥

सौम्या सौम्य-तराऽशेष-सौम्येभ्यस्त्वति-सुन्दरी।
पराऽपराणां परमा, त्वमेव परमेश्वरी॥८२

अर्थ—(तुम) **सुन्दरी** और अधिक सुन्दरी, समस्त सुन्दर वस्तुओं से भी अधिक सुन्दरी हो; पर और अपर देव-गण से भी श्रेष्ठा हो, तुम्हीं **परमेश्वरी (सर्वोच्च सत्ता)** हो।

व्याख्या—'**तत्त्व-प्रकाशिका**' टीका में प्राचीन टीकाकार **विद्या-विनोद** ने स्पष्ट किया है कि '**सौम्या**' का अर्थ है ऐहिक सुख देनेवाली, '**सौम्य-तरा**' का अर्थ है स्वर्गादि पर-लोकों का सुख देनेवाली और '**अति-सुन्दरी**' का अर्थ है मोक्ष देनेवाली।

कोई-कोई टीकाकार '**सौम्या असौम्य-तरा**' इस प्रकार पद-विच्छेद करते हैं। इसके अनुसार अर्थ यह है कि देवी भक्तों के लिए सौम्य हैं, किन्तु असुरों के लिए बहुत ही उग्र हैं। पाँचवें अध्याय में देवताओं ने भी अपनी स्तुति में कहा है कि '**अति-सौम्याति-रौद्रायै, नमस्तस्यै नमो नमः**' अर्थात् जो अति सौम्या अति रौद्रा हैं, उन्हें बारम्बार नमस्कार।

यच्च किञ्चित् क्वचिद् वस्तु, सदसद् वाऽखिलात्मिके!
तस्य सर्वस्य या शक्तिः, सा त्वं किं स्तूयसे तदा॥८३

अर्थ—हे सर्व-स्वरूपे! जहाँ कहीं जो कुछ नित्य या अनित्य वस्तु है, उस सबकी जो शक्ति है, वह तुम्हीं हो। तब तुम्हारी स्तुति किस रूप में की जाए?

व्याख्या—**देवी** नित्य है या अनित्य, चित् है या जड़, सूक्ष्म है या स्थूल, कारण है या कार्य, विद्यमान है या नहीं—इस सम्बन्ध में '**देवी-भागवत**' (१।८।२८-३०) में कहा है कि—

विद्वांसोऽपि वदन्त्येवं, पुराणैः परि-गीयते।
द्रुहिणे सृष्टि-शक्तिश्च, हरौ पालन-शक्तिता॥
हरे संहार-शक्तिश्च, सूर्ये शक्तिः प्रकाशिका।
धरा-धरण-शक्तिश्च, शेषे कूर्मे तथैव च॥
साद्या-शक्तिः परिणता, सर्वस्मिन् या प्रतिष्ठिता।
दाह-शक्तिस्तथा वह्नौ, समीरे प्रेरणात्मिका॥

अर्थात् विद्वान् लोग और पुराण भी ऐसा कहते हैं कि **ब्रह्मा** में सृष्टि करने की शक्ति, **विष्णु** में पालन करने की शक्ति और **महेश** में संहार करने की शक्ति, **सूर्य** में प्रकाश करने की शक्ति, **शेषनाग** और **कूर्मदेव** में पृथ्वी को धारण करने की शक्ति, **अग्नि** में जलाने की और **वायु** में सञ्चालन की जो शक्ति विद्यमान है—वह **आद्या-शक्ति** ही सबमें उन विविध शक्ति-रूपों में विराजमान है।

किं स्तूयसे—द्वैत-भाव में ही स्तुति, प्रार्थना आदि की जा सकती है, **अद्वैत-भाव** में वह सब सम्भव नहीं रह जाता क्योंकि जब भगवती ही **स्तव्य, स्तोता** और **स्तुति**-रूप में प्रतीत होती है, तब कौन उसकी स्तुति कर सकता है। ११वें अध्याय के छठे श्लोक में देवताओं द्वारा कहा गया है कि **'त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्, का ते स्तुतिः स्तव्य-पराऽपरोक्तिः'** अर्थात् **मातृ-रूप** से एक तुम्हीं इस जगत् में व्याप्त हो, अतः तुम्हारी स्तुति क्या हो क्योंकि स्तवन करने योग्य विषय में **परा** और **अपरा** अर्थात् मुख्य और गौण जिस **'उक्ति'** को **स्तव** कहते हैं, वह **'उक्ति'** भी तुम्हीं हो।

यया त्वया जगत्-स्त्रष्टा, जगत्-पाताऽत्ति यो जगत्।
सोऽपि निद्रा-वशं नीतः, कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः॥८४

अर्थ—जो जगत् की सृष्टि करनेवाला, जगत् का पालन करनेवाला और जगत् का संहार करनेवाला है, वह भी जिन तुम्हारे द्वारा निद्रा के वशीभूत कर दिया गया है, (तब) इस जगत् में तुम्हारी स्तुति करने में कौन समर्थ है?

व्याख्या—**'देवी-भागवत'** (१।७।२६) में इसी प्रसङ्ग में **ब्रह्मा** द्वारा जिन शब्दों में देवी की स्तुति की गई है, वह ध्यान देने योग्य है। यथा—

को वेद ते जननि! मोह-विलास-लीलां, मूढोऽस्म्यहं हरिरयं विवशश्च शेते।
ईदृक्-तया सकल-भूत-मनो-विलासे, विद्वत्तमो विबुध-कोटिषु निर्गुणायाः॥

अर्थात् हे सब प्राणियों के मन में विलास करनेवाली माता! मैं तो मूढ़ ही हूँ, विष्णु लाचार होकर सो रहे हैं, करोड़ों ज्ञानियों में कौन श्रेष्ठ विद्वान् है, जो गुणातीता तुम्हारी इस प्रकार की मोह-विलास-लीला को जानता है?

विष्णुः शरीर - ग्रहणमहमीशान एव च।
कारितास्ते यतोऽतस्त्वां, कः स्तोतुं शक्ति-मान् भवेत्॥८५

अर्थ—क्योंकि **विष्णु**, मैं (**ब्रह्मा**) और **शिव** भी तुम्हारे द्वारा ही शरीर ग्रहण करते हैं, अत: तुम्हारी स्तुति करने में कौन समर्थ है?

व्याख्या—'**बह्वृच्-उपनिषद्**' में कहा है कि '**तस्या एव ब्रह्मा अजीजनत्, विष्णुरजीजनत्, रुद्रोऽजीजनत्**' अर्थात् **परा-शक्ति** से ही **ब्रह्मा**, **विष्णु** और **रुद्र** की उत्पत्ति हुई।

सा त्वमित्थं प्रभावैः स्वैरुदारैर्देवि! संस्तुता।
मोहयैतौ दुराधर्षावसुरौ मधु - कैटभौ॥८६

अर्थ—(हे) देवि! वही तुम इस प्रकार अपने अनूठे प्रभाव के वर्णनों द्वारा प्रार्थिता (होकर) इन दुर्दान्त असुरों—**मधु** और **कैटभ** को मोहित करो।

प्रबोधं स जगत् - स्वामी, नीयतामच्युतो लघु।
बोधश्च क्रियतामस्य, हन्तुमेतौ महाऽसुरौ॥८७

अर्थ—जगत् के स्वामी **विष्णु** शीघ्र (तुम्हारे द्वारा) जाग्रत् हों। इन दोनों महा-असुरों को मारने के लिए इनका (**विष्णु का**) प्रबोधन करो।

व्याख्या—**विष्णु** का एक नाम '**अच्युत**' है अर्थात् जो अपने स्वरूप से कभी भ्रष्ट नहीं होते। **ब्रह्मा** के द्वारा की गई देवी-स्तुति '**तान्त्रिक रात्रि-सूक्त**' या '**विश्वेश्वरी-सूक्त**' नाम से प्रसिद्ध है।

ऋषिरुवाच ॥८८

एवं स्तुता तदा देवी, तामसी तत्र वेधसा।
विष्णोः प्रबोधनार्थाय, निहन्तुं मधु-कैटभौ॥८९

नेत्रास्य - नासिका - बाहु - हृदयेभ्यस्तथोरसः।
निर्गम्य दर्शने तस्थौ, ब्रह्मणोऽव्यक्त -जन्मनः॥९०

अर्थ—(**मेधस्**) ऋषि ने (**राजा सुरथ** से) कहा (कि) तब वहाँ (**विष्णु** के नाभि-कमल पर स्थित) **ब्रह्मा** के द्वारा इस प्रकार प्रार्थिता होने पर तमो-मयी देवी (**योग-निद्रा-रूपिणी महा-काली**) **मधु** और **कैटभ** को मारने के लिए **विष्णु** के जागरण हेतु (उनके) **नेत्र**, **मुख**, **नाक**, **भुजा**, **हृदय** और **वक्ष:स्थल** से निकल कर अव्यक्त-जन्मा **ब्रह्मा** की दृष्टि के सामने विराजमान हो गईं।

व्याख्या—**नागो जी** के अनुसार ज्ञान को ढँकने के कारण '**महा-काली**' को तमो-गुण-मयी कहा गया है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि विविध प्रकार की लीला करने के लिए **चण्डिका देवी** तमो-गुणा '**महा-काली**', रजो-गुणा '**महा-लक्ष्मी**' और सतो-गुणा '**महा-सरस्वती**' के तीन विभिन्न रूपों में प्रतीत होती हैं, किन्तु वास्तव में ये सभी रूप एक ही हैं—एक दूसरे से अभिन्न हैं। इस सम्बन्ध में '**कालिका-पुराण**' (५।१६) में **ब्रह्मा** द्वारा **महा-माया** की जो स्तुति की गई है, वह मननीय है। यथा—

त्वं हि ज्योतिः-स्वरूपेण, संसारस्य प्रकाशिनी।
तथा तमः-स्वरूपेण, छादयन्ती सदा जगत्॥

अर्थात् ज्योति-स्वरूप से तुम्हीं संसार की प्रकाशिका हो और तमो-रूप से तुम्हीं सदैव जगत् को छिपाए रहती हो।

'अव्यक्त-जन्मनः'—**'अव्यक्त'** अर्थात् **विष्णु** से जन्म पानेवाले (**ब्रह्मा**)। **विष्णु** के नाभि-कमल से उत्पन्न होने के कारण **ब्रह्मा** का यह नाम पड़ा है।

उत्तस्थौ च जगन्नाथस्तया मुक्तो जनार्दनः।
एकार्णवेऽहि-शयनात्, ततः स ददृशे च तौ।९१
मधु-कैटभौ दुरात्मानावति-वीर्य-पराक्रमौ।
क्रोध-रक्तेक्षणावत्तुं, ब्रह्माणं जनितोद्यमौ॥९२

अर्थ—**जगन्नाथ विष्णु** उस (**योग निद्रा**) से मुक्त होकर एकाकार सागर में (स्थित) **शेषनाग** की शैय्या से उठे और तब उन्होंने दुष्ट-स्वभाववाले, अति-बल-पराक्रमवाले, क्रोध से लाल आँखवाले उन दोनों—**मधु** और **कैटभ**—को **ब्रह्मा** को खा जाने के लिए प्रयत्न-शील देखा।

व्याख्या—दुष्ट जनों का नाश करने से अथवा **'जन'** नामक असुर का वध करने से **विष्णु** का नाम **'जनार्दन'** है।

समुत्थाय ततस्ताभ्यां, युयुधे भगवान् हरिः।
पञ्च-वर्ष-सहस्राणि, बाहु-प्रहरणो विभुः॥९३

अर्थ—तब सर्व-व्यापी **भगवान् विष्णु** ने उठकर भुजा-रूपी अस्त्र से युक्त होकर पाँच हजार वर्षों तक उन दोनों (असुरों) से युद्ध किया।

तावप्यति-बलोन्मत्तौ, महा-माया-विमोहितौ॥९४
उक्त-वन्तौ वरोऽस्मत्तो, व्रियतामिति केशवम्॥९५

अर्थ—अत्यधिक बल से गर्वित वे दोनों ही **महा-माया** से विमुग्ध होकर विष्णु से बोले कि **'हमसे वर माँगो।'**

भगवानुवाच ॥९६॥

भवेतामद्य मे तुष्टौ, मम वध्यावुभावपि॥९७
किमन्येन वरेणात्र, एतावद्धि वृतं मम॥९८

अर्थ—भगवान् (**विष्णु**) ने (**मधु-कैटभ** से) कहा कि (यदि तुम) दोनों मुझसे सन्तुष्ट हो, (तो) आज मेरे बध्य हो जाओ। यहाँ अन्य वर से क्या (प्रयोजन)? यही मेरा वर है।

ऋषिरुवाच ॥९९॥

वञ्चिताभ्यामिति तदा, सर्वमापो-मयं जगत्।
विलोक्य ताभ्यां गदितो, भगवान् कमलेक्षणः॥१००

अर्थ—ऋषि (**मेधस**) ने (**सुरथ** से) कहा कि इस प्रकार ठगे जाकर उन दोनों ने तब सारे जगत् को जल-मय देखकर कमल-नयन भगवान् (**विष्णु**) से कहा—

व्याख्या—**महा-माया** के द्वारा मोहित किए जाने पर **मधु-कैटभ** ने **विष्णु** से वर माँगने को कहा। इस प्रकार वे ठगे गए, यही '**वञ्चिताभ्यां**' शब्द का आशय है।

आवां जहि न यत्रोर्वी, सलिलेन परिप्लुता॥१०१

अर्थ—जहाँ पृथ्वी जल द्वारा प्लावित न हो, (वहीं) हम दोनों का वध करो।

व्याख्या—इस श्लोकार्ध के पूर्व की पंक्ति का उल्लेख एवं अर्थ '**चतुर्धरी**' और '**शान्तनवी**' टीका में दिया गया है। वह पंक्ति निम्न प्रकार है—

प्रीतौ स्वस्तव-युद्धेन, श्लाघ्यस्त्वं मृत्युरावयोः।

अर्थात् 'तुम्हारे युद्ध से (हम दोनों) प्रसन्न हैं, तुम हम दोनों के प्रशंसनीय निधन-कर्ता हो।'

किन्तु '**तत्त्व-प्रकाशिका**' टीका लिखनेवाले **गोपाल चक्रवर्ती** के अनुसार उक्त पूर्व-पंक्ति मूल संहिता में नहीं है, अतः इसे नहीं ग्रहण करना चाहिए। '**हरिवंश**' के पाठ के अनुसार इस पंक्ति को कुछ ही लोग स्वीकार करते हैं।

ऋषिरुवाच॥१०२॥

तथेत्युक्त्वा भगवता, शङ्ख-चक्र-गदा-भृता।
कृत्वा चक्रेण वै च्छिन्ने, जघने शिरसी तयोः॥१०३

अर्थ—ऋषि ने कहा कि **शङ्ख-चक्र-गदा-धारी भगवान् (विष्णु)** ने 'वैसा (ही हो)', यह कहकर उन दोनों के मस्तकों को जाँघ पर रखकर **चक्र** के द्वारा काट डाला।

व्याख्या—विष्णु के चार हाथों में **शङ्ख, चक्र, गदा** और **पद्म** रहते हैं, किन्तु यहाँ युद्ध के समय '**पद्म**' की आवश्यकता न होने से उल्लेख नहीं हुआ। '**देवी-भागवत**' (१।९।८३-८४) में कहा है कि—

गत-प्राणौ तदा जातौ, दानवौ मधु-कैटभौ।
सागरः सकलो व्याप्तस्तदा वै मेदसा तयोः॥
मेदिनीति ततो जातं, नाम पृथ्व्याः समन्ततः।
अभक्ष्या मृत्तिका तेन, कारणेन मुनीश्वराः॥

अर्थात् **मधु** और **कैटभ**—इन दोनों दानवों के प्राण-हीन होने पर उन दोनों की मेदा (चर्बी) से सारा समुद्र भर गया। तब से पृथ्वी का नाम '**मेदिनी**' पड़ गया और इसी कारण से मिट्टी अभक्ष्य है।

एवमेषा समुत्पन्ना, ब्रह्मणा संस्तुता स्वयम्।
प्रभावमस्या देव्यास्तु, भूयः शृणु वदामि ते॥१०४

अर्थ—यह (**महा-माया**) इस प्रकार **ब्रह्मा** के द्वारा प्रार्थिता होकर स्वयं आविर्भूता हुई। इस देवी के प्रादुर्भाव को पुनः सुनो, तुम्हें बताता हूँ।

व्याख्या—नागो जी ने '**प्रभावं**' शब्द का अर्थ किया है '**प्रादुर्भाव**', जबकि **सिद्धान्त-वागीश** ने '**प्रकृष्ट उत्पत्ति**' किया है। **सावर्णिके मन्वन्तरे**—सावर्णि का प्रकाश जहाँ हो, वह हुआ '**सावर्णिक**'। उस प्रकार के मन्वन्तर में। **आठवें मन्वन्तर** का नाम है—'**सावर्णिक मन्वन्तर**'।

श्री चण्डी (सप्तशती) के **पहले चरित** में वर्णित घटना प्राय: प्रलय-काल की समाप्ति के समय और नवीन सृष्टि के पूर्व-काल में घटित हुई है। **विष्णु** द्वारा **मधु-कैटभ** का वध करवानेवाली '**महा-काली**' ही थीं। **विष्णु की निद्रा** के रूप में वही थीं, उनकी **जागृति-रूपा** भी वही थीं और **मधु-कैटभ को मोहित करनेवाली** भी वही थीं। इसी से देवी '**मधु-कैटभ-नाशिनी**' नाम से विख्यात हैं। '**वैकृतिक रहस्य**' में '**महा-काली**' का वर्णन इस प्रकार किया है—

योग-निद्रा हरेरुक्ता, महा-काली तमोगुणा।
मधु-कैटभ-नाशार्थं, यां तुष्टावाम्बुजासनः॥
दश-वक्त्रा दश-भुजा, दश-पादाञ्जन-प्रभा।
विशालया राजमाना, त्रिंशल्लोचन-मालया॥
स्फुरद्-दशन-दंष्ट्रा सा, भीम-रूपाऽपि भूमिप!
रूप-सौभाग्य-कान्तीनां, सा प्रतिष्ठा महा-श्रियाम्॥
खड्ग-वाण-गदा-शूल-शङ्ख-चक्र-भुशुण्डि-भृत्।
परिघं कार्मुकं शीर्षं, निश्च्योतद्-रुधिरं दधौ॥
एषा सा वैष्णवी माया, महा-काली दुरत्यया।
आराधिता वशी कुर्यात्, पूजा-कर्तुश्चराचरम्॥

अर्थात् पद्मासन **ब्रह्मा** ने **मधु-कैटभ** के नाश के लिए जिनकी स्तुति की थी, वे ही **विष्णु की योग-निद्रा-रूपिणी तामसी महा-काली** कही गई हैं। वे **दस मुख, दस हाथ** और **दस पैरवाली** हैं। उनकी प्रभा अञ्जन के समान काली है, तीस विशाल चक्षु-रूप माला से वे शोभायमान हैं। राजन्! **उज्ज्वल दाँतवाली** और **भीषण रूपवाली** होते हुए भी वे **रूप, सौभाग्य, कान्ति** और **महती श्री** की प्रतिष्ठा-रूपिणी हैं। वे **खड्ग, बाण, गदा, शूल, शङ्ख, चक्र, भुशुण्डि, परिघ, धनु** और **रक्त बहते हुए नर-मुण्ड** को धारण किए हैं। यही **वैष्णवी माया** हैं, यही दुरतिक्रमणीया **महा-काली** हैं। ये आराधना करने पर चराचर जगत् को पूजा करनेवाले के वश में कर देती हैं।

***

पहले अध्याय के पाठान्तर

श्लोक-संख्या	'विशुद्ध चण्डी' का पाठ	प्रचलित पाठ
५	कोला-विध्वंसिनस्तदा	कोला-विध्वंसिनस्तथा
८	तत्रापि स्व-पुरे ततः	तत्रापि स्व-पुरे सतः
१०	द्विज-वर्यस्य मेधसः	द्विज-वर्यः सुमेधसः
१०	मुनि-शिष्योप-शोभितम्	मुनेः शिष्योप-शोभितम्
१२	ममत्वाकृष्ट-चेतनः	ममत्वाकृष्ट-मानसः
१७	ददर्श सः	ददर्श ह
२२	विहीनश्च धनैदरैः	विहीनः स्व-जनैदरैः
२२	पुत्रैरादाय	पुत्रैरादायि
३०	भवानस्मद्-गतं वचः	भवाम यस्मद्-गतं वचः
३२	पति-स्वजन-हार्दं च	प्रीतिं स्वजन-हार्दं च
३३	निःश्वासो	निःश्वास
३४	मनस्तेष्वप्रीतिषु निष्ठुरम्	मनस्तेष्वप्रीतिषु निष्ठरम्
४१	गत-राजस्य	मम राजस्य
४२	निकृतः	निः कृतः
४२	स्व-जनेन च	स्व-जनैरपि
४४	केनैतन्महा-भाग	किमेतन्महा-भाग
४७	विषयश्च महा-भाग याति	विषयाश्च महा-भाग यान्ति
४७	याति चैवं पृथक् पृथक्	जातिश्चैवं पृथक् पृथक्
४९	किन्तु ते	किं नु ते
५०	तुल्यमन्यत्	न तदन्यत्
५१	पतङ्गाञ्छाव-चञ्चुषु	पतगाञ्छाव-चञ्चुषु
५१	कण-मोक्षाद् ऋतान्	कण-मोक्षाहितान्
५२	नन्वेते किं	नन्वेतानि
५३	संसार-स्थिति-कारिणः	संसार-स्थिति-कारिणा
५४	हरेश्चैतत्	हरेरेषा
५६	जगदेतच्चराचरम्	त्रैलोक्यं सचराचरम्
६१	यत्-स्वभावा च	यत्-प्रभावा च
६२	ब्रह्म-विदां वर	ब्रह्मन् विदां वर
६७	एकार्णवी-कृते	एकार्णवे-कृते
७०	तामेकाग्र-हृदय-स्थितः	तामेकाग्र-हृदयः स्थितः

श्लोक-संख्या	'विशुद्ध चण्डी' का पाठ	प्रचलित पाठ
७०	विबोधनार्थाय	प्रबोधनार्थाय
७२	विष्णोरतुल-तेजस:	विष्णोरतुल-तेजसां
७३	वषट्कार-स्वरात्मिका	वषट्कार: स्वरात्मिका
७५	सन्ध्या सावित्री	सा त्वं सावित्री
७५	त्वं देवि! जननी	१. त्वं देवी जननी, २. त्वं वेद जननी, ३. त्वं देव जननी
७६	त्वयैतद् धार्यते विश्वं	त्वयैव धार्यते सर्वं
७७	जगन्मये	जगन्मयि
७८	महा-मोहा च भवती	महा-मोहा भगवती
७८	महाऽसुरी	महेश्वरी
८१	वाण-भुशुण्डी-परिघायुधा	वाणा भुसुण्डी-परिघायुधा
८३	स्तूयसे तदा	स्तूयसे मया
८४	जगत्-पाताऽति	जगत्-पात्यत्ति
८७	बोधश्च	भावश्च
९२	मधु-कैटभौ	मधु-कैटौ
९२	क्रोध-रक्तेक्षणावन्तुं	क्रोध-रक्तेक्षणौ हन्तुं
९८	किमन्येन वरेणात्र एता-वृद्धि वृतं मम	कमन्येन वरेणात एता-वृद्धि वृतं मया

***

सार्थ चण्डी (श्री दुर्गा सप्तशती)

मध्यम चरितम्

द्वितीयः अध्यायः

महिषासुर-सैन्य-वध

ॐ ऋषिरुवाच ॥१॥

देवासुरमभूद् युद्धं, पूर्णमब्द-शतं पुरा।
महिषेऽसुराणामधिपे, देवानां च पुरन्दरे॥२

अर्थ—ऋषि (**मेधस**) ने (**सुरथ** से) कहा कि पूर्व-काल में **महिषासुर** के असुरों के और **पुरन्दर** के देवताओं के अधिपति रहते समय पूरे सौ वर्षों तक **देवासुर-युद्ध** हुआ।

व्याख्या—पूर्व-काल में अर्थात् **स्वायम्भुव मन्वन्तर** में। **मेधस् ऋषि** ने **स्वारोचिष** नामक दूसरे मन्वन्तर में **राजा सुरथ** को यह **देवी-माहात्म्य** सुनाया है।

पुरन्दर—जो शत्रुओं के पुरों (नगरों) का ध्वंस करता है : **पुराणि दारयति इति पुरन्दरः।** यह नाम **पहले मन्वन्तर** के **देवराज इन्द्र** का है। '**इन्द्र**' शब्द वास्तव में उपाधि है, व्यक्ति का नाम नहीं। **४४ मन्वन्तरों** में १४ ही **इन्द्र** होते हैं। '**मार्कण्डेय पुराण**' में इन **इन्द्रों के नाम** बताए हैं। यथा—

पुरन्दरो विपश्चिच्च, सु-शान्तिः शिखिरेव च।
पञ्चमः शत-यज्ञश्च, षष्ठो मनोजवः स्मृतः॥
ओजस्वी च बलिश्चैव, सहस्राक्षस्तथैव च।
शान्तिस्तथा वृषाक्षश्च, ऋत-धामा दिवस्पतिः॥
शुचिश्चतुर्दशैते वै, ज्ञेया इन्द्रा यथा-क्रमम्॥

अर्थात् **चौदह इन्द्र** क्रमशः ये जानने चाहिए—**१ पुरन्दर, २ विपश्चित्, ३ सु-शान्ति, ४ शिखि, ५ शत-यज्ञ, ६ मनोजव, ७ ओजस्वी, ८ बलि, ९ सहस्राक्ष, १० शान्ति, ११ वृषाक्ष, १२ ऋत-धामा, १३ दिवस्पति** और **१४ शुचि**।

महिषासुर—देवी-भागवत (स्कन्ध ५, अध्याय २) में **महिषासुर का इतिहास** यह दिया है कि प्राचीन काल में **रम्भ** और **करम्भ** नाम के दो असुरों ने पुत्र की कामना से **पञ्च-नद** के

जल में प्रविष्ट होकर कठोर तपस्या की। उनके तप से डर कर **इन्द्र** ने कुम्भीर-रूप धारण कर **करम्भ** को मार डाला। भाई के निधन से दु:खी होकर **रम्भ** अपना मस्तक काटकर अग्नि में होम करने को उद्यत हुआ, जिससे प्रसन्न होकर **अग्नि-देव** ने उसे वर दिया कि उसे त्रैलोक्य-विजयी पुत्र होगा। वरदान से प्रसन्न होकर जब **रम्भ** वापस अपने स्थान को जा रहा था, तब भावी-वश वह एक **महिषी** पर आसक्त हो गया। फलत: उसके गर्भ से **महिषासुर** का जन्म हुआ। उसने **सुमेरु पर्वत** पर दीर्घ काल तक कठिन तपस्या की, जिससे प्रसन्न होकर **ब्रह्मा** ने उससे वर माँगने को कहा। उसने '**अमरत्व**' का वर माँगा, किन्तु **ब्रह्मा** ने कहा कि 'मृत्यु जीव का सनातन धर्म है। अमरत्व छोड़कर तुम और जो कुछ माँगो, मैं दूँगा।' इस पर **महिषासुर** ने कहा 'देव, दानव और मनुष्य जाति के किसी पुरुष द्वारा मेरी मृत्यु न हो।' **ब्रह्मा** ने उसे यह वर दिया और कहा कि—

यदा कदाऽपि दैत्येन्द्र!, नार्यास्ते मरणं ध्रुवम्।
न नरेभ्यो महा-भाग!, मृतिस्ते महिषासुर!॥

अर्थात् हे **दानवेन्द्र**! जब कभी **नारी** द्वारा ही तुम्हारी निश्चय मृत्यु होगी। हे महा-भाग, **महिषासुर**! पुरुषों द्वारा तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी।

तत्रासुरैर्महा - वीर्यैर्देव - सैन्यं पराजितम्।
जित्वा च सकलान् देवानिन्द्रोऽभून्महिषासुरः॥३

अर्थ—उस (युद्ध) में अति शक्ति-शाली असुरों द्वारा **देव-सेना** हरा दी गई और **महिषासुर** सभी देवों को जीतकर **इन्द्र** हो गया।

ततः पराजिता देवाः, पद्म-योनिं प्रजा-पतिम्।
पुरस्कृत्य गतास्तत्र, यत्रेश-गरुड-ध्वजौ॥४

अर्थ—तब हारे हुए देवता (**विष्णु-नाभि** के) पद्म से उत्पन्न **ब्रह्मा** को आगे कर जहाँ **शिव** और **गरुड़** की ध्वजावाले (**विष्णु**) थे, वहाँ गए।

यथा-वृत्तं तयोस्तद्-वन्महिषासुर-चेष्टितम्।
त्रिदशाः कथयामासुर्देवाभि-भव-विस्तरम्॥५

अर्थ—देवताओं ने उन दोनों से देव-पराजय का विवरण (और) **महिषासुर** का आचरण जिस प्रकार का रहा, उसी प्रकार कह सुनाया।

सूर्येन्द्राग्न्यनिलेन्दूनां, यमस्य वरुणस्य च।
अन्येषां चाधिकारान् स, स्वयमेवाधि-तिष्ठति॥६

अर्थ—वह (**महिषासुर**) **सूर्य**, **इन्द्र**, **अग्नि**, **अनिल** (**वायु**), **इन्दु** (**चन्द्र**) के, **यम** के और **वरुण** के तथा अन्य (देवों) के अधिकारों को स्वयं ही प्रयोग करता है।

स्वर्गान्निराकृताः सर्वे, तेन देव-गणा भुवि।
विचरन्ति यथा मर्त्या, महिषेण दुरात्मना॥७

अर्थ—सभी देव लोग उस दुष्ट **महिष** के द्वारा स्वर्ग से निकाले जाकर मरण-शील (मनुष्यों) जैसे पृथिवी पर घूम रहे हैं।

एतद् वः कथितं सर्वममरारि-विचेष्टितम्।
शरणं च प्रपन्नाः स्मो, वधस्तस्य विचिन्त्यताम्॥८

अर्थ—यह सब देव-शत्रु का कार्य आप से कहा है और शरण में आए हैं। उस (**महिषासुर**) के वध (के उपाय) का विचार करें।

इत्थं निशम्य देवानां, वचांसि मधु-सूदनः।
चकार कोपं शम्भुश्च, भ्रकुटी-कुटिलाननौ॥९

अर्थ—देवताओं के इस प्रकार के वचनों को सुनकर **मधु-नाशक (विष्णु)** और **शम्भु** ने क्रोध किया, दोनों (के) मुख टेढ़ी भौंहों से युक्त हो गए।

ततोऽति-कोप-पूर्णस्य, चक्रिणो वदनात् ततः।
निश्चक्राम महत् तेजो, ब्रह्मणः शङ्करस्य च॥१०

अर्थ—तब अति क्रोध के भरे हुए (**सुदर्शन**) **चक्र-धारी** (**विष्णु**) के, फिर **ब्रह्मा** के और **शङ्कर** के मुख से प्रचण्ड तेज निकला।

अन्येषां चैव देवानां, शक्रादीनां शरीरतः।
निर्गतं सु-महत् तेजस्तच्चैक्यं समगच्छत॥११

अर्थ—और अन्य **इन्द्र** आदि देवताओं के भी शरीर से बहुत तेज निकला तथा वह (**तेज**) एकत्र मिल गया।

अतीव - तेजसः कूटं, ज्वलन्तमिव पर्वतम्।
ददृशुस्ते सुरास्तत्र, ज्वाला-व्याप्त-दिगन्तरम्॥१२

अर्थ—वहाँ उन देवताओं ने दशों दिशाओं को (अपनी) ज्वालाओं से व्याप्त करनेवाले, अत्यन्त **प्रज्वलित पर्वत के समान, तेज की राशि** को देखा।

अतुलं तत्र तत् तेजः, सर्व - देव - शरीरजम्।
एकस्थं तदभून्नारी, व्याप्त-लोक-त्रयं त्विषा॥१३

अर्थ—वहाँ सब देवों के शरीर से निकला हुआ वह **अनुपम तेज**, (जो) तीनों लोकों को (अपनी) प्रभा से व्याप्त किए था, एक **नारी** (**स्त्री-रूप**) बन गया।

व्याख्या—'**वामन पुराण**' अध्याय १८ में यह वर्णन है कि **महर्षि कात्यायन** के आश्रम में **देवताओं के सम्मिलित तेज से भगवती का आविर्भाव** हुआ। **कात्यायन मुनि** ने अपने तेज से **देव-तेज** को परिपुष्ट किया। इसी से देवी का एक नाम '**कात्यायनी**' है।

यदभूच्छाम्भवं तेजस्तेनाजायत तन्मुखम्।
याम्येन चाभवन् केशा, बाहवो विष्णु-तेजसा॥१४

अर्थ—**शम्भु** का जो तेज था, उससे उस (**देवी**) का मुख उत्पन्न हुआ और **यम** के तेज से केश, **विष्णु**-तेज से भुजाएँ हुईं।

व्याख्या—**शम्भु** का वर्ण श्वेत है, अतः उनके तेज से देवी का मुख उत्पन्न होने से वे श्वेतानना हैं। **विष्णु** का वर्ण नीला है, अतः उनके तेज से बनी **देवी की १८ भुजाएँ नील-वर्णा** हैं। '**महा-लक्ष्मी**' के **१८ भुजाएँ** हैं, किन्तु युद्ध-काल में वे **सहस्र-भुजा** भी हो जाती हैं, जैसा कि इसी अध्याय के ३९वें श्लोक में कहा है कि—'**दिशो भुज-सहस्रेण समन्ताद् व्याप्य संस्थितां**'। **वैकृतिक रहस्य** में '**महा-लक्ष्मी**' के सम्बन्ध में बताया है कि—'**अष्टादश-भुजा पूज्या, सा सहस्र-भुजा सती**' अर्थात् वे **सहस्र-भुजा** होती हुई भी **अष्टादश-भुजा-रूप में पूजनीया** हैं।

सौम्येन स्तनयोर्युग्मं, मध्यं चैन्द्रेण चाभवत्।
वारुणेन च जङ्घोरू, नितम्बस्तेजसा भुवः॥१५

अर्थ—**सौम्य** (सोम या चन्द्र के तेज) से दो स्तनों का जोड़ा और **ऐन्द्र** (इन्द्र-तेज) से मध्य (देह का मध्य-भाग), **वारुण** (वरुण-तेज) से जाँघें और दोनों ऊरु, **पृथ्वी** के तेज से नितम्ब (कमर के पीछे का भाग) हुआ।

व्याख्या—**काशीनाथ** के अनुसार जिस देवता के तेज से देवी के जो अङ्ग बने, उनका वर्ण उसी देवता के वर्ण के अनुरूप हुआ। इस प्रकार **चन्द्र-तेज** से बने '**महा-लक्ष्मी**' के स्तन श्वेत-वर्ण, **इन्द्र-तेज** से बना मध्य-भाग रक्त-वर्ण और **वरुण-तेज** से बनी जङ्घाएँ व ऊरु नील-वर्ण हैं।

ब्रह्मणस्तेजसा पादौ, तदंगुलयोऽर्क - तेजसा।
वसूनां च करांगुल्यः, कौबेरेण च नासिका॥१६

अर्थ—**ब्रह्मा** के तेज से दोनों पैर, **सूर्य**-तेज से उनकी अंगुलियाँ, (आठ) **वसुओं** के (तेज से) हाथ की अंगुलियाँ और **कौबेर** (कुबेर के तेज) से नाक (हुई)।

व्याख्या—**नागो जी** के अनुसार **ब्रह्मा** रक्त-वर्ण हैं, अतः '**महा-लक्ष्मी**' के दोनों पैर उसी वर्ण के हैं। '**मार्कण्डेय पुराण**' में **आठ वसुओं** के सम्बन्ध में बताया है कि—

आपो ध्रुवश्च सोमश्च, धवश्चैवानिलोऽनलः।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च, वसवोऽष्टौ प्रकीर्त्तिताः॥

अर्थात् **१ आप, २ ध्रुव, ३ सोम, ४ धव, ५ अनिल, ६ अनल, ७ प्रत्यूष** और **८ प्रभास**—ये **आठ वसु** हैं। मतान्तर में '**आप**' के स्थान पर '**भव**' और '**धव**' के स्थान पर '**धर**' नाम मिलते हैं।

तस्यास्तु दन्ताः सम्भूताः, प्राजापत्येन तेजसा।
नयन-त्रितयं जज्ञे, तथा पावक-तेजसा॥१७

अर्थ—**प्राजापत्य** (दक्ष आदि प्रजापतियों के) तेज से उस (**देवी**) के दाँत उत्पन्न हुए, उसी प्रकार **अग्नि** के तेज से तीनों नेत्र उत्पन्न हुए।

व्याख्या—'**मनु-स्मृति**' (१।३५) के अनुसार **ब्रह्मा** के तप से **१० प्रजापति** उत्पन्न हुए—**१ मरीचि, २ अत्रि, ३ अङ्गिरा, ४ पुलस्त्य, ५ पुलह, ६ क्रतु, ८ प्रचेता, ८ वशिष्ठ, ९ भृगु** और **१० नारद**। '**भागवत**' (३।१२।२१) के अनुसार **प्रचेता** के स्थान पर **दक्ष आदि १० प्रजापति** हैं।

भ्रुवौ च सन्ध्ययोस्तेजः, श्रवणावनिलस्य च।
अन्येषां चैव देवानां, सम्भवस्तेजसां शिवा॥१८

अर्थ—**दोनों सन्ध्याओं** (प्रातः और सायं) के तेज से दोनों भौंहें और **वायु** के (तेज) से दोनों कान तथा अन्य देवों के तेजों के एकीभाव से **शिवा** (मङ्गल-मयी देवी उत्पन्न हुईं)।

व्याख्या—'**सम्भवः**' शब्द का अर्थ '**विश्व-प्रकाश कोष**' में यह दिया है कि '**सम्भवः कथितो हेतौ, उत्पत्तौ, मेलनेऽपि च**' अर्थात् हेतु, उत्पत्ति और मेलन के अर्थ में '**सम्भव**'-शब्द का प्रयोग होता है।

'**वैकृतिक-रहस्य**' में '**महा-लक्ष्मी**' के शरीर का वर्णन निम्न प्रकार किया गया है—

श्वेतानना नील-भुजा, सुश्वेत-स्तन-मण्डला।
रक्त-मध्या रक्त-पादा, नील-जङ्घोरुरुन्मदा॥
सुचित्र-जघना चित्र-माल्याम्बर-विभूषणा।
चित्रानुलेपना कान्ति-रूप-सौभाग्य-शालिनी॥

अर्थात् '**महा-लक्ष्मी**' श्वेतानना और नील-हस्ता हैं। उनके स्तन-मण्डल उत्तम श्वेत-वर्ण के हैं। उनके शरीर का मध्य-भाग और दोनों पैर रक्त-वर्ण हैं। जङ्घा और ऊरु नील-वर्ण हैं। वे उन्मत्ता हैं, मनोहर जघनवाली और विचित्र माल्य व वस्त्र से विभूषिता हैं। वे चन्दनादि मनोहर अनुलेपन से युक्त और कान्ति, रूप तथा सौभाग्य से मण्डिता हैं।

ततः समस्त-देवानां, तेजो-राशि-समुद्भवाम्।
तां विलोक्य मुदं प्रापुरमरा महिषार्दिताः॥१९

अर्थ—तब सभी देवों के तेज-समूह से उत्पन्ना उस (**देवी**) को देखकर **महिषासुर** द्वारा पीड़ित देवताओं ने हर्ष प्राप्त किया।

व्याख्या—**नागो जी** ने स्पष्ट किया है कि वस्तुतः **ब्रह्मा** आदि में जो तेज है, वह **देवी** का ही तेज है। अतः भगवती अपने ही तेज से आविर्भूत हुईं। **लक्ष्मी-तन्त्र** में **इन्द्र** से '**महा-लक्ष्मी**' कहती हैं कि—

महा-लक्ष्मीरहं शक्र!, पुनः स्वायम्भुवेऽन्तरे।
हिताय सर्व-देवानां, जाता महिष-मर्दिनी॥
मदीयाः शक्ति-लेशा ये, तत्र देव-शरीरगाः।
धृतं मया तैः सम्भूतैः, रूपं परम-शोभनम्॥

अर्थात् हे **इन्द्र**! मैं **'महा-लक्ष्मी'** हूँ। **स्वायम्भुव मन्वन्तर** में समस्त देवताओं के कल्याण के लिए मैं **महिष-मर्दिनी** के रूप में पुनः आविर्भूत होती हूँ। देवताओं के शरीर में स्थित अपने शक्ति-कणों के समूह से उत्पन्न होकर मैं अत्यन्त शोभनीय रूप को धारण करती हूँ।

शूलं शूलाद् विनिष्कृष्य, ददौ तस्यै पिनाक-धृक्।
चक्रं च दत्तवान् कृष्णः, समुत्पाद्य स्व-चक्रतः॥२०

अर्थ—**पिनाक** (धनुष) धारण करनेवाले (**महादेव**) ने शूल से **शूल** निकाल कर उसे (देवी को) दिया और **कृष्ण** (विष्णु) ने अपने चक्र से **चक्र** उत्पन्न कर प्रदान किया।

व्याख्या—**पिनाक-१ महादेव का धनुष** और **वाद्य-यन्त्र**। युद्ध के समय **महा-देव** इस धनुष से वाण छोड़ते हैं और अन्य समयों में वे इसका वाद्य-यन्त्र के रूप में प्रयोग करते हैं। २ **'पिनाक'** का अर्थ **त्रिशूल** भी है।

चक्रं च—कुछ टीकाकारों ने **'च'** (और) शब्द का एक तात्पर्य यह बताया है कि इससे **'गदा'** की व्यञ्जना होती है अर्थात् **विष्णु** ने **चक्र** और **गदा**—ये दो आयुध देवी को प्रदान किए। अन्यथा **'महा-लक्ष्मी'** के १८ हाथों के लिए १७ आयुधों की संख्या पूरी नहीं होती।

शङ्खं च वरुणः शक्तिं, ददौ तस्यै हुताशनः।
मारुतो दत्त - वांश्चापं, बाण - पूर्णे तथेषुधी॥२१

अर्थ—उसे (**महा-लक्ष्मी** को) **वरुण** ने **शङ्ख** और **अग्नि** ने **शक्ति** (नामक अस्त्र) दी। **वायु** ने **धनुष** और वाणों से भरे हुए दो **तरकस** (तूणीर) प्रदान किए।

व्याख्या—**शक्ति**—प्राचीन-काल का एक प्रसिद्ध अस्त्र, जो लोहे से बने बर्छे के समान और दोनों ही ओर तीक्ष्ण होता था (**'मनु-स्मृति'**, ८।३१५)। **'नील-कण्ठ'** ने अपनी टीका में बताया है कि हाथ से फेकने योग्य स्थूल मूठवाले दण्ड का नाम **'शक्ति'** है (**महा-भारत**, १।१९।१३)। **धनुर्वेद** में लिखा है कि **'शक्ति'** दो हाथ लम्बी होती है। सिंह के समान मुख और जीभ बहुत तीक्ष्ण रहती है। पकड़ने के लिए मूठ बड़ी होती है। देखने में बड़ी भयङ्कर, घण्टा-ध्वनि से भय उत्पन्न करनेवाली, शत्रु के खून से रँगी हुई, अस्त्र-जाल में शोभायमाना, गहरे नीले रङ्ग की, बहुत दूर तक जानेवाली, तिरछी गतिवाली और बड़े-से-बड़े पर्वत—हिमालय तक को विदीर्ण करने में समर्थ है। युद्ध में जय देनेवाली इस प्रकार की **'शक्ति'** को दोनों हाथों से उठाकर फेंकना होता है।

वज्रमिन्द्रः समुत्पाद्य, कुलिशादमराधिपः।
ददौ तस्यै सहस्राक्षो, घण्टामैरावताद् गजात्॥२२

अर्थ—सहस्र आँखवाले देव-राज **इन्द्र** ने वज्र से **वज्र** उत्पन्न कर, **ऐरावत** हाथी से **घण्टा** (निकालकर) उसे (देवी को) दिया।

काल-दण्डाद् यमो दण्डं, पाशं चाम्बु-पतिर्ददौ।
प्रजापतिश्चाक्ष-मालां, ददौ ब्रह्मा कमण्डलुम्॥२३

अर्थ—**यम** ने काल-दण्ड से **दण्ड** और **समुद्र** ने **पाश** प्रदान किया। **प्रजा-पति ब्रह्मा** ने **अक्ष-माला** और **कमण्डलु** दिया।

व्याख्या—**काल-दण्ड**—'**देवी भागवत**' (१५।९।१६) के अनुसार समय आने पर जिसके द्वारा समस्त प्राणियों का विनाश होता है, वही **यम का काल-दण्ड** है।

पाश—**धनुर्वेद** में '**पाश**' के सम्बन्ध में बताया है कि यह दस हाथ लम्बा गोलाकार-रूप में सुरक्षित रहता है। इसे कपास के सूत, मूँज, पशु-विशेष के स्नायु, आकन्द-छाल के सूत और चर्म-विशेष से प्रस्तुत किया जाता है। सूक्ष्म ३० वृक्ष-तन्तुओं के साथ सबका अच्छी तरह पाक करने से यह तैयार होता है। इसका उपयोग यह है कि युद्ध-काल में इसे अपने बगल में रखा जाता है और प्रयोग करते समय इसे अपने मस्तक के ऊपर एक बार घुमाकर फेंकना होता है। फेंकने की गति अनेक प्रकार की होती है, जिससे इच्छानुसार शत्रु को बाँधकर अपने पास लाया जाता है।

इसी '**पाश**' को नाग के फण के समान बनाए जाने पर उसे '**नाग-पाश**' कहते हैं। (**शुक्र-नीति**, ४।१।२१६)।

समस्त-रोम-कूपेषु, निज - रश्मीन् दिवाकरः।
कालश्च दत्त-वान् खड्गं, तस्याश्चर्म च निर्मलम्॥२४

अर्थ—**सूर्य** ने (देवी के) सभी रोम-छिद्रों में अपनी किरणों को (अर्पित किया) और **काल** ने उन्हें (देवी को) उज्ज्वल **खड्ग** तथा **ढाल** प्रदान की।

व्याख्या—देवताओं द्वारा विविध अस्त्र-शस्त्र देवी को दिए गए, किन्तु वास्तव में ये सभी शस्त्रास्त्र मूलतः **भगवती शक्ति** से ही उत्पन्न हुए थे। '**लक्ष्मी-तन्त्र**' में '**महा-लक्ष्मी**' ने **इन्द्र** से कहा कि—

आयुधानि च देवानां, यानि यानि सुरेश्वर!
मच्छक्तयस्तदाकाराण्यायुधानि ममाभवन्॥

अर्थात् हे देवराज! देवताओं के जो-जो अस्त्र हैं, वे मेरी ही शक्तियाँ हैं और मेरे आयुध (शस्त्र) भी उन्हीं अस्त्रों जैसे हैं।

क्षीरोदश्चामलं हारमजरे च तथाऽम्बरे।
चूडा-मणिं तथा दिव्यं, कुण्डले कटकानि च॥२५
अर्ध - चन्द्रं तथा शुभ्रं, केयूरान् सर्व-बाहुषु।
नूपुरौ विमलौ तद् - वद्, ग्रैवेयकमनुत्तमम्॥२६
अंगुलीयक - रत्नानि, समस्तास्वंगुलीषु च॥२७

अर्थ—**क्षीर-समुद्र** ने निर्मल हार और सदा नए बने रहनेवाले दो **वस्त्र** तथा अलौकिक **चूड़ा-मणि**; दो **कुण्डल** और बहुत से **कटक**, उज्ज्वल **अर्द्ध-चन्द्र** तथा सभी भुजाओं में **केयूर**, दो

निर्मल **नूपुर**, उसी प्रकार अति श्रेष्ठ **ग्रैवेयक** और सभी अंगुलियों में रत्न-जटित **अंगुरीयक** प्रदान कीं।

व्याख्या—**भरत मुनि** के **'नाट्य-शास्त्र'** (११।१५-१८) में यह स्पष्ट किया गया है कि किस अङ्ग के लिए कौन आभूषण होना चाहिए। यथा—

अङ्ग	आभूषण
मस्तक	चूड़ा-मणि और मुकुट
कान	कुण्डल
कण्ठ (गला)	मुक्ता-हार, मुक्तावली, हर्षक, मङ्गल-सूत्र
अंगुलि	अंगुलि-मुद्रा (अँगूठी), वाटिका, अंगुरीयक
कर्पूर (केहुनी)	केयूर (बाजूबन्द), अङ्गद
ग्रीवा (गरदन) एवं **स्तन-मण्डल**	हार और त्रिसर
देह (शरीर)	लम्बा मुक्ता-हार एवं माल्यादि
कटि (कमर)	तरल, सूत्रक
हार	यह प्रायः मोतियों का बनता है।
चूड़ा-मणि	'मुकुट' में लगनेवाली मुख्य मणि।
कुण्डल	कानों का आभूषण, जिसमें विभिन्न प्रकार की मणियाँ लगाई जाती थीं।
कटक	स्वर्ण-पत्र पर रत्न जड़ा यह आभूषण केहुनी के नीचे कलाई तक के भुज-भाग में 'कङ्गन' के समान पहना जाता है।
अर्द्ध-चन्द्र	आधे चन्द्रमा के आकार में बना आभूषण, जो ललाट (मस्तक) पर धारण किया जाता है।
केयूर	कुहनी से ऊपर के भुज-भाग में पहनने के लिए 'बाजू-बन्द' जैसा आभूषण, जो रत्न-जटित होता है।
नूपुर	पैरों का आभूषण। यह स्वर्ण का बनता है और अनेक प्रकार के रत्नों से जड़ा रहता है। इसके अन्य नाम हैं—पादाङ्गद, तुला-कोटि, मञ्जीर, हंसक, पाद-कटक।
ग्रैवेयक	कण्ठ में धारणीय स्वर्ण का बना आभूषण (कण्ठी, ताबीज आदि के समान)।

विश्व-कर्मा ददौ तस्यै, परशुं चाति-निर्मलम्।
अस्त्राण्यनेक-रूपाणि, तथाऽभेद्यं च दंशनम्॥२८

अर्थ—**विश्वकर्मा** ने उसे (देवी को) अत्यन्त उज्ज्वल **परशु** और अनेक रूपवाले **शस्त्रास्त्र** तथा अभेद्य **कवच** प्रदान किया।

व्याख्या—**परशु**—**वैशम्पायन** के **धनुर्वेद** के अनुसार यह एक हाथ लम्बा '**कुठार**' या '**फरसा**' होता है। एक दण्ड में अर्द्ध-चन्द्राकार रूप में यह संलग्न रहता है। इसका आगे का भाग विस्तृत होता है। इसके द्वारा शत्रु को मार गिराते हैं या उसे काट डालते हैं।

अम्लान-पङ्कजां मालां, शिरस्युरसि चापराम्।
अददज्जलधिस्तस्यै, पङ्कजं चाति-शोभनम्॥२९

अर्थ—**समुद्र** ने उसे (देवी को) प्रफुल्ल पङ्कजोंवाली एक **माला** शिर पर और दूसरी (माला) वक्ष पर (धारण करने के लिए), अत्यन्त शोभावाला एक **पङ्कज** (हाथ में लेने के लिए) प्रदान किया।

हिम-वान् वाहनं सिंहं, रत्नानि विविधानि च।
ददावशून्यं सुरया, पान-पात्रं धनाधिपः॥३०

अर्थ—**हिमालय** ने वाहन **सिंह** और विविध **रत्न**—**कुबेर** ने सुरा से सदा भरा रहनेवाला **पान-पात्र** दिया।

शेषश्च सर्व-नागेशो, महा-मणि-विभूषितम्।
नाग-हारं ददौ तस्यै, धत्ते यः पृथिवीमिमाम्॥३१

अर्थ—जो इस पृथ्वी को धारण करता है, उसी समस्त नागों के स्वामी **शेषनाग** (अनन्त) ने महा-मणि से सुसज्जित **नाग-हार** उसे (देवी को) प्रदान किया।

अन्यैरपि सुरैर्देवी, भूषणैरायुधैस्तथा।
सम्मानिता ननादोच्चैः, साट्टहासं मुहुर्मुहुः॥३२

अर्थ—दूसरे देवताओं द्वारा भी **आभूषणों** तथा **अस्त्रों** से सम्मानिता (होकर) **देवी** घोर हास्य के सहित बार-बार उच्च स्वर से गर्जन करने लगीं।

तस्या नादेन घोरेण, कृत्स्नमापूरितं नभः।
अमायतातिमहता, प्रति-शब्दो महानभूत्॥३३

अर्थ—उस (**देवी**) के अत्यन्त महान् असीम घोर गर्जन से सारा आकाश चारों ओर से भर गया (और उसकी) बड़ी प्रतिध्वनि हुई।

व्याख्या—**अमायता**—(१) मात्रा (परिमाण या माप) को सूचित करनेवाली धातु '**मा**' में '**क्विप्**' प्रत्यय लगाने से '**मायता**' शब्द बनता है, जिसका अर्थ है परिमाण। '**मां यता (गच्छता) = मायता; न मायता = अमायता (अपरिमितेन)**' अर्थात् जिसका परिमाण नहीं है।

(२) इस शब्द की दूसरी व्युत्पत्ति है—'**अमा + यता। अमां (रवि-रश्मि-विशेषं) यता (गच्छता)। अमा नाम रवेः रश्मिः, सूर्य-लोके प्रतिष्ठिता**' अर्थात् **सूर्य-लोक** में '**अमा**' नाम की किरण प्रतिष्ठित है, उस तक पहुँचनेवाला असीम '**गर्जन**' है।

चुक्षुभुः सकला लोकाः, समुद्राश्च चकम्पिरे।
चचाल वसुधा चेलुः, सकलाश्च मही-धराः॥३४

अर्थ—(उस गर्जन से) सारे लोक क्षुब्ध हो उठे और (सभी) समुद्र काँपने लगे, पृथ्वी हिल उठी, सभी पर्वत विचलित हो गए।

जयेति देवाश्च मुदा, तामूचुः सिंह-वाहिनीम्।
तुष्टुवुर्मुनयश्चैनां, भक्ति - नम्रात्म - मूर्तयः॥३५

अर्थ—और देव-गण हर्ष के साथ उस **सिंह-वाहिनी (देवी)** से **'जय प्राप्त करो'** यह कहने लगे और भक्ति-भाव से विनम्र मन व शरीरवाले **मुनि-गण** इस **(देवी) की स्तुति** करने लगे।

व्याख्या—**जयेति**—इस शब्द की एक व्युत्पत्ति यह भी है कि **'जया + इति'** अर्थात् देवी को **'जया'** नाम से सम्बोधित किया। **'तत्त्व-प्रकाशिका'** टीका में इस नाम का अर्थ है कि **'जयति असुरान् इति जया'** अर्थात् असुरों को देवी जीतती हैं, इससे उनका नाम **'जया'** है।

तुष्टुवुः—**'सप्तशती'** में केवल इतना ही कहा गया है कि **मुनि-गण देवी की स्तुति** करने लगे, किन्तु **'देवी-भागवत'** (५।९।२३-२९) में इस सन्दर्भ में **मुनियों द्वारा की गई एक स्तुति** भी है।

दृष्ट्वा समस्तं संक्षुब्धं, त्रैलोक्यममरारयः।
सन्नद्धाखिल - सैन्यास्ते, समुत्तस्थुरुदायुधाः॥३६

अर्थ—वे देव-शत्रु (असुर) सारे त्रिभुवन को क्षुभित देखकर, सभी सेनाओं को तैयार कर और शस्त्रास्त्रों को निकाल कर उठ खड़े हुए।

आः किमेतदिति क्रोधादाभाष्य महिषासुरः।
अभ्यधावत तं शब्दमशेषैरसुरैर्वृतः॥३७

अर्थ—**महिषासुर** 'अरे, यह क्या है?' ऐसा क्रोध से कहकर असंख्य असुरों से घिरा हुआ उस शब्द की ओर दौड़ चला।

स ददर्श ततो देवीं, व्याप्त-लोक-त्रयां त्विषा।
पादाक्रान्त्या नत-भुवं, किरीटोल्लिखिताम्बराम्॥३८
क्षोभिताशेष-पातालां, धनुर्ज्या-निःस्वनेन ताम्।
दिशो भुज-सहस्रेण, समन्ताद् व्याप्य संस्थिताम्॥३९

अर्थ—तब उस (**महिषासुर**) ने उस **देवी** को देखा, जो (अपने) तेज द्वारा तीनों लोकों में व्याप्त थी, (जिसके) पैरों के भार से पृथ्वी झुक गई थी, जिसका मुकुट आकाश को छू रहा था, (जिसके) धनुष की प्रत्यञ्चा की टङ्कार-ध्वनि से सारा पाताल क्षुब्ध हो उठा था और (जो अपनी) सहस्र भुजाओं से दिशाओं को व्याप्त कर विराजमान थी।

ततः प्रववृते युद्धं, तया देव्या सुर-द्विषाम्।
शस्त्रास्त्रैर्बहुधा मुक्तैरादीपित - दिगन्तरम्॥४०

अर्थ—तदनन्तर उस **देवी के साथ देव-शत्रुओं का युद्ध** प्रारम्भ हुआ, जिसमें बहुत प्रकार से फेंके गए शस्त्र-अस्त्रों द्वारा दिग्-मण्डल उद्-भासित हो उठा।

व्याख्या—**शस्त्रास्त्रैः**—'**शान्तनवी टीका**' में बताया है कि जो आयुध हाथ में ही रखकर उपयोग में लाए जाते हैं, फेंके नहीं जाते, उन्हें '**शस्त्र**' कहते हैं, जैसे **खड्ग** आदि और जिन्हें फेंक कर प्रयोग किया जाता है, वे '**अस्त्र**' कहलाते हैं, जैसे **वाण** आदि।

महिषासुर - सेनानीश्चिक्षुराख्यो महाऽसुरः।
युयुधे चामरश्चान्यैश्चतुरङ्ग - बलान्वितः॥४१

अर्थ—**महिषासुर** का सेनापति **चिक्षुर** नामक महा-असुर और **चामर** (नामक महा-असुर) चतुरङ्ग-सेना से युक्त होकर दूसरे (असुरों) के साथ युद्ध करने लगे।

व्याख्या—**चतुरङ्ग**—'**अमर-कोष**' में लिखा है कि '**हस्त्यश्व-रथ-पादातं सेनाङ्गं स्यात् चतुष्टयम्**' अर्थात् १ हाथी, २ घोड़े, ३ रथ और ४ पैदल सैनिक—इन चार अङ्गों से युक्त सेना को '**चतुरङ्ग**' कहते हैं।

रथानामयुतैः षड्भिरुदग्राख्यो महाऽसुरः।
अयुध्यतायुतानां च, सहस्रेण महा-हनुः॥४२

अर्थ—**उदग्र** नामक महा-असुर **छः अयुत** (६ हजार) और **महा-हनु** (नामक महा-असुर) **हजार अयुत** (एक करोड़) रथों के साथ युद्ध करने लगे।

पञ्चाशद्भिश्च नियुतैरसिलोमा महाऽसुरः।
अयुतानां शतैः षड्भिर्वाष्कलो युयुधे रणे॥४३

अर्थ—**असिलोमा** महा-असुर **पचास नियुत** (५ करोड़), **वाष्कल छः सौ अयुत** (६० लाख रथों के साथ) युद्ध में लड़ने लगे।

गज - वाजि - सहस्रौघैरनेकैः परिवारितः।
वृतो रथानां कोट्या च, युद्धे तस्मिन्नयुध्यत॥४४

अर्थ—**परिवारित** (नामक महा-असुर) **हजार हाथी** और **घोड़ों** के समूहों और **एक करोड़ रथों** से घिरे हुए उस युद्ध में लड़ने लगा।

विडालाख्योऽयुतानां च, पञ्चाशद्भि रथायुतैः।
युयुधे संयुगे तत्र, रथानां परिवारितः॥४५

अर्थ—इसके बाद **विडाल** (नामक महा-असुर) भी **अयुत रथों के पचास अयुतों** द्वारा घिरे हुए उस युद्ध में लड़ने लगा।

व्याख्या—**अयुतानां पञ्चाशद्भिः अयुतैः** = १०,००० × ५० × १०,००० = ५,००,००,००,००० = **५०० कोटि** या **५० अर्बुद** या **५ वृन्द**।

'**ब्रह्माण्ड-पुराण**' में संख्या की गणना-विधि निम्न प्रकार बताई गई है—

एकं दशं शतं चैव, सहस्रमयुतं तथा।
लक्षं च नियुतं चैव, कोटिरर्बुदमेव च॥
वृन्दं खर्वो निखर्वश्च, शङ्ख-पद्मौ च सागरः।
अन्त्यं मध्यं परार्द्धं च, दश-वृद्ध्या यथा-क्रमम्॥

अर्थात् **१ एक, २ दश, ३ शत, ४ सहस्र, ५ अयुत, ६ लक्ष, ७ नियुत, ८ कोटि, ९ अर्बुद, १० वृन्द, ११ खर्व, १२ निखर्व, १३ शङ्ख, १४ पद्म, १५ सागर, १६ अन्त्य, १७ मध्य, १८ परार्द्ध**—इनमें से प्रत्येक के बाद की संख्या पूर्व-वर्ती संख्या से दस गुना अधिक है।

अन्ये च तत्रायुतशो, रथ - नाग - हयैर्वृताः।
युयुधुः संयुगे देव्या, सह तत्र महाऽसुराः॥४६

अर्थ—वहाँ अन्य महान् असुर भी दस-दस हजार रथों, हाथियों और घोड़ों से युक्त होकर **देवी** के साथ उस रण-भूमि में युद्ध करने लगे।

कोटि-कोटि-सहस्रैस्तु, रथानां दन्तिनां तथा।
हयानां च वृतो युद्धे, तत्राभून्महिषासुरः॥४७

अर्थ—उस युद्ध में **महिषासुर** कोटि-कोटि सहस्र रथों, हाथियों और घोड़ों से घिरा हुआ था।

तोमरैर्भिन्दिपालैश्च, शक्तिभिर्मुसलैस्तथा।
युयुधुः संयुगे देव्या, खड्गैः परशु-पट्टिशैः॥४८

अर्थ—(असुरों ने) **तोमरों** और **भिन्दिपालों, शक्तियों** तथा **मूसलों, खड्गों** और **परशु-पट्टिशों** द्वारा **देवी** के साथ युद्ध-भूमि में युद्ध किया।

व्याख्या—**तोमर**—नील-कण्ठ ने इस अस्त्र का वर्णन करते हुए लिखा है—'**हस्त-दण्ड-क्षेप्य दीर्घ अस्त्र-विशेषः**' अर्थात् हाथ से फेंकने योग्य लम्बे दण्डवाला एक विशेष अस्त्र। इसका दूसरा नाम '**शर्वल**' या '**शावल**'। यह '**शावल**' दो प्रकार का होता है—एक दण्ड-युक्त और दूसरा समस्त लोहे का बना। दीर्घता की दृष्टि से यह उत्तम, मध्यम और अधम तीन श्रेणियों का है। पाँच हाथ का उत्तम, साढ़े चार हाथ का मध्यम और चार हाथ का अधम। '**वैशम्पायन धनुर्वेद**' के अनुसार '**तोमर**' में लौह-फलक सहित लकड़ी के दण्ड से युक्त तीर होता है। '**शार्ङ्धर धनुर्वेद**' के अनुसार साँप के फन के आकारवाले फलक से युक्त लोहे के तीर को '**तोमर**' कहते हैं। '**तोमर**' के तीन कार्य बताए गए हैं—१ **ऊर्ध्वीकरण** (उद्धान—ऊपर को उठाना), २ **विनियुक्त** (प्रयोग) और ३ **वेधन** (लक्ष्य वस्तु का छेदन करना)। समय-समय पर '**तोमर**' को विषाक्त किया जाता है।

भिन्दिपाल (भिन्दीपाल, भिण्डिवाल या भिन्दिवाल)—यह फेंकने योग्य हथौड़ी के समान अस्त्र है। इस **शत्रु-संहारक अस्त्र** का प्रयोग पैदल सैनिकों द्वारा ही किया जाता है। इसे कम-से-कम तीन बार घुमाकर फेंका जाता है। '**वैशम्पायन धनुर्वेद**' में इसका लक्षण यह बताया है कि—

भिण्डिवालस्तु वक्राङ्गो, नम्र-शीर्षो वृहच्छिराः।

हस्त-मात्रोत्सेध-युक्तः, कर-सम्मित-मण्डलः॥

अर्थात् **भिण्डिवाल** तिरछे रूपवाला, आगे का भाग झुका हुआ, पिछले भाग की अपेक्षा अगला भाग अधिक बड़ा, एक हाथ मोटाई है और हाथ से पकड़ने योग्य गोल मूठवाला होता है।

मूसल—एक प्रकार का '**मुद्गर**'। '**वैशम्पायन धनुर्वेद**' में इसके सम्बन्ध में लिखा है कि—

मूसलस्त्वक्षि-शीर्षाभ्यां, करैः पादैः विवर्जितः।

मूले चान्तेऽति-सम्बन्धः, पातनं पोथनं द्वयम्॥

अर्थात् **मूसल** के आँख, सिर, हाथ, पैर कुछ नहीं होता अर्थात् यह पूरा समान-रूपवाला होता है। इसकी दो क्रियाएँ हैं—**१ निपातन, २ पोथन।**

कौटिल्य के '**अर्थ-शास्त्र**' (२।१८) में '**मुद्गर**' के तीन प्रकार बताए हैं—**१ मूसल, २ यष्टि** और **३ गदा।** '**मूसल**' और '**यष्टि**' खदिर-काष्ठ से बनते हैं, इनके अग्र-दण्ड सूक्ष्म होते हैं। '**गदा**' दीर्घ एवं भारी दण्डवाली होती है।

पट्टिशः—एक प्रकार का '**खड्ग**'। '**वैशाम्पायन धनुर्वेद**' में इसका रूप यह बताया है—

पट्टिशः पुं-प्रमाणःस्यात्, द्वि-धारस्तीक्ष्ण-शृङ्गकः।

हस्त-त्राण-समायुक्तो, मुष्टिः खड्ग-सहोदरः॥

अर्थात् '**पट्टिश**' खड्ग का भाई है अर्थात् उसी के आकारवाला होता है। यह पुरुष के बराबर लम्बा, दोनों ओर धारवाला, आगे का भाग तीक्ष्ण और इसकी मूठ में हस्त-त्राण लगा रहता है।

केचिच्च चिक्षिपुः शक्तीः, केचित् पाशांस्तथाऽपरे।

देवीं खड्ग-प्रहारैस्तु, ते तां हन्तुं प्रचक्रमुः॥४९

अर्थ—कुछ (असुरों) ने **शक्तियों** को और दूसरे कुछ ने **पाशों** को (फेंका)। वे (असुर-गण) **खड्ग** की चोटों से उस **देवी** को मारने को उद्यत हुए।

साऽपि देवी ततस्तानि, शस्त्राण्यस्त्राणि चण्डिका।

लीलयैव प्रचिच्छेद, निज-शस्त्रास्त्र-वर्षिणी॥५०

अर्थ—तदनन्तर अपने शस्त्रास्त्रों की वर्षा करनेवाली उस **देवी चण्डिका** ने भी उन शस्त्रों को अनायास ही नष्ट कर डाला।

व्याख्या—**शस्त्राणि अस्त्राणि**—**मधुसूदन सरस्वती** ने अपने '**प्रस्थान-भेद**' में लिखा है कि आयुध के चार प्रकार हैं—**१ मुक्त** (चक्र आदि), **२ अमुक्त** (खड्ग आदि), **३ मुक्तामुक्त** (शल्य आदि) और **४ यन्त्र-मुक्त** (वाण आदि)। 'मुक्त' आयुधों को ही '**अस्त्र**' कहते हैं और 'अमुक्त' आयुधों को '**शस्त्र**'।

अनायस्तानना देवी, स्तूयमाना सुरर्षिभिः।

मुमोचासुर-देहेषु, शस्त्राण्यस्त्राणि चेश्वरी॥५१

अर्थ—देवताओं और ऋषियों द्वारा स्तुता अविकृत-मुखवाली ईश्वरी (सर्व-शक्ति-मयी) **देवी** ने असुरों के शरीरों पर शस्त्रों को फेंका।

व्याख्या—**अनायस्तानना**—जिसका मुख '**आयास**'—श्रम के कारण विकृत न हो—'**अनायास्तं आयास-जन्य-विकारं अप्राप्तं आननं यस्याः सा**'। 'कोष' में भी है कि '**आयस्तं विकृते क्षिप्ते क्लिशिते कुपिते हते**' अर्थात् '**आयस्तं**' शब्द के अर्थ हैं—विकृत, क्षिप्त, क्लेश-प्राप्त, कुपित और हत। **न + आयस्तं = अनायस्तम्।**

सोऽपि क्रुद्धो धुत-सटो, देव्या वाहन-केशरी।
चचारासुर - सैन्येषु, वनेष्विव हुताशनः।।५२

अर्थ—**देवी का वह वाहन सिंह** भी क्रोधित होकर केश हिलाता हुआ जङ्गलों में अग्नि के समान असुर सेनाओं में विचरण करने लगा।

व्याख्या—**धुत-सटः**—'**सटा**' शब्द का अर्थ '**मेदिनी कोष**' के अनुसार है जटा या केश—'**सटा जटा-केशरयोः**'। अतः उक्त पद का विच्छेद होगा—'**धूताः कम्पिताः सटाः केशराः येन सः**' अर्थात् जिसके द्वारा केशर हिलाए जा रहे हों, वह।

निःश्वासान् मुमुचे यांश्च, युध्यमाना रणेऽम्बिका।
त एव सद्यः सम्भूता, गणाः शत-सहस्रशः।।५३

अर्थ—युद्ध-भूमि में युद्ध करते हुए **अम्बिका** ने जो निःश्वास छोड़े, वे सभी तत्क्षण ही सौ हजार (अर्थात् लाखों की संख्या में) **प्रमथ-सैन्य-दल** बन गए।

व्याख्या—**गणाः**—प्रमथ-दल। **भगवती के गणों** (अनुचरों) को '**प्रमथ**' कहते हैं, जो नृत्य-गीतादि में निपुण होते हैं। '**सप्तशती**' के अध्याय ३ के २४वें मन्त्र में इनका उल्लेख हुआ है। यथा—**निपात्य प्रमथानीकमभ्यधावत सोऽसुरः।**

युयुधुस्ते परशुभिर्भिन्दिपालासि-पट्टिशैः।
नाशयन्तोऽसुर-गणान्, देवी-शक्त्युपबृंहिताः।।५४

अर्थ—वे (**प्रमथ-सैन्य-गण**) देवी की शक्ति से परिपुष्ट होकर **परशु** (कुठार), **भिन्दिपाल**, **असि** और **पट्टिशों** द्वारा असुर-गणों का नाश करते हुए युद्ध करने लगे।

अवादयन्त पटहान्, गणाः शङ्खांस्तथाऽपरे।
मृदङ्गांश्च तथैवान्ये, तस्मिन् युद्ध-महोत्सवे।।५५

अर्थ—उस **युद्ध-रूपी महोत्सव** में (कुछ) **प्रमथ** लोग **पटह** (ढोल) और अन्य कुछ **शङ्ख** तथा दूसरे कुछ (प्रमथ) **मृदङ्ग** बजाने लगे।

ततो देवी त्रिशूलेन, गदया शक्ति-वृष्टिभिः।
खड्गादिभिश्च शतशो, निजघान महाऽसुरान्।।५६

अर्थ—तदनन्तर **देवी** ने **त्रिशूल**, **गदा**, **शक्ति** की वर्षा द्वारा और **खड्गादि** के द्वारा सैकड़ों की संख्या में महान् असुरों को मार गिराया।

पातयामास चैवान्यान्, घण्टा-स्वन-विमोहितान्।

असुरान् भुवि पाशेन, बद्ध्वा चान्यानकर्षयत्॥५७

अर्थ—दूसरे असुरों को **घण्टा**-ध्वनि से विमुग्ध कर पृथ्वी पर गिरा दिया और दूसरों को पाश से बाँध कर खींच लिया।

केचिद् द्विधा कृतास्तीक्ष्णैः, खड्ग-पातैस्तथाऽपरे।

विपोथिता निपातेन, गदया भुवि शेरते॥५८

अर्थ—कुछ (असुर) तेज **खड्ग** की चोटों से दो टुकड़ों में कट गए और अन्य **गदा** द्वारा मारे जाकर पृथ्वी पर गिर कर सो गए।

वेमुश्च केचिद् रुधिरं, मुसलेन भृशं हताः।

केचिन्निपतिता भूमौ, भिन्नाः शूलेन वक्षसि॥५९

अर्थ—और कुछ (असुर) **मूसल** द्वारा अत्यन्त घायल होकर रक्त वमन करने लगे, कुछ **शूल** द्वारा वक्षः-स्थल में विदीर्ण होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

निरन्तराः शरौघेण, कृताः केचिद् रणाजिरे।

श्येनानुकारिणः प्राणान्, मुमुचुस्त्रिदशार्दनाः॥६०

अर्थ—सेना के आगे रहनेवाले कुछ देव-पीड़कों (असुरों) ने युद्ध-प्राङ्गण में **वाण**-समूह के द्वारा जर्जर होकर प्राण छोड़ दिए।

केषांचिद् बाहवश्छिन्नाश्छिन्न-ग्रीवास्तथाऽपरे।

शिरांसि पेतुरन्येषामन्ये मध्ये विदारिताः॥६१

अर्थ—किन्हीं की भुजाएँ छिन्न-भिन्न हो गईं और अन्य कोई गरदन-हीन हो गए, दूसरों के सिर गिर गए, अन्य (देह के) मध्य में विदीर्ण हो गए।

विच्छिन्न-जङ्घास्त्वपरे, पेतुरुर्व्यां महाऽसुराः।

एक-बाह्वक्षि-चरणाः, केचिद् देव्या द्विधा कृताः॥६२

अर्थ—दूसरे महा-असुर कटी जङ्घावाले होकर पृथ्वी पर गिर पड़े, कुछ **देवी** के द्वारा दो टुकड़े कर दिए गए (जिससे एक भुजा, एक आँख, एक चरणवाले हो गए)।

छिन्नेऽपि चान्ये शिरसि, पतिताः पुनरुत्थिताः।

कबन्धा युयुधुर्देव्या, गृहीत - परमायुधाः॥६३

ननृतुश्चापरे तत्र, युद्धे तूर्य - लयाश्रिताः॥६४

अर्थ—और दूसरे शिर के कट जाने पर भी गिरकर फिर उठ गए। धड़ श्रेष्ठ शस्त्र लिए हुए **देवी** से युद्ध करने लगे और दूसरे रण-वाद्य के ताल का सहारा लिए हुए उस युद्ध-क्षेत्र में नाचने लगे।

व्याख्या—**कबन्ध**—मस्तक-रहित देह, जो क्रिया-शील हो। '**महा-नाटक**' में लिखा है—

नागानामयुतं तुरङ्ग-नियुतं सार्द्धं रथानां शतं।
पत्तीनां दश-कोटयो निपतिता एकः कबन्ध रणे॥

अर्थात् अयुत हाथियों, नियुत घोड़ों, एक सौ पचास रथों और दस कोटि पैदल सैनिकों के संग्राम में मारे जाने पर एक '**कबन्ध**' की उत्पत्ति होती है।

कबन्धाश्छिन्न-शिरसः, खड्ग-शक्त्यृष्टि-पाणयः।
तिष्ठ तिष्ठेति भाषन्तो, देवीमन्ये महाऽसुराः॥६५

अर्थ—सिर कटे **कबन्ध खड्ग, शक्ति** और **ऋष्टि** हाथों में लिए हुए युद्ध करने लगे। दूसरे महा-असुर **देवी** से 'ठहरो, ठहरो' इस प्रकार कहते हुए युद्ध करने लगे।

व्याख्या—'**ऋष्टि**'—**नागो जी** के अनुसार यह दोनों ओर धारवाला एक प्रकार का '**खड्ग**' है।

पातितै रथ - नागाश्वैरसुरैश्च वसुन्धरा।
अगम्या साऽभवत् तत्र, यत्राऽभूत् स महा-रणः॥६६

अर्थ—जहाँ वह **महा-युद्ध** हुआ, वहाँ वह पृथ्वी गिराए गए रथों, हाथियों, घोड़ों और असुरों से अगम्य हो गई।

शोणितौघा महा-नद्यः, सद्यस्तत्र प्रसुस्त्रुवुः।
मध्ये चासुर-सैन्यस्य, वारणासुर-वाजिनाम्॥६७

अर्थ—और वहाँ **असुर-सेना** के बीच में हाथियों, असुरों और घोड़ों के रक्त की राशि तत्क्षण महा-नदी के समान बह चली।

क्षणेन तन्महा - सैन्यमसुराणां तथाऽम्बिका।
निन्ये क्षयं यथा वह्निस्तृण-दारु-महा-चयम्॥६८

अर्थ—जिस प्रकार अग्नि घास और लकड़ी के विशाल ढेर को क्षण भर में भस्म कर देती है, उसी प्रकार **अम्बिका** ने असुरों की उस **विशाल सेना** को क्षण भर में नष्ट कर डाला।

स च सिंहो महा-नादमृत्सृजन् धुत-केशरः
शरीरेभ्योऽमरारीणामसूनिव विचिन्वति॥६९

अर्थ—और वह **सिंह** भी भीषण गर्जन करता हुआ, कम्पायमान केशरवाला होकर देव-शत्रुओं के शरीरों से प्राणों को हरण करने लगा।

देव्या गणैश्च तैस्तत्र, कृतं युद्धं महाऽसुरैः।
यथैषां तुतुषुर्देवाः, पुष्प-वृष्टि-मुचो दिवि ॥७०

अर्थ—वहाँ **देवी** के उन **प्रमथ-गणों** के द्वारा असुरों के साथ उस प्रकार युद्ध किया गया, जिससे स्वर्ग में **देव-गण** ने पुष्प-वर्षा कर इनके प्रति सन्तोष प्रकट किया।

❋❋❋

दूसरे अध्याय के पाठान्तर

श्लोक-संख्या	'विशुद्ध चण्डी' का पाठ	प्रचलित पाठ
८	शरणं च प्रपन्ना: स्मो	शरणं व प्रपन्ना: स्म:
९	भ्रकुटी-कुटिलाननौ	भृकुटी-कुटिलाननौ
११	तच्चैक्यं समगच्छत	तच्चैक्यं समपद्यत
१५	मध्यं चैन्द्रेण चाभवत्	मध्यमैन्द्रेण चाभवत्
१५	जङ्घोरू	जङ्घोरु
१८	श्रवणावनिलस्य च	श्रवणे अनिलस्य च
२०	समुत्पाद्य	समुत्पाट्य
२१	बाण-पूर्णे	बाण-पूर्णौ
२२	समुत्पाद्य	समुत्पाट्य
२४	तस्याश्चर्म च	तस्यै चर्म च
२६	शुभ्रं	दिव्यं
२७	अंगुलीयक-रत्नानि	अंगुरीयक-रत्नानि
३५	जयेति देवाश्च मुदा, तामूचु:	जयेति च मुदा देवास्तामूचु:
	सिंह-वाहिनीम्	सिंह-वाहनाम्
४०	शस्त्रास्त्रैर्बहुधा	शस्त्रास्त्रैरात च
४१	चामरश्चान्यै	चामरश्चान्य:
४४	गज-वाजि-सहस्त्रौघैरनेकै: परिवारित:	गज-वाजि-सहस्त्रौघैरनेकै रुग्र-दर्शन:
४५	विडालाख्योऽयुतानां च	विडालाख्यो महा-दैत्य:
४९	केचिच्च चिक्षिपु:	केचिच्चा चिक्षिपु:
५१	शस्त्राण्यस्त्राणि चेश्वरी	१. शस्त्राण्यस्त्राणि चण्डिका
५४	देवी-शक्त्युपबृंहिता:	देवी शक्तुपबृंहितान्
५५	आवदयन्त	१. आवादयन्त, २. अवादयन्त
५७	अकर्षयत्	अकर्षत
५८	विपोथिता	विपुस्थिता
६०	निरन्तरा:	१. निराकृता:, २. निरन्तर:,
६०	श्येनानुकारिण:	१.सेनानुकारिण:, २. शैलानुकारिण:
६४	तूर्य-लयाश्रिता:	तूर्य-लयान्विता:
६५	खड्ग-शक्त्यृष्टि-पाणय:	खड्ग-शक्त्यृष्ट-पाणय:
६५	तिष्ठ तिष्ठेति भाषन्तो	१ तिष्ठ तिष्ठेत्य भाषन्त , २ तिष्ठ तिष्ठेति चैवोक्ता
७०	महाऽसुरै:	तथाऽसुरै:
७०	यथैषां तुतुषुर्देवा:	अथैनां तुष्टुवुर्देवा:

मध्यम चरितम्

तृतीयः अध्यायः

चिक्षुरादि-असुर-सेनापति का वध

ॐ ऋषिरुवाच ॥१॥

निहन्य-मानं तत्-सैन्यमवलोक्य महाऽसुरः।
सेनानीश्चिक्षुरः कोपाद्, ययौ योद्धुमथाम्बिकाम्॥२

अर्थ—**ऋषि (मेधस)** ने कहा—इसके बाद उस सैन्य-दल को नष्ट होते देखकर सेना-पति महा-असुर **चिक्षुर** क्रोध-पूर्वक **अम्बिका** से युद्ध करने को चला।

स देवीं शर-वर्षेण, ववर्ष समरेऽसुरः।
यथा मेरु-गिरेः शृङ्गं, तोय-वर्षेण तोयदः॥३

अर्थ—जिस प्रकार बादल जल-वर्षा से सुमेरु पर्वत की चोटी को आप्लावित कर देता है, उसी प्रकार उस असुर ने युद्ध में बाण-वर्षा से **देवी** को ढँक दिया।

तस्य च्छित्वा ततो देवी, लीलयैव शरोत्करान्।
जघान् तुरगान् वाणैर्यन्तारं चैव वाजिनाम्॥४

अर्थ—तब **देवी** ने उसके बाण-समूहों को अनायास ही छिन्न-भिन्न कर घोड़ों और उनके सारथियों को भी वाणों से मार डाला।

चिच्छेद च धनुः सद्यो, ध्वजं चाति-समुच्छ्रितम्।
विव्याध चैव गात्रेषु, छिन्न-धन्वानमाशुगैः॥५

अर्थ—**देवी** ने तुरन्त ही उसके धनुष और अति ऊँची पताका को काट दिया तथा कटे हुए धनुषवाले **चिक्षुर** के सारे शरीर को वाणों से बेध दिया।

स च्छिन्न-धन्वा विरथो, हताश्वो हत-सारथिः।
अभ्यधावत तां देवीं, खड्ग-चर्म-धरोऽसुरः॥६

अर्थ—वह असुर धनुष कट जाने, रथ नष्ट हो जाने, घोड़े और सारथी के मर जाने पर **खड्ग** तथा **ढाल** धारण कर उन **देवी** की ओर दौड़ा।

सिंहमाहत्य खड्गेन, तीक्ष्ण-धारेण मूर्धनि।
आजघान भुजे सव्ये, देवीमप्यति-वेग-वान्॥७

अर्थ—अत्यन्त गतिवाले **चिक्षुर** ने तेज धारवाले **खड्ग** से **सिंह** को मस्तक पर चोट पहुँचाकर **देवी** की भी बाँईं भुजा पर प्रहार किया।

तस्याः खड्गो भुजं प्राप्य, पफाल नृप-नन्दन!
ततो जग्राह शूलं स, कोपादरुण-लोचनः॥८

अर्थ—हे राज-पुत्र **सुरथ**! **खड्ग** उन **देवी** की भुजा से लगकर टूट गया। तब उस असुर ने क्रोध से लाल आँखें कर **शूल** ग्रहण किया।

चिक्षेप च ततस्तत् तु, भद्र-काल्यां महाऽसुरः।
जाज्वल्य-मानं तेजोभी, रवि-बिम्बमिवाम्बरात्॥९

अर्थ—इसके बाद **महा-असुर चिक्षुर** ने आकाश से तेजो-राशि द्वारा देदीप्यमान सूर्य-मण्डल के समान उज्ज्वल उस **शूल** को **भद्र-काली** की ओर फेंका।

व्याख्या—**भद्र-काली**—**भगवती दुर्गा** का नामान्तर। '**कालिका-पुराण**' के अनुसार ये **षोडश-भुजा**, अतसी-पुष्प-वर्णाभा, कानों में उज्ज्वल **स्वर्ण-कुण्डल**, मस्तक पर **जटा-जूट**, **अर्द्ध-चन्द्र** और **मुकुट** से शोभिता हैं। गले में **नाग-हार** और **स्वर्ण-हार** पहने हैं। अपने दाएँ हाथों में—**१ शूल, २ खड्ग, ३ शङ्ख, ४ चक्र, ५ वाण, ६ शक्ति, ७ वज्र** और **८ दण्ड** लिए हैं तथा बाँएँ हाथों में **९ खेटक, १० चर्म (ढाल), ११ चाप (धनुष), १२ पाश, १३ अंकुश, १४ घण्टा, १५ परशु** और **१६ मूशल** लिए हैं। **सिंह** पर सवार हैं।

देवी भद्र-काली की कथा उक्त पुराण के अध्याय ६० में यह दी है कि एक बार **महिषासुर** ने स्वप्न में देखा कि **देवी भद्र-काली** उसके सिर को काटकर रक्त-पान कर रही हैं। स्वप्न से डरकर **महिषासुर** ने प्रातः-काल **भद्र-काली** की पूजा प्रारम्भ की। पूजा से सन्तुष्ट होकर **षोडश-भुजा भद्रकाली**-रूप में देवी प्रकट हुईं। तब **दैत्यराज** ने कहा कि 'हे देवि! मैंने स्वप्न में देखा है कि आप मेरा सिर काटकर रक्त-पान कर रही हैं। ऐसा ही होगा, इसमें सन्देह नहीं क्योंकि नियति का उल्लङ्घन कोई नहीं कर सकता। अपने भावी मङ्गल के लिए मैं यह वर माँगता हूँ कि मुझे **यज्ञ का भाग** मिले और आपके चरणों की सेवा का सौभाग्य सदा मिलता रहे।' **महिषासुर** की प्रार्थना से सन्तुष्ट होकर **देवी** ने कहा—'**यज्ञ-भाग** तो पहले से देवताओं के बीच पूरा-का-पूरा बँट चुका है। इस समय उसका एक भी भाग शेष नहीं है, जो मैं तुम्हें प्रदान करूँ। फिर भी मैं तुम्हें यह वर देती हूँ कि मेरे द्वारा मारे जाने पर भी तुम कभी भी मेरे चरणों से दूर नहीं रहोगे। जहाँ मेरी पूजा होगी, वहीं तुम भी पूजा पाओगे।'

दृष्ट्वा तदापतच्छूलं, देवी शूलममुञ्चत।
तच्छूलं शतधा तेन, नीतं स च महाऽसुरः॥१०

अर्थ—**देवी** ने उस **शूल** को आते देखकर अपना शूल फेंका। इसके द्वारा वह शूल और वह **महा-असुर चिक्षुर** भी सौ टुकड़े हो गया।

हते तस्मिन् महा-वीर्ये, महिषस्य चमू-पतौ।
आजगाम गजारूढश्चामरस्त्रिदशार्दनः॥११

अर्थ—**महिष** के उस **महान् सेनापति चिक्षुर** के मारे जाने पर **देव-पीड़क चामर** नामक असुर हाथी पर चढ़कर आया।

व्याख्या—**त्रिदश**—बाल्य, यौवन और वृद्ध—इन तीनों दशाओं का एक ही समय भोग करने से देवताओं का नाम '**त्रिदश**' है।

सोऽपि शक्तिं मुमोचाथ, देव्यास्तामम्बिका द्रुतम्।
हुङ्काराभि-हतां भूमौ, पातयामास निष्प्रभाम् ॥१२

अर्थ—इसके बाद उस **चामरासुर** ने भी **देवी** की ओर **शक्ति** फेंकी। **अम्बिका** ने तुरन्त ही उस **शक्ति** को हुङ्कार द्वारा प्रति-हत और तेज-हीन करके पृथ्वी पर गिरा दिया।

व्याख्या—**अम्बिका-अम्बा (माता) स्वार्थे कण् टाप्।** जगन्माता होने से **भगवती दुर्गा** का नाम '**अम्बिका**' है।

भग्नां शक्तिं निपतितां, दृष्ट्वा क्रोध-समन्वितः।
चिक्षेप चामरः शूलं, बाणैस्तदपि साच्छिनत्॥१३

अर्थ—**चामर** ने **शक्ति** को नष्ट होकर पृथ्वी पर गिरा देखकर क्रोधित होकर **शूल** फेंका। उस देवी ने **वाण** द्वारा उसे भी नष्ट कर दिया।

ततः सिंहः समुत्पत्य, गज-कुम्भान्तरे स्थितः।
बाहु-युद्धेन युयुधे, तेनोच्चैस्त्रिदशारिणा॥१४

अर्थ—तब **सिंह** छलाँग मारकर हाथी के सिर के दोनों कुम्भों के बीच जा चढ़ा और उस **देव-शत्रु** से हाथों के द्वारा घोर युद्ध करने लगा।

व्याख्या—**गज-कुम्भ**—हाथी के सिर पर कुम्भ के आकार के दो मांस-पिण्ड होते हैं, उन्हें '**गज-कुम्भ**' कहते हैं।

युद्ध्यमानौ ततस्तौ तु, तस्मान्नागान् महीं गतौ।
युयुधातेऽति-संरब्धौ, प्रहारैरति-दारुणैः॥१५

अर्थ—तब युद्ध करते हुए दोनों ही उस हाथी से पृथ्वी पर आ गए और अत्यन्त क्रुद्ध होकर बड़ी भीषण चोटों द्वारा युद्ध करने लगे।

ततो वेगात् खमुत्पत्य, निपत्य च मृगारिणा।
कर-प्रहारेण शिरश्चामरस्य पृथक् कृतम्॥१६

अर्थ—उसके बाद **सिंह** ने तेजी से आकाश में उछलकर और नीचे आकर चोट से **चामर** का सिर अलग कर दिया।

उदग्रश्च रणे देव्या, शिला-वृक्षादिभिर्हतः।
दन्त-मुष्टि-तलैश्चैव, करालश्च निपातितः॥१७

अर्थ—**देवी** द्वारा युद्ध में **उदग्र** नामक असुर भी पत्थर और वृक्षादि से मारा गया और **कराल** नामक असुर दाँत, मुट्ठी तथा हथेली की चोट द्वारा गिरा दिया गया।

व्याख्या—**दन्त**—कुछ टीकाकारों के अनुसार '**दन्त**' का अर्थ है हाथी-दाँत का बना एक विशेष प्रकार का अस्त्र।

देवी क्रुद्धा गदा-पातैश्चूर्णयामास चोद्धतम्।
वाष्कलं भिन्दिपालेन, बाणैस्ताम्रं तथाऽन्धकम्॥१८

अर्थ—**देवी** ने कुपित होकर **गदा** की चोटों से **उद्धत** नामक असुर को चूर-चूर कर दिया, **भिन्दिपाल** से **वाष्कल** नामक असुर को, **वाणों** से **ताम्र** और **अन्धक** नामक असुर को मार डाला।

उग्रास्यमुग्र-वीर्यं च, तथैव च महा-हनुम्।
त्रिनेत्रा च त्रिशूलेन, जघान परमेश्वरी॥१९

अर्थ—**तीन नेत्रवाली परम ऐश्वर्य-शालिनी भगवती** ने **उग्रास्य**, **उग्र-वीर्य** और **महा-हनु** नामक असुरों को **त्रिशूल** से मार डाला।

विडालस्यासिना कायात्, पातयामास वै शिरः।
दुर्धरं दुर्मुखं चोभौ, शरैर्निन्ये यम-क्षयम्॥२०

अर्थ—**खड्ग** से **विडाल** नामक असुर का सिर शरीर से गिरा दिया। **दुर्द्धर** और **दुर्मुख** नामक दो असुरों को **वाणों** से यमालय में पहुँचा दिया।

महिषासुर का युद्ध

एवं संक्षीयमाणे तु, स्व-सैन्ये महिषासुरः।
माहिषेण स्वरूपेण, त्रासयामास तान् गणान्॥२१

अर्थ—इस प्रकार अपनी सेना के क्षीण होने पर **महिषासुर** अपने महिष-रूप से उन **प्रमथ** सैनिकों को सताने लगा।

कांश्चित् तुण्ड-प्रहारेण, खुर-क्षेपैस्तथाऽपरान्।
लांगूल-ताडितांश्चान्याञ्छृङ्गाभ्यां च विदारितान्॥२२
वेगेन कांश्चिदपरान्, नादेन भ्रमणेन च।
निःश्वास-पवनेनान्यान्, पातयामास भू-तले॥२३

अर्थ—**महिषासुर** ने किन्हीं **प्रमथ सैनिकों** को मुख की चोट से और दूसरों को खुर की चोटों से तथा अन्यों को पूछ से चुटीला और दोनों सींगों से विदीर्ण कर, किन्हीं को अपनी तेज गति से, दूसरों को गर्जन से और मण्डलाकर गति से, अन्यों को निःश्वास की वायु से पृथ्वी पर गिरा दिया।

निपात्य प्रमथानीकमभ्यधावत सोऽसुरः।
सिंहं हन्तुं महा-देव्याः, कोपं चक्रे ततोऽम्बिका॥२४

अर्थ—वह **महिष असुर** प्रमथ-सेना को गिराकर **महा-देवी के सिंह** को मारने के लिए दौड़ा। तब **अम्बिका** ने क्रोध किया।

सोऽपि कोपान्महा-वीर्यः, खुर-क्षुण्ण-मही-तलः।
शृङ्गाभ्यां पर्वतानुच्चांश्चिक्षेप च ननाद च॥२५

अर्थ—महा-बलवान् उस **महिषासुर** ने भी क्रोध से अपने खुरों द्वारा पृथ्वी की सतह को चूर-चूर करते हुए दोनों सींगों से ऊँचे पर्वतों को फेंका और गर्जन किया।

वेग-भ्रमण-विक्षुण्णा, मही तस्य व्यशीर्यत।
लांगूलेनाहतश्चाब्धिः, प्लावयामास सर्वतः॥२६

अर्थ—उस **महिषासुर** के तेज घूमने से पिसी हुई पृथ्वी फट गई और पूँछ से चोट खाकर समुद्र ने सभी दिशाओं को अपने जल से भर दिया।

धुत-शृङ्ग-विभिन्नाश्च, खण्डं खण्डं ययुर्घनाः।
श्वासानिलांस्ताः शतशो, निपेतुर्नभसोऽचलाः॥२७

अर्थ—उसके काँपते हुए सींगों से फटकर बादल टुकड़े-टुकड़े हो गए। सैकड़ों पहाड़ उसके निश्वास की वायु द्वारा फेंके जाकर आकाश से गिरने लगे।

इति क्रोध-समाध्मातमापतन्तं महाऽसुरम्।
दृष्ट्वा सा चण्डिका कोपं, तद्-बधाय तदाऽकरोत्॥२८

अर्थ—इस प्रकार क्रोध से उद्दीप्त **महा-असुर** को आता हुआ देखकर उस समय उन **चण्डिका देवी** ने उसके वध के लिए क्रोध किया।

व्याख्या—**चण्डिका**—'**शान्तनवी टीका**' में इस नाम की व्युत्पत्ति यह दी है—**चण्डी स्वार्थे कण टाप्। चण्डि कोपे, चण्डते चण्डति वा चण्डिका।** अर्थात् '**चडि**' धातु का प्रयोग क्रोध के अर्थ में होता है। जो क्रोध करे, वही '**चण्डी**' या '**चण्डिका**' कहलाती है। **भगवती चण्डिका** के क्रोध से सभी डरते हैं। '**भुवनेश्वरी संहिता**' में लिखा है कि—

यद् भयाद् वाति वातोऽयं, सूर्यो भीत्या च गच्छति।
इन्द्राग्नि-मृत्यवस्तद्-वत्, सा देवी चण्डिका स्मृता॥

अर्थात् जिसके भय से यह **वायु** चलता है, **सूर्य** डर से गमन करता है; उसी प्रकार **इन्द्र**, **अग्नि** और **यम** भी अपने-अपने कार्य करते हैं, वही देवी '**चण्डिका**' नाम से कही जाती है।

सा क्षिप्त्वा तस्य वै पाशं, तं बबन्ध महाऽसुरम्।
तत्याज माहिषं रूपं, सोऽपि बद्धो महा-मृधे॥२९

अर्थ—उन **चण्डिका देवी** ने उस **महिषासुर** के ऊपर **पाश** फेंककर उस **महा-असुर** को बाँध लिया। उस **महिषासुर** ने भी महा-युद्ध में बाँधे जाने पर **महिष-स्वरूप** को छोड़ दिया।

ततः सिंहोऽभवत् सद्यो, यावत् तस्याम्बिका शिरः।
छिनत्ति तावत् पुरुषः, खड्ग-पाणिरदृश्यत॥३०

अर्थ—तब वह **महिषासुर** तुरन्त **सिंह** बन गया। **अम्बिका** जब तक उस सिंह का सिर काटें, तब तक वह **हाथ में खड्ग लिए एक पुरुष** दिखाई पड़ा।

तत एवाशु पुरुषं, देवी चिच्छेद सायकैः।
तं खड्ग-चर्मणा सार्धं, ततः सोऽभून्महा-गजः॥३१

अर्थ—इसके बाद **देवी** ने शीघ्र वाणों द्वारा **खड्ग** और **ढाल** सहित उस पुरुष को छेद डाला। तब वह **महिषासुर** एक बड़ा हाथी बन गया।

करेण च महा-सिंहं, तं चकर्ष जगर्ज च।
कर्षतस्तु करं देवी, खड्गेन निरकृन्तत॥३२

अर्थ—सूँड़ द्वारा **देवी के वाहन** उस **महा-सिंह** को खींचने लगा तथा चिग्घाड़ने लगा। **देवी** ने भी खींचनेवाली सूँड़ को खड्ग से काट डाला।

व्याख्या—**महा-सिंह**—'**देवी-पुराण**' में **देवी के वाहन सिंह का ध्यान** दिया है, जो यहाँ पीछे के पृष्ठों में अर्थ और व्याख्या सहित उद्धृत है।

वैकृतिक रहस्य में भी कहा है कि—

दक्षिणे पुरतः सिंहं, समग्रं धर्ममीश्वरम्।
वाहनं पूजयेद् देव्या, धृतं येन चराचरम्॥

अर्थात् **देवी-वाहन सिंह** समस्त **धर्म-स्वरूप ईश्वर** है, जो चराचर विश्व को धारण करता है।

ततो महाऽसुरो भूयो, माहिषं वपुरास्थितः।
तथैव क्षोभयामास, त्रैलोक्यं स-चराचरम्॥३३

अर्थ—इसके बाद **महा-असुर** पुनः **महिष** का शरीर ग्रहण कर पूर्व-वत् स्थावर-जङ्गम सहित तीनों लोकों को क्षुब्ध करने लगा।

ततः क्रुद्धा जगन्माता, चण्डिका पानमुत्तमम्।
पपौ पुनः पुनश्चैव, जहासारुण-लोचना॥३४

अर्थ—तब **जगन्माता चण्डिका** कुपित होकर **श्रेष्ठ मधु** को बारम्बार पीने लगीं और उस पान के फल के स्वरूप लाल नेत्रवाली होकर हँसने लगीं।

ननर्द चासुरः सोऽपि, बल-वीर्य-मदोद्धतः।
विषाणाभ्यां च चिक्षेप, चण्डिकां प्रति भूधरान्॥३५

अर्थ—वह असुर भी अपनी शक्ति और उत्साह के गर्व से उच्छृङ्खल होकर गर्जने लगा और दोनों सींगों से **चण्डिका** की ओर पर्वतों को फेंकने लगा।

सा च तान् प्रहितांस्तेन, चूर्णयन्ती शरोत्करैः।

उवाच तं मदोद्भूत-मुख-रागाकुलाक्षरम्।।३६

अर्थ—**मधु-पान** से आरक्त-मुखी वे **चण्डिका देवी** भी उस असुर के द्वारा फेंके उन पर्वतों को वाणों द्वारा चूर-चूर करती हुईं उससे अस्पष्ट (लड़खड़ाती) वाणी में बोलीं।

देव्युवाच ।।३७।।

गर्ज गर्ज क्षणं मूढ!, मधु यावत् पिबाम्यहम्।

मया त्वयि हतेऽत्रैव, गर्जिष्यन्त्याशु देवताः।।३८

अर्थ—**देवी चण्डिका** ने कहा—अरे मूर्ख! मैं जब तक **मधु-पान** करती हूँ, तब तक गर्जन कर ले। मेरे द्वारा तेरे मारे जाने पर यहीं शीघ्र ही **देव-गण** गर्जन करेंगे।

व्याख्या—**मधु**—मधूक (महुए) के पुष्पों से उत्पन्न मद्य। कुछ टीकाकार '**मधु**' का अर्थ शहद करते हैं, जो ठीक नहीं है। शहद पीने से आँखों और मुख में लाली नहीं आती। लालिमा '**मद्य**'-पान से ही आती है।

महिषासुर-वध

ऋषिरुवाच ।।३९।।

एवमुक्त्वा समुत्पत्य, साऽऽरूढा तं महाऽसुरम्।

पादेनाक्रम्य कण्ठे च, शूलेनैनमताडयत्।।४०

अर्थ—**ऋषि मेधस** ने **महाराज सुरथ** से कहा—वे **देवी** ऐसा कहकर उछलकर उस **महा-असुर** के ऊपर चढ़ बैठीं और पैर से गले को दाबकर उसे **शूल** से मारने लगीं।

ततः सोऽपि पदाक्रान्तस्तया निज-मुखात् ततः।

अर्ध-निष्क्रान्त एवासीद्, देव्या वीर्येण संवृतः।।४१

अर्थ—तब वह **महिषासुर** भी उन **देवी** के द्वारा पैर से दाबे जाने पर अपने मुख से केवल आधा शरीर ही निकाल पाया था कि उस समय **देवी** के उग्र तेज से अटक गया।

अर्ध-निष्क्रान्त एवासौ, युध्यमानो महाऽसुरः।

तया महाऽसिना देव्या, शिरश्छित्वा निपातितः।।४२

अर्थ—आधा निकला हुआ ही युद्ध-परायण वह असुर उन **देवी** के द्वारा **विशाल खड्ग** से सिर काटकर पृथ्वी पर गिरा दिया गया।

व्याख्या—**तया देव्या**—**भास्कर राय** ने अपनी '**गुप्तवती-टीका**' में लिखा है कि **भगवती चण्डिका** ने **मधु-पान** द्वारा **राजसी महा-लक्ष्मी-स्वरूप** धारण किया और इसी स्वरूप द्वारा **महिषासुर का वध** किया।

ततो हाहा-कृतं सर्वं, दैत्य-सैन्यं ननाश तत्।

प्रहर्षं च परं जग्मुः, सकला देवता-गणाः।।४३

अर्थ—तब हाहाकार करते हुए वह सारी **असुर-सेना** भाग खड़ी हुई और सभी **देव-गण** अत्यन्त आनन्द को प्राप्त हुए।

तुष्टुवुस्तां सुरा-देवीं, सह दिव्यैर्महर्षिभिः।

जगुर्गन्धर्व-पतयो, ननृतुश्चाप्सरो-गणाः॥४४

अर्थ—**देव-गण** स्वर्ग-स्थित **नारदादि महर्षियों** के साथ उन **देवी का स्तव** करने लगे। **विश्वावसु** आदि **गन्धर्व-पति** लोग गाने लगे और **उर्वशी** आदि अप्सराएँ नाचने लगीं।

***

तीसरे अध्याय के पाठान्तर

श्लोक-संख्या	'विशुद्ध चण्डी' का पाठ	प्रचलित पाठ
६	अभ्यधावत तां देवीं	अभ्यधावत् ततो देवीं
८	ततो जग्राह शूलं स	ततो जग्राह तच्छूलं
९	जाज्वल्य-मानं तेजोभी	जाज्वल्य-मानं तेजोभि
१०	तच्छूलं शतधा तेन, नीतं स च महाऽसुरः	तेन तच्छतधा नीतं, शूलं स च महाऽसुरः
१४	गज-कुम्भान्तरे स्थितः	गज-कुम्भान्तर-स्थितः
१७	दन्त-मुष्टि-तलैः	दत्त-मुष्टि-तलैः
१९	त्रिनेत्रा च	त्रिनेत्रं च
२२	खुर-क्षेपैः	क्षुर-क्षेपैः
२५	पर्वतानुच्चांश्चिक्षेप	पर्वतानुश्चैश्चिक्षेप
२७	खण्डं खण्डं ययुर्घना	१. खण्डं खण्डं ययुः घना २. खण्डं खण्डं मयुः घया
२७	श्वासानिलास्ताः शतशो	१. स्वासानिलास्ताः शतशा २. श्वासानिलाहताः शीर्णा ३. श्वासानिलास्ताः विशीर्णा
३२	कर्षतस्तु करं देवी	कर्षतस्तत् करं देवी
३३	वपुरास्थितः	१. वपुरास्थित, २. वपुराश्रित
४१	अर्ध-निष्क्रान्त एवासीद्	अर्ध-निष्क्रान्त एवाति
४२	शिरश्छित्वा निपातितः	महा-काल्या निपातित

मध्यम चरितम्

चतुर्थः अध्यायः

शक्रादि-स्तुति

॥ ऋषिरुवाच ॥१॥

शक्रादयः सुर-गणा, निहतेऽति-वीर्ये,
तस्मिन् दुरात्मनि सुरारि-बले च देव्या।
तां तुष्टुवुः प्रणति-नम्र-शिरोधरांसा,
वाग्भिः प्रहर्ष-पुलकोद्गम-चारु-देहाः॥२

अर्थ—**ऋषि मेधस** ने **महाराज सुरथ** से कहा—अत्यन्त बलवान् उस दुष्टात्मा **महिषासुर** और **असुर सेना** के **देवी** द्वारा मारे जाने पर **इन्द्रादि देव-गण** प्रणाम करने में गर्दन और कन्धे झुकाए हुए तथा अत्यन्त आनन्द से उत्पन्न रोमाञ्च से शोभायमान शरीरवाले होकर विविध वचनों से उन **देवी की स्तुति** करने लगे।

व्याख्या—**सुर-गणाः**—पिछले अध्याय (३।४४) में बताया है कि **देवताओं के साथ महर्षि** लोग **देवी का स्तव** करने लगे। उसी का विस्तार यहाँ हुआ है। **'लक्ष्मी-तन्त्र'** में भी कहा है कि—

महिषास्त-करी-सूक्तं, दुष्टं देवैर्महर्षिभिः।

अर्थात् **महिष** को समाप्त करनेवाली **देवी की स्तुति देवताओं और महर्षियों द्वारा** की गई।

देव्या यया ततमिदं जगदात्म-शक्त्या,
निश्शेष - देव - गण - शक्ति - समूह - मूर्त्या।
तामम्बिकामखिल - देव - महर्षि - पूज्याम्,
भक्त्या नताः स्म विदधातु शुभानि सा नः॥३

अर्थ—**समस्त देवताओं की शक्ति** की समष्टि ही जिनका स्वरूप है, जिन **देवी** के द्वारा अपने प्रभाव से यह ब्रह्माण्ड व्याप्त है, जो **समस्त देवताओं और महर्षियों की पूज्या** हैं, उन **जगन्माता** को भक्ति-पूर्वक हम लोग प्रणाम करते हैं। वे हम लोगों का सब प्रकार मङ्गल करें।

व्याख्या—**स्म**—यह अव्यय शब्द है। भूत-काल के अर्थ में, **'अस्मद्'** (मैं) के अर्थ में अथवा पाद (चरण) की पूर्ति के लिए इसका प्रयोग किया जाता है।

यस्याः प्रभावमतुलं भगवाननन्तो,
ब्रह्मा हरश्च न हि वक्तुमलं बलं च।
सा चण्डिकाऽखिल-जगत्-परिपालनाय,
नाशाय चाशुभ-भयस्य मतिं करोतु॥४

अर्थ—**भगवान् विष्णु, ब्रह्मा** और **शिव** जिन देवी के अतुलनीय माहात्म्य और शक्ति का वर्णन करने में समर्थ नहीं हैं, वह **चण्डिका देवी** समस्त विश्व का पालन करने और अमङ्गल के डर को नष्ट करने के लिए इच्छा करें।

या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः,
पापात्मनां कृत-धियां हृदयेषु बुद्धिः।
श्रद्धा सतां कुल-जन-प्रभवस्य लज्जा,
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि! विश्वम्॥५

अर्थ—जो देवी पुण्यवानों के घरों में **लक्ष्मी-स्वरूपा**, पापियों के घरों में **अलक्ष्मी-स्वरूपा**, निर्मल बुद्धिवालों के हृदयों में **सद्‌बुद्धि-रूपा**, सज्जनों में **श्रद्धा-रूपा**, सत्कुल में उत्पन्न व्यक्तियों की **लज्जा-रूपा** हैं, उन तुमको हम प्रणाम करते हैं। हे **देवि चण्डिके**! जगत् का पालन करो।

व्याख्या—**अलक्ष्मीः**—इसके दूसरे नाम हैं '**निर्ऋति**' और '**ज्येष्ठा देवी**'। '**पद्म-पुराण**' के उत्तर खण्ड में बताया है कि **समुद्र-मन्थन** से '**अलक्ष्मी**' उत्पन्न हुईं। ये **कृष्ण-वर्णा, द्वि-भुजा, कृष्ण-वस्त्रा, लौह भूषणों से विभूषिता, शर्करा-चन्दन-लिप्ता, सम्मार्जनी (झाड़ू) हस्ता** और **गर्दभारूढ़ा** हैं। इन्हें कलह (झगड़ा) प्रिय है, दरिद्रता इनकी सहेली है, अनाचार-युक्त घर इनका प्रिय निवास-स्थान है। **दीपान्विता अमावास्या** के प्रदोष-काल में गोबर की पुतली बनाकर काले पुष्प से बाँएँ हाथ द्वारा इनकी पूजा की जाती है। सूप बजाकर प्रक्षेप या निशीथ (रात्रि) के समय इनका विसर्जन किया जाता है।

श्रद्धा—नागो जी के अनुसार '**श्रद्धा**' से तात्पर्य है आस्तिकता का बढ़ना। '**तत्त्व-प्रकाशिका**' टीका में बताया है कि **वेदों** के अर्थ में दृढ़ विश्वास होना ही '**श्रद्धा**' है।

कृत-धियाँ—'**कृत**' शब्द के दो अर्थ हैं—१ पुण्य और २ युग। **काशीनाथ** ने इस पद की व्याख्या निम्न प्रकार की है—

कृते पुण्ये विहिते कर्मणि वा बुद्धिः येषां तेषाम्।

अर्थात् पुण्य या विहित कर्म करने में जिनकी बुद्धि लगी है, उनके।

'**सप्तशती**' के उक्त पाँचवें श्लोक में यह बताया है कि देवी **लक्ष्मी-अलक्ष्मी, सुबुद्धि-कुबुद्धि, श्रद्धा-अश्रद्धा, लज्जा-अलज्जा** अर्थात् **दैवी** एवं **आसुरी** दोनों सम्पत्ति-रूपों में जीवों के हृदय में रहती हैं। '**गीता**' (१०।४।५) में भी **भगवान्** ने ऐसा ही कहा है—

बुद्धिर्ज्ञानमसम्मोहः, क्षमः सत्यं दमः शमः।

सुखं दुःखं भवोऽभावो, लयं चाभयमेव च॥

अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः।

भवन्ति भावा भूतानां, मत्त एव पृथग्-विधाः॥

अर्थात् **बुद्धि, ज्ञान, असम्मोह, क्षमा, सत्य, दम, शम, सुख, दुःख, भव (उत्पत्ति), अभाव (नाश), भय, अभय, अहिंसा, समता, तुष्टि, तप, दान, कीर्ति, अकीर्ति**—ये सभी भिन्न-भिन्न भाव प्राणियों के (अपने-अपने कर्मानुसार) मुझसे ही उत्पन्न होते हैं।

किं वर्णयाम तव रूपमचिन्त्यमेतत्,

किं चाति-वीर्यमसुर-क्षय-कारि भूरि।

किं चाहवेषु चरितानि तवाद्भुतानि,

सर्वेषु देव्यसुर - देव - गणादिकेषु॥६

अर्थ—हे देवि! तुम्हारे इस अचिन्तनीय रूप का वर्णन किस प्रकार करें? फिर **असुर-संहारकारी अत्यधिक महान् बल** और पुनः **असुर, देवता, प्रमथ-सैन्यादि** के युद्ध में तुम्हारे जो विलक्षण कार्य-कलाप हुए हैं, उन सबका ही कैसे वर्णन करें?

व्याख्या—**देवी का रूप, बल** और **चरित**—यह सभी वर्णन के परे है।

हेतुः समस्त-जगतां त्रिगुणाऽपि दोषै-

र्न ज्ञायसे हरि-हरादिभिरप्यपारा।

सर्वाश्रयाऽखिलमिदं जगदंश-भूत-

मव्याकृता हि परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या॥७

अर्थ—तुम **सारे विश्व की मूल कारण** हो। **सत्त्व-रज-तम**—इन तीन गुणों से युक्त होती हुई भी राग-द्वेषादि दोषों से युक्त व्यक्तियों द्वारा तुम जानी नहीं जातीं। **विष्णु, शिव** आदि द्वारा भी तुम अज्ञेया हो। तुम सबकी अवलम्ब-स्वरूपा हो। यह समस्त संसार तुम्हारा एक अंश मात्र है। तुम्हीं विकार-रहिता पहली, **मूल प्रकृति** हो।

व्याख्या—**त्रिगुणा**—**'शान्तनवी'** टीका में इस पद का यह अर्थ बताया है कि भगवती **रजो-गुण से ब्राह्मी-शक्ति** के रूप में जगत् की सृष्टि करती हैं, **सत्त्व-गुण** से **वैष्णवी-शक्ति** के रूप में पालन करती हैं और **तमो-गुण** से **माहेश्वरी-शक्ति** के रूप में संहार करती हैं।

दोषैः न ज्ञायसे—तुम त्रिगुणा-मूर्ति से जगत्-रूप में प्रतिभात होती हो। तुम्हीं जगत् हो और तुम्हीं नाम-रूप हो, किन्तु राग-द्वेषादि से युक्त रहने के कारण जीव तुम्हें नहीं जान पाता?

अंश-भूतम्—भगवती का एक अंश मात्र जगत् के रूप में अभिव्यक्त हुआ है। **'ऋग्वेद'**,

पादोऽस्य विश्वा भूतानि, त्रि-पादस्याऽमृतं दिवि।

अर्थात् समस्त जीव इस परम पुरुष के '**पाद**' अर्थात् एक-चौथाई अंश मात्र हैं। उनका शेष अमृत-मय त्रि-पाद स्व-प्रकाश-स्वरूप में स्थित है अर्थात् विश्वातीत है। '**गीता**' (१०।४२) में भी है—

विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितं जगत्।

अर्थात् मैं इस सारे जगत् को एक अंश मात्र द्वारा धारण कर विराजमान् हूँ।

अव्याकृता—नागो जी ने इस पद का अर्थ बताया है—'**षड्-विध-विकार-रहिता**' अर्थात् भगवती में **१ जन्म, २ अस्तित्व, ३ वृद्धि, ४ विपरिणाम, ५ अपक्षय** और **६ विनाश**—ये छः विकार नहीं हैं। कुछ टीकाकारों के अनुसार इस पद का अर्थ है—'**अव्यक्ता**'।

परमा—नागो जी ने इस पद की व्याख्या निम्न प्रकार की है—

परः आत्मा मीयते जीव-भावेन विच्छिद्यते यथा सा।

अर्थात् जिसके द्वारा अवच्छेद-शून्य परमात्मा जीव-भाव से अवच्छिन्न होता है, वह '**परमा**' कही गई है।

प्रकृतिः—'**ब्रह्म-वैवर्त्त-पुराण**' के प्रकृति-खण्ड (१।५-८) में '**प्रकृति**' के लक्षण बताए हैं। यथा—

प्रकृष्ट-वाचकः प्रश्च, कृतिश्च सृष्टि-वाचकः।
सृष्टौ प्रकृष्टा या देवी, प्रकृतिः सा प्रकीर्त्तिता॥
गुणे प्रकृष्ट-सत्त्वे च, प्र-शब्दो वर्त्तते श्रुतौ।
मध्यमे रजसि कृश्च, ति-शब्दस्तमसि स्मृतः॥
त्रिगुणात्म-स्वरूपा या, सर्व-शक्ति-समन्विता।
प्रधानं सृष्टि-करणे, प्रकृतिस्तेन कथ्यते॥
प्रथमे वर्त्तते प्रश्च, कृतिश्च सृष्टि-वाचकः।
सृष्टेराद्या च या देवी, प्रकृतिः सा प्रकीर्त्तिता॥

अर्थात् '**प्र**' शब्द का अर्थ है प्रकृष्ट और '**कृति**' शब्द का अर्थ है सृष्टि। अतएव सृष्टि करने में जो देवी प्रकृष्टा है, वही '**प्रकृति**'-नाम से कही जाती है। श्रुति में '**प्र**' शब्द से प्रकृष्ट सत्त्व-गुण, '**कृ**' शब्द से रजो-गुण और '**ति**' शब्द से तमो-गुण का आशय है। अतः जो **त्रिगुणात्मिका** है, **सर्व-शक्ति-सम्पन्ना** है और **सृष्टि-व्यापार में प्रधाना** है, उसी को '**प्रकृति**' कहते हैं। '**प्र**' शब्द का अर्थ है प्रथम और '**कृति**' शब्द का अर्थ है सृष्टि। अतएव जो **सृष्टि की आदि-भूता** है, वही '**प्रकृति**' कही जाती है।

यस्याः समस्त-सुरता समुदीरणेन,
तृप्तिं प्रयान्ति सकलेषु मखेषु देवि!

स्वाहाऽसि वै पितृ-गणस्य च तृप्ति-
हेतुरुचार्यसे त्वमत एव जनैः स्वधा च॥८

अर्थ—हे देवि! समस्त यज्ञों में जिस मन्त्र के सम्यक् (शुद्ध) उच्चारण से सभी देवता तृप्त होते हैं, वह '**स्वाहा**'—मन्त्र तुम्हीं हो और तुम्हीं पितृ-गण की तृप्ति की कारण '**स्वधा**'—मन्त्र हो। इसी से लोगों द्वारा तुम्हीं '**स्वाहा**' और '**स्वधा**' मन्त्र-रूपों में उच्चारित होती हो।

व्याख्या—**देव-यज्ञ** और **पितृ-यज्ञ** के अनुष्ठानों की साधन-रूपा होकर देवी जगद्-मात्र को सम्पन्न करने में सहाय-भूता होती हैं। **वैदिक कर्म-काण्ड** की मूल-भूता होकर वे ही जीव को **धर्म, अर्थ** और **काम**—ये तीन वर्ग प्रदान करती हैं तथा **ज्ञान-काण्ड** की भी साधन-स्वरूपा होकर वे ही जीव को **मोक्ष** देती हैं। आगे के मन्त्र में इसी भाव को स्पष्ट किया है—

या मुक्ति-हेतुरविचिन्त्य-महा-व्रता त्व-
मभ्यस्यसे सु-नियतेन्द्रिय-तत्त्व-सारैः।
मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्त-समस्त-दोषै-
र्विद्याऽसि सा भगवती परमा हि देवि!॥९

अर्थ—हे देवि! जो विद्या मोक्ष की कारण है, दुस्साध्य ब्रह्मचर्यादि महा-व्रत जिस विद्या के साधन हैं, वह **परमा ब्रह्म-विद्या-स्वरूपिणी** तुम्हीं हो। अतः संयतेन्द्रिय, तत्त्व-निष्ठ और सभी दोषों से रहित मुमुक्षु मुनि लोग तुम्हारी साधना करते हैं।

व्याख्या—**अविचिन्त्य-महा-व्रता**—**पातञ्जल दर्शन,** साधन-पाद, ३०-३१ के अनुसार—**१ अहिंसा, २ सत्य, ३ अस्तेय (अचौर्य), ४ ब्रह्मचर्य** और **५ अपरिग्रह**—इन पाँच व्रतों को '**यम**' कहते हैं। यह पञ्च-विध '**यम-साधन**' यदि जाति, देश, काल और समय के द्वारा टूटे नहीं अर्थात् लगातार चलता रहे और सभी दशाओं में स्थिर बना रहे, तो उसे '**महा-व्रत**' माना जाता है। यथा—

अहिंसा - सत्यास्तेय - ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः,
जाति-देश-काल-समयावच्छिन्नाः सार्वभौमा महा-व्रतम्।

ब्रह्म-विद्या को पाने के लिए साधक को **अहिंसादि पाँच महा-व्रतों** का नियमित रूप से लगातार अनुष्ठान करना होता है। यह अत्यन्त दुस्साध्य क्या, अचिन्तनीय है। इसी से **ब्रह्म-लाभ** के पथ के सम्बन्ध में '**कठोपनिषद्**' (३।१४) में कहा है—

क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया, दुर्गं पथस्तत् कवयो वदन्ति।

अर्थात् जिस प्रकार छुरे की तेज धार का अतिक्रमण करना अति कठिन है, उसी प्रकार उस पथ को पण्डित लोग दुर्गम बताते हैं।

सुनियतेन्द्रिय-तत्त्व-सारैः—जो जितेन्द्रिय हैं और **ब्रह्म** को एक-मात्र सार वस्तु मानते हैं, वही **ब्रह्म-विद्या की साधना** कर सकते हैं।

भगवती—भगवत्-प्राप्ति की साधन-भूता (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

शब्दात्मिका सु-विमलर्ग्यजुषां निधानमुद्गीथ-
रम्य - पद - पाठ - वतां च साम्नाम्।
देवी त्रयी भगवती भव - भावनाय,
वार्त्ता च सर्व-जगतां परमार्ति - हन्त्री॥१०

अर्थ—तुम **शब्द-ब्रह्म-स्वरूपा** हो, तुम सुविमल **ऋक्** और **यजु** के मन्त्र-समूह एवं **प्रणव**-युक्त और रमणीय पद-पाठ-युक्त **साम**-मन्त्र-समूह की आश्रय हो। तुम **वेद-त्रय-रूपिणी** हो, दीप्ति-शीला और सर्वैश्वर्य-मयी हो। संसार की स्थिति की रक्षा के लिए **कृषि, वाणिज्यादि वृत्ति-रूपा** हो और सारे **जगत् के घोर दुःख को नष्ट करनेवाली** हो।

व्याख्या—इस दसवें श्लोक के पूर्व नवें श्लोक में '**पर-ब्रह्म**'-**रूपिणी देवी की स्तुति** की गई है। अब प्रस्तुत श्लोक में '**शब्द-ब्रह्म**'-**रूपिणी देवी की स्तुति** करते हैं। देवी '**पर-ब्रह्म**' और '**शब्द-ब्रह्म**' दोनों रूपवाली हैं। '**त्रिपुरा-तापिनी उपनिषद्**' (५।२०) में कहा है—

द्वे ब्रह्मणी हि मन्तव्ये, शब्द-ब्रह्म परं च यत्।
शब्द-ब्रह्मणि निष्णातः, परं-ब्रह्माधिगच्छति॥

अर्थात् '**शब्द-ब्रह्म**' और '**पर-ब्रह्म**' रूप से **ब्रह्म** को द्विविध जानो। जो '**शब्द-ब्रह्म**' में तत्परता प्राप्त कर लेता है, वह '**पर-ब्रह्म**' के स्वरूप को जान जाता है।

शब्दात्मिका—'**त्रिपुरा-तापिनी उपनिषद्**' (४।२१) में कहा है कि—

पञ्चाशद्-वर्ण-विग्रहेन अकारादि-क्षकारान्तेन व्याप्तानि भुवनानि शास्त्राणिच्छन्दांसि इत्येवं भगवती सर्वं व्याप्नोति इत्येव तस्यै वै नमो नमः।

अर्थात् देवी भगवती **अकारादि-क्षकारान्त-पञ्चाशत्-वर्णात्मक-मूर्ति** द्वारा सारे भुवनों, समस्त शास्त्रों, सभी छन्दों में व्याप्त होकर विराजमाना हैं। उन **भगवती** को बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

सु-विमल—वेद अपौरुषेय माने गए हैं। वे विशुद्ध ज्ञान-प्रदायक हैं। इसी से उन्हें '**सु-विमल**' कहा है।

उद्गीथ-रम्य-पद-पाठ-वताम्—'**उद्गीथ**' अर्थात् **प्रणव (ॐ)**, उससे जो पद-पाठ रमणीय है, उसे करनेवालों की तुम आश्रय हो। इस पद का एक पाठान्तर है—'**उद्गीथ-रम्य-पद-पाठवताम्**'। इसके अनुसार अर्थ है कि उदात्तादि स्वरों के प्रयोग से जिसका पद-पाठ रमणीय है, उस '**साम-वेद**' की तुम आश्रय हो।

वार्त्ता—कृषि, वाणिज्य और पशु-पालन—इन तीन प्रकार की वृत्तियों की आश्रय-भूता विद्या को '**वार्त्ता**' कहते हैं। इस सम्बन्ध में '**विष्णु-पुराण**' की निम्न उक्ति है—

कृषिर्वाणिज्यं तद्-वच्च, तृतीयं पशु-पालनम्।
विद्या ह्येता महा-भाग! वार्त्ता वृत्ति-त्रयाश्रया:॥

मेधाऽसि देवि! विदिताऽखिल-शास्त्र-सारा,
दुर्गाऽसि दुर्ग - भव - सागर - नौर - सङ्गा।
श्री: कैटभारि - हृदयैक - कृताधिवासा,
गौरी त्वमेव शशि-मौलि-कृत-प्रतिष्ठा॥११

अर्थ—हे देवि! जिसके द्वारा सब शास्त्रों का सार ज्ञात होता है, वह **मेधा-रूपिणी सरस्वती** तुम हो। तुम दुर्गम संसार-रूप सागर में सङ्ग-रहिता-अद्वितीया नौका-स्वरूपा **दुर्गा** भी तुम हो। तुम्हीं **विष्णु** के हृदय में एक-मात्र निवास करनेवाली **लक्ष्मी** हो और तुम्हीं **शिव** के अर्द्धाङ्ग में प्रतिष्ठिता **गौरी** हो।

व्याख्या—**नागो जी** के अनुसार इस श्लोक के पूर्वार्द्ध में देवी का '**ब्राह्मीत्व**' और उत्तरार्द्ध में '**वैष्णवीत्व**' तथा '**रौद्रीत्व**' प्रतिपादित किया गया है।

मेधा—'**तत्त्व-प्रकाशिका**' के अनुसार इसका अर्थ है धारणा करनेवाली बुद्धि और **नागो जी** के अनुसार इससे तात्पर्य है **सरस्वती** का।

दुर्गा—'**तत्त्व-प्रकाशिका**' के अनुसार दुर्ज्ञेया, अगम्य-स्वरूपा। कुछ टीकाकारों ने इस चरण का अर्थ यह किया है—तुम '**दुर्गा**' अर्थात् दुरधिगम्या हो; दुस्तर भव-सागर उत्तीर्ण करने के लिए नौका-स्वरूपा हो और निर्लेपा हो।

असङ्गा—१ अद्वितीया, २ निर्लेपा, अत: चिदानन्द-मयी। देवी स्वयं नौका और कर्ण-धार दोनों ही हैं। अत: जीव को संसार-सागर से पार कराने में उन्हें **अद्वितीया नौका-स्वरूपा** कहा है।

गौरी—'**देवी-पुराण**' (३७।७) में कहा है कि—

योगाग्निना तु या दग्धा, पुनर्जाता हिमालये।
पूर्ण-सूर्येन्दु-वर्णाभा, अतो गौरीति संस्मृता॥

अर्थात् देवी ने योगाग्नि से अपने शरीर को जलाकर पुन: हिमालय में जन्म लेकर सूर्य और पूर्ण-चन्द्र के समान प्रभा-युक्त देह धारण की। इसी से उनका नाम '**गौरी**' है।

ईषत्-सहासममलं परि-पूर्ण-चन्द्र-बिम्बानु-
कारि - कनकोत्तम - कान्ति - कान्तम्।
अत्यद्भुतं प्रहृतमाप्त-रुषा तथापि,
वक्त्रं विलोक्य सहसा महिषासुरेण॥१२

अर्थ—मृदु हास्य से युक्त, निर्मल, पूर्ण-चन्द्र-मण्डल के समान, श्रेष्ठ स्वर्ण की जैसी प्रभा से युक्त तुम्हारे मनोरम मुख को देखकर भी क्रोधान्वित **महिषासुर** द्वारा हठात् प्रहार किया गया, यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है।

व्याख्या—**नागो जी** लिखते हैं कि **जगन्मोहिनी देवी** को देखकर भी **महिषासुर** रूप के कारण होनेवाले मोह में नहीं पड़ा, इससे उसके विशेष मनोबल का परिचय मिलता है। ऐसे बलवान **महिषासुर** का भी वध देवी ने किया। यह देवी के परमोत्कर्ष को सिद्ध करता है।

'गुप्तवती' में बताया है कि देवी के ऐसे मुख के दर्शन से **षड्-रिपु** का नाश होकर **चित्त की शुद्धि** हो जाती है, जिससे निश्चित ही तुरन्त **पर-तत्त्व का ज्ञान** होता है, किन्तु **महिषासुर** को यह सुफल नहीं मिला क्योंकि क्रोधावेश होने से उसके पाप की वृद्धि हो गई थी।

दृष्ट्वा तु देवि! कुपितं भ्रुकुटी-कराल-
मुद्यच्छशाङ्क-सदृशच्छवि यन्न सद्यः।
प्राणान् मुमोच महिषस्तदतीव चित्रं,
कैर्जीव्यते हि कुपितान्तक-दर्शनेन॥१३

अर्थ—हे देवि! तुम्हारे क्रुद्ध, टेढ़ी भौं से भीषण, उदीयमान चन्द्र जैसी प्रभावाले मुख को देखकर भी **महिषासुर** ने जो तुरन्त प्राणों को नहीं छोड़ा, यह बहुत ही आश्चर्य की बात है क्योंकि क्रुद्ध यम को देखकर कौन जीवित रह सकता है?

व्याख्या—**उद्यच्छशाङ्क-सदृशच्छवि**—**नागो जी** ने लिखा है कि उदीयमान शशि से कुपिता देवी के मुख की गहरी लालिमा व्यञ्जित होती है। **'तत्त्व-प्रकाशिका'** के अनुसार **'शशाङ्क'** शब्द से पूर्ण-चन्द्र का बोध होता है।

देवि! प्रसीद परमा भवती भवाय,
सद्यो विनाशयसि कोप-वती कुलानि।
विज्ञातमेतदधुनैव यदस्तमेतन्नीतं
बलं सु - विपुलं महिषासुरस्य॥१४

अर्थ—हे देवि! प्रसन्न होओ। तुम्हारे प्रसन्न होने से कल्याण होगा, क्रुद्ध होने पर तुम पापियों के वंशों को तुरन्त ही नष्ट कर देती हो, यह अभी ज्ञात हुआ कि इसी कारण **महिषासुर** की यह अत्यन्त विशाल सेना ध्वंस को प्राप्त हो गई।

व्याख्या—**परमा भवती भवाय**—टीकाकारों ने इस पद का यह अर्थ किया है कि **'सर्वोत्तमा तुम मङ्गल-विधान करती हो।'**

ते सम्मता जन-पदेषु धनानि तेषां,
तेषां यशांसि न च सीदति बन्धु-वर्गः।
धन्यास्त एव निभृतात्मज-भृत्य-दारा,
येषां सदाऽभ्युदयदा भवती प्रसन्ना॥१५

अर्थ—तुम प्रसन्न होकर जिन लोगों को सदा उन्नति देती हो, वे लोक-समाज में सम्मानित होते हैं। उन्हें धन और यश का लाभ होता है, उनके धर्मादि चतुर्वर्ग का क्षय नहीं होता, उनके पुत्र, सेवक और पत्नी विनम्र होते हैं और वे ही लोग धन्य हैं।

व्याख्या—**देवी की प्रसन्नता का पारमार्थिक फल** पहले बता चुके हैं। अब इस श्लोक में **ऐहिक फल** बताया है।

अभ्युदयदा—सर्व-मनोरथदा (**नागो जी**)। '**तत्त्व-प्रकाशिका**' में इस पद की व्याख्या निम्न प्रकार की गई है—

अभि अभितः सर्वतः, उदयः समृद्धिः अभ्युदयः।

अर्थात् सम्यक् प्रकार से भौतिक उन्नति को '**अभ्युदय**' कहते हैं।

धर्म्याणि देवि! सकलानि सदैव
कर्माण्यत्यादृतः प्रति-दिनं सुकृती करोति।
स्वर्गं प्रयाति च ततो भवती-प्रसादाल्लोक-
त्रयेऽपि फलदा ननु देवि! तेन॥१६

अर्थ—हे देवि! तुम्हारे अनुग्रह से पुण्यवान् व्यक्ति प्रति-दिन सर्वदा ही अत्यन्त श्रद्धावान् होकर धर्म-विहित सभी कर्मों को करता है और उसके बाद स्वर्ग को जाता है। हे देवि! इसी से तीनों लोकों में निश्चय ही तुम फल देनेवाली हो।

व्याख्या—**अत्यादृतः**—अनुष्ठेय सभी कर्म अत्यन्त श्रद्धा के साथ सम्पन्न करने होते हैं। अश्रद्धा के साथ करने से उनका कोई फल नहीं मिलता। '**गीता**' (१७।२८) में कहा है कि—

अश्रद्धया हुतं दत्तं, तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ! न च तत्प्रेत्य नो इह॥

अर्थात् **अश्रद्धा** के साथ जो होम किया जाता है, जो दान दिया जाता है, जो तप किया जाता है और जो कुछ किया जाता है, हे **पार्थ!** वह सभी असत् कहा जाता है। वह न इस लोक में फल देता है और न पर-लोक में।

प्रयाति च—यहाँ 'च' से यह समझें कि स्वर्ग मिलने के बाद क्रमशः **मोक्ष** भी मिलता है।

भवती-प्रसादात्—**स्वर्ग-लाभ** या **मोक्ष-लाभ**—दोनों ही **भगवती की कृपा** पर निर्भर हैं। उनकी कृपा के बिना कोई फल नहीं मिलता।

लोक-त्रयेऽपि फलदा—भगवती ही जीव को इस लोक में सुकर्मी बनाती हैं, वही पर-लोक में स्वर्ग का भोग कराती हैं और वही **मोक्ष-धाम में मुक्ति** प्रदान करती हैं।

दुर्गे! स्मृता हरसि भीतिमशेष-जन्तोः,
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव-शुभां ददासि।
दारिद्र्य-दुःख-भय-हारिणि! का त्वदन्या,
सर्वोपकार - करणाय सदाऽऽर्द्र - चित्ता॥१७

अर्थ—सङ्कट होने पर तुम्हें स्मरण करने से तुम सभी प्राणियों के भय को दूर करती हो। स्वस्थ व्यक्तियों द्वारा स्मरण करने से तुम उन्हें अत्यन्त कल्याणकारी बुद्धि देती हो। **दरिद्रता,**

दु:**ख** और **भय** को दूर करनेवाली हे देवि! तुम्हारे सिवा सबके उपकार करने में सदैव करुण-हृदयवाली और कौन है?

व्याख्या—**दुर्गे**—१ दुर्गम सङ्कट में, २ हे दुर्गे—ये दो अर्थ इस पद के हैं। भगवती का स्मरण करने से वह सभी प्राणियों का भय दूर करती हैं। **'त्रिपुरा-रहस्य', माहात्म्य-खण्ड** (४६।८३) में कहा है—

दुर्गेषु नित्यं भव-सङ्कटेषु, दुरन्त-चिन्ता हि-निगीर्यमाणान्।
शरण्य-हीनान् शरणागतार्त्ति-निवारिणी त्वं परि-पाहि दुर्गे!॥

अर्थात् हे **दुर्गे**! हम लोग सदैव संसार-सङ्कटों में पड़कर कठिन चिन्ता-रूप अजगर द्वारा निगले जा रहे हैं। हम आश्रय-हीन हैं। तुम शरण में आनेवालों के दु:ख दूर करनेवाली हो। हमारी रक्षा करो।

स्वस्थै:—(१) **'तत्त्व-प्रकाशिका'** में इस पद की व्याख्या निम्न प्रकार से की गई है—

यस्मिन् आत्मनि तिष्ठतीति स्वस्थै:, आत्मनाऽऽत्म-विचार-परा:।

अर्थात् **'स्व'** या आत्मा में जो एक-निष्ठ हैं, आत्मा-अनात्मा के विचार करने में लगे हुए साधक-गण। वे ही **'स्वस्थ'** कहलाते हैं।

(२) **नरसिंह चकवर्ती** ने इस पद का अर्थ किया है **'सुस्थ-चित्तै:'**।

शुभां मतिं—**'शान्तनवी टीका'** के अनुसार **धर्म, अर्थ, काम** और **मोक्ष**—इस चतुर्वर्ग के फल को दिलानेवाली बुद्धि। अथवा एक-मात्र भगवती के मन्त्र, उनके ध्यान और भजन में एक-निष्ठा रखनेवाली बुद्धि। **'गीता'** (१०।१०) में **भगवान्** ने कहा है कि—

तेषां सतत-युक्तानां, भजतां प्रीति-पूर्वकम्।
ददामि बुद्धि-योगं तं, येन मामुप-यान्ति ते॥

अर्थात् जो लोग निरन्तर मुझमें चित्त लगाकर प्रेम से मेरा भजन करते हैं, उन्हें मैं वह **बुद्धि-योग** देता हूँ, जिससे वे मुझे प्राप्त कर लेते हैं।

सर्वोपकार-करणाय—**'शान्तनवी टीका'** में इसे स्पष्ट करते हुए कहा है कि भगवती भक्त-अभक्त, उदासीन और शत्रु—सभी के उपकार में लगी रहती हैं। यथा—

अग्न्यादितो भयं हर्तुं, मतिं दातुमनुत्तमाम्।
देवि! त्वदपरा काऽस्ति, सर्वोपकृति-कारिणी॥

अर्थात् हे देवि! अग्नि आदि से होनेवाले भय को दूर करने में और श्रेष्ठ बुद्धि देने में सब जीवों का उपकार करनेवाली तुम्हारे सिवा कौन है?

एभिर्हतैर्जगदुपैति सुखं तथैते,
कुर्वन्तु नाम नरकाय चिराय पापम्।

संग्राम-मृत्युमधिगम्य दिवं प्रयान्तु,
मत्वेति नूनमहितान् विनिहंसि देवि!॥१८

अर्थ—हे देवि! इन असुरों के मारे जाने से संसार शान्ति पाए और ये असुर चिर-काल तक नरक-भोग के लिए पाप न करें, युद्ध में मृत्यु पाकर स्वर्ग को जाएँ—निश्चय ही यह मानकर, तुम **अहित-कारी असुरों का नाश** करती हो।

व्याख्या—देवी यदि **सर्व-हित-कारिणी** हैं, तो **असुरों का वध** उन्होंने क्यों किया, इसे यहाँ समझाया है। देवी द्वारा असुरों को मारने से जगत् का और पापियों को स्वर्ग देने से असुरों का उपकार होना सिद्ध होता है। इसी प्रसङ्ग में '**देवी-भागवत**' (५।२९।२१) में कहा है कि—

चित्रं! त्वयाऽरिं-जनताऽपि दयार्द्र-भावाद्धत्वा रणे शित-शरैर्गमिता द्यु-लोकम्।
नोचेत् स्व-कर्म-निचिते निरये नितान्तं, दुःखाति-दुःख-गतिमापदमापतेत् सा॥

अर्थात् आपने दयार्द्र-भाव से शत्रुओं को युद्ध में तेज वाणों से मारकर स्वर्ग-धाम को पहुँचा दिया, यह आश्चर्य की बात है। अन्यथा वे लोग अपने कर्मों के फल-स्वरूप कठिन दु:ख-दायक नरक की आपत्ति में गिरते।

नाम—यह शब्द निषेध के अर्थ में प्रयोग किया गया है। यथा—

संज्ञायां च निषेधे च, प्रकाश्ये 'नाम' चोच्यते।

अर्थात् संज्ञा में, निषेध में, प्रकट करने में '**नाम**'-शब्द का प्रयोग होता है।

दृष्ट्वैव किं न भवती प्रकरोति भस्म,
सर्वासुरानरिषु यत् प्रहिणोषि शस्त्रम्।
लोकान् प्रयान्तु रिपवोऽपि हि शस्त्र-पूता,
इत्थं मतिर्भवति तेष्वपि तेऽति-साध्वी॥१९

अर्थ—तुम देखकर ही सभी असुरों को क्या भस्म नहीं कर सकती थीं? शत्रुओं पर तुम जो शस्त्र फेंकती हो, उससे शत्रु भी शस्त्र की चोट से पवित्र होकर निश्चय ही स्वर्ग को जाएँ, उन शत्रुओं पर भी इस प्रकार का तुम्हारा अत्यन्त उदार मनोभाव है।

व्याख्या—देवी की दृष्टि द्वारा ही असुरों का नाश हो सकता है। शस्त्र से उन्हें मारने का उद्देश्य उनके उपकार के लिए है। इससे स्पष्ट है कि देवी सबका उपकार करने में लगी रहती हैं।

खड्ग - प्रभा - निकर - विस्फुरणैस्तथोग्रैः,
शूलाग्र-कान्ति-निवहेन दृशोऽसुराणाम्।
यन्नागता विलयमंशुमदिन्दु-खण्ड-
योग्याननं तव विलोकयतां तदेतत्॥२०

अर्थ—तुम्हारे **खड्ग** से निकली प्रचण्ड तेजो-राशि के फैलने से और **शूल** के अग्र-भाग के ज्योति-समूह से असुरों की दृष्टि जो नष्ट नहीं हुई, उसका कारण यह है कि तुम्हारे **ज्योतिर्मय चन्द्र-कला-युक्त मुख** को उन्होंने देख लिया।

व्याख्या—**देवी का प्रचण्ड शस्त्र-तेज** अत्यन्त असहनीय है, किन्तु कोटि चन्द्रों के समान शीतल उनके मुख-मण्डल से निकलती अमृत-किरणों की धारा के प्रभाव से असुरों के लिए वह तेज सहनीय हो गया।

दुर्वृत्त-वृत्त-शमनं तव देवि! शीलं,
रूपं तथैतदविचिन्त्यमतुल्यमन्यैः।
वीर्यं च हन्तृ हृत-देव-पराक्रमाणां,
वैरिष्वपि प्रकटितैव दया त्वयेत्थम्॥२१

अर्थ—हे देवि! **दुष्टों का पाप नष्ट करना** तुम्हारा स्वभाव है; तुम्हारा यह सौन्दर्य अचिन्तनीय और दूसरों के साथ अतुलनीय है; तुम्हारा वीर्य **देवताओं के पराक्रम को हरण करनेवाले असुरों का विनाशक** है; शत्रुओं के प्रति भी इस प्रकार की दया केवल तुम्हीं ने दिखाई है।

व्याख्या—'**देवी-भाष्य**' में लिखा है कि **शील, रूप, वीर्य** और **दया** के उत्कर्ष के लिए **देवी की उपासना** करना ही सबसे श्रेष्ठ है।

दया—**नागो जी** लिखते हैं कि असुरों को शस्त्रों की चोट से मार कर देवी उनके पापों को शान्त करती हैं। इससे असुरों के प्रति उनकी '**दया**' ही प्रकट होती है।

केनोपमा भवतु तेऽस्य पराक्रमस्य,
रूपं च शत्रु-भय-कार्यति-हारि कुत्र?
चित्ते कृपा समर-निष्ठुरता च दृष्टा,
त्वय्येव देवि वरदे! भुवन-त्रयेऽपि॥२२

अर्थ—हे देवि! तुम्हारे इस पराक्रम की तुलना किससे हो सकती है? शत्रु को भय-दायक और साथ ही अत्यन्त मनोहर रूप कहाँ है? हे वर देनेवाली! **हृदय में दया** और **युद्ध में निर्दयता**, तीनों लोकों में, केवल तुम्हीं में दिखाई देती है।

व्याख्या—'**भय-दायक**' और साथ ही '**मनोहर**'; '**दया**' और '**निर्दयता**'—ये परस्पर-विरोधी धर्म एक साथ हों, यह असम्भव है किन्तु **देवी सर्व-गुण-मयी** हैं। अतः केवल उनमें ऐसा होना सम्भव हो सका।

त्रैलोक्यमेतदखिलं रिपु-नाशनेन,
त्रातं त्वया समर-मूर्धनि तेऽपि हत्वा।
नीता दिवं रिपु-गणा भयमप्यपास्त-
मस्माकमुन्मद-सुरारि-भवं नमस्ते॥२३

अर्थ—तुमने शत्रुओं का नाश कर इस सारे त्रिभुवन की रक्षा की है। युद्ध-क्षेत्र में उन्हें मार कर तुमने शत्रुओं को भी स्वर्ग पहुँचा दिया और उद्धत असुरों से उत्पन्न हमारे भय को भी दूर कर दिया। तुम्हें नमस्कार है।

व्याख्या—**देवी** ने एक साथ ही तीन कल्याणकारी कार्य किए—**१ असुर-नाश से जगत् में शान्ति-स्थापना, २ असुरों को सद्-गति** और **३ देवों को निर्भयता।**

शूलेन पाहि नो देवि! पाहि खड्गेन चाम्बिके!
घण्टा-स्वनेन नः पाहि, चाप-ज्या-निःस्वनेन च॥२४

अर्थ—हे **देवि! शूल** के द्वारा हमारी रक्षा करो। हे **अम्बिके! खड्ग** के द्वारा भी हमारी रक्षा करो। **घण्टा**-शब्द और **धनुष** की डोरी के शब्द के द्वारा हमारी रक्षा करो।

प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च, चण्डिके! रक्ष दक्षिणे।
भ्रामणेनात्म-शूलस्य, उत्तरस्यां तथेश्वरि!॥२५

अर्थ—हे **चण्डिके!** हे **ईश्वरि!** अपने **शूल** के सञ्चालन द्वारा हमारी पूर्व-दिशा में रक्षा करो; पश्चिम, दक्षिण और उत्तर दिशा में भी रक्षा करो।

सौम्यानि यानि रूपाणि, त्रैलोक्ये विचरन्ति ते।
यानि चात्यर्थ-घोराणि, तै रक्षास्मांस्तथा भुवम्॥२६

अर्थ—तीनों लोकों में तुम्हारे जो प्रसन्न और अत्यन्त भीषण स्वरूप घूमते-फिरते हैं, उनके द्वारा हमारी और पृथ्वी की रक्षा करो।

व्याख्या—**सौम्यानि—नागो जी** इसका अर्थ करते हैं सृष्टि और पालन करनेवाली मूर्तियाँ।
अत्यर्थ-घोराणि—नागो जी के अनुसार इसका अर्थ है संहार-कारिणी मूर्तियाँ।
'**शान्तनवी टीका**' में उक्त दोनों को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि—

अनुगृह्णाति यान् देवी, तेषां सौम्या जगन्मयी।
नानुगृह्णाति यान् देवी, तेषां घोरा जगन्मयी॥

अर्थात् **जगन्मयी** जिन पर अनुग्रह करती हैं, उन भक्तों के लिए वे **सौम्य स्वरूप** प्रकट करती हैं और जिन पर अनुग्रह नहीं करतीं, उन अभक्तों के लिए वे **भयङ्करी मूर्ति** प्रकट करती हैं।

खड्ग-शूल-गदादीनि, यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके!
कर - पल्लव - सङ्गीनि, तैरस्मान् रक्ष सर्वतः॥२७

अर्थ—हे **अम्बिके!** तुम्हारे कर-पल्लव में विराजमान **खड्ग, शूल, गदा** आदि जो अस्त्र हैं, उन सबके द्वारा हमारी सर्वतोभाव से रक्षा करो।

व्याख्या—**सर्वतः**—दुःख, पाप और शत्रु से हमारी रक्षा करो (**शान्तनवी टीका**)।

ऋषिरुवाच ॥२८

एवं स्तुता सुरैर्दिव्यैः, कुसुमैर्नन्दनोद्भवैः।
अर्चिता जगतां धात्री, तथा गन्धानुलेपनैः॥२९

अर्थ—**ऋषि मेधस** ने कहा—**देव-गण** ने इस प्रकार स्तुति कर **नन्दन-वन** में उत्पन्न दिव्य पुष्पों, चन्दनादि गन्ध और अङ्गराग द्रव्यों द्वारा **जगद्धात्री की पूजा** की।

देव-गण द्वारा भगवती की पूजा

भक्त्या समस्तैस्त्रिदशैर्दिव्यैर्धूपैस्तु धूपिता।
प्राह प्रसाद-सुमुखी, समस्तान् प्रणतान् सुरान्॥३०

अर्थ—सभी **देव-गण** द्वारा भक्ति-पूर्वक दिव्य धूपों से धूपित होकर **प्रसन्न-मुखी देवी** ने सभी विनम्र देवताओं से कहा—

देव्युवाच ॥३१

व्रियतां त्रिदशाः! सर्वे, यदस्मत्तोऽभि-वाञ्छितम्।
ददाम्यहमति-प्रीत्या, स्तवैरेभिः सु-पूजिता॥३२

अर्थ—**देवी ने कहा**—हे समस्त **देव-गण!** मुझसे जो तुम्हारा अभीष्ट हो, वह माँगो। इन स्तुतियों से भले प्रकार पूजित होकर मैं बड़े प्रेम से उसे प्रदान करूँगी।

विशेष—३२वें श्लोक का उत्तरार्ध '**ददाम्यहमति ... सुपूजिता**' मूल संहिता में नहीं है। अतः कुछ टीकाकारों ने इसे मान्यता नहीं दी है।

देव-गण द्वारा वर की प्रार्थना

देवा ऊचुः ॥३३

भगवत्या कृतं सर्वं, न किञ्चिदवशिष्यते।
यदयं निहतः शत्रुरस्माकं महिषासुरः॥३४

अर्थ—**देव-गण ने कहा**—भगवती ने सब कुछ कर दिया है, कुछ भी अब शेष नहीं है क्योंकि यह हमारा शत्रु **महिषासुर** मार दिया गया है।

यदि चापि वरो देयस्त्वयाऽस्माकं महेश्वरि!
संस्मृता संस्मृता त्वं नो, हिंसेथाः परमापदः॥३५

अर्थ—हे **महेश्वरि!** अथवा यदि तुम्हें हमको वर देना है, तो (हमारी यह प्रार्थना है कि) जब हम तुम्हें बार-बार स्मरण करें, तब तुम हमारी महती विपत्तियों को नष्ट कर देना। (**पाठान्तर-चापि : वाऽपि**)।

यश्च मर्त्यः स्तवैरेभिस्त्वां स्तोष्यत्यमलानने!
तस्य वित्तर्द्धि-विभवैर्धन - दारादि - सम्पदाम्॥३६
वृद्धयेऽस्मत् प्रसन्ना त्वं, भवेथाः सर्वदाऽम्बिके॥३७

अर्थ—हे **प्रसन्न-मुखि अम्बिके!** जो कोई मनुष्य इन स्तुतियों से तुम्हारी स्तुति करे, हम पर प्रसन्न होकर तुम सदा उसके ज्ञान, समृद्धि और ऐश्वर्य के सहित धन, पत्नी आदि सम्पत्तियों की वृद्धि करना।

व्याख्या—**वित्तर्द्धि-विभवैः**—चतुर्धरी में इस पद की टीका है : '**वित्तं वेदनं ज्ञानं, ऋद्धिः उपचयः, विभवः ऐश्वर्यं। सहार्थे तृतीया।**' अर्थात् यहाँ '**वित्त**' शब्द का अर्थ **ज्ञान** है। '**विश्व-प्रकाश**' में भी लिखा है—'**वित्तं ख्याते धनं लब्धे, वित्तं ज्ञाने विचारिते।**'

धन-दारादि-सम्पदा—'**तत्त्व-प्रकाशिका**' में इसे स्पष्ट किया है—'**धनं गो-महिषादि, दाराः स्त्रियः, आदिना पुत्र-पौत्रादिः-ते एव सम्पदः, तासां।**' अर्थात् '**धन**' से आशय है गाय, भैंस आदि **पशु-धन**, '**दारा**' से तात्पर्य है **पत्नी आदि स्त्रियाँ**, 'आदि' से आशय है **पुत्र-पौत्रादि**। ये ही सम्पदा हैं।

ऋषिरुवाच ॥३८

इति प्रसादिता देवैर्जगतोऽर्थे तथाऽऽत्मनः।
तथेत्युक्त्वा भद्र-काली, बभूवान्तर्हिता नृप!॥३९

अर्थ—**मेधस ऋषि** ने **महाराज सुरथ** से कहा—हे राजन्, संसार और अपने कल्याण के लिए देवताओं के द्वारा इस प्रकार प्रसन्न की गई **देवी भद्र-काली** 'ऐसा ही हो', कहकर अन्तर्धान हो गईं।

व्याख्या—**भद्र-काली**—'**तत्त्व-प्रकाशिका**' में इस नाम का अर्थ दिया है—'**भद्रं कल्याणं कलयति ददाति इति भद्र-काली**'। अर्थात् जो जीव का भद्र (कल्याण) करती हैं, वही '**भद्र-काली**' हैं। '**देवी-पुराण**' ३७।८० में भी लिखा है—'**भद्रं करोति सा धाता, भद्र-काली मता ततः**'। अर्थात् वे मङ्गल-विधान करती हैं, इससे **भद्र-काली** नाम से प्रसिद्ध हैं।

अन्तर्हिता—'**देवी-भागवत**' में बताया है कि **महिषासुर का संहार** कर देवताओं की पूजा स्वीकार करने के बाद **भगवती महा-लक्ष्मी** अपने धाम '**मणि-द्वीप**' को चली गईं। यह अति मनोरम द्वीप **सुधा-सागर** के बीच में स्थित है और यहीं **देवी की नित्य विहार-भूमि** है। **ब्रह्म-लोक** से भी ऊपर इसकी अवस्थिति है। सभी लोकों से इसे श्रेष्ठ मानते हैं, अतः इसे '**सर्व-लोक**' भी कहते हैं।

इत्येतत् कथितं भूप!, सम्भूता सा यथा पुरा।
देवी देव-शरीरेभ्यो, जगत्-त्रय-हितैषिणी॥४०

अर्थ—हे राजन्! तीनों लोकों की कल्याण की इच्छा रखनेवाली वे **देवी** प्राचीन काल में देवताओं के शरीरों से जिस प्रकार प्रकट हुई थीं, वह तुमसे मैंने कहा।

पुनश्च गौरी-देहात् सा, समुद्भूता यथाऽभवत्।
वधाय दुष्ट-दैत्यानां, तथा शुम्भ-निशुम्भयोः॥४१
रक्षणाय च लोकानां, देवानामुप-कारिणी।
तच्छृणुष्व मयाऽऽख्यातं, यथा-वत् कथयामि ते॥४२

अर्थ—और फिर देवताओं का उपकार करनेवाली वे देवी **शुम्भ, निशुम्भ** एवं अन्य दुष्ट दैत्यों के विनाश के लिए तथा सभी लोकों की रक्षा के लिए **गौरी** से देह धारण कर जिस प्रकार

प्रकट हुई थीं, वह सब ठीक-ठीक तुमसे कहता हूँ। मेरे द्वारा वर्णित उस सबको सुनो। (**पाठान्तर- 'गौरी-देहा**)।

व्याख्या—**गौरी-देहा**—'**तत्त्व-प्रकाशिका**' में इसकी टीका है—'**गौर्याः सकाशात् देहः यस्याः सा।**' अर्थात् **गौरी** या **पार्वती** से जिनकी देह निकली, वे। '**दुर्गा-सप्तशती**' (अध्याय ५) में स्पष्ट बताया है कि **पार्वती (गौरी)** के शरीर से निकल कर '**कौशिकी देवी**' प्रकट हुईं, जिन्होंने **शुम्भ-निशुम्भादि असुरों का विनाश** किया। इन्हीं **कौशिकी देवी** का नाम है—'**महा-सरस्वती**'। '**यामल-तन्त्र**' में कहा है—

गौरी-देहात् समुत्पन्ना, या सत्वैक-गुणाश्रया,
साक्षात् सरस्वती प्रोक्ता, शुम्भासुर-निषूदनी।

अर्थात् **गौरी** की देह से जो **सत्त्व-गुण-मयी देवी** उत्पन्न हुई थीं, वे ही **शुम्भासुर-विनाशिनी** साक्षात् **(महा) सरस्वती** कही गई हैं।

चौथे अध्याय के पाठान्तर

श्लोक-संख्या	'विशुद्ध चण्डी' का पाठ	प्रचलित पाठ
२	सुरारि-बले च देव्या	सुरारि-बले च देवाः
४	नाशाय चाशुभ-भयस्य	नाशाय चासुर-भयस्य
६	किं चाहवेषु चरितानि तवाद्भुतानि	किं चाहवेषु चरितानि तवातियानि
६	देव्यसुर-देव-गणादिकेषु	अमर-दैत्य-गणादिकेषु
७	दोषैः	देवैः
७	अव्याकृता हि	अव्याकृताऽसि
९	महा-व्रता त्वं	महा-व्रता च
९	अभ्यस्यसे	अभ्यस्यते
९	विद्याऽसि	विद्याऽस्ति
१०	उद्गीथ	उद्-गीत
१२	कनकोत्तम-कान्ति-कान्तम्	कनकोत्तम-कान्ति-कान्तिं
१२	आत्त-रुषा	आप्त-रुषा
१४	प्रसीद परमा	प्रसाद परमा
१४	भवती भवाय	भव भवनाय
१४	विनाशयसि	विनाशयति
१५	बन्धु-वर्गः	धर्म-वर्गः

श्लोक-संख्या	'विशुद्ध चण्डी' का पाठ	प्रचलित पाठ
१६	लोक-त्रयेऽपि	लोहष्वयेऽपि
१८	उपैति	उपैतु
१८	नाम	नान्व
१९	शस्त्र-पूता	शस्त्र-पूतान्
१९	तेऽति-साध्वी	तेषु-स्वाध्वी
२१	हृत-देव-पराक्रमाणां	हत-देव-पराक्रमाणां
२२	दृष्टा	दृष्ट्वा
२६	यानि चात्यर्थ-घोराणि	यानि चात्यन्त-घोराणि
३०	दिव्यैर्धूपैस्तु धूपिता	१ दिव्यैर्धूपैश्च धूपिता, २. दिव्यैर्धूपैः सुधूपिता
३२	यदस्मत्तोऽभि-वांच्छितम्	यत् तत्मत्तोऽभि-वांच्छितम्
३५	यदि चापि	यदि वापि
३७	अस्मत् प्रसन्ना	अस्मत् प्रपन्ना
४१	पुनश्च गौरी-देहात् सा	पुनश्च गौरी-देहा सा

उत्तर या उत्तम चरितम्

पञ्चमः अध्यायः

देवी-दूत-संवाद

॥ ऋषिरुवाच ॥१॥

पुरा शुम्भ-निशुम्भाभ्यामसुराभ्यां शची-पतेः।
त्रैलोक्यं यज्ञ-भागाश्च, हृता मद-बलाश्रयात्॥२॥

अर्थ—**मेधस ऋषि** ने **महाराज सुरथ** से कहा—प्राचीन काल में **शुम्भ** और **निशुम्भ** नामक दो असुरों ने गर्व व शक्ति के वशीभूत हो **इन्द्र** के त्रि-लोकों के अधिकार एवं यज्ञ-भागों का हरण कर लिया।

व्याख्या—**पुरा**—प्राचीन-काल अर्थात् द्वितीय **स्वारोचिष** नामक मन्वन्तर में (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

शुम्भ-निशुम्भ—'**वामन पुराण**', अध्याय ५५ के अनुसार **कश्यप मुनि** की पत्नी **दनु** के तीन पुत्र हुए—**१ शुम्भ, २ निशुम्भ, ३ नमुचि,** जो **इन्द्र** से भी अधिक बलवान् थे। **इन्द्र** ने **नमुचि** को तो मार डाला, किन्तु **शुम्भ** और **निशुम्भ** ने **इन्द्रादि देवताओं** को युद्ध में पराजित कर दिया और उनके अधिकारों को छीन लिया। '**देवी-भागवत**', ५।२१ में बताया है कि **शुम्भ** और **निशुम्भ** ने अमरत्व पाने के लिए **पुष्कर-तीर्थ** में अन्न-जल छोड़कर एकासन में स्थित होकर अयुत वर्षों तक कठिन तपस्या की, जिसके फल-स्वरूप **ब्रह्मा** ने उन्हें यह वर दिया था कि कोई भी **पुरुष** उन्हें नहीं मार सकेगा। इसी वर के प्रभाव से **शुम्भ-निशुम्भ** सभी लोकों में अजेय हो गए।

तावेव सूर्यतां तद् - वदधिकारं तथैन्दवम्।
कौबेरमथ याम्यं च, चक्राते वरुणस्य च॥३
तावेव पवनर्द्धिं च, चक्रतुर्वह्नि - कर्म च।
ततो देवा विनिर्धूता, भ्रष्ट-राज्याः पराजिताः॥४

अर्थ—उन दोनों (**शुम्भ-निशुम्भ**) ही ने **सूर्य** का अधिकार, उसी प्रकार **चन्द्र** का, **कुबेर** का और **यम** का तथा **वरुण** का अधिकार ग्रहण कर लिया। उन्हीं दोनों ने **वायु** का अधिकार और **अग्नि** का कर्त्तव्य भी ले लिया। तब **देव-गण** अपमानित, राज्य-च्युत और पराभूत हो गए।

हृताधिकारास्त्रि-दशास्ताभ्यां सर्वे निराकृताः।
महाऽसुराभ्यां तां देवीं, संस्मरन्त्यपराजिताम्॥५

अर्थ—उन दोनों महान् असुरों द्वारा अधिकार छीन कर सभी देव (स्वर्ग से बाहर) निकाल दिए गए। तब वे देवता उन **अपराजिता देवी** का स्मरण करने लगे।

व्याख्या—'**देवी-भागवत**', ५।२१ के अनुसार राज्य से च्युत श्री-भ्रष्ट देवता **नन्दन-वन** छोड़ कर पहाड़ की गुफाओं में जा छिपे। अधिकार-हीन होकर सभी देवता निराश्रय और निस्तेज हो गए। वे कभी निर्जन जङ्गलों में, कभी पर्वत की कन्दराओं में, कभी सूने उद्यानों में और कभी नदी के गह्वरों में भटकते फिरने लगे, किन्तु कहीं भी उन्हें शान्ति नहीं मिली।

त्रि-दशाः—(१) '**त्र्यधिकास्त्रिरावृत्ता दश त्रि-दशाः।**' ३ + (१० × ३) = ३३ प्रधान देवता—**१२ सूर्य + ११ रुद्र + ८ वसु + २ विश्वेदेव (नागो जी)**।

(२) '**तिस्त्रो जन्म-यौवन-नाश-लक्षणाः दशा अवस्था येषां**' अर्थात् जन्म, यौवन और मृत्यु—ये तीन दशा मात्र हैं जिनकी, वे '**देवता**'। देवताओं को '**जरा**' (वृद्धावस्था) की दशा नहीं भोगनी पड़ती **(चतुर्धरी)**।

अपराजिता—**भगवती दुर्गा** का एक नाम। '**देवी-पुराण**', अध्याय ३७ में लिखा है—

विजिता पद्म-नामानं, दैत्यं-राजं महा-बलम्।
विजया तेन सा देवी, लोके चैवापराजिता॥

अर्थात् महा-बली **पद्म** नामक दैत्य-राज को पराजित करने से देवी का नाम '**विजया**' पड़ा और तभी से वे संसार में '**अपराजिता**' नाम से प्रसिद्ध हैं।

तयाऽस्माकं वरो दत्तो, यथाऽऽपत्सु स्मृताऽखिलाः।
भवतां नाशयिष्यामि, तत्क्षणात् परमापदः॥६

अर्थ—उन देवी ने हमें वर दिया था कि आपत्तियों में स्मरण करने पर मैं तुम्हारी सभी बड़ी-से-बड़ी विपत्तियों को तत्काल नष्ट कर दूँगी।

व्याख्या—**भगवती** द्वारा **महिषासुर** के मारे जाने पर **देवी की स्तुति** कर देवों ने यही वर माँगा था कि '**संस्मृता संस्मृता त्वं नो हिंसेथाः परमापदः**' (विशुद्ध-चण्डी, ४।३५) अर्थात् '**जब भी हम तुम्हारा स्मरण करें, तुम हमारी घोर आपत्तियों को नष्ट कर देना।**' देवी यही वर देकर अन्तर्धान हुई थीं। अतः इस समय **शुम्भ-निशुम्भ** से त्रस्त होकर **देव-गण** उसी '**वर**' का स्मरण करते हैं।

इति कृत्वा मतिं देवा, हिम-वन्तं नगेश्वरम्।
जग्मुस्तत्र ततो देवीं, विष्णु-मायां प्रतुष्टुवुः॥७

अर्थ—इस प्रकार विचार कर देव-गण पर्वत-राज **हिमालय** पर गए। तदनन्तर वहाँ **देवी विष्णु-माया** की उत्तम रूप से स्तुति करने लगे।

व्याख्या—**हिमवन्तम्**—अत्यन्त पवित्र क्षेत्र और देवी के आविर्भाव का स्थान मानकर **देव-गण** हिमालय पर गए (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

देव-गण द्वारा स्तुति

देवा ऊचुः ॥८॥

नमो देव्यै महा-देव्यै, शिवायै सततं नमः।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै, नियताः प्रणताः स्म ताम्॥९

अर्थ—**देवताओं** ने कहा—**देवी** को प्रणाम है, **महा-देवी शिवा** को सदा प्रणाम है। **प्रकृति** को प्रणाम है, उन **भद्रा** को एकाग्र-चित्त से प्रणाम है।

व्याख्या—**देव्यै**—जो द्योतन-शीला, स्व-प्रकाश-रूपिणी हैं, उन देवी को।

महा-देव्यै—जो ब्रह्मादि देवों को सृष्टि, स्थिति, संहार आदि कार्यों में प्रवृत्त करती हैं, उन महा-देवी को (**नागो जी**)।

प्रकृत्यै—सृष्टि-शक्ति-रूपिणी को (**नागो जी**)। जगत् की मूल-प्रकृति-रूपा को (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

भद्रायै—स्थिति या पालन-शक्ति-रूपिणी को (**नागो जी**)। सर्व-मङ्गल-रूपिणी को (**शान्तनवी**)।

इस स्तुति को **पौराणिक** या **तान्त्रिक** '**देवी-सूक्त**' कहते हैं। इसका दूसरा नाम '**अपराजिता-स्तव**' भी है। इस स्तव के सम्बन्ध में '**लक्ष्मी-तन्त्र**' में लिखा है—

नमो देव्यादिकं देवी-सूक्तं सर्व-फल-प्रदम्,
इमां देवीं स्तुवन्नित्यं, स्तोत्रेणानेन मामिह।
क्लेशानतीत्य सकलानैश्वर्यं महदश्नुते॥

अर्थात् '**नमो देव्यै**' इत्यादि '**देवी-सूक्त**' सब फलों का देनेवाला है। इस स्तोत्र के द्वारा जो व्यक्ति **नित्य देवी की स्तुति** करता है, वह इस संसार के सारे क्लेशों को पार कर जाता है और महान् ऐश्वर्य का अधिकारी बनता है।

'**प्राधानिक रहस्य**' की '**गुप्तवती-टीका**' में **भास्कर राय** ने लिखा है कि **चण्डी-पाठ** में जो **चार स्तुतियाँ** हैं, उनमें पाँचवें अध्याय का जो '**देवी-सूक्त**' है, वह भगवती के **तुरीय स्वरूप की स्तुति** है। शेष **तीन स्तुतियाँ** तीन चरित-देवताओं के व्यष्टि-स्वरूपों के प्रति हैं। यथा—प्रथम अध्याय का '**रात्रि-सूक्त**' महा-काली की, चौथे अध्याय की '**शक्रादि-स्तुति**' महा-लक्ष्मी की और ग्यारहवें अध्याय की '**नारायणी-स्तुति**' महा-सरस्वती की स्तुति है।

पाँचवें अध्याय के इस '**देवी-सूक्त**' में देवताओं ने विविध वस्तुओं में स्थित देवी के शक्ति-रूपों में व्याप्त **एक, अविभक्त, अद्वैत, तुरीय, ब्रह्म-रूपिणी** के रूप में भगवती की स्तुति कर उनका सर्व-मयत्व दिखाया है।

रौद्रायै नमो नित्यायै, गौर्यै धात्र्यै नमो नमः।
ज्योत्स्नायै चेन्दु-रूपिण्यै, सुखायै सततं नमः॥१०॥

अर्थ—**रौद्रा** को प्रणाम है, **नित्या, गौरी, धात्री** को बार-बार प्रणाम है। **ज्योत्स्ना** और **इन्दु-रूपिणी** तथा **सुखा** को सदा प्रणाम है।

व्याख्या—**रौद्रायै**—संहार-शक्ति-रूपिणी, अति भीषण रूपवाली को।

नित्यायै—उत्पत्ति व विनाश से रहिता, काल द्वारा जो अविच्छिन्न नहीं हैं, त्रिकाल से अतीता को।

गौर्यै—गौरी अर्थात् उज्ज्वल वर्णवाली, निर्मला, निर्लेपा को।

धात्र्यै—जगत् की आधार-रूपा को (**नागो जी**); जगत् का पोषण करनेवाली को (**चतुर्धरी**)।

ज्योत्स्नायै इन्दु-रूपिण्यै—ज्योत्स्ना और चन्द्रमा के रूपवाली अर्थात् ज्योति-मयी। चन्द्र, सूर्य आदि की ज्योति उनकी अपनी नहीं है। भगवती का ही प्रकाश सभी ज्योतिर्मय वस्तुओं में दृष्टि-गत होता है। **गीता** १५।१२ में कहा है—

यदादित्य-गतं तेजो, जगद्-भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ, तत् तेजो विद्धि मामकम्॥

अर्थात् सूर्य का जो तेज सारे संसार को प्रकाशित करता है और चन्द्रमा तथा अग्नि में जो तेज है, वह सब तेज मेरा ही जानो।

सुखायै—सुखा परमानन्द-रूपा (**नागो जी**)। सुखयति इति सुखा (**तत्त्व-प्रकाशिका**)। सुख-दायिनी अर्थात् परमानन्द और सुख देनेवाली भगवती को।

कल्याण्यै प्रणतां वृद्ध्यै, सिद्ध्यै कुर्मो नमो नमः।
नैर्ऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै, शर्वाण्यै ते नमो नमः॥११

अर्थ—**कल्याणी** को हम प्रणाम करते हैं। **वृद्धि** और **सिद्धि** को बार-बार प्रणाम करते हैं। **नैर्ऋति, राज-लक्ष्मी** और **शर्वाणी** तुम्हें बारम्बार प्रणाम है।

व्याख्या—**प्रणतां वृद्ध्यै**—'**प्रणतानां भक्तानां आ सम्यग् उपचय-रूपायै**' अर्थात् भक्तों की आवृद्धि—सम्यङ् रूप से उन्नति-रूपिणी को (**सिद्धान्त-वागीशः**)।

सिद्ध्यै—सिद्धि या सफलता-रूपी। सिद्धियाँ आठ हैं; यथा—

अणिमा लघिमा प्राप्तिः, प्राकाम्यं महिमा तथा,
ईशित्वं च वशित्वं च, तथा कामावसायिता।

कुर्मः—इसका पाठान्तर '**कूर्म्यै**' है, जिसका अर्थ है **कूर्मावतार-रूपी विष्णु** की शक्ति को।

नैर्ऋत्यै—**नैर्ऋती** अर्थात् **अलक्ष्मी** को। '**निष्क्रान्ता ऋतेः सन्मार्गात् निर्ऋतिः अलक्ष्मीः, निर्ऋतेः रूपं आकृतिः नैर्ऋति तस्यै, अलक्ष्मी-रूपायै**' अर्थात् **ऋत** या **सन्मार्ग** से बाहर निकली हुई '**निर्ऋति**' या **अलक्ष्मी** है, उसका रूप या आकार जिसका है, वह '**नैर्ऋती**' या '**अलक्ष्मी-रूपा**' है (**शान्तनवी**)।

सकाम भक्त से प्रसन्न होकर भगवती **लक्ष्मी-रूप** में प्रकट होकर उसे ऐश्वर्य देती हैं और अभक्त आसुरी वृत्तिवालों से अप्रसन्न हो **अलक्ष्मी-रूप** में उनका सर्वनाश कर देती हैं। अतः **लक्ष्मी** एवं **अलक्ष्मी** दोनों रूपवाली को प्रणाम है।

दुर्गायै दुर्ग-पारायै, सारायै सर्व-कारिण्यै।
ख्यात्यै तथैव कृष्णायै, धूम्रायै सततं नमः॥१२

अर्थ—**दुर्ज्ञेया देवी** को, **दुर्गम भव-सागर से पार करानेवाली, सर्व-श्रेष्ठा, सर्व-जननी, ख्याति-रूपिणी, कृष्ण-वर्णा** और **धूम्र-वर्णा देवी** को सदा प्रणाम है।

व्याख्या—**दुर्गायै**—'**दुःखेन गम्यते ज्ञायते इति दुर्गा**' जिनको कठिनाई से जाना जा सके, उन दुर्गा देवी को (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

दुर्ग-पारायै—(१) '**दुर्गात् संसारात् पारं करोति इति दुर्ग-पारा**' अर्थात् जो दुर्गम संसार से जीव को पार कराती हैं (**नागो जी**)।

(२) '**दुर्गः दुर्गमः देशतः कालतश्च पार इयत्ता यस्याः**' अर्थात् देश और काल द्वारा जिनकी सीमा नहीं बाँधी जा सकती (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

सारायै—(१) '**सारो बलं तद्-वत्यै**' अर्थात् '**सार**' का अर्थ है बल, अतः सार = बल-वती (**नागो जी**)।

(२) '**सर्व-श्रेष्ठायै, यद्वा प्रलयेऽपि अवशिष्यमानायै**' अर्थात् जो सर्व-श्रेष्ठा हैं या जो प्रलय होने पर भी विद्यमान रहती हैं (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

सर्व-कारिण्यै—(१) '**सर्व-जनन्यै आदि-कारणत्वात्**' अर्थात् आदि कारण होने से देवी **सर्व-कारिणी** या **सर्व-जननी** हैं (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

(२) '**सर्वं कर्तुं शीलं यस्यास्तस्यै**' अर्थात् जो सब कुछ करने में समर्थ हैं (**सिद्धान्त-वागीशः**)।

ख्यात्यै—(१) ख्याति—**प्रसिद्धि, कीर्ति, यश**।

(२) '**प्रकृति-पुरुषयोः भेद-ज्ञानं ख्यातिः तद्-रूपायै**' अर्थात् **प्रकृति** और **पुरुष** के भेद का ज्ञान '**ख्याति**' कहलाता है (**नागो जी**)। इस प्रकार **प्रकृति-पुरुष के यथार्थ तत्त्व-रूपवाली भगवती** ही हैं।

(३) '**ख्यातिः विकल्पादि-पञ्चकम्**' अर्थात् **ख्याति** से विकल्पादि **पाँच सिद्धान्तों** का बोध होता है (**तत्त्व-प्रकाशिका**)। '**श्रीमद्भागवत**', ११।१९।२४ में **भगवान् श्रीकृष्ण उद्धव** से कहते हैं—'**विकल्पः ख्याति-वादिनाम्**' अर्थात् ख्याति-वादियों में मैं '**विकल्प**'-स्वरूप हूँ।

यहाँ उल्लेखनीय है कि '**ख्याति**' या दार्शनिक मत के ५ प्रकार हैं। यथा—

आत्म-ख्यातिरसत्-ख्यातिरख्यातिः ख्यातिरन्यथा,
तथाऽनिर्वचन-ख्यातिरित्येतत् ख्याति-पञ्चकम्।
विज्ञान-शून्य-मीमांसा-तर्काद्वैत-विदां मतमिति॥ (**क्रम-सन्दर्भः**)

अर्थात् १ विज्ञान-वादियों की **आत्म-ख्याति**, २ शून्य-वादियों की **असत्-ख्याति**, ३ मीमांसकों की **अख्याति**, ४ नैयायिकों की **अन्यथा-ख्याति** और ५ अद्वैत-वादियों की **अनिर्वचनीय ख्याति**।

विविध दार्शनिक मतों के अनुसार विभिन्न ख्याति-रूपा भगवती ही हैं।

कृष्णायै—(१) कृष्ण-वर्णा अर्थात् तामसी रूपवाली, (२) श्रीकृष्ण की शक्ति-स्वरूपिणी **(नागो जी)**, (३) **'कर्षति जगद् वशीकरोति इति कृष्णा'**—जो जगत् को आकृष्ट या वशीभूत करती है, वह **कृष्णा** है, (४) **'जनानां पाप-कर्षणात् कृष्णा'**—जीवों के पाप नष्ट करने से देवी का नाम **'कृष्णा'** है **(तत्त्व-प्रकाशिका)**, (५) कृष्ण-वर्णा योगिनी **(चतुर्धरी)**।

धूम्रायै—(१) धूम-वर्णा **(नागो जी)**, (२) धूम्रा = यज्ञ-विद्या, (३) धूम्र-मार्ग अर्थात् पितृ-यान-स्वरूपिणी **(तत्त्व-प्रकाशिका)**, (४) धूम्र-वर्णा योगिनी **(चतुर्धरी)**।

अति - सौम्याति - रौद्रायै, नतास्तस्यै नमो नमः।
नमो जगत्-प्रतिष्ठायै, देव्यै कृत्यै नमो नमः॥१३॥

अर्थ—**अत्यन्त सुन्दरी** और **अत्यन्त भयङ्करी** उन **देवी** को झुककर हम प्रणाम करते हैं। **संसार के आधार और क्रिया-रूपवाली देवी** को बार-बार प्रणाम है।

व्याख्या—**अति-सौम्याति-रौद्रायै**—(१) विद्या-रूप से देवी संसार-बन्धन-रूपी क्लेश को दूर करती हैं, अतः वे अत्यन्त **'सौम्या'** हैं और अविद्या-रूप से वे जीव को संसार-चक्र में घुमाती रहती हैं, अतः वे अति **'रौद्रा'** हैं **(नागो जी)**।

(२) **गुप्तवती टीका**—**'सौम्यान् रौद्रांश्च अति-कान्ता अति-सौम्याति-रौद्रा'** अर्थात् देवी **सौम्य** और **रौद्र** का अतिक्रमण कर विद्यमान रहती हैं, वे सर्व-गुणातीता हैं।

जगत्-प्रतिष्ठायै—(१) देवी जगत् की **'प्रतिष्ठा'** अर्थात् उपादान-कारण-स्वरूपिणी हैं **(नागो जी)**। (२) जगत् के चेतन और अचेतन सभी पदार्थों में वे प्रतिष्ठित-प्रकृष्ट रूप से स्थित हैं अर्थात् देवी सर्वान्तर्यामिनी हैं **(तत्त्व-प्रकाशिका)**। (३) देवी इस जगत् के समस्त प्राणियों की प्रतिष्ठा या आधार-शक्ति-स्वरूपिणी हैं **(शान्तनवी)**।

कृत्यै देव्यै—सृष्टि-स्थिति-प्रलय-रूपा **'कृति'** या क्रिया-शक्ति-रूपिणी देवी को।

देवी के तेईस रूप

या देवी सर्व-भूतेषु, विष्णु-मायेति शब्दिता।
नमस्तस्यै॥१४ नमस्तस्यै॥१५ नमस्तस्यै नमो नमः॥१६॥

अर्थ—जो **देवी** सभी प्राणियों में **विष्णु-माया** नाम से कही जाती हैं, उन्हें प्रणाम, उन्हें प्रणाम, उन्हें प्रणाम, प्रणाम, प्रणाम।

व्याख्या—**विष्णु-माया**—(१) मूला अविद्या **(नागो जी)**। (२) अनात्म-विषय में आत्म-बुद्धि और आत्म-विषय में अनात्म-बुद्धि उत्पन्न कर ममता-वशीभूत लोक-समूह को जन्म देनेवाली सर्व-जननी महा-भगवती का नाम है **'विष्णु-माया'** **(शान्तनवी टीका)**।

विष्णोर्माया भगवती यया सम्मोहितं जगत्—अर्थात् जो सारे जगत् को मोहाविष्ट किए रहती हैं, वही **भगवती विष्णु-माया** हैं। '**कालिका-पुराण**' में कहा है—

अव्यक्तं व्यक्त-रूपेण, रजः-सत्त्व-तमो-गुणैः।
विभज्य याऽर्थं कुरुते, विष्णु-मायेति सोच्यते॥

अर्थात् जो अव्यक्त को सत्त्व, रज और तमो-गुण द्वारा विभक्त कर व्यक्त-रूप में प्रकाशित करती हैं, वही **विष्णु-माया** कही जाती हैं।

'**ब्रह्म-वैवर्त-पुराण**', प्रकृति-खण्ड, अध्याय ५४ में कहा है—

सृष्ट्वा मायां पुरा सृष्टौ, विष्णुना परमात्मना।
मोहितं मायया विश्वं, विष्णु-माया तदुच्यते॥

अर्थात् प्राचीन सृष्टि-काल में **परमात्मा विष्णु** ने **माया** की रचना कर विश्व को मोहित किया था। इसी से उसे '**विष्णु-माया**' कहते हैं।

नमस्तस्यै—सत्त्व, रज और तमो-गुण के भेद से **विष्णु-माया** तीन प्रकार की है। सृष्टि-रचना के कारण वह **राजसी** है, उसको स्थित रखने के कारण वह **सात्त्विकी** है और उसका संहार करने के कारण वह **तामसी** है।

'**तस्यै**'-शब्द के तीन बार प्रयोग से **विष्णु-माया** के इन्हीं तीन रूपों की व्यञ्जना होती है। इसी प्रकार '**नमः**' के तीन बार कहने से **कायिक, वाचिक** और **मानसिक**—इन तीन प्रकार के प्रणामों की अभिव्यक्ति होती है।

नमो नमः—सात्त्विक, राजसी और तामसी अवस्थाओं से परे देवी की **१ तुरीया, २ तुरीया-तीता**—ये दो अवस्थाएँ हैं। इन्हीं को लक्ष्य करके '**नमः**' का दो बार प्रयोग किया गया है।

इस '**देवी-सूक्त**' में भगवती के तेईस रूपों का उल्लेख कर उनमें से प्रत्येक को नमन किया गया है। वे रूप ये हैं—

१ विष्णु-माया, २ चेतना, ३ बुद्धि, ४ निद्रा, ५ क्षुधा, ६ छाया, ७ शक्ति, ८ तृष्णा, ९ क्षान्ति, १० जाति, ११ लज्जा, १२ शान्ति, १३ श्रद्धा, १४ कान्ति, १५ लक्ष्मी, १६ वृत्ति, १७ स्मृति, १८ दया, १९ तुष्टि, २० माता, २१ भ्रान्ति, २२ व्याप्ति और **२३ चिति।**

या देवी सर्व - भूतेषु, चेतनेत्यभिधीयते।
नमस्तस्यै॥१७ नमस्तस्यै॥१८ नमस्तस्यै नमो नमः॥१९॥

अर्थ—जो **देवी** सभी प्राणियों में '**चेतना**' कही जाती है; उन्हें प्रणाम, उन्हें प्रणाम, उन्हें प्रणाम, प्रणाम, प्रणाम।

व्याख्या—**चेतना**—(१) निर्विकल्प ज्ञान या चित्-शक्ति (**नागो जी**)। (२) जीव-नाड़ी (**गुप्तवती**)। (३) सभी इन्द्रियों की प्रवृत्ति की कारण-भूता, अन्तःकरण की एक विशेष शक्ति। अथवा सुख-दुःख का बोध करानेवाली शक्ति (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

स्थूल रूप में '**चेतना**' नाम, रूप और आकार में व्यक्त होती है। सूक्ष्म रूप में वह **प्राण-शक्ति** के रूप में और कारण-रूप में **अव्यक्त** वीज-रूप में विद्यमान रहती हैं। स्थूलाभिमानी चैतन्य '**विश्व**', सूक्ष्माभिमानी चैतन्य '**तैजस**' और कारणाभिमानी चैतन्य '**प्राज्ञ**' नाम से जाना जाता है। इन तीनों से परे '**तुरीय**' या निर्विशेष '**ब्रह्म-चैतन्य**' होता है। भगवती के सर्व-विध चैतन्य-स्वरूप को प्रणाम किया जाता है।

या देवी सर्व - भूतेषु, बुद्धि-रूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥२० नमस्तस्यै॥२१ नमस्तस्यै नमो नमः॥२२॥

अर्थ—जो **देवी** सभी प्राणियों में '**बुद्धि**'-रूप से विराजमान हैं, उन्हें प्रणाम, उन्हें प्रणाम, उन्हें प्रणाम, प्रणाम, प्रणाम।

व्याख्या—**बुद्धि**—(१) स-विकल्प ज्ञान (**नागो जी**)। (२) संशय आदि लक्षणों से युक्त अन्त:करण का विशेष अङ्ग (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

सात्त्विक आदि भेदों के अनुसार '**बुद्धि**' तीन प्रकार की होती है। '**गीता**', १८।३०-३२ में कहा है—

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च, कार्याकार्ये भयाभये।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति, बुद्धिः सा पार्थ! सात्त्विकी॥
मया धर्ममधर्मं च, कार्यं चाकार्यमेव च।
अयथा-वत् प्रजानाति, बुद्धिः सा पार्थ! राजसी॥
अधर्मं धर्ममिति या, मन्यते तमसावृता।
सर्वार्थान् विपरीतांश्च, बुद्धि सा पार्थ! तामसी॥

अर्थात् हे **पार्थ (अर्जुन)**! जो बुद्धि प्रवृत्ति और निवृत्ति, कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य, भय और अभय, बन्धन और मोक्ष को ठीक-ठीक जान लेती है, वही '**सात्त्विकी बुद्धि**' है। जिस बुद्धि द्वारा धर्म और अधर्म, कार्य और अकार्य को यथार्थ रूप में समझ लेते हैं, वही '**राजसी बुद्धि**' है। जो बुद्धि मोह-वश अधर्म को धर्म मान लेती है और सभी विषयों का उल्टा ही अर्थ लगाती है, वही '**तामसी बुद्धि**' है।

भगवती इन तीनों बुद्धि-रूपों में सभी प्राणियों में विराजमान हैं, अत: उन्हें बारम्बार नमन किया जाता है।

या देवी सर्व - भूतेषु, निद्रा-रूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥२३ नमस्तस्यै॥२४ नमस्तस्यै नमो नमः॥२५॥

अर्थ—जो **देवी** सभी प्राणियों में '**निद्रा**'-रूप से विराजमान हैं, उन्हें प्रणाम, उन्हें प्रणाम, उन्हें प्रणाम, प्रणाम, प्रणाम।

व्याख्या—**निद्रा**—(१) स्वप्न या सुषुप्ति की अवस्था (**नागो जी**)। (२) विहित समय में आरम्भ और समाप्त होनेवाली '**निद्रा**' **सात्त्विकी** होती है, किन्तु यदि उसमें विषय-भोग-सम्बन्धी स्वप्न अधिक हों, तो वह **राजसी** मानी जाती है। असमय काल की '**निद्रा**' **तामसी** कही जाती है (**देवी-भाष्य**)।

या देवी सर्व-भूतेषु, क्षुधा-रूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥२६ नमस्तस्यै॥२७ नमस्तस्यै नमो नमः॥२८॥

अर्थ—जो **देवी** सभी प्राणियों में '**क्षुधा**'-रूप से विराजमान हैं, उन्हें प्रणाम, उन्हें प्रणाम, उन्हें प्रणाम, प्रणाम, प्रणाम।

व्याख्या—**क्षुधा**—पार्थिव-धातु-क्षय-जनित अवसाद (**तत्त्व-प्रकाशिका**) अर्थात् स्थूल शरीर के रस, रक्तादि धातुओं की कमी से जो कष्ट होता है, उसे '**क्षुधा**' कहते हैं। '**साधन-समर**' के व्याख्याता के मत से केवल **स्थूल शरीर** या **अन्न-मय कोष** में ही देवी का यह बुभुक्षा-स्वरूप नहीं दिखाई देता, अपितु **प्राण-मय, मनो-मय, विज्ञान-मय** और **आनन्द-मय कोष** में भी '**क्षुधा**' व्यक्त होती है। **प्राण-मय कोष** का भोजन है '**जीवनी-शक्ति**', **मनोमय कोष** का है '**चिन्तन**', **विज्ञान-मय कोष** का है '**ज्ञान**' और **आनन्द-मय कोष** का भोजन है '**प्रेम, हर्ष**' आदि। इन सबमें कमी का अनुभव होता ही है।

देवी '**क्षुधा**'-रूपा होने के साथ ही '**अन्न-पूर्णा**'-स्वरूपा भी हैं। अतः उनके '**क्षुधा**'-स्वरूप के चरणों में प्रणाम करने से वे समस्त '**क्षुधा**' का निवारण कर देती हैं।

या देवी सर्व-भूतेषु, छाया-रूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥२९ नमस्तस्यै॥३० नमस्तस्यै नमो नमः॥३१॥

अर्थ—जो **देवी** सभी प्राणियों में '**छाया**'-रूप से विराजमान हैं, उन्हें प्रणाम, उन्हें प्रणाम, उन्हें प्रणाम, प्रणाम, प्रणाम।

व्याख्या—**छाया**—(१) सांसारिक ताप का अभाव (**नागो जी**)। (२) आतप-सन्ताप-हरण-हेतु अति शीतलता (**चतुर्धरी**)। (३) छाया अर्थात् अविद्या (**तत्त्व-प्रकाशिका**)। '**आतप**' प्रकाश-रूप होने से '**विद्या**' का बोधक है, उसका न होना '**अविद्या**' का सूचक है। '**भागवत**' में इसी भाव से कहा है—'**छाया-तपौ यत्र न गृध्र-पक्षौ।**' '**कठोपनिषद्**' १।३।१ में **छाया**-शब्द से **जीवात्मा** को और '**आतप**' से **परमात्मा** को व्यक्त किया है; यथा—**छायातपौ ब्रह्म-विदो वदन्ति।**

या देवी सर्व-भूतेषु, शक्ति-रूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥३२ नमस्तस्यै॥३३ नमस्तस्यै नमो नमः॥३४॥

अर्थ—जो **देवी** सभी प्राणियों में '**शक्ति**'-रूप से विराजमान हैं, उन्हें प्रणाम, उन्हें प्रणाम, उन्हें प्रणाम, प्रणाम, प्रणाम।

व्याख्या—**शक्ति**—(१) सामर्थ्य, उत्साह (**तत्त्व-प्रकाशिका**)। (२) वस्तु-गत स्वभाव-सिद्ध धर्म (**शान्तनवी**)। '**देवी-भागवत**', १।८।३८-३९ में कहा है—

न विष्णुर्न हरः शक्रो, न ब्रह्मा न च पावकः।
न सूर्यो वरुणः शक्ताः, स्वे स्वे कार्ये कथञ्चन॥
तया युक्ता हि कुर्वन्ति, स्वानि कार्याणि ते सुराः।
सैव कारण - कार्येषु, प्रत्यक्षेणावगम्यते॥

अर्थात् **ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, अग्नि, सूर्य, वरुण**—कोई भी अपने-अपने कार्य करने में समर्थ नहीं हैं। उसी **आद्या शक्ति** से संयुक्त होकर ही वे देवता अपने कार्यों को कर पाते हैं। सभी कार्यों और कारणों में एक-मात्र वही **शक्ति** प्रत्यक्ष रूप में दिखाई देती है।

या देवी सर्व - भूतेषु, तृष्णा-रूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥३५ नमस्तस्यै॥३६ नमस्तस्यै नमो नमः॥३७॥

अर्थ—जो **देवी** सभी प्राणियों में '**तृष्णा**'-रूप से विराजमान हैं, उन्हें प्रणाम, उन्हें प्रणाम, उन्हें प्रणाम, प्रणाम, प्रणाम।

व्याख्या—**तृष्णा**—'**तृष्णे स्पृहा-पिपासे द्वे, तद्-रूपेहाम्बिका स्मृता।**' अर्थात् '**तृष्णा**'-शब्द के दो अर्थ हैं—१ जल की प्यास, २ विषय-भोग की लालसा। देवी इन दोनों प्रकार की '**तृष्णा**'-**स्वरूपा** हैं।

या देवी सर्व - भूतेषु, क्षान्ति-रूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥३८ नमस्तस्यै॥३९ नमस्तस्यै नमो नमः॥४०॥

अर्थ—जो **देवी** सभी प्राणियों में '**क्षान्ति**'-रूप से विराजमान हैं, उन्हें प्रणाम, उन्हें प्रणाम, उन्हें प्रणाम, प्रणाम, प्रणाम।

व्याख्या—**क्षान्ति**—सामर्थ्य होते हुए भी पशुओं या अहित करनेवालों का अनिष्ट करने की अनिच्छा ही '**क्षान्ति**' या **क्षमा** कहलाती है (**नागो जी**)।

या देवी सर्व - भूतेषु, जाति - रूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥४१ नमस्तस्यै॥४२ नमस्तस्यै नमो नमः॥४३॥

अर्थ—जो **देवी** सभी प्राणियों में '**जाति**'-रूप से विराजमान हैं, उन्हें प्रणाम, उन्हें प्रणाम, उन्हें प्रणाम, प्रणाम, प्रणाम।

व्याख्या—**जाति**—(१) जो नित्य होते हुए भी बहुत प्रकार के पदार्थों में व्यक्त होती हैं, वही '**जाति**' कही जाती हैं। यथा—मनुष्य-समूह में **मानवता**, गो-समूह में **गोत्व** जाति है (**शान्तनवी**)। (२) जन्म या ब्रह्म-सत्ता (**गुप्तवती**)।

या देवी सर्व - भूतेषु, लज्जा-रूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥४४ नमस्तस्यै॥४५ नमस्तस्यै नमो नमः॥४६॥

अर्थ—जो **देवी** सभी प्राणियों में '**लज्जा**'-रूप से विराजमान हैं, उन्हें प्रणाम, उन्हें प्रणाम, उन्हें प्रणाम, प्रणाम, प्रणाम।

व्याख्या—**लज्जा**—कर्त्तव्य-पालन में असमर्थ होने पर या कुकर्म करने के कारण दूसरों के सामने या अपने मन में सङ्कोच का अनुभव होता है। चित्त के इसी भाव को **लज्जा** कहते हैं **(शान्तनवी)**।

या देवी सर्व-भूतेषु, शान्ति-रूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥४७ नमस्तस्यै॥४८ नमस्तस्यै नमो नमः॥४९॥

अर्थ—जो देवी सभी प्राणियों में '**शान्ति**'-रूप से विराजमान हैं, उन्हें प्रणाम, उन्हें प्रणाम, उन्हें प्रणाम, प्रणाम, प्रणाम।

व्याख्या—**शान्ति**—इन्द्रिय-संयम, विषय-भोग से उप-रति (**नागो जी**)।

या देवी सर्व-भूतेषु, श्रद्धा-रूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥५० नमस्तस्यै॥५१ नमस्तस्यै नमो नमः॥५२॥

अर्थ—जो **देवी** सभी प्राणियों में '**श्रद्धा**'-रूप से विराजमान हैं, उन्हें प्रणाम, उन्हें प्रणाम, उन्हें प्रणाम, प्रणाम, प्रणाम।

व्याख्या—**श्रद्धा**—गुरु और शास्त्र के वचनों में विश्वास। '**सर्व-वेदान्त-सिद्धान्त-सार-संग्रह**', पृष्ठ २९२ में **आचार्य शङ्कर** ने लिखा है—

गुरु-वेदान्त-वाक्येषु, बुद्धिर्या निश्चयात्मिका।
सत्यमित्येव श्रद्धा, निदानं मुक्ति-सिद्धये॥

अर्थात् **गुरु** और **वेदान्त** के कथनों के सम्बन्ध में जो बुद्धि निश्चय-पूर्वक यह समझती है कि '**वह सत्य है**', उसका यह समझना ही '**श्रद्धा**' है। यही '**श्रद्धा**' मोक्ष-प्राप्ति में सहायक होती है।

या देवी सर्व-भूतेषु, कान्ति-रूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥५३ नमस्तस्यै॥५४ नमस्तस्यै नमो नमः॥५५॥

अर्थ—जो **देवी** सभी प्राणियों में '**कान्ति**'-रूप से विराजमान हैं, उन्हें प्रणाम, उन्हें प्रणाम, उन्हें प्रणाम, प्रणाम, प्रणाम।

व्याख्या—**कान्ति**—लावण्य, इच्छा (**गुप्तवती**)। '**कान्तिः शोभेच्छयोः स्त्रियां**'—अर्थात् '**कान्ति**'-शब्द का प्रयोग '**शोभा**' और '**इच्छा**' अर्थ में होता है।

या देवी सर्व-भूतेषु, लक्ष्मी-रूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥५६ नमस्तस्यै॥५७ नमस्तस्यै नमो नमः॥५८॥

अर्थ—जो **देवी** सभी प्राणियों में '**लक्ष्मी**'-रूप से विराजमान हैं, उन्हें प्रणाम, उन्हें प्रणाम, उन्हें प्रणाम, प्रणाम, प्रणाम।

व्याख्या—**लक्ष्मी**—(१) धनादि सम्पत्ति (**नागो जी**), (२) विद्या-तपो-धनादि समृद्धि-रूपा (**नीलकण्ठ, महाभारत-टीका**, भीष्म-पर्व, २३वाँ अध्याय)।

या देवी सर्व-भूतेषु, वृत्ति-रूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥५९ नमस्तस्यै॥६० नमस्तस्यै नमो नमः॥६१॥

अर्थ—जो **देवी** सभी प्राणियों में '**वृत्ति**'-रूप से विराजमान हैं, उन्हें प्रणाम, उन्हें प्रणाम, उन्हें प्रणाम, प्रणाम, प्रणाम।

व्याख्या—**वृत्ति**—(१) '**वर्त्तते अनया वृत्तिः**' अर्थात् जिसके द्वारा जीवन का निर्वाह हो, **खेती-व्यापारादि** जीविका के साधन, (२) **चित्त की वृत्ति**।

या देवी सर्व-भूतेषु, स्मृति-रूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥६२ नमस्तस्यै॥६३ नमस्तस्यै नमो नमः॥६४॥

अर्थ—जो **देवी** सभी प्राणियों में '**स्मृति**'-रूप से विराजमान हैं, उन्हें प्रणाम, उन्हें प्रणाम, उन्हें प्रणाम, प्रणाम, प्रणाम।

व्याख्या—**स्मृति**—(१) संस्कार-जनित ज्ञान (**गुप्तवती**), (२) अनुभूत विषय का ज्ञान (**नागो जी**)।

या देवी सर्व-भूतेषु, दया-रूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥६५ नमस्तस्यै॥६६ नमस्तस्यै नमो नमः॥६७॥

अर्थ—जो **देवी** सभी प्राणियों में '**दया**'-रूप से विराजमान हैं, उन्हें प्रणाम, उन्हें प्रणाम, उन्हें प्रणाम, प्रणाम, प्रणाम।

व्याख्या—**दया**—पर-दुःख के दूरीकरण की इच्छा (**नागो जी**)। निःस्वार्थ भाव से की गई दया '**सात्त्विकी**', यश-लाभ की इच्छा से की गई '**राजसी**' और कु-पात्र पर की गई दया '**तामसी**' कहलाती है।

या देवी सर्व-भूतेषु, तुष्टि-रूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥६८ नमस्तस्यै॥६९ नमस्तस्यै नमो नमः॥७०॥

अर्थ—जो **देवी** सभी प्राणियों में '**तुष्टि**'-रूप से विराजमान हैं, उन्हें प्रणाम, उन्हें प्रणाम, उन्हें प्रणाम, प्रणाम, प्रणाम।

व्याख्या—**तुष्टि**—सन्तोष (**गुप्तवती**)।

या देवी सर्व-भूतेषु, मातृ-रूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥७१ नमस्तस्यै॥७२ नमस्तस्यै नमो नमः॥७३॥

अर्थ—जो **देवी** सभी प्राणियों में '**मातृ**'-रूप से विराजमान हैं, उन्हें प्रणाम, उन्हें प्रणाम, उन्हें प्रणाम, प्रणाम, प्रणाम।

व्याख्या—**मातृ**—(१) माता, जननी, (२) **ब्राह्मी आदि आठ मातृका-शक्तियाँ**, जिनके बिना प्राणियों की सृष्टि नहीं हो सकती। **शान्तनवी टीका** में—

ब्राह्मी माहेश्वरी चैन्द्री, वाराही वैष्णवी तथा।
कौमारी चर्म-मुण्डा च, काली सङ्कर्षणीति च॥

(३) अकार से क्षकार तक के वर्ण-समूह की अधिष्ठात्री—'**मातृका देवी**'। (४) प्रमाता **(गुप्तवती)**।

या देवी सर्व-भूतेषु, भ्रान्ति-रूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥७४ नमस्तस्यै॥७५ नमस्तस्यै नमो नमः॥७६॥

अर्थ—जो **देवी** सभी प्राणियों में '**भ्रान्ति**'-रूप से विराजमान हैं, उन्हें प्रणाम, उन्हें प्रणाम, उन्हें प्रणाम, प्रणाम, प्रणाम।

व्याख्या—**भ्रान्ति**—'**अनस्मिन् तदिति ज्ञानं भ्रान्तिः**' अर्थात् जो वस्तु जो है नहीं, उसे वही वस्तु मानना एक **झूठा ज्ञान** है (**शान्तनवी**)। ऐसे मिथ्या ज्ञान को '**भ्रान्ति**' कहते हैं। जैसे रस्सी साँप-जैसी जान पड़ती है, सीपी चाँदी प्रतीत होती है।

भ्रान्तिर्विपर्यय-ज्ञानं, द्विधा साऽपि निगद्यते।
अ-तत्त्वे तत्त्व-रूपा च, तत्त्वे चातत्त्व-रूपिणी॥

अर्थात् '**भ्रान्ति**' का अर्थ है **विपरीत (उल्टा) ज्ञान**। वह दो प्रकार की होती है—(१) अ-तत्त्व को तत्त्व समझना, (२) तत्त्व को अ-तत्त्व मानना।

वेदान्त के अनुसार '**भ्रान्ति**' या भ्रम के दो भेद हैं—(१) **संवादी**, (२) **विसंवादी**। जिस भ्रान्ति के द्वारा अभीष्ट मिले, उसे '**संवादी**' और जिसके कारण वह न मिले, उसे '**विसंवादी**' कहते हैं। मोती की चमक देखकर यदि कोई मोती के भ्रम में उस दिशा में जाए और वास्तव में मोती उसे मिल जाए, तो यह '**संवादी**' **भ्रम** का उदाहरण हुआ। इसी प्रकार दीपक में प्रकाश देखकर किसी को मोती का भ्रम हो और मोती की खोज में उधर जाने पर उसे मोती न मिले, तो यह '**विसंवादी**' **भ्रम** का दृष्टान्त हुआ।

'**पञ्चदशी**' ५।६ नामक **वेदान्त**-ग्रन्थ में इसी आशय की उक्ति है—

दीप-प्रभा मणि-भ्रान्तिः, विसंवादि-भ्रमः स्मृतः।
मणि-प्रभा मणि-भ्रान्तिः, संवादि-भ्रम उच्यते॥

आगे वहीं (९।१३) इसे और स्पष्ट किया है—

स्वयं भ्रमोऽपि संवादी, यथा सम्यक् फल-प्रदः।
ब्रह्म-तत्त्वोपासनाऽपि, तथा मुक्ति-फल-प्रदा॥

अर्थात् जिस प्रकार **संवादी भ्रम** वास्तव में भ्रम होते हुए भी वांछित फल देता है, उसी प्रकार **ब्रह्म-तत्त्वोपासना** अर्थात् **सगुण ब्रह्मोपासना** या **साकार उपासना** भी **ब्रह्म के अपरोक्ष ज्ञान** के न्याय से यथार्थ वस्तु-रूप न होती हुई भी **मोक्ष-रूपी** अभीष्ट फल को प्राप्त करा देती है।

इन्द्रियाणामधिष्ठात्री, भूतानां चाखिलेषु या।
भूतेषु सततं तस्यै, व्याप्ति-देव्यै नमो नमः॥७७॥

अर्थ—जो सभी प्राणियों में इन्द्रियों की और भूतों की अधिष्ठात्री हैं, उन '**व्याप्ति**'-देवी को सदा प्रणाम है, प्रणाम।

व्याख्या—**इन्द्रियाणामधिष्ठात्री**—पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय और मन—ये **ग्यारह इन्द्रियाँ** हैं। चैतन्य-मयी **ब्रह्म-शक्ति** से प्रेरित होकर ही ये अपने-अपने कार्य करती हैं। '**केनोपनिषद्**' १।२ में लिखा है—

श्रोत्रस्य श्रोत्र मनसो, मनो यद्-वाचो ह वाचम्।
स उ प्राणस्य, प्राणश्चक्षुषश्च चक्षुः॥

अर्थात् जो कान का कान, मन का मन, वाणी की वाणी है, वही प्राण का प्राण और आँख की आँख है। आशय यह है कि **ब्रह्म-शक्ति** ही समस्त इन्द्रियों को प्रेरणा देती है।

व्याप्ति-देव्यै—विश्व-व्यापिनी देवी को। वस्त्र में जिस प्रकार सूत (तन्तु) और मणियों के भीतर जिस प्रकार धागा प्रविष्ट रहता है, उसी प्रकार **देवी** समस्त पदार्थों के अन्दर समाई हुई हैं। वे ही इन पदार्थों को प्रकाशित करती हैं (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

चिति-रूपेण या कृत्स्नमेतद् व्याप्य स्थिता जगत्।
नमस्तस्यै॥७८ नमस्तस्यै॥७९ नमस्तस्यै नमो नमः॥८०॥

अर्थ—जो देवी '**चिति**'-रूप से इस सारे जगत् में व्याप्त होकर विराजमान हैं, उन्हें प्रणाम, उन्हें प्रणाम, उन्हें प्रणाम, प्रणाम, प्रणाम।

व्याख्या—**चिति**—काश्मीर के शैव दार्शनिक **क्षेमराज राजानक** कृत '**प्रत्यभिज्ञा-हृदय**' में बताया है कि—'**चितिः स्वतन्त्रता विश्व-सिद्धि-हेतुः**' अर्थात् '**चिति**' स्वाधीन है, स्वयं ही सब कुछ करनेवाली है और सारे संसार की सृष्टि-स्थिति-संहार की आधार-भूता है।

'**चिति**' के ही विकास से सृष्टि का प्राकट्य होता है और उसके सिमट जाने से सृष्टि का तिरोभाव हो जाता है। शैव दर्शन में '**चिति**' को '**विमर्श**' कहते हैं, जिसके अर्थ हैं—प्रकाश, स्फूर्ति, उल्लास। '**चिति**'-**शक्ति** के स्फुरण के फल-स्वरूप ही विश्व अस्तित्व में आता है।

नागो जी भट्ट ने अपनी टीका में '**कात्यायनी तन्त्र**' का एक उद्धरण इस प्रसङ्ग में दिया है—

विष्णु-माया चेतना च, बुद्धि-निद्रे क्षुधा तथा।
छाया शक्तिश्च तृष्णा च, क्षान्तिर्जातिस्ततः परम्॥
लज्जा शान्तिस्ततः श्रद्धा, कान्तिर्लक्ष्मीस्ततः परम्।
वृत्तिः स्मृतिर्दया चैव, तुष्टिर्माता ततः परम्॥
भ्रान्तिर्व्याप्तिश्चितिश्चैव, त्रयो-विंशति-संख्यका:।
इतोऽधिकमनर्षं स्यात्, तन्त्रे कात्यायने स्फुटम्॥

१४-१६ श्लोक की व्याख्या में **भगवती के तेईस रूपों** का उल्लेख हो चुका है। उन्हीं की पुष्टि उक्त वचन से होती है। कुछ लोग '**धृति**' और '**पुष्टि**' ये दो अन्य रूप भी बताते हैं किन्तु '**कात्यायनी तन्त्र**' की स्पष्ट उक्ति है कि उल्लिखित तेईस रूपों से अधिक रूपों का मानना ऋषियों द्वारा सम्मत नहीं है।

स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्ट-संश्रयात्,
तथा सुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता।
करोतु सा नः शुभ-हेतुरीश्वरी,
शुभानि भद्राण्यभि-हन्तु चापदः॥८१

अर्थ—पहले अर्थात् **महिषासुर-वध** के समय अपनी अभिलाषा की पूर्ति के लिए जो **देवताओं द्वारा वन्दिता** और **देव-राज इन्द्र द्वारा प्रति-दिन उपासिता** हुई थीं, मङ्गल की कारण-भूता वे भगवती हमारे सभी प्रकार के कल्याण करें और विपत्तियों को नष्ट करें।

या साम्प्रतं चोद्धत-दैत्य-तापितै-
रस्माभिरीशा च सुरैर्नमस्यते।
या च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति नः,
सर्वापदो भक्ति-विनम्र-मूर्त्तिभिः॥८२

अर्थ—इस समय गर्व-पूर्ण दैत्यों द्वारा पीड़ित हम देवता जिनको नमस्कार कर रहे हैं और स्मरण कर रहे हैं, वे भक्ति से झुके हुए शरीरवाले हम देवों की सारी विपत्तियों को तुरन्त नष्ट कर दें।

व्याख्या—**भक्ति-विनंम्र-मूर्त्तिभिः**—एकाग्र होकर प्रणाम करने से **अहङ्कार** नष्ट होता है और **आत्म-समर्पण** की भावना पूर्ण रूप से जाग्रत होती है। '**सप्तशती**' की यह '**शक्रादि-स्तुति**' **प्रणाम** के महत्त्व को प्रतिपादित करती है। इसमें **जगदम्बा के एक-एक रूप** के प्रति **बारम्बार प्रणाम** किया गया है। तात्पर्य यह है कि **भगवती की कृपा** पाने के लिए **पूर्ण आत्म-समर्पण** अति आवश्यक है। थोड़ा-सा भी **अहं-भाव** रहने से, किसी अन्य से सहायता पाने की कुछ भी आशा रखने से **दिव्य साहाय्य** के मिलने में विलम्ब हो सकता है। **एक-मात्र माँ की शरण** लेने की भावना होनी चाहिए। जैसा कि '**किङ्किणी स्तोत्र**' ('**चक्र-पूजा के स्तोत्र**') में उक्ति है—

नान्यं वदामि न श्रृणोमि न चिन्तयामि,
नान्यं स्मरामि न भजामि न चाश्रयामि।
त्यक्त्वा त्वदीय - चरणाम्बुजमादरेण,
मां त्राहि देवि! कृपया मयि देहि सिद्धिम्।

अर्थात् तुम्हारे चरण-कमल को छोड़कर आदर से न किसी दूसरे की मैं बात करता हूँ, न सुनता हूँ, न चिन्ता करता हूँ, न किसी दूसरे का स्मरण करता हूँ, भजन करता, सहारा लेता हूँ। हे देवि! मेरी रक्षा करो, कृपा कर मेरा अभीष्ट पूरा करो।

इस प्रकार **जगदम्बा के चरणों में सर्वतोभावेन नत-मस्तक** होने से, **अहं-भाव** के सर्वथा दूर हो जाने से, **माँ का चामत्कारिक अनुग्रह** भक्त को अवश्य मिलता है।

दैवी शक्ति जिस प्रकार बाहर सारी सृष्टि के अणु-अणु में व्याप्त है, उसी प्रकार वह हमारे शरीर, मन, प्राणादि सभी अङ्गों में विद्यमान है, इस तथ्य को जितनी सत्यता के साथ अनुभव किया जाएगा, उतनी ही अधिक सफलता **भगवती का साक्षात्कार** करने में मिलेगी। **'शक्रादि-स्तुति'** से इसी अनुभूति की पुष्टि होती है।

देवी कौशिकी का आविर्भाव

॥ ऋषिरुवाच ॥८३॥

एवं स्तवादि - युक्तानां, देवानां तत्र पार्वती।
स्नातुमभ्याययौ तोये, जाह्नव्या नृप-नन्दन!॥८४॥

अर्थ—**मेधस ऋषि** ने **राजा सुरथ** से कहा—हे राज-पुत्र! वहाँ हिमालय पर, इस प्रकार स्तुति आदि उपासना-कर्म करते हुए देवताओं के सम्मुख **पार्वती** गङ्गा के जल में स्नान करने के लिए आईं।

व्याख्या—**स्तवादि-युक्तानां**—'**आदि**'-शब्द से **पूजा, प्राणायाम, ध्यान, धारणादि उपासना**-कर्मों को समझना चाहिए (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

जाह्नवी—**गङ्गा** का एक नाम। जिस समय **राजा भगीरथ** अपनी तपस्या के फल-स्वरूप **गङ्गा** की धारा को पृथ्वी पर ले आए थे, उस धारा के मार्ग में **जह्नु मुनि** का आश्रम पड़ गया और वह जल में डूब गया। इससे क्रोधित होकर मुनि सारे **गङ्गा-जल** को पी गए। तब **देवों** और **भगीरथ** ने प्रार्थना कर उन्हें प्रसन्न किया, जिस पर उन्होंने अपने कान (या उरु) से **गङ्गा** की धारा पुनः प्रवाहित की। तभी से **गङ्गा** का नाम '**जह्नु**'-**सुता** या '**जाह्नवी**' पड़ गया।

साऽब्रवीत् तान् सुरान्, सुभ्रूर्भवद्भिः स्तूयतेऽत्र का?
शरीर - कोशतश्चास्याः, समुद्भूताऽब्रवीच्छिवा॥८५॥

अर्थ—सुन्दर भौहोंवाली वे **पार्वती** उन देवताओं से बोलीं कि—'आप यहाँ किनकी स्तुति कर रहे हैं?' उस समय उन **पार्वती** के शरीर-कोष से प्रकट होकर **मङ्गल-कारिणी आदि-शक्ति** ने कहा—

व्याख्या—**शरीर-कोशतः**—(१) शरीर-रूपी कोश या गृह से (**नागो जी**)। (२) शरीर-रूपी कोष या रत्न-भण्डार से (**तत्त्व-प्रकाशिका**)। '**अमर-कोष**' के अनुसार—'**कोषोऽस्त्री कुड्मले खड्ग-पिधानेऽर्थौघ-दिव्ययोः**' अर्थात् '**कोष**'-शब्द का प्रयोग **कलिका (मुकुल), खड्गावरण (म्यान), धन-भाण्डार** और **दिव्य** के अर्थ में किया जाता है।

समुद्भूता—सत्त्व-प्रधान अंश में प्रादुर्भूत हुईं (**नागो जी**)।

शिवा—यहाँ '**शिवा**' शब्द से **ब्रह्मा-विष्णु-महेशादि देवों के समस्त तेज से आविर्भूता आदि-शक्ति** का तात्पर्य है (**शान्तनवी**)।

स्तोत्रं ममैतत् क्रियते, शुम्भ-दैत्य-निराकृतैः।

देवैः समेतैः समरे, निशुम्भेन पराजितैः॥८६॥

अर्थ—युद्ध में **निशुम्भ** से हारे हुए और **शुम्भ** राक्षस से सताए गए देवता एकत्र होकर मेरे प्रति यह स्तुति कर रहे हैं।

शरीर-कोशाद् यत्-तस्याः, पार्वत्याः निःसृताऽम्बिका।

कौशिकीति समस्तेषु, ततो लोकेषु गीयते॥८७॥

अर्थ—क्योंकि उन **पार्वती** के शरीर-कोश से **अम्बिका** बाहर आईं, इसलिए सभी लोकों में वे '**कौशिकी**' नाम से कही जाती हैं।

व्याख्या—**कौशिकी**—**नागो जी भट्ट** और **भास्कर राय**, दोनों ही ने **कौशिकी देवी** की उत्पत्ति का विवरण अपनी टीकाओं में दिया है। यह विवरण '**शिव-पुराण**' की **वायवीय संहिता** (२१वाँ अध्याय) में दिया है। यथा—

शुम्भ और **निशुम्भ** नामक दैत्यों ने घोर तपस्या की। **ब्रह्मा** से उन्होंने यह वर माँगा कि संसार का कोई पुरुष उन्हें मार नहीं सके। किन्तु—

अ-योनिजा तु या कन्या, स्त्र्यङ्ग-कोश-समुद्भवा।

अजात - पुं - स्पर्श - रतिरविलंघ्य - पराक्रमा।

तया तु नौ वधः संख्ये, तस्यां कामाभिभूतयोः॥

जो **कन्या** योनि से जन्म न लेकर पुरुष के स्पर्श और प्रेम से निरपेक्ष स्त्री के शरीर-कोष से उत्पन्न हुई हो और **अजेय शक्तिवाली** हो, उसके प्रति कामासक्त होने पर युद्ध में हम उसके ही द्वारा मारे जाएँ।

यह **वर** पाकर दोनों ने अपने को अबध्य मान लिया और उन्मत्त होकर तीनों लोकों को त्रस्त करने लगे। इस पर **ब्रह्मा जी महादेव** के पास पहुँचे और उनसे अनुरोध किया कि **जगदम्बा** के शरीर से उक्त लक्षणोंवाली कन्या के आविर्भाव का उपाय किया जाए। **महादेव** ने **पार्वती जी** को '**काली**' कहकर सम्बोधित किया, जिससे क्षुब्ध होकर वे गौर शरीर पाने के उद्देश्य से तप करने **गौतम आश्रम** में चली गईं। **ब्रह्मा जी** ने वहाँ पहुँच कर उनसे कहा कि **शुम्भ-निशुम्भ** मुझसे वर पाकर उद्धत हो देवताओं को पीड़ित कर रहे हैं। आपसे जो **शक्ति** उत्पन्न होगी, वह उनके लिए मृत्यु बनेगी।' इस पर **पार्वती देवी** ने उसी समय अपने **चर्म-कोश** का त्याग कर **गौर-वर्णा** रूप धारण किया। उनके द्वारा छोड़े गए **चर्म-कोश** से '**कौशिकी**' **देवी** उत्पन्न हुईं। यथा—

सा त्वक्-कोशात्मनोत्सृष्टा, कौशिकी-नाम-नामतः।

काली कालाम्बुद-प्रख्या, कन्यका समपद्यत॥

सा तु मायात्मिका शक्तिर्योग-निद्रा च वैष्णवी।

शङ्ख-चक्र-त्रिशूलादि-सायुधाष्ट-महा-भुजा॥

सौम्या घोरा च मिश्रा च, त्रिनेत्रा चन्द्र-शेखरा।
अजात-पुं-स्पर्श-रतिरघृष्या चाति-सुन्दरी॥

वे काले बादलों के समान **काली** हैं। **माया-मयी, वैष्णवी, योग-निद्रा**-रूपिणी **शक्ति, शङ्ख-चक्र-त्रिशूलादि** अपने आठ हाथों में धारण किए हैं। उनका स्वरूप **सौम्य, भयानक** और **दोनों प्रकार का मिश्रित** है। **तीन नेत्र** हैं और मस्तक **चन्द्रमा** से शोभित है। पुरुष-सम्पर्क से रहिता वे **अति-सुन्दरी कुमारी** हैं। **'देवी-भागवत'** की टीका (५,२३,२) में **नीलकण्ठ** ने लिखा है कि **कौशिकी देवी** ही **महा-सरस्वती** हैं। उन्होंने **'वैकृतिक रहस्य'** के ध्यान को उद्‌धृत किया है—

गौरी-देहात् समुद्‌भूता, या सत्त्वैक-गुणाश्रया।
साक्षात् सरस्वती प्रोक्ता, शुम्भासुर-निवर्हिणी॥
दधौ चाष्ट-भुजा वाण-मूसले शूल-चक्र-भृत्।
शङ्खं घण्टां लाङ्गलं च, कार्मुकं वसुधाधिप!॥
एषा सम्पूजिता भक्त्या, सर्वज्ञत्वं प्रयच्छति।
निशुम्भ-मथिनी देवी, शुम्भासुर-निवर्हिणी॥

अर्थात् जो एक-मात्र सत्त्व-गुण-मयी **देवी गौरी** की देह से उत्पन्न हुईं, वे ही **शुम्भासुर** का नाश करनेवाली साक्षात् **'सरस्वती'** कही गई हैं। हे भूपते! ये **अष्ट-भुजा देवी** १ वाण, २ मूसल, ३ शूल, ४ चक्र, ५ शङ्ख, ६ घण्टा, ७ लाङ्गल और ८ धनुष धारण किए हैं। **निशुम्भ-मर्दिनी** और **शुम्भ-नाशिनी देवी** भक्ति-पूर्वक पूजा करने से भक्त को **'सर्वज्ञता'** प्रदान करती हैं।

तस्यां विनिर्गतायां तु, कृष्णाऽभूत् साऽपि पार्वती।
कालिकेति समाख्याता, हिमाचल-कृताश्रया॥८८॥

अर्थ—उन (**कौशिकी देवी**) के बाहर निकलने से **पार्वती देवी** भी **कृष्ण-वर्णा** हो गईं। वे **हिमालय** को अपना स्थान बनाकर **कालिका देवी** के नाम से प्रसिद्ध हुईं।

व्याख्या—इस प्रसङ्ग में **'देवी-भागवत'**, स्कन्ध ५, अध्याय २३, श्लोक २-४ का निम्न वर्णन पठनीय है—

पार्वत्यास्तु शरीराद् वै, निःसृता चाम्बिका यदा।
कौशिकीति समस्तेषु, ततो लोकेषु पठ्यते॥
निःसृतायां तु तस्यां, पार्वती तनु-व्यत्ययात्।
कृष्ण-रूपाऽथ सञ्जाता, कालिका सा प्रकीर्तिता॥
मसी-वर्णा महा-घोरा, दैत्यानां भय-वर्द्धिनी।
काल-रात्रीति सा प्रोक्ता, सर्व-काम-फल-प्रदा॥

अर्थात् जब **पार्वती** के शरीर से **भगवती अम्बिका** निकलीं, तो सभी लोकों में उन्हें **'कौशिकी'** नाम से जाना गया। उनके निकलने पर शरीर के परिणाम-वश **पार्वती कृष्ण-वर्णा**

हो गईं और वह '**कालिका**' नाम से प्रसिद्ध हुईं। स्याही के समान रङ्गवाली अति भयङ्करी वे दैत्यों का भय बढ़ानेवाली हैं और वह सब कामनाओं को पूर्ण करनेवाली **भगवती** '**काल-रात्रि**' भी कही जाती हैं।

'**देवी भागवत**' से यह भी ज्ञात होता है कि **देवी कौशिकी** सिंह पर सवार होकर और अपने बगल में **भगवती कालिका** को लेकर **दैत्येन्द्र** की नगरी में प्रविष्ट हुई थीं।

चण्ड-मुण्ड द्वारा कौशिकी देवी के दर्शन कर शुम्भासुर को सूचित करना

ततोऽम्बिकां परं रूपं, बिभ्राणां सु-मनोहरम्।
ददर्श चण्डो मुण्डश्च, भृत्यौ शुम्भ-निशुम्भयोः॥८९॥

अर्थ—तदनन्तर **शुम्भ** और **निशुम्भ** के दो सेवकों **चण्ड** और **मुण्ड** ने सुन्दर मनोहर परम रूप धारण करनेवाली **अम्बिका** को देखा।

ताभ्यां शुम्भाय चाख्याता, अतीव सु-मनोहरा।
काऽप्यास्ते स्त्री महा-राज! भासयन्ती हिमाचलम्॥९०॥

अर्थ—और उन दोनों ने जाकर **शुम्भ** से **कौशिकी देवी** का वर्णन किया कि 'हे महा-राज! बहुत ही सुन्दर और मनोहारिणी कोई स्त्री हिमालय को प्रकाशित करती हुई विराजमान है।'

नैव तादृक् क्वचिद् रूपं, दृष्टं केनचिदुत्तमम्।
ज्ञायतां काऽप्यसौ देवी, गृह्यतां चासुरेश्वर!॥९१॥

अर्थ—'हे **दैत्य-राज**! उसके समान श्रेष्ठ सुन्दरता कहीं किसी ने भी नहीं देखी है। वह **देवी** कौन है, जानिए और उसे ग्रहण करिए।'

स्त्री-रत्नमति-चार्वङ्गी, द्योतयन्ती दिशस्त्विषा।
सा तु तिष्ठति दैत्येन्द्र! तां भवान् द्रष्टुमर्हति॥९२॥

अर्थ—'हे असुर-राज! बहुत ही सुन्दर अङ्गोंवाली वह श्रेष्ठ स्त्री अपनी कान्ति से दिशाओं को प्रकाशित करती हुई विराजमान है। आपको उसे देखना चाहिए।'

व्याख्या—**स्त्री-रत्न**—स्त्रियों में श्रेष्ठ। '**जातौ यदुत्कृष्टं तद्-रत्नमभिधीयते**'—अर्थात् जिस जाति में जो श्रेष्ठ पदार्थ होता है, उसे उस जाति का '**रत्न**' कहते हैं।

अति-चार्वङ्गी—'**अति-चारु अति मनोज्ञं अङ्गं यस्याः सा**' अर्थात् जिसके अङ्ग बहुत ही सुन्दर—मनोहर हैं। '**त्रिपुरा-रहस्य**', ४४।६५-६६ में इसी प्रसङ्ग का वर्णन निम्न प्रकार है—

उर्वशी पूर्व-चित्तिश्च, रम्भा चाऽपि तिलोत्तमा।
मेनका च त्वां भजन्ति, सदेमा मिलिता अपि॥
तस्याः पाद-नखस्यादि, सौन्दर्यस्य कला-समाः।
भवेयुर्न भवेयुर्वा, इति मेऽनिश्चिता मतिः॥

अर्थात् **चण्ड-मुण्ड** ने कहा कि '**उर्वशी, पूर्व-चित्ति, रम्भा, तिलोत्तमा** और **मेनका** नाम की अप्सराएँ आपकी सदा सेवा करती हैं, किन्तु ये सब मिलकर भी उसके पैरों के नाखून को सुन्दरता के सोलहवें भाग की भी बराबरी कर सकती हैं या नहीं, इस सम्बन्ध में मेरी बुद्धि निर्णय नहीं कर पाती।'

यानि रत्नानि मणयो, गजाश्वादीनि वै प्रभो!
त्रैलोक्ये तु समस्तानि, साम्प्रतं भान्ति ते गृहे॥९३॥

अर्थ—'हे स्वामिन्! तीनों लोकों में हाथी, घोड़े आदि जो श्रेष्ठ '**रत्न**' और '**मणियाँ**' हैं, वे सभी इस समय आपके घर में शोभा पा रही हैं।'

व्याख्या—इस श्लोक से लेकर १००वें श्लोक तक में **चण्ड-मुण्ड** यह बात प्रतिपादित करते हैं कि **शुम्भासुर** सभी रत्नों का आश्रय-दाता है और इस प्रकार उसे स्त्रियों में '**रत्न**' के समान **कौशिकी देवी** को भी अपने घर में लाने को प्रेरित करते हैं।

ऐरावतः समानीतो, गज - रत्नं पुरन्दरात्।
पारिजात-तरुश्चायं, तथैवोच्चैःश्रवा हयः॥९४॥

अर्थ—'आप **इन्द्र** से श्रेष्ठ हाथी **ऐरावत** और **पारिजात वृक्ष** तथा **उच्चैःश्रवा घोड़ा** ले आए हैं।'

व्याख्या—**ऐरावतः**—'**इरा जलानि सन्ति अत्र इरावान् समुद्रः तत्र भवः**' अर्थात् समुद्र से उत्पन्न होनेवाला, **देव-राज इन्द्र** का हाथी। **समुद्र-मन्थन** के फल-स्वरूप **चौदह रत्न** प्राप्त हुए। उन्हीं में एक '**ऐरावत**' हाथी है, जो श्वेत-वर्ण का है और चार दाँतोंवाला है। यह **देव-राज इन्द्र** का वाहन है और **पूर्व-दिशा का अधिष्ठाता** (दिग्-राज) है।

पुरन्दरात्—'**पुराणि अरीणां दारयति पुरन्दरः, तस्मात्**' अर्थात् शत्रुओं की पुरियों का ध्वंस करने से **इन्द्र** का नाम '**पुरन्दर**' है।

पारिजातः—'**पारिणां पारवतः अब्धेः जातः**' अर्थात् समुद्र से उत्पन्न। यह देव-वृक्ष **समुद्र-मन्थन** के फल-स्वरूप उत्पन्न हुआ था। यह सभी कामनाओं की पूर्ति करता है।

उच्चैःश्रवा—'**उच्चैः श्रवसी कर्णौ यस्य सः**' अर्थात् जिसके दोनों कान ऊँचे हैं। यह **देवराज इन्द्र** का घोड़ा है, जो **समुद्र-मन्थन** द्वारा मिला था। यह चन्द्रमा के समान श्वेत वर्ण का है।

विमान-हंस-संयुक्तमेतत् तिष्ठति तेऽङ्गणे।
रत्न-भूतमिहानीतं, यदासीद् वेधसोऽद्भुतम्॥९५॥

अर्थ—'**ब्रह्मा** का जो **हंस-युक्त, रत्न के समान विलक्षण विमान** था, वह आपके इस आँगन में लाकर रखा हुआ है।'

निधिरेष महा-पद्मः, समानीतो धनेश्वरात्।
किञ्जल्किनीं ददौ चाब्धिर्मालामम्लान-पङ्कजाम्॥९६॥

अर्थ—**धन-पति कुबेर** से यह '**महा-पद्म**' नामक निधि लाई गई है और **समुद्र** ने '**किञ्जल्किनी**' नामक माला दी है, जिसके पुष्प कभी कुम्हलाते नहीं।

व्याख्या—**निधिः**—**कुबेर** के पास नौ प्रकार के विशेष रत्न '**हारावली**' नामक पुस्तक में बताए हैं—

पद्मोऽस्त्रियां महा-पद्मः, शङ्खो मकर-कच्छपौ।
मुकुन्द-कुन्द-नीलाश्च, वर्चोऽपि निधयो नव॥

अर्थात् **१ पद्म, २ महा-पद्म, ३ शङ्ख, ४ मकर, ५ कच्छप, ६ मुकुन्द, ७ कुन्द, ८ नील** और **९ वर्च**। '**मार्कण्डेय पुराण**' में **आठ निधियों** का उल्लेख है, जिनमें नवाँ '**वर्च**' नहीं है और '**कुन्द**' के स्थान पर '**नन्दक**' का उल्लेख है। ये आठ निधियाँ '**पद्मिनी**'-**विद्या** के आश्रित हैं।

महा-पद्मः—'**मार्कण्डेय पुराण**', ६८।१३।१८ के अनुसार यह निधि **सत्त्वाधार** है। इसके मिलने से **सत्त्व गुण** की वृद्धि होती है और **पद्मरागादि रत्न, मुक्ता, प्रवालादि** का स्वामित्व मिलता है।

किञ्जल्किनीं-किञ्जल्काः केशराः तद्-युक्तां अविशीर्ण-केशराम्'। अर्थात् जिसके केशर झड़े न हों, ऐसी पुष्प-माला (**शान्तनवी**)।

छत्रं ते वारुणं गेहे, काञ्चन-स्रावि तिष्ठति।
तथाऽयं स्यन्दन-वरो, यः पुराऽऽसीत् प्रजा-पतेः॥९७॥

अर्थ—'आपके घर में **वरुण देव** का स्वर्ण-वर्षा करनेवाला '**छत्र**' विद्यमान है और यह श्रेष्ठ रथ है, जो पहले **प्रजा-पति दक्ष** का था।'

व्याख्या—**काञ्चन-स्रावि**—(१) **स्वर्ण-वर्षण-शील** (**नागो जी**)। (२) **कान्त्या काञ्चनं स्रवति** अर्थात् उक्त छत्र में स्वर्ण इतनी कला-कुशलता से व्याप्त है कि दर्शक को उससे स्वर्ण की वर्षा होती प्रतीत होती है (**शान्तनवी**)।

मृत्योरुत्क्रान्तिदा नाम, शक्तिरीशः! त्वया हृता।
पाशः सलिल-राजस्य, भ्रातुस्तव परिग्रहे॥९८॥

अर्थ—'हे स्वामिन्! आपने यम की '**उत्क्रान्तिदा**' (मरण-प्रदा) नाम की शक्ति छीन ली है। जल के स्वामी **वरुण** का '**पाश**' आपके भाई **निशुम्भ** के अधिकार में है।'

व्याख्या—**उत्क्रान्तिदा**—'**उत्क्रान्तिः मरणं तां ददाति या**'। जीवों की आयु समाप्त होने पर यही शक्ति उनके प्राणों को बाहर निकाल लेती है (**शान्तनवी**)।

निशुम्भस्याब्धि-जाताश्च, समस्ता रत्न-जातयः।
वह्निरपि ददौ तुभ्यमग्नि-शौचे च वाससी॥९९॥

अर्थ—'**समुद्र** से उत्पन्न सभी **रत्न**-समूह **निशुम्भ** के अधिकार में हैं। **अग्नि-देव** ने भी आपको '**अग्नि-शुचि**' दो वस्त्र दिए हैं।'

व्याख्या—**रत्न-जातयः**—'**तन्त्र-सार**' में नव-रत्नों का उल्लेख है—

मुक्ता-माणिक्य-वैदूर्य-गोमेदान् वज्र-विद्रुमौ।
पुष्प-रागं मरकतं, नीलं चेति यथा-क्रमम्॥

अर्थात् **१ मुक्ता, २ माणिक्य, ३ वैदूर्य, ४ गोमेद, ५ वज्र (हीरा), ६ विद्रुम (मूँगा), ७ पुष्प-राग, ८ मरकत** और **९ नीलम**। '**अग्नि-पुराण**', अध्याय २४५ के '**रत्न-परीक्षा-प्रकरण**' में अनेक प्रकार के रत्नों का वर्णन है। **वराह मिहिर** की '**वृहत् संहिता**' में २२ प्रकार के रत्नों का परिचय दिया गया है। शास्त्र में रत्न का धारण करना बड़ा पुण्य-दायक बताया है। ग्रह-दोष की शान्ति के लिए विशेष रत्न धारण करने का निर्देश **ज्योतिष-शास्त्र** में मिलता है। विभिन्न रोगों के दूर करने में भी रत्न उपयोगी सिद्ध होते हैं।

अग्नि-शौचे—(१) '**सदैव अग्नि-वन्निर्मलं, अग्नि-प्रक्षेपणापनेय-मले वा**' अर्थात् अग्नि के समान सदा निर्मल या अग्नि में डालकर जिसका मैल दूर किया गया हो (**गुप्तवती**)।

(२) '**अग्निरेव नैर्मल्य-करणं ययोः**' अर्थात् अग्नि ने ही जिन वस्त्रों को स्वच्छ, पवित्र बनाया हो (**नागो जी**)।

(३) '**अग्नौ निक्षेपतः शौचं निर्मलीकरणं ययोः**' अर्थात् अग्नि में डालकर जिन्हें शुद्ध और निर्मल किया गया है (**शान्तनवी**)।

(४) '**अग्निरिव शौचं ययोः मल-संसर्गाभावात्**' अर्थात् मैल का सम्पर्क न होने से जो अग्नि के समान सदा पवित्र रहते हैं (**दंशोद्धार**)।

अग्नि से वस्त्र प्रायः जल जाते हैं, किन्तु ये विशेष वस्त्र हैं, जो जलते नहीं। आधुनिक युग में 'ऐसबेस्टस' नामक वस्त्र उपलब्ध है, जिस पर अग्नि का प्रभाव नहीं होता। इससे उक्त प्रकार के वस्त्रों की पुष्टि होती है। '**ब्रह्म-वैवर्त-पुराण**' में भी अग्नि से प्रभावित न होनेवाले वस्त्रों का अनेक स्थानों पर उल्लेख है।

एवं दैत्येन्द्र! रत्नानि, समस्तान्याहृतानि ते।
स्त्री-रत्नमेषा कल्याणी, त्वया कस्मान्न गृह्यते॥१००॥

अर्थ—'हे दैत्य-राज **शुम्भ**! इस प्रकार सभी श्रेष्ठ वस्तुओं को आपने छीन लिया है, इस सुन्दर लक्षणोंवाली श्रेष्ठ स्त्री को आप क्यों नहीं ग्रहण करते?'

शुम्भ द्वारा सुग्रीव को दूत-रूप में देवी के पास भेजना

॥ ऋषिरुवाच ॥१०१॥

निशम्येति वचः शुम्भः, स तदा चण्ड-मुण्डयोः।
प्रेषयामास सुग्रीवं, दूतं देव्या महाऽसुरम्॥१०२॥

अर्थ—**ऋषि मेधस** ने **राजा सुरथ** से कहा—तब उस **शुम्भ** ने **चण्ड-मुण्ड** की इन बातों को सुनकर **महा-दैत्य सुग्रीव** को **देवी कौशिकी** के पास **दूत**-रूप में भेजा।

व्याख्या—दूतः—'**दूयतेऽनेन यथोक्त-वादित्वात् परिताप्यते पर इति दूतः**' अर्थात् जो यथोक्त बात से शत्रु को परितप्त करे, उसे '**दूत**' कहते हैं (**शान्तनवी**)। '**चरेक्षणः दूत-मुखः**' के अनुसार '**चर**' राजा के नेत्र-समान होते हैं और '**दूत**' मुख के समान। '**दूत**' के बिना सन्धि-विग्रह आदि कोई कार्य सम्पन्न नहीं हो पाते, इसी से '**दूत**' को नियुक्त करते समय विशेष सावधानी रखनी होती है। '**मत्स्य-पुराण**' में '**दूत**' के लक्षण बताए हैं—

यथोक्त-वादी दूतः स्याद्, देश-भाषा-विशारदः।
शक्तः क्लेश-सहो वाग्मी, देश-काल-विभाग-वित्॥
विज्ञात-देश-कालश्च, दूतः स्यात् स महीक्षितः।
वक्ता नयस्य यः काले, स दूतो नृपतेर्भवेत्॥

अर्थात् यथोक्त बात कहनेवाला, जिस देश में भेजा जाए, वहाँ की भाषा अच्छी तरह जाननेवाला, समर्थ, कष्ट सहने में सक्षम, वाचाल, किस समय किस स्थान में कैसे कार्य करना चाहिए, जिससे अभीष्ट सिद्ध हो, इसे जाननेवाला, स्थान और समय को पहचाननेवाला, समय पर नीति-युक्त बात कहनेवाला व्यक्ति ही '**दूत**' बनाने योग्य है।

इति चेति च वक्तव्या, सा गत्वा वचनान्मम।
यथा चाभ्येति सम्प्रीत्या, तथा कार्यं त्वया लघु॥१०३॥

अर्थ—'जाकर मेरे कहने के अनुसार यह-यह बात उस देवी से इस प्रकार कहना, जिससे समुचित प्रेम के साथ शीघ्र ही चली आए, उसी प्रकार तुम कार्य करना।'

स तत्र गत्वा यत्रास्ते, शैलोद्देशेऽति-शोभने।
सा देवी तां ततः प्राह, श्लक्ष्णं मधुरया गिरा॥१०४॥

अर्थ—वे **कौशिकी देवी** बहुत ही सुन्दर पर्वत-शिखर पर जहाँ विराजमान थीं, वह **दूत शुम्भ** के पास से वहाँ पहुँचकर विनम्र मीठी वाणी से उनसे बोला—

दूत सुग्रीव की उक्ति

॥ दूत उवाच ॥१०५ ॥

देवि ! दैत्येश्वरः शुम्भस्त्रैलोक्ये परमेश्वरः।
दूतोऽहं प्रेषितस्तेन, त्वत् - सकाशमिहागतः॥१०६॥

अर्थ—**दूत सुग्रीव** ने **कौशिकी देवी** से कहा—'हे देवि! **दैत्य-राज शुम्भ** तीनों लोकों—स्वर्ग, मृत्यु और पाताल के स्वामी हैं। मैं उनके द्वारा भेजा हुआ **दूत** (सन्देश-वाहक) इस स्थान में आपके पास आया हूँ।'

अव्याहताज्ञः सर्वासु, यः सदा देव-योनिषु।
निर्जिताखिल-दैत्यारिः, स यदाह शृणुष्व तत्॥१०७॥

अर्थ—'सभी देव-जातियों में जिनकी आज्ञा अलङ्घनीय है, जिन्होंने सभी दैत्य-शत्रुओं को जीत लिया है, उन **शुम्भ** ने जो कहा है, उसे सुनिए।'

व्याख्या—**देव-योनिः**—'**देवानामिव योनिः यस्य, विद्याधरादिः। विद्याधरोऽप्सरो यक्षो रक्षो गन्धर्व-किन्नराः, पिशाचो गुह्यकाः सिद्धो भूतोऽमी देव-योनयः।**' अर्थात् देवताओं के समान दिव्य-जन्मा '**देव-योनि**' कहलाते हैं (**अमर-कोष**)। यथा—**विद्याधर, अप्सरा, यक्ष, रक्ष, गन्धर्व, किन्नर, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध, भूत** आदि।

मम त्रैलोक्यमखिलं, मम देवा वशानुगाः।
यज्ञ-भागानहं सर्वानुपाश्नामि पृथक् पृथक्॥१०८॥

अर्थ—'समस्त तीनों लोक मेरे हैं, देवता लोग मेरे अधीन आज्ञाकारी हैं। **चरु, पुरोडाश** आदि सभी **यज्ञ-अंशों** को मैं ही **इन्द्रादि** विभिन्न देव-रूपों द्वारा अलग-अलग ग्रहण करता हूँ।'

व्याख्या—**पृथक्-पृथक्**—इन्द्रादि देवताओं को अलग-अलग **यज्ञ का अंश** दिए जाने की विधि है। उनके पराजित हो जाने से उनके अंश का भी उपभोग **शुम्भादि** करते थे।

त्रैलोक्ये वर - रत्नानि, मम वश्यान्यशेषतः।
तथैव गज-रत्नं च, हृत्वा देवेन्द्र-वाहनम्॥१०९॥
क्षीरोद - मथनोद्भूतमश्व - रत्नं ममामरैः।
उच्चैःश्रवस-संज्ञं तत्-प्रणिपत्य समर्पितम्॥११०॥

अर्थ—'तीनों लोकों में जो **श्रेष्ठ रत्न** हैं और जो **श्रेष्ठ हाथी** हैं, वे सम्पूर्णतः मेरे अधीन हैं। देवताओं द्वारा **क्षीर-सागर-मन्थन** से उत्पन्न **उच्चैःश्रवा** नामक **सुरेन्द्र-वाहन** श्रेष्ठ घोड़ा भी छीनकर मुझे प्रणाम-पूर्वक अर्पित किया गया है।'

व्याख्या—**उच्चैःश्रवस-संज्ञं**—'**उच्चैः श्रवो यशो यस्य सः, उच्चैः श्रवस् + अच्। उच्चैःश्रवस इति संज्ञा यस्य सः उच्चैःश्रवस-संज्ञः तम्**' अर्थात् श्रेष्ठ यशवाला होने से जिस घोड़े का नाम '**उच्चैः-श्रवस**' है, उसे।

यानि चान्यानि देवेषु, गन्धर्वेषूरगेषु च।
रत्न-भूतानि भूतानि, तानि मय्येव शोभने!॥१११॥

अर्थ—'हे सुन्दरि! **इन्द्रादि देवों, विश्वावसु** आदि **गन्धर्वों** और **वासुकि** आदि नागों के पास जो अन्य रत्न-समान वस्तुएँ हैं, वे सब मेरी ही हैं।'

स्त्री-रत्न-भूतां त्वां देवि! लोके मन्यामहे वयम्।
सा त्वमस्मानुपागच्छ, यतो रत्न-भुजो वयम्॥११२॥

अर्थ—'हे देवि! हम इस संसार में तुम्हें नारियों में रत्न-स्वरूपा मानते हैं। ऐसी तुम हमारे पास आओ क्योंकि हम रत्नों का उपभोग करनेवाले हैं।'

व्याख्या—**रत्न-भुजः**—राजा ही रत्नों का प्रयोग करनेवाला होता है। कहा भी है—

स्व-राष्ट्रमन्यतो रक्षत्यन्यदीयं क्षिणोति च,

वर्द्धतोपाय-वान् नित्यं, रत्न-हारी च पार्थिवः।

अर्थात् राजा दूसरों के आक्रमण से अपने राज्य की रक्षा करता है, शत्रु के राज्य को नष्ट करता है, प्रयत्न करके अपने ऐश्वर्य की वृद्धि करता है और रत्नों का संग्रह करता है।

मां वा ममानुजं वापि, निशुम्भमुरु-विक्रमम्।

भज त्वं चञ्चलापाङ्गि! रत्न-भूताऽसि वै यतः॥११३॥

अर्थ—'हे चञ्चल कटाक्षोंवाली! क्योंकि तुम रत्न-स्वरूपा हो, इसलिए मुझे या मेरे छोटे भाई अति पराक्रमी **निशुम्भ** को पति-रूप में स्वीकार करो।'

परमैश्वर्यमतुलं, प्राप्स्यसे मत् - परिग्रहात् ।

एतद् बुद्ध्या समालोच्य, मत्-परिग्रहतां व्रज॥११४॥

अर्थ—'मेरा आश्रय लेने से अनुपम श्रेष्ठ वैभव पाओगी, ऐसा बुद्धि द्वारा अच्छी तरह विवेचना कर मेरा पाणिग्रहण स्वीकार करो।'

व्याख्या—**परिग्रह**—'**परिग्रहः कलत्रेऽपि मूल-स्वीकारयोरपि, शपथे परिवारे च राहु-ग्रस्ते च भास्करे**' अर्थात् '**परिग्रह**' शब्द के अर्थ हैं—पत्नी, मूल-स्वीकार, शपथ, परिवार, राहु-ग्रस्त सूर्य (**मेदिनी-कोष**)।

॥ऋषिरुवाच॥११५॥

इत्युक्ता सा तदा देवी, गम्भीरान्तः-स्मिता जगौ।

दुर्गा भगवती भद्रा, ययेदं धार्यते जगत्॥११६॥

अर्थ—**ऋषि मेधस** ने **राजा सुरथ** से कहा—जिस देवी के द्वारा यह जगत् धारण किया जाता है, उन **मङ्गल-मयी, अचिन्त्य-ऐश्वर्य-शालिनी दुर्ज्ञेया देवी** ने इस प्रकार **दूत** द्वारा कही जाने पर मन-ही-मन कुछ मुस्कान के साथ गम्भीरता-पूर्वक कहा।

व्याख्या—**गम्भीरा**—(१) **गूढ़ाभिप्राया** अर्थात् मन-ही-मन दैत्यों के नाश का सङ्कल्प किया, किन्तु अपने इस विचार को प्रकट नहीं होने दिया (**शान्तनवी**)।

(२) '**गम्भीरास्तास्तु या नार्यः समाना रोष-तोषयोः**' अर्थात् जो स्त्री क्रोध एवं हर्ष दोनों ही अवस्थाओं में सम-भाव बनाए रखने में सक्षम होती है, उसे '**गम्भीरा**' कहते हैं (**भरत**)।

अन्तः-स्मिता—दूत के मुख से **शुम्भासुर** की बातों को सुनकर **देवी** मन-ही-मन क्यों मुस्कराईं? क्योंकि—(१) वे **दुष्प्राप्या** और **दुरधिगम्या** '**दुर्गा**' हैं। युग-युगान्त तक तपस्या करके भी जिन्हें पाया नहीं जा सकता, उन्हें **शुम्भासुर** केवल **दूत** भेजकर सहज ही पाना चाहता है, उसकी इस मूढ़ता पर **देवी** मन-ही-मन मुस्कराईं। (२) **देवी अचिन्त्य-वैभव-शालिनी**–'**भगवती**' हैं। **शुम्भासुर** उन्हें कुछ रत्नों का प्रलोभन देकर पाना चाहता है, यही उनके मुस्कराने का कारण है। (३) **देवी** समस्त मङ्गलों से परिपूर्णा–'**भद्रा**' हैं और **जगत् का अहित करनेवाला अमङ्गल-रूपी शुम्भासुर** उन्हें प्राप्त करना चाहता है, उसकी इस धृष्टता पर **देवी** को हँसी आई। (४) **देवी**

जगज्जननी जगद्-धात्री हैं, उनके इस **मातृ-स्वरूप** को न पहचान कर **शुम्भासुर** उन्हें पत्नी-रूप में पाने का इच्छुक है, उसके इस पशुत्व पर **देवी** मन में मुस्कराईं।

देवी का उत्तर

॥ देव्युवाच॥११७॥

सत्यमुक्तं त्वया नात्र, मिथ्या किञ्चित् त्वयोदितम्।
त्रैलोक्याधिपतिः शुम्भो, निशुम्भश्चापि तादृशः॥११८॥

अर्थ—**देवी कौशिकी** ने **दूत** से कहा—'तुमने सत्य कहा है। इस सम्बन्ध में तुमने कुछ भी झूठ नहीं कहा है। **शुम्भ** तीनों लोकों का स्वामी है और **निशुम्भ** भी उसी के समान है।

व्याख्या—**दूत** के प्रति देवी का कथन दो अर्थ सूचित करता है। **आसुरी बुद्धिवाले दूत** और **शुम्भ-निशुम्भ** ने इसका सामान्य अर्थ ही समझा, जब कि इसका गूढ़ अर्थ इस प्रकार है—

'त्वया सत्यं न उक्तं, अत्र किञ्चित् मिथ्या उदितम्।'

अर्थात् 'हे **दूत**! तुमने सत्य नहीं कहा है। इस सम्बन्ध में कुछ झूठ ही कहा है।'

इस गूढ़ार्थ का अभिप्राय यह है कि **शुम्भ-निशुम्भ** वास्तव में तो तीनों लोकों के स्वामी नहीं हैं। भगवती के सिवा अन्य किसका आधिपत्य त्रिभुवन पर हो सकता है?

किं त्वत्र यत् प्रतिज्ञातं, मिथ्या तत् क्रियते कथम्?
श्रूयतामल्प-बुद्धित्वात्, प्रतिज्ञा या कृता पुरा॥११९॥

अर्थ—किन्तु इस (पाणिग्रहण, विवाह) सम्बन्ध में मेरे द्वारा जो प्रतिज्ञा की गई है, उसे किस प्रकार मिथ्या किया जाए? बुद्धि की कमी के कारण मैंने पूर्व-काल में जो प्रतिज्ञा की है, उसे सुनो।

व्याख्या—प्रतिज्ञा टूटने से बड़ा दोष होता है। कहा है—**'अङ्गी-कृत-परित्यागाद् अनङ्गी-कृत-संश्रयात्, मानिनो निरयं यान्ति यावदाभूत-सम्प्लवम्।'** अर्थात् स्वीकार की गई बात को छोड़ देने और अस्वीकृत बात को ग्रहण कर लेने से स्वाभिमानी व्यक्ति को प्रलय होने तक नरक का भोग करना पड़ता है।

अल्प-बुद्धित्वात्—'बुद्धि' **मूल-प्रकृति** का कार्य-स्वरूप है। अतः **'बुद्धि'** अल्प कहलाती है। **'बुद्धि' रजो-गुण का कार्य** है। **पराम्बा 'बुद्धि' के परे** हैं, इस प्रकार **'बुद्धि' की अल्पता** स्वयं-सिद्ध है **(तत्त्व-प्रकाशिका)**।

यो मां जयति संग्रामे, यो मे दर्पं व्यपोहति।
यो मे प्रति-बलो लोके, स मे भर्त्ता भविष्यति॥१२०॥

अर्थ—जो मुझे युद्ध में जीते, जो मेरे गर्व को दूर करे, जो संसार में मेरे समान बलवाला हो, वह मेरा स्वामी होगा।

व्याख्या—**देवी की प्रतिज्ञा** के तीन कल्प हैं—**१ संग्राम-जय, २ दर्प-नाश** और **३ समान-बल।** 'संग्राम-जय' से **'कर्म-योग'** की, 'दर्प-नाश' से **'ज्ञान-योग'** की और 'समान-बल' (प्रति-बल) से **'ज्ञान-योग'** की व्यञ्जना होती है। इन तीन कल्पों में से किसी एक या तीनों का आश्रय

लेकर जो कोई साधना-तत्पर होता है, वह '**ब्रह्म-विद्या**' को प्राप्त कर सकता है। यही उक्त श्लोक का रहस्यार्थ है।

यो मां जयति संग्रामे—सुख-दु:ख, राग-द्वेषादि द्वैतात्मक विरुद्ध भावों के संघर्ष से यह संसार ग्रस्त रहता है, जो '**कर्म-योग**' की साधना द्वारा **त्रिगुणात्मिका प्रकृति** को जीत कर द्वन्द्वों से परे हो पाता है, वही '**ब्रह्म-ज्ञान**' का अधिकारी होता है।

यो मे दर्पं व्यपोहति—महा-माया की **विश्व-मोहिनी माया** द्वारा **ब्रह्मा से तृण तक सभी मोहापन्न** रहते हैं। '**भक्ति-योग**' की साधना का सहारा लेकर जो **एकान्त-भाव से देवी की शरण** लेते हैं, वे ही उक्त **अजेय माया** से बचकर **ब्रह्म-ज्ञान** अर्जित कर पाते हैं।

यो मे प्रति-बलो लोके—जो साधक **सत्-स्वरूप आत्मा का साक्षात्कार** कर लेते हैं अर्थात् '**ज्ञान-योग**' की साधना द्वारा जो **जीव और ब्रह्म के अभेद का ज्ञान** प्राप्त कर लेते हैं, वे ही **ब्रह्म-विद्या-स्वरूपिणी-जगदम्बा** को हृदयङ्गम कर पाते हैं।

स मे भर्त्ता भविष्यति—'**भृ**' धातु का अर्थ है '**धारण**' या '**पोषण**'। अतएव '**भर्त्ता**'-शब्द का अर्थ है '**धारक**' या '**पोषक**'। '**भर्त्ता**' (भर्तृ) या पति अर्थात् **भगवान् शिव के समान तत्त्वज्ञ** होना है, यही इस उक्ति का आशय है।

ब्रह्म-मयी जगन्माता के साक्षात्कार के लिए '**साधन-समर**' में तत्पर होना ही पड़ता है। '**मुण्डकोपनिषद्**', २।२।३-४ में इसी की ओर सङ्केत है—

धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं, शरं ह्युपास्य निशितं सन्धयीत।
आयम्य तद्-भाव-गतेन चेतसा, लक्ष्यं तदेवाक्षरं सौम्य! विद्धि॥३
प्रणवो धनु: शरो ह्यात्मा, ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं, शर-वत् तन्मयो भवेत्॥४॥

अर्थात् उपनिषद् द्वारा निर्दिष्ट महान् अस्त्र-रूप धनुष लेकर, उपासना द्वारा तीक्ष्ण शर (वाण) का सन्धान करे। हे सौम्य! **ब्रह्म में भावना** द्वारा चित्त को लगाकर उस चित्त द्वारा उक्त धनुष को खींचे और लक्ष्य-स्वरूप उसी **ब्रह्म** को विद्ध करे।

'**प्रणव**' (**ॐकार**) ही धनुष है, शर (वाण) है। '**आत्मा**' और '**ब्रह्म**' लक्ष्य कहा गया है। एकाग्र-चित्त से उस लक्ष्य को विद्ध करना चाहिए और जिस प्रकार वाण लक्ष्य में प्रविष्ट होकर उसी में मग्न हो जाता है, उसी प्रकार साधक **ब्रह्म** में मग्न हो जाए।

तदाऽऽगच्छतु शुम्भोऽत्र, निशुम्भो वा महाऽसुर:।
मां जित्वा किं चिरेणात्र, पाणिं गृह्णातु मे लघु॥१२१॥

अर्थ—'अत: **महाऽसुर शुम्भ** या **निशुम्भ** यहाँ आए, मुझे जीत कर शीघ्र मेरा पाणि-ग्रहण करे। इस सम्बन्ध में विलम्ब क्यों?'

व्याख्या—**पाणिं गृह्णातु**—मेरे हाथ का चपेटाघात (थप्पड़) ग्रहण करे—यह व्यञ्जनार्थ है (**गुप्तवती**)।

लघु—इस शब्द से असुर के संहार के लिए देवी की उत्कण्ठा ध्वनित होती है (**गुप्तवती**)।

दूत का प्रत्युत्तर

॥ दूत उवाच॥१२२॥

अवलिप्ताऽसि मैवं त्वं, देवि! ब्रूहि ममाग्रतः।
त्रैलोक्ये कः पुमांस्तिष्ठेदग्रे शुम्भ-निशुम्भयोः॥१२३॥

अर्थ—**दूत सुग्रीव** ने **देवी कौशिकी** से कहा—'हे देवि! आप गर्व के कारण विवेक-शून्य हो गई हैं। मेरे सामने इस प्रकार मत बोलिए। तीनों लोकों में **शुम्भ** और **निशुम्भ** के सम्मुख कौन पुरुष खड़ा हो सकता है?'

अन्येषामपि दैत्यानां, सर्वे देवा न वै युधि।
तिष्ठन्ति सम्मुखे देवि! किं पुनः स्त्री त्वमेकिका॥१२४॥

अर्थ—'दूसरे दैत्यों के सामने भी सभी देवता युद्ध में ठहर नहीं सकते। हे देवि! आप अकेली स्त्री होकर क्या करेंगी?'

व्याख्या—**अन्येषां दैत्यानां**—**धूम्र-लोचन, चण्ड-मुण्ड, रक्त-वीज** आदि **शुम्भ** के सेवक योद्धा दैत्य।

इन्द्राद्याः सकला देवास्तस्थुर्येषां न संयुगे।
शुम्भादीनां कथं तेषां, स्त्री प्रयास्यसि सम्मुखम्॥१२५॥

अर्थ—'जिन **शुम्भ** आदि दैत्यों के साथ युद्ध में **इन्द्रादि** सभी देवता ठहर नहीं सके, उन्हीं **शुम्भादि** के सामने आप स्त्री होकर कैसे युद्ध के लिए जा सकेंगी?'

सा त्वं गच्छ मयैवोक्ता, पार्श्वं शुम्भ-निशुम्भयोः।
केशाकर्षण-निर्धूत-गौरवा मा गमिष्यसि॥१२६॥

अर्थ—मेरे ही कहने से तुम **शुम्भ** और **निशुम्भ** के पास चली जाओ। केशों के खींचे जाने से अपमानिता होकर मत जाओ।

देवी का प्रत्युत्तर

॥ देव्युवाच ॥१२७॥

एवमेतद् बली शुम्भो, निशुम्भश्चाति-वीर्य-वान्।
किं करोमि प्रतिज्ञा मे यदनालोचिता पुरा॥१२८॥

अर्थ—**देवी कौशिकी** ने **दूत** से कहा—'यह सत्य है कि **शुम्भ** बलवान् है और **निशुम्भ** अत्यन्त शक्ति-शाली है, किन्तु मैंने पूर्व में प्रतिज्ञा के सम्बन्ध में विवेचना नहीं की, अतः क्या करूँ?'

व्याख्या—**बली**—इस शब्द का गूढ़ार्थ यह है कि **शुम्भ** और **निशुम्भ** दोनों ही देवी के लिए **बलि-रूप** हैं (**गुप्तवती**)।

स त्वं गच्छ मयोक्तं ते, यदेतत् सर्वमादृत:।
तदाचक्ष्वासुरेन्द्राय, स च युक्तं करोतु तत्॥१२९॥

अर्थ—तुम जाओ। मैंने जो तुमसे कहा है, वह सब आदर-पूर्वक **असुर-राज शुम्भ** को बताओ और वह जो उचित है, उसे करे।

यद् युक्तं तत् करोतु—न्याय-सहित युद्ध या बल-प्रयोग, इन दो में से जो ठीक लगे, वह करे (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

पाँचवें अध्याय के पाठान्तर

श्लोक-संख्या	'विशुद्ध चण्डी' का पाठ	प्रचलित पाठ
५	संस्मरन्त्यपराजिताम्	स्मरन्ति स्मापराजिताम्
९	नियता: प्रणता: स्म ताम्	नियतो प्रणतास्मनाम्
११	प्रणतां वृद्ध्यै, सिद्ध्यै कुर्मो	प्रणता वृद्ध्यै, सिद्ध्यै कौर्म्यै
१२	सारायै सर्व-कारिण्यै	सारायै सर्व-कारिणि
१३	कृत्यै	कर्त्यै
७७	भूतानां चाखिलेषु	भूतानामखिलेषु
७७	व्याप्ति-देव्यै	व्याप्त्यै देव्यै
७८	चिति-रूपेण	चित्ति-रूपेण
८१	अभीष्ट-संश्रयात्	अभीष्ट संश्रया
८१	सुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता	सुरेन्द्रेण दिनेश सेविता
८४	एवं स्तवादि-युक्तानाम्	एवं स्तवाभि-युक्तानाम्
८६	समेतै:	समस्तै:
८८	तस्यां विनिर्गतायां तु	तस्या विनिर्गतायान्तु
८९	सु-मनोहरम्	सु-मनोहराम्
९०	अतीव सु-मनोहरा	सातीव सु-मनोहरा
९९	वह्निरपि	वह्निश्चापि
९९	अग्नि-शौचे च वाससी	अग्नि-शौचेय वाससी
१०२	महाऽसुरम्	महाऽसुर:

श्लोक-संख्या	'विशुद्ध चण्डी' का पाठ	प्रचलित पाठ
१०४	सा देवी तां ततः प्राह	तां च देवीं ततः प्राह
१०६	त्रैलोक्ये परमेश्वरः	त्रैलोक्य-परमेश्वरः
१०९	त्रैलोक्ये वर-रत्नानि	त्रैलोक्य-वर-रत्नानि
१०९	तथैव गज-रत्नं च हृत्वा देवेन्द्र	तथैव गज-रत्नानि हृत्वा देवेन्द्र
११९	कृता पुरा	कृता मया
१२९	स त्वं गच्छ मयोक्तं ते यदेतत् सर्वमादृतः	स त्वं गच्छ मयैवोक्तं यदेतत् सर्वमादितः

***

उत्तर या उत्तम चरितम्

षष्ठः अध्यायः

धूम्र-लोचन का वध

॥ ऋषिरुवाच॥१॥

इत्याकर्ण्य वचो देव्याः, स दूतोऽमर्ष-पूरितः।
समाचष्ट समागम्य, दैत्य-राजाय विस्तरात्॥२॥

अर्थ—**ऋषि मेधस** ने **सुरथ** से कहा—'उस **दूत** ने **कौशिकी देवी** के ये वचन सुनकर क्रोध-पूर्ण हो लौटकर **दैत्य-राज शुम्भ** से विस्तार-पूर्वक कह सुनाया।'

सेनापति धूम्र-लोचन को शुम्भ का आदेश

तस्य दूतस्य तद्-वाक्यमाकर्ण्याऽसुर-राट् ततः।
स-क्रोधः प्राह दैत्यानामधिपं धूम्र-लोचनम्॥३॥

अर्थ—'तब **असुर-राज शुम्भ** ने उस **दूत** के उन वचनों को सुनकर क्रोध-पूर्वक दैत्यों के सेना-पति **धूम्र-लोचन** से कहा।'

हे धूम्र -लोचनाशु त्वं, स्व-सैन्य-परिवारितः।
तामानय बलाद् दुष्टां, केशाकर्षण-विह्वलाम्॥४॥

अर्थ—'हे **धूम्र-लोचन**! तुम तुरन्त अपनी सेनाओं के साथ जाकर उस दुष्टा को बाल खींचने से व्याकुल बनाकर बल-पूर्वक ले आओ।'

तत्-परित्राणदः कश्चिद्, यदि वोत्तिष्ठतेऽपरः।
स हन्तव्योऽमरो वापि, यक्षो गन्धर्व एव वा॥५॥

अर्थ—'और यदि उसकी रक्षा करनेवाला अन्य कोई उपस्थित हो, तो वह **देवता** या **यक्ष** या **गन्धर्व** हो, उसे मार डाला जाए।'

॥ ऋषिरुवाच॥६॥

तेनाज्ञप्तस्ततः शीघ्रं, स दैत्यो धूम्र-लोचनः।
वृतः षष्ट्या सहस्राणामसुराणां द्रुतं ययौ॥७॥

अर्थ—**ऋषि मेधस** ने **सुरथ** से कहा—'तब वह दैत्य **धूम्र-लोचन** उस **शुम्भ** द्वारा आज्ञा दिए जाने पर तुरन्त **साठ हजार** असुरों के साथ तेजी से चल पड़ा।'

देवी से धूम्र-लोचन का कथन

स दृष्ट्वा तां ततो देवीं, तुहिनाचल-संस्थिताम्।
जगादोच्चैः प्रयाहीति, मूलं शुम्भ-निशुम्भयोः॥८॥

अर्थ—तब उस **धूम्र-लोचन** ने हिमालय में विराजमाना उन **देवी कौशिकी** को देखकर ऊँचे स्वर में कहा कि 'आप **शुम्भ** और **निशुम्भ** के पास जाइए।'

न चेत् प्रीत्याऽद्य भवती, मद् - भर्त्तारमुपैष्यति।
ततो बलान्नयाम्येष, केशाकर्षण-विह्वलाम्॥९॥

अर्थ—'यदि आप आज प्रेम-पूर्वक मेरे स्वामी के पास न जाएँगी, तो मैं ही बल-पूर्वक बाल खींचने से व्याकुल हुई आपको ले जाऊँगा।'

देवी का उत्तर

॥ देव्युवाच॥१०॥

दैत्येश्वरेण प्रहितो, बल-वान् बल-संवृतः।
बलान्नयसि मामेवं, ततः किं ते करोम्यहम्॥११॥

अर्थ—**देवी कौशिकी** ने **धूम्र-लोचन** से कहा—'तुम **दैत्य-राज शुम्भ** द्वारा भेजे गए हो, शक्ति-शाली हो, सेना के साथ हो; इस प्रकार यदि मुझे बल-पूर्वक ले जाओ, तो मैं तुम्हारा क्या कर सकती हूँ!'

व्याख्या—**किं ते करोमि**—'**गूढ़ार्थः, एवमपि समर्थस्य तव किं कुत्सितं मरणमेव करोमि करिष्यामि**' अर्थात् इस प्रकार के सामर्थ्यवान् होने पर भी तुम्हें मैं मार डालूँगी, यह देवी की उक्ति का रहस्यार्थ है (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

स्पष्ट ही, देवी का उक्त कथन उपहासात्मक है।

देवी द्वारा धूम्र-लोचन का वध

॥ ऋषिरुवाच॥१२॥

इत्युक्तः सोऽभ्यधावत्, तामसुरो धूम्र-लोचनः।
हुङ्कारेणैव तं भस्म, सा चकाराम्बिका ततः॥१३॥

अर्थ—**ऋषि मेधस** ने **सुरथ** से कहा—**देवी** द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर असुर **धूम्र-लोचन** उनकी ओर झपटा। तब उन **अम्बिका देवी** ने उसे हुङ्कार से ही भस्म कर दिया।

व्याख्या—**हुङ्कारेण**—क्रोधोद्दीपक शब्द द्वारा (**तत्त्व-प्रकाशिका**)। देवी की क्रोधाग्नि की ज्वाला में **धूम्र-लोचन** पतङ्ग के समान भस्म हो गया।

अथ क्रुद्धं महा-सैन्यमसुराणां तथाऽम्बिकाम्।
ववर्ष सायकैस्तीक्ष्णैस्तथा शक्ति-परश्वधैः॥१४॥

अर्थ—इसके बाद, **धूम्र-लोचन** के उस प्रकार मारे जाने पर, असुरों की विशाल सेना क्रोधित होकर **अम्बिका** पर तेज वाणों और शक्ति तथा फरसों की वर्षा करने लगी।

देवी के सिंह द्वारा असुर-सेना का विनाश

ततो धुत-सटः कोपात्, कृत्वा नादं सु-भैरवम्।
पपाताऽसुर-सेनायां, सिंहो देव्याः स्व-वाहनः॥१५॥

अर्थ—तब **देवी** का अपना **वाहन सिंह** क्रोध-पूर्वक केश हिलाता हुआ और अत्यन्त भयानक गर्जन कर असुर-सेना पर टूट पड़ा।

व्याख्या—सेनापति-रहित असुर-सेना के वध के लिए स्वयं **देवी** का प्रयास आवश्यक नहीं था, फलतः **देवी का वाहन सिंह** ही युद्ध में प्रवृत्त हुआ (**नागो जी**)।

कांश्चित् कर-प्रहारेण, दैत्यानास्येन चापरान्।
आक्रम्य चाधरेणान्यान्, स जघान महाऽसुरान्॥१६॥

अर्थ—उस **सिंह** ने किन्हीं दैत्यों को हाथ के पञ्जे की चोट से और दूसरों को मुख द्वारा अर्थात् सम्पूर्ण निगल कर तथा अन्य महा-दैत्यों को अधर द्वारा अर्थात् आक्रमण कर आधा निगल व चबाकर मार डाला।

केषाञ्चित् पाटयामास, नखैः कोष्ठानि केशरी।
तथा तल-प्रहारेण, शिरांसि कृत-वान् पृथक्॥१७॥

अर्थ—**सिंह** ने नाखूनों से किन्हीं के पेट फाड़ डाले, उसी प्रकार हथेली की चोट से किन्हीं के सिर अलग कर डाले।

विच्छिन्न-बाहु-शिरसः, कृतास्तेन तथाऽपरे।
पपौ च रुधिरं कोष्ठादन्येषां धूत-केसरः॥१८॥

अर्थ—और दूसरे असुर उस **सिंह** द्वारा भुजा व सिर-विहीन कर डाले गए तथा कन्धे के बाल कँपाता हुआ वह **सिंह** अन्य असुरों के पेट से रक्त-पान करने लगा।

व्याख्या—**पपौ च रुधिरं**—यह सिंह का '**वीर-पान**' है। '**वीर-पानं तु यत्-पानं, वृत्ते भाविनि वा रणे**' अर्थात् समाप्त युद्ध में विजय-प्राप्ति के श्रम को दूर करने के लिए या भावी युद्ध के प्रति उत्साह बढ़ाने के लिए योद्धा लोग जो मद्यादि का पान करते हैं, उसे '**वीर-पान**' कहते हैं (**अमर टीका**)।

क्षणेन तद्-बलं सर्वं, क्षयं नीतं महात्मना।
तेन केसरिणा देव्या, वाहनेनाति-कोपिना॥१९॥

अर्थ—महा-पराक्रमी, अति-क्रोध-युक्त, **देवी-वाहन** उस सिंह ने अत्यल्प-काल में उस सारी सेना का नाश कर डाला।

व्याख्या—**श्री दुर्गा-पूजा** के समय निम्न मन्त्र द्वारा **देवी-वाहन सिंह** की पूजा की जाती है—'**ॐ वज्र-नख-दंष्ट्रायुधाय महा-सिंहाय हुं फट् नमः। ॐ सिंह! त्वं सर्व-जन्तूनां अधिपोऽसि महा-बल! पार्वती-वाहन, श्रीमन्! वरं देहि नमोऽस्तु ते!**'।

'**सिंह**' का आध्यात्मिक तात्पर्य यह है कि साधक जब देह, मन, प्राण—सर्वतोभाव से महा-शक्ति के चरणों में समर्पित होकर उन्हीं की प्रेरणा से जीवन बिताता है, तब वह भगवती का अपना '**वाहन**' बन जाता है। इस अवस्था को पहुँचे हुए साधक के भीतर **जगन्माता की दिव्य शक्ति, ज्ञान और आनन्द का प्रादुर्भाव** हो जाता है। ऐसा साधक मातृ-चरणों के स्पर्श से '**महात्मा**' बन जाता है और असीम शक्ति के प्रभाव से क्षण भर में **आसुरी शक्ति** का नाश करते हुए **धर्म-राज्य की प्रतिष्ठा** करने में **जगदम्बा का सहायक** बनने का सौभाग्य प्राप्त करता है।

चण्ड और मुण्ड को शुम्भ का आदेश

श्रुत्वा तमसुरं देव्या, निहतं धूम्र - लोचनम्।
बलं च क्षयितं कृत्स्नं, देवी-केसरिणा ततः॥२०॥
चुकोप दैत्याधिपतिः, शुम्भः प्रस्फुरिताधरः।
आज्ञापयामास च तौ, चण्ड-मुण्डौ महाऽसुरौ॥२१॥

अर्थ—तदनन्तर देवी द्वारा उस असुर **धूम्र-लोचन** को मारा गया और **देवी-वाहन सिंह** द्वारा सारी सैन्य को नष्ट किया गया सुनकर **दैत्य-राज शुम्भ** क्रोधित हो उठा और कम्पित अधर से **चण्ड** और **मुण्ड** नामक दो महा-असुरों को आज्ञा दी।

हे चण्ड! हे मुण्ड! बलैर्बहुभिः परिवारितौ।
तत्र गच्छत गत्वा च, सा समानीयतां लघु॥२२॥
केशेष्वाकृष्य बद्ध्वा वा, यदि वः संशयो युधि।
तदाऽशेषायुधैः सर्वैरसुरैर्विनिहन्यताम्॥२३॥

अर्थ—'हे **चण्ड**, हे **मुण्ड!** बहुत-सी सेनाओं के साथ वहाँ जाओ और जाकर केश खींच कर या बाँध कर शीघ्र ही उसे ले आओ। यदि तुम्हें युद्ध में सन्देह हो, तो सभी असुरों द्वारा नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से उसे मार डालो।'

तस्यां हतायां दुष्टायां, सिंहे च विनिपातिते।
शीघ्रमागम्यतां बद्ध्वा, गृहीत्वा तामथाम्बिकाम्॥२४॥

अर्थ—उस दुष्टा के मारे जाने पर और **सिंह** के विनष्ट हो जाने पर शीघ्र वापस आओ। अथवा सम्भव हो, तो उस **अम्बिका** को बाँधकर ले आओ।

व्याख्या—**अम्बिका** की हत्या न करके जीवित ही उन्हें पकड़ मँगाने की आन्तरिक इच्छा **शुम्भ** की थी। इसी को सूचित करने के लिए बाँधकर लाने को आज्ञा पुनः दी गई है।

छठवें अध्याय के पाठान्तर

श्लोक-संख्या	'विशुद्ध चण्डी' का पाठ	प्रचलित पाठ
२	समाचष्ट	समाचष्टे
९	ततो बलान्नयाम्येष	१. ततो बलान्नयामाद्य:
		२. ततो बलान्नयामेष्य
१३	सा चकाराम्बिका	साच्चकाराम्बिका
१४	अम्बिका	अम्बिकाम्
१५	स्व-वाहन:	१. स वाहन:, २. स्व-वाहनम्
१६	आक्रम्य चाधरेण	१. आक्रान्त्या चाधरेण
		२. आक्रम्य चरणेन
		३. आक्रान्त्या चरणेन
१६	स जघान महाऽसुरान्	१. जघान सु-महाऽसुरान्
		२. जघान स महाऽसुरान्
१७	कोष्ठानि	कोष्ठांश्च
२०	बलं च क्षयितं	१. बलञ्च क्षयितं
		२. बलस्य क्षयणम
२२	बहुभि:	बहुलै:
२२	तत्र गच्छत	गच्छतं तत्र

***

उत्तर या उत्तम चरितम्

सप्तमः अध्यायः

चण्ड-मुण्ड का वध

चण्ड और मुण्ड की युद्ध-यात्रा

॥ ऋषिरुवाच ॥१॥

आज्ञप्तास्ते ततो दैत्याश्चण्ड-मुण्ड-पुरो गमाः।
चतुरङ्ग - बलोपेता, ययुरभ्युद्यतायुधाः॥२॥

अर्थ—**ऋषि मेधस** ने **सुरथ** से कहा—तब **शुम्भ** द्वारा आदेश पाकर **चण्ड-मुण्ड**-प्रमुख दैत्य-गण **चतुरङ्गिणी सेना** के साथ अस्त्र-शस्त्र तैयार कर चल पड़े।

व्याख्या—**चतुरङ्ग-बलोपेताः**—'**चत्वारि अङ्गानि येषां ते, तैः बलैः सैन्यैः उपेताः युक्ताः। हस्त्यश्व-रथ-पादातं सेनाङ्गं स्याच्चतुष्टयमित्यमरः।**' हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिकों से युक्त सेना को '**चतुरङ्ग बल**' कहते हैं।

ददृशुस्ते ततो देवीमीषद्धासां व्यवस्थिताम्।
सिंहस्योपरि शैलेन्द्र-शृङ्गे महति काञ्चने॥३॥

अर्थ—तब उन **चण्ड-मुण्ड-प्रमुख दैत्यों** ने स्वर्ण-समान चमकीले हिमालय के शिखर पर सिंह पर विराजमाना, मृदु मुस्कानवाली **देवी कौशिकी** को देखा।

व्याख्या—**काञ्चने**—'काञ्चन-वत् प्रकाशित' (**काशीनाथ**)। बर्फ से उज्ज्वल हिमालय के शिखर पर सूर्य की किरणों के प्रतिबिम्बित होने से उसकी ज्योति स्वर्ण-समान हो जाती है।

देवीम्—**कौशिकी देवी** को। **कालिका-पुराण** (३१वाँ अध्याय, ७८-८५) में ध्यान दिया है; यथा—

धम्मिल्ल-संयत-कचां, विधोश्चाधोमुखीं कलाम्।
केशान्ते तिलकस्योर्ध्वे, दधती सु-मनोहरा॥
मणि-कुण्डल-संघृष्ट-गण्डा मुकुट-मण्डिता।
सज्ज्योतिः कर्ण-पूराभ्यां, कर्णमापूर्य-सङ्गता॥

सुवर्ण-मणि-माणिक्य - नाग-हार - विराजिता।
सदा सुगन्धिभिः पद्मैरम्लानैरति - सुन्दरी॥
मालां बिभर्ति ग्रीवायां, रत्न - केयूर-धारिणी।
मृणालायत-वृत्तैस्तु, बाहुभिः कोमलैः शुभैः॥
राजती कञ्चुकोपेत - पीनोन्नत - पयोधरा।
क्षीण-मध्या पीत-वस्त्रा, त्रिवली-प्रख्य-भूषिता॥
शूलं वज्रं च वाणं च, खड्गं शक्तिं तथैव च।
दक्षिणैः पाणिभिर्देवी, गृहीत्वा तु विराजिता॥
गदां घण्टां च चापं च, चर्म शङ्खं तथैव च।
ऊर्ध्वादि-क्रमतो देवी, दधती वाम-पाणिभिः।
सिंहस्योपरि तिष्ठन्ती, व्याघ्र-चर्माणि कौशिकी।
विभ्रती रूपमतुलं, स-सुरासुर-मोहनम्॥

इस प्रकार **कौशिकी देवी** दश-भुजा हैं और विश्व-मोहक रूप-धारिणी हैं।

ते दृष्ट्वा तां समादातुमुद्यमं चक्रुरुद्यताः।
आकृष्ट-चापाऽसि-धरास्तथाऽन्ये तत्-समीपगाः॥४॥

अर्थ—उन **चण्ड-मुण्डादि दैत्यों** ने उन **देवी** को देखकर उत्साहित हो पकड़ने के लिए प्रयत्न किया और अन्य कुछ असुर धनुष-वाण, खड्ग खींचे हुए उन **देवी** के पास जा पहुँचे।

काली का आविर्भाव

ततः कोपं चकारोच्चैरम्बिका तानरीन् प्रति।
कोपेन चास्या वदनं, मसी-वर्णमभूत् तदा॥५॥

अर्थ—तब **अम्बिका** ने उन शत्रुओं के प्रति अत्यधिक क्रोध किया। उस समय क्रोध से उनका मुख-मण्डल **कृष्ण-वर्ण** हो गया।

व्याख्या—**मसी-वर्णं**—(१) **'मसी'** अर्थात् लिखने की स्याही, उसके समान **श्याम-वर्ण**। आविर्भूत होती हुई **काली** के प्रतिबिम्ब के फल-स्वरूप **अम्बिका** का मुख-मण्डल **श्याम वर्ण** हो गया **(नागो जी)**।

(२) **'मसी शेफालिका-वृन्ते'** अर्थात् **मसी**-शब्द शेफाली-पुष्प के डण्ठल को कहते हैं। क्रोध से अम्बिका का मुख शेफाली-पुष्प के डण्ठल के समान अत्यन्त **रक्त-वर्ण** का हो गया **(तत्त्व-प्रकाशिका-गोपाल चक्रवर्ती)**।

'देवी-भागवत', ५।२६।३८ में इस सन्दर्भ में लिखा है—**'कोपेन वदनं तस्या, बभूव घन-सन्निभम्'** अर्थात् क्रोध से देवी का मुख **मेघ-समान कृष्ण-वर्ण** हो उठा।

भ्रकुटी-कुटिलात् तस्या, ललाट-फलकाद् द्रुतम्।
काली कराल-वदना, विनिष्क्रान्ताऽसि-पाशिनी॥६॥

अर्थ—उन **अम्बिका** की भ्रकुटी द्वारा संकुचित ललाट-देश से शीघ्र ही भीषण मुखवाली, **खड्ग** और **पाश-धारिणी काली** बाहर निकल आईं।

व्याख्या—**चण्डादि असुर** सर्वथा तामस प्रकृतिवाले थे। ईसी से उनके वध के लिए **तामसी शक्ति-रूपिणी काली** आविर्भूत हुईं (**नागो जी**)।

काली—'**देवी-पुराण**', अध्याय ३७ में कहा है—'**कलना काल-संख्या वा, काली देवेषु गीयते**' अर्थात् ये '**काल**' में सभी पदार्थों का '**कलन**' (संहार) करती हैं, इसी से देवताओं में '**काली**' नाम से प्रसिद्ध हैं।

'**महा-निर्वाण तन्त्र**' में कहा है—'**काल-नियन्त्रणात् काली, ज्ञान-तत्त्व-प्रदायिनी। तस्मात् सर्व-प्रयत्नेन, यजेदुभय-सिद्धये।**' अर्थात् काल का नियन्त्रण करने से '**काली**' नाम है। ये **ज्ञान-तत्त्व** प्रदान करती हैं। अत: **भोग** और **मोक्ष**—दोनों की सिद्धि के लिए इनकी उपासना करनी चाहिए।

काली के आठ स्वरूप हैं—**१ दक्षिणा-काली, २ सिद्ध-काली, ३ उग्र-काली, ४ गुह्य-काली, ५ भद्र-काली, ६ श्मशान-काली, ७ महा-काली, ८ चामुण्डा-काली।** तन्त्र-शास्त्र में इनके ध्यान व मन्त्र अलग-अलग वर्णित हैं (देखें '**श्रीकाली-कल्पतरु**', '**मन्त्र-कोष**')। यहाँ '**चामुण्डा-काली**' का रूप प्रकट हुआ है।

विचित्र-खट्वाङ्ग-धरा, नर-माला-विभूषणा।
द्वीपि-चर्म-परीधाना, शुष्क-मांसाऽति-भैरवा॥७॥

अर्थ—वे **काली** अद्भुत **खट्वाङ्ग**-धारिणी, **नर-मुण्ड** की माला से अलंकृता, **व्याघ्र-चर्म** से परिहिता और सूखे मांसवाले शरीर अर्थात् **अस्थि-चर्म** मात्र से युक्ता होने से अत्यन्त भयङ्करा थीं।

व्याख्या—**खट्वाङ्ग**—(१) नर-कङ्काल का पञ्जर (**नागो जी**), (२) लोहे की विशेष प्रकार की यष्टि, जिसे कुछ लोग '**त्रिशिख**' नाम से जानते हैं (**तत्त्व-प्रकाशिका**), (३) नर-शिर से युक्त विशेष प्रकार का दण्ड (**गुप्तवती**), (४) खट्टासुर के कङ्काल का बना अस्त्र (**शान्तनवी**), (५) खट—पितृ-भूमिष्ठा श्मशान-सिद्धि-लब्धिदा देवता, अङ्ग—उसका दिया अस्त्र। इसकी शक्ति दुर्निवार है और यह असाध्य साधन करनेवाला है (**शान्तनवी**)।

नर-माला-विभूषणा—नर-मुण्ड-माला-विभूषणा, मध्य-पद-लोपी समास (**शान्तनवी**)।

अति-विस्तार-वदना, जिह्वा-ललन-भीषणा।
निमग्नाऽऽरक्त-नयना, नादाऽऽपूरित-दिङ्-मुखा॥८॥

अर्थ—वे **काली** अत्यन्त विस्तृत मुखवाली, लपलपाती जीभ के कारण भयावहा, कोटर-गत, लाल आँखोंवाली और अपनी गर्जना से सारी दिशाओं को गुँजानेवाली थीं।

व्याख्या—'**कालिका-पुराण**', अध्याय ६१, ८८।९१-९२ में **चामुण्डा काली का ध्यान** दिया है; यथा—

नीलोत्पल-दल-श्यामा, चतुर्बाहु-समन्विता।
खट्वाङ्गं चन्द्र-हासं च, बिभ्रती दक्षिणे करे॥
वामे चर्म च पाशं च, ऊर्ध्वाधो-भागतः पुनः।
दधती मुण्ड-मालां च, व्याघ्र-चर्म-धरा वराम्॥
कृशाङ्गी दीर्घ-दंष्ट्रा च, अति-दीर्घाति-भीषणा।
लोल-जिह्वा निम्न-रक्त-नयना नाद-भैरवा॥
कबन्ध-वाहनासीना, विस्तार-श्रवणानना।
एषा काली समाख्याता, चामुण्डा इति कथ्यते॥

शारदीय नवरात्र की **महाऽष्टमी** व **महा-नवमी** के **सन्धि-काल** में **चामुण्डा काली** की विशेष पूजा होती है, जो '**सन्धि-पूजा**' नाम से प्रसिद्ध है। इस पूजा में **सप्तशती** या **कालिका पुराण** के उक्त ध्यानानुसार ही **भगवती चामुण्डा काली का ध्यान** किया जाता है।

सा वेगेनाभि-पतिता, घातयन्ती महाऽसुरान्।
सैन्ये तत्र सुरारीणामभक्षयत तद्-बलम्॥९॥

अर्थ—वे **काली** वहाँ देव-शत्रुओं की सेना में तेजी से घुसती हुई प्रमुख असुरों को हनन करते-करते उस सेना का भक्षण करने लगीं।

पार्ष्णि-ग्राहांकुश-ग्राहि-योध-घण्टा-समन्वितान्।
समादायैक - हस्तेन, मुखे चिक्षेप वारणान्॥१०॥

अर्थ—उन **काली** ने पृष्ठ-रक्षक, अंकुश-ग्राही अर्थात् महावत, योद्धा और घण्टे के सहित हाथियों को एक हाथ से पकड़कर अपने मुख में डाल लिया।

व्याख्या—**चण्ड-मुण्ड** चतुरङ्गिणी सेना लेकर आए थे, जिसके पहले अङ्ग में '**गज-सैन्य**' थी। युद्ध में आए हाथी के शिरो-भाग में अंकुश लिए महावत बैठा हुआ उसे सञ्चालित करता है। पीछे के भाग में '**पार्ष्णि-ग्राह**' बैठा हुआ पृष्ठ-भाग की रक्षा करता है और मध्य-भाग में बैठकर योद्धा युद्ध करता है। हाथी के गले में घण्टों की माला रहती है।

तथैव योधं तुरगै, रथं सारथिना सह।
निक्षिप्य वक्त्रे दशनैश्चर्वयन्त्यति-भैरवम्॥११॥

अर्थ—उसी प्रकार अर्थात् एक हाथ से पकड़कर **काली** योद्धा को सारथी के सहित रथ को मुख में डालकर दाँतों से अत्यन्त भीषण रूप से चबाने लगीं।

व्याख्या—**चतुरङ्गिणी सेना** के द्वितीय अङ्ग में '**अश्व-सैन्य**' और तृतीय अङ्ग में '**रथ-सैन्य**' रहती है। **काली** ने उन्हें ध्वंस कर डाला।

एकं जग्राह केशेषु, ग्रीवायामथ चापरम्।
पादेनाक्रम्य चैवाऽन्यमुरसान्यमपोथयत्॥१२॥

अर्थ—**काली** ने किसी को केशों में और दूसरे किसी को गले में पकड़ा तथा अन्य किसी को पैर से, दूसरे किसी को वक्ष में आक्रमण कर मसल डाला।

व्याख्या—यहाँ **चतुरङ्गिणी सेना** के चतुर्थ अङ्ग '**पैदल सेना**' के विनाश का वर्णन है।

तैर्मुक्तानि च शस्त्राणि, महाऽस्त्राणि तथाऽसुरैः।
मुखेन जग्राह रुषा, दशनैर्मथितान्यपि॥१३॥

अर्थ—उन **काली** ने उन असुरों द्वारा फेंके खड्गादि शस्त्रों और वाणादि प्रमुख अस्त्रों को अपने मुख से पकड़ लिया और क्रोध से दाँतों द्वारा उन्हें चूर-चूर कर डाला।

बलिनां तद्-बलं सर्वमसुराणां महात्मनाम्।
ममर्दाऽभक्षयच्चान्यानन्यांश्चाताडयत् तथा॥१४॥

अर्थ—**काली** ने बलवान् विशाल देहवाले असुरों की उस सारी सेना का मर्दन कर डाला और अन्य असुरों को खा डाला तथा अन्यों को विताड़ित कर डाला।

व्याख्या—**महात्मनाम्**—'**महान्तः आत्मानः देहाः येषां ते महात्मानः तेषाम्**' अर्थात् विशाल देहें हैं जिनकी, उनकी (**शान्तनवी**)।

असिना निहताः केचित् , केचित्खट्वाङ्ग-ताडिताः।
जग्मुर्विनाशमसुरा, दन्ताग्राभि - हतास्तथा॥१५॥

अर्थ—कोई-कोई असुर खड्ग द्वारा मारे गए, कोई-कोई खट्वाङ्ग द्वारा ताड़ित हुए और कोई-कोई दाँत के अग्र-भाग से मार खाकर विनष्ट हो गए।

काली के साथ चण्ड और मुण्ड का युद्ध

क्षणेन तद् बलं सर्वमसुराणां निपातितम्।
दृष्ट्वा चण्डोऽभिदुद्राव, तां कालीमति-भीषणाम्॥१६॥

अर्थ—क्षण भर में ही असुरों की वह सारी सेना **काली** द्वारा मारी गई देखकर **चण्ड** नामक महाऽसुर उन **अत्यन्त भयङ्करी काली** की ओर दौड़ा।

शर-वर्षैर्महा - भीमैर्भीमाक्षीं तां महाऽसुरः।
छादयामास चक्रैश्च, मुण्डः क्षिप्तैः सहस्रशः॥१७॥

अर्थ—**महाऽसुर चण्ड** ने अत्यन्त भयानक वाण-वर्षा द्वारा और **मुण्ड** नामक महाऽसुर ने हजारों फेंके हुए चक्रों द्वारा उन **भीषण-नेत्रा काली** को ढँक दिया।

व्याख्या—**चक्र**—यह अस्त्र कुण्डलाकार अर्थात् गोल होता है। इसके किनारे का भाग कोण-युक्त या धारवाला होता है। नील-मिश्रित जल के समान इसका रङ्ग होता है और दो प्रादेश

(एक हाथ) का इसका मण्डल होता है। इसके पाँच कार्य हैं—**१ ग्रन्थन, २ भ्रमण, ३ क्षेपण, ४ कर्तन** और **५ दलन**। '**आग्नेय धनुर्वेद**' में कहा है—'**छेदनं भेदनं पातो, भ्रामणं नामनं तथा। विकर्तनं कर्तनं च, चक्र-कर्मेदमेव च।**'

'**शुक्र-नीति**' के अनुसार **चक्र उत्तम, मध्यम** और **अधम** तीन प्रकार के होते हैं। आठ शलाकाओं से युक्त उत्तम, छः शलाकावाले मध्यम और चार शलाकावाले अधम। परिमाण-भेद से भी **चक्र के तीन प्रकार** हैं—बालकों के लिए १२ पल का चक्र उत्तम, ११ पल का मध्यम और १० पल का अधम होता है। युवकों के लिए ५० पल का उत्तम, ४० पल का मध्यम और ३० पल तौल का अधम चक्र होता है। विस्तार-सम्बन्ध में बालकों के लिए ८ अंगुल का उत्तम, ७ अंगुल का मध्यम, ६ अंगुल का अधम और युवकों के लिए १६ अंगुल का उत्तम, १४ अंगुल का मध्यम और १२ अंगुल चौड़ा चक्र अधम कहा है। **चक्र की नेमि** सैक्य लोहे की बनती है। नेमि ३ अंगुल की उत्तम, २।। अंगुल की मध्यम और २ अंगुल की अधम मानी गई है।

तानि चक्राण्यनेकानि, विशमानानि तन्मुखम्।
बभुर्यथाऽर्क-बिम्बानि, सु-बहूनि घनोदरम्।।१८।।

अर्थ—जिस प्रकार बहु-संख्यक सूर्य-मण्डल मेघों के मध्य में प्रवेश करने पर शोभा पाते हैं, उसी प्रकार **मुण्ड** द्वारा फेंके वे अनेक चक्र **देवी काली** के मुख में प्रविष्ट होकर सुशोभित हुए।

व्याख्या—कृष्ण-वर्ण मेघों के साथ **भगवती काली** के मुख-मण्डल की और सूर्य-मण्डलों के साथ चक्रों की उपमा देखने योग्य है।

ततो जहासाऽति-रुषा, भीमं भैरव - नादिनी।
काली कराल-वक्त्रान्तर्दुर्दर्श-दशनोज्ज्वला।।१९।।

अर्थ—तब भीषण गर्जन करनेवाली, भयङ्कर मुख के अन्तर्गत **अति भयानक दाँतों से दीप्तिमाना काली** अत्यन्त क्रोध से **विकट हास्य** करने लगीं।

व्याख्या—दाँतों की पंक्ति की उज्ज्वलता के कारण **कृष्ण-वर्णा** होती हुई भी **काली** हास्य द्वारा दीप्तिमती हो उठीं। इससे उनके वर्णोत्कर्ष का बोध होता है (**शान्तनवी**)।

काली द्वारा चण्ड और मुण्ड का वध

उत्थाय च महा-सिंहं, देवी चण्डमधावत।
गृहीत्वा चास्य केशेषु, शिरस्तेनासिनाच्छिनत्।।२०।।

अर्थ—**काली महा-सिंह** को उठाकर अर्थात् उस पर बैठकर **चण्ड** की ओर दौड़ीं और उसके केशों को पकड़कर अपने खड्ग द्वारा उसका सिर काट डाला।

व्याख्या—गुप्तवती-टीकाकार ने '**महासिं हं**' पाठ माना है—'**महासिं महा-खड्गं, हं इति कोपोक्तिः। हं प्रश्नेऽङ्गीकृते रोषे इति विश्वः।**' अर्थात् '**हं**' का प्रयोग अङ्गीकार, प्रश्न और

क्रोध के अर्थ में होता है। अतः उक्त श्लोक का तात्पर्य है कि **काली** महा-खड्‌ग को उठाकर '**हं**' शब्द करती हुई दौड़ीं। इस अर्थ की पुष्टि में दो बातें हैं। एक तो यह कि **काली** का वाहन **सिंह** नहीं है, दूसरे उक्त श्लोक के चरण में '**तेनासिना**' अर्थात् 'उस खड्‌ग द्वारा' पद से यह बोध होता है कि पहले चरण में '**असि**' के ही उठाने का उल्लेख है, इसी से '**तेन**' विशेषण का प्रयोग है **(चतुर्धरी)**।

अथ मुण्डोऽभ्यधावत् तां, दृष्ट्वा चण्डं निपातितम्।
तमप्यपातयद् भूमौ, स खड्गाभि- हतं रुषा॥२१॥

अर्थ—तदनन्तर **चण्ड** को मारा गया देखकर **मुण्ड** भी उन **काली** की ओर दौड़ा। उन **काली** ने क्रोध-पूर्वक उसे भी **खड्‌ग** द्वारा मारकर पृथ्वी पर गिरा दिया।

हत - शेषं ततः सैन्यं, दृष्ट्वा चण्डं निपातितम्।
मुण्डं च सु-महा-वीर्यं, दिशो भेजे भयातुरम्॥२२॥

अर्थ—उस समय अत्यन्त बल-शाली **चण्ड** और **मुण्ड** को मारा गया देखकर मारे जाने से बची हुई सेना भय-भीत होकर भिन्न-भिन्न दिशाओं में भाग गई।

काली द्वारा चण्डिका को चण्ड-मुण्ड के शिर-द्वय का उपहार देना

शिरश्चण्डस्य काली च, गृहीत्वा मुण्डमेव च।
प्राह प्रचण्डाट्टहास-मिश्रमभ्येत्य चण्डिकाम्॥२३॥

अर्थ—**काली चण्ड** और **मुण्ड** के शिर लेकर **चण्डिका** के पास पहुँचकर **विकट अट्टहास** के साथ बोलीं।

व्याख्या—**मुण्डं**—यहाँ लक्षणा द्वारा **मुण्डासुर** के **मुण्ड** (शिर) का अर्थ ग्राह्य है **(तत्त्व-प्रकाशिका)**। '**शान्तनवी**'-टीका में '**मौण्डं**' पाठ माना गया है—'**मुण्डस्य असुरस्य इदं मौण्डं शिरः**' अर्थात् **मुण्ड असुर का सिर** 'मौण्ड'। **नागो जी भट्ट** के अनुसार **काली चण्ड** के सिर और **मुण्ड** के शिर-सहित मृत देह **(स-शिरस्कं स-देहं)** को लेकर **चण्डिका** या **कौशिकी देवी** के पास गई थीं। उनके मत से **काली** ने **खड्‌ग**-प्रहार से **मुण्ड** को पृथ्वी पर मार गिराया था, किन्तु उसके सिर को धड़ से अलग नहीं किया था।

'**वामन पुराण**' में कहा है कि **देवी** ने **चण्ड** और **मुण्ड** दोनों के सिर का छेदन किया। '**त्रिपुरा-रहस्य**' के **माहात्म्य-खण्ड** में भी इसी बात का समर्थन है।

चण्डिका—'**चण्डी + स्वार्थे कन् + स्त्री टाप्। चडि कोपे 'कुप्यति चण्डते चण्डिका' (शान्तनवी)**। '**चडि**' धातु का प्रयोग क्रोध के अर्थ में होता है। अतः '**चण्डी**' या '**चण्डिका**'-शब्द का अर्थ है क्रोध-मयी। शरणागत देवताओं या भक्तों को असुरों के उत्पीड़न से बचाने के लिए **ब्रह्म-स्वरूपा ब्रह्म-शक्ति** जब शान्त-भाव छोड़कर क्रोध हेतु भीषण भाव ग्रहण करती हैं, तब उन्हें '**चण्डी**' या '**चण्डिका**' कहते हैं।

ब्रह्म-सूत्र में '**कम्पनात्**' (१।३।३९) अधिकरण में '**महा-भय**' ब्रह्म-लिङ्ग-रूप में निर्दिष्ट है। '**महद् भयं वज्रमुद्यतम्**' (**कठोपनिषद्**, २।३२) अर्थात् **ब्रह्म-शक्ति** उद्यत वज्र के समान अति भीषण है। श्रुति (**तैत्तिरीयोपनिषद्** २।८) में इस महा-शक्ति का वर्णन— '**भीषास्माद् वातः पवते भीषोदेति सूर्यः। भीषास्मादग्निश्चन्द्रश्च, मृत्युर्धावति पञ्चमः॥**' अर्थात् इसके भय से वायु चलती है, इसके भय से सूर्य निकलता है, इसके भय से अग्नि, चन्द्र और मृत्यु—ये पाँचों 'अपने-अपने कार्य' में तत्पर होते हैं। यही महा-शक्ति '**चण्डी**' या '**चण्डिका**' नाम से सम्बोधित होती है।

मया तवात्रोपहृतौ, चण्ड-मुण्डौ महा-पशू।
युद्ध-यज्ञे स्वयं शुम्भं, निशुम्भं च हनिष्यसि॥२४॥

अर्थ—'इस **युद्ध-रूपी यज्ञ** में मैंने तुम्हें **चण्ड** और **मुण्ड** नामक दो महा-पशुओं का उपहार दिया है। तुम स्वयं **शुम्भ** और **निशुम्भ** को मारोगी।'

व्याख्या—**युद्ध-यज्ञे**—यज्ञ में मारे गए पशु स्वर्ग जाते हैं। **युद्ध** में मृत्यु होने पर भी स्वर्ग मिलता है, इसी से **युद्ध** को **यज्ञ** कहा है।

महा-पशू—यज्ञ में **पशु-बलि** विहित है।

चण्डिका द्वारा काली को 'चामुण्डा' नाम दिया जाना

ऋषिरुवाच ॥२५॥

तावानीतौ ततो दृष्ट्वा, चण्ड-मुण्डौ महाऽसुरौ।
उवाच कालीं कल्याणी, ललितं चण्डिका वचः॥२६॥

अर्थ—**मेधस ऋषि** ने **सुरथ** से कहा—तब **चण्ड** व **मुण्ड** नामक उन दो महा-असुरों को **काली** द्वारा लाए हुए देखकर **मङ्गल-मयी चण्डिका** ने **काली** से यह मधुर बात कही।

यस्माच्चण्डं च मुण्डं च, गृहीत्वा त्वमुपागता।
चामुण्डेति ततो लोके, ख्याता देवि! भविष्यसि॥२७॥

अर्थ—'हे देवि! क्योंकि तुम **चण्ड** व **मुण्ड** को लेकर आई हो, इसलिए संसार में '**चामुण्डा**' नाम से प्रसिद्ध होओगी।'

व्याख्या—**चामुण्डा** '**चण्ड-मुण्डौ विद्यते अस्याः इति चामुण्डा**'। 'पृशोदरादित्वात्' सूत्र से '**चण्ड-मण्डा**' के स्थान पर '**चामुण्डा**'-शब्द बना है (**तत्त्व-प्रकाशिका**)। '**तन्त्रसार**' में **चामुण्डा का ध्यान** दिया है—

दंष्ट्रा-कोटी-विशङ्कटा सु-वदना सान्द्रान्धकारे स्थिता।
खट्टाङ्गाशनि-गूढ-दक्षिण-करा वामेन पाशं शिरः॥
श्यामा पिङ्गल-मूर्द्धजा भयङ्करी शार्दूल-चर्मावृता।
चामुण्डा शव-वाहिनी जप-विधौ ध्येया साधकैः॥

चामुण्डा के भेद—'**अग्नि-पुराण**' के ५०वें अध्याय में **चामुण्डा** के आठ भेद '**अम्बाष्टक**' नाम से वर्णित हैं। ये सभी **भीम-काया, भयङ्करी** और **श्मशान-वासिनी** हैं—

(१) रुद्र-चर्चिका—षड्-भुजा, नर-कपाल, कर्त्तरी, शूल, पाश व गज-चर्म-धारिणी; ऊर्ध्वास्या व ऊर्ध्व-पादा। **(२) रुद्र-चामुण्डा**—अष्ट-भुजा; चर्चिका के छः आयुधों के अतिरिक्त नर-मुण्ड व डमरु-धारिणी। नाटेश्वरी व नृत्य-परायणा। **(३) महा-लक्ष्मी**—चतुर्मुखी, अष्ट-भुजा व उपविष्टा। हाथों में नर, अश्व, महिष लिए व हस्ती के भक्षण में तत्परा। **(४) सिद्ध-चामुण्डा**—दश-भुजा, त्रिनयना। दाएँ हाथ में शस्त्र, खड्ग, डमरु और बाएँ में घण्टा, खेटक, खट्वाङ्ग व त्रिशूल-धारिणी। **(५) सिद्ध-योगेश्वरी**—द्वादश भुजा, पूर्वोक्त आयुधों के साथ पाश व अंकुश-धारिणी। सर्व-सिद्धि-प्रदायिका। **(६) रूप-विद्या**—द्वादश-भुजा। **(७) क्षमा**—द्वि-भुजा, वृद्धा, विवृतानना, शिवाओं से परिवेष्ठिता। **(८) दन्तुरा**—उन्नत-दन्ता, ऊर्ध्व-जानु होकर भूमि पर बैठी हुई, एक हाथ जानु पर।

काली या चामुण्डा—इस अध्याय में **काली** या **चामुण्डा** का जो वर्णन है, वह **गीता** के ११वें अध्याय में वर्णित '**काल**' की व्याख्या से मिलता-जुलता है।

वास्तव में **गीता** के '**काल**' और **चण्डी** की '**काली**'—दोनों एक और अभिन्न हैं। '**दुर्गा-प्रदीप**'-टीका में है—'**कलयति भक्षयति सर्वमेतत् प्रलय-काले इति काली**' अर्थात् जो प्रलय-काल में सारे विश्व के पदार्थों को खा जाती है, वही '**काली**' है। **गीता** (११।३२) में कहा है—**कालोऽस्मि लोक-क्षय-कृत्-प्रवृद्धो, लोकान् समाहर्तुमिह प्रवृत्तः**'। अर्थात् मैं लोक-क्षय करनेवाला '**काल**' हूँ। यहाँ लोगों का संहार करने के लिए तत्पर हूँ। श्रुति **(कठोपनिषद्, २।२५)** में **ब्रह्म** की उक्त **संहार-कारिणी शक्ति** का वर्णन है—'**यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनः, मृत्युर्यस्योप-सेचनं क इत्था वेद यत्र सः**।' अर्थात् ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों ही जिसके अन्न-स्वरूप हैं और यम जिसके व्यञ्जन-रूप है, वह जहाँ है, उसे कौन जानता है? भाव है कि **ब्रह्म का सर्व-संहारक स्वरूप** अत्यन्त दुर्ज्ञेय है। **गीता** (११।२९) में '**काल**' की भीषणता का वर्णन है—'**यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गाः, विशन्ति नाशाय समृद्ध-वेगाः। तथैव नाशाय विशन्ति लोकास्तवापि वक्त्राणि समृद्ध-वेगाः**।' अर्थात् जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि में दौड़कर पतङ्गे नाश हेतु जा गिरते हैं, उसी प्रकार सभी जीव '**काल**' के मुख में लय होने के लिए तेजी से अग्रसर होते हैं।

'**काली**' के कराल रूप का जैसा वर्णन **चण्डी** में है, वैसा ही स्वरूप **गीता** (११।२७) में '**काल**' का उद्घाटित किया है—'**वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति, दंष्ट्रा-करालानि भयानकानि, केचिद् विलग्ना दशनान्तरेषु, सन्दृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः**।' अर्थात् 'तुम्हारे भयानक दंष्ट्रा-कराल मुख-विवर में जीव तेजी से प्रवेश करते हैं। किसी-किसी के चूर्णित मस्तक तुम्हारे दाँतों में फँसे हुए दृष्टि-गत होते हैं।'

'**काल**' के भयङ्कर स्वरूप के दर्शन मात्र से **अर्जुन** जैसे महा-वीर आर्तनाद कर उठे थे— '**दृष्ट्वा हि त्वां प्र-व्यथितान्तरात्मा, धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो!**' अर्थात् हे विष्णो! तुम्हारे इस भीषण रूप को देखकर मेरी अन्तरात्मा अत्यन्त पीड़ित हो उठी है और मैं धैर्य तथा मन का स्थैर्य नहीं रख पा रहा हूँ (**गीता, ११।२४**)।

किन्तु **ब्रह्म-शक्ति की प्रलयङ्करी मूर्ति** से साधकों, भक्तों को ऐसे '**आतङ्क**' का अनुभव नहीं होता। वे इस **मृत्यु-रूपा संहार-कारिणी काली** को '**माँ**' कहकर पुकारते हैं, उपासना करते हैं। वे इस तत्त्व का अनुभव करते हैं कि **मृत्यु के भीतर ही अमृतत्व** छिपा है। **मृत्यु-रूपी काली** की पूजा करने से ही **मृत्युञ्जयी बनने की साधना** सम्भव होती है। **महा-शक्ति** केवल **सर्व-मङ्गला दुर्गा** ही नहीं हैं, **रुधिराक्त-कलेवरा प्रलयङ्कर-नृत्य-परायणा कराली काली** भी हैं। वे सभी **अशुभों, विरोधों, द्वन्द्वों** और **मृत्यु**-जैसी विनाश-लीलाओं के भीतर से साधक भक्तों को क्रमशः अग्रसर कराती हुई **जीवन की पूर्णता और अमरता की उपलब्धि** कराती हैं। **स्वामी विवेकानन्द** के एक लोक-प्रिय गीत में इसी रहस्य को व्यक्त किया गया है—

मृत्यु-रूपा मा आमार आय!
करालि! कराल तोर नाम, मृत्यु तोर निःश्वासे प्रश्वासे,
तोर भीम चरण निक्षेप प्रति - पदे ब्रह्माण्ड विनाशे।
कालि! तुई प्रलय-रूपिणी, आय मागो, आय मोर पाशे।
साहसे ये दुःख, दैन्य चाय, मृत्युरे ये बाँधे बाहु-पाशे,
काल-नृत्य करे उपभोग, मृत्यु-रूपा तारि काछे आसे।

सातवें अध्याय के पाठान्तर

श्लोक-संख्या	'विशुद्ध चण्डी' का पाठ	प्रचलित पाठ
२	आज्ञप्तास्ते	आज्ञप्तास्तु
११	चर्वयन्त्यति	चर्वयत्यति
१४	दुरात्मनाम्	महात्मनाम्
१४	तथा	तदा
१५	हतास्तथा	हता रणे
१६	अति-भीषणाम्	अति-भीषणम्
१७	मुण्डः क्षिप्तैः	मुण्डक्षिप्तैः
२०	उत्थाय च महा-सिंहं	उत्थाय च महासिं सा
२१	अथ मुण्डोऽभ्यधावत् तां	अथ मुण्डोऽप्यधावत् तां
२१	तमप्यपातयद् भूमौ सा	तमप्य पातयत्क्रुद्धं सा
२७	ख्याता देवि!	ख्याता देवी

सार्थ चण्डी (श्री दुर्गा सप्तशती)

उत्तर या उत्तम चरितम्

अष्टमः अध्यायः

रक्त-वीज-वध

शुम्भ द्वारा युद्ध का आदेश

॥ ऋषिरुवाच ॥१॥

चण्डे च निहते दैत्ये, मुण्डे च विनिपातिते।
बहुलेषु च सैन्येषु, क्षयितेष्वसुरेश्वरः॥२॥
ततः कोप-पराधीन-चेताः शुम्भः प्रताप-वान्।
उद्योगं सर्व - सैन्यानां, दैत्यानामादिदेश ह॥३॥

अर्थ—**ऋषि मेधस** ने **सुरथ** से कहा—तदनन्तर **चण्ड दैत्य** के मारे जाने पर और **मुण्ड** के विनष्ट होने पर तथा बहु-संख्यक सेनाओं का क्षय हो जाने पर असुरों के स्वामी प्रतापी **शुम्भ** ने क्रोध के वशीभूत-चित्त होकर दैत्यों की सभी सेनाओं की युद्ध-सज्जा के लिए आदेश किया।

अद्य सर्व-बलैर्दैत्याः, षडशीतिरुदायुधाः।
कम्बूनां चतुरशीतिर्निर्यान्तु स-बलैर्वृताः॥४॥

अर्थ—'**उदायुध** नामक छियासी दैत्य सभी सेनाओं सहित और **कम्बु-वंश** के चौरासी दैत्य अपनी सेनाओं के साथ अभी जाएँ।'

व्याख्या—**उदायुधा**—(१) उदायुध-संज्ञक दैत्य-गण, (२) जो अस्त्र-शस्त्र से उद्यत निरन्तर निकट रहते हैं (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

कोटि-वीर्याणि पञ्चाशदसुराणां कुलानि वै।
शतं कुलानि धौम्राणां, निर्गच्छन्तु ममाज्ञया॥५॥

अर्थ—'**कोटि-वीर्य** नामक असुरों के पचास वंश और **धौम्र** के एक सौ वंश मेरी आज्ञा से बाहर निकलें।'

कालका दौर्हृदा मौर्याः, कालकेयास्तथाऽसुराः।
युद्धाय सज्जा निर्यान्तु, आज्ञया त्वरिता मम॥६॥

अर्थ—'**काल-वंश** के, **दुहृत्-वंश** के, **मुर-वंश** के और **कालकेय-वंश** के असुर अविलम्ब मेरी आज्ञा से युद्ध के लिए सज्जित होकर जाएँ।'

इत्याज्ञाप्यासुर-पतिः, शुम्भो भैरव-शासनः।
निर्जगाम महा - सैन्य - सहस्त्रैर्बहुभिर्वृतः॥७॥

अर्थ—उग्र शासन करनेवाला असुर-राज **शुम्भ** इस प्रकार आज्ञा देकर बहु-सहस्त्र उत्तम सेनाओं के साथ चल पड़ा।

देवी के पक्ष में युद्ध की ध्वनि

आयान्तं चण्डिका दृष्ट्वा, तत्-सैन्यमति-भीषणम्।
ज्या-स्वनैः पूरयामास, धरिणी - गगनान्तरम्॥८॥

अर्थ—**चण्डिका** ने अत्यन्त भयङ्कर उस सेना को आती हुई देखकर धनुष-टङ्कार की ध्वनियों से पृथिवी और आकाश के मध्य-स्थल को भर दिया।

ततः सिंहो महा-नादमतीव कृत-वान् नृप!
घण्टा-स्वनेन तं नादमम्बिका चोप-वृंहयत्॥९॥

अर्थ—हे राजन्! तब **सिंह** ने अत्यन्त भीषण गर्जना की और **अम्बिका** ने घण्टा-ध्वनि द्वारा उन शब्दों को बढ़ा दिया।

धनुर्ज्या-सिंह-घण्टानां, नादापूरित-दिङ्-मुखा।
निनादैर्भीषणैः काली, जिग्ये विस्तारितानना॥१०॥

अर्थ—दिशाओं को गुञ्जायमान करनेवाली विस्तृत-मुखी **काली** ने भयङ्कर शब्द द्वारा **धनुष-टङ्कार**, **सिंह-गर्जना** और **घण्टा-ध्वनि** को जीत लिया।

तं निनादमुप-श्रुत्य, दैत्य-सैन्यैश्चतुर्दिशम्।
देवी सिंहस्तथा काली, स-रोषैः परिवारिताः॥११॥

अर्थ—उस शब्द को सुनकर क्रुद्ध असुर-सेनाओं ने **चण्डिका देवी**, उनके **सिंह** और **काली** को चारों ओर से घेर लिया।

सात देव-शक्तियों का युद्ध-क्षेत्र में आविर्भाव

एतस्मिन्नन्तरे भूप! विनाशाय सुर-द्विषाम्।
भवायामर-सिंहानामति-वीर्य-बलान्विताः॥१२॥

ब्रह्मेश-गुह-विष्णूनां, तथेन्द्रस्य च शक्तयः।
शरीरेभ्यो विनिष्क्रम्य, तद्-रूपैश्चण्डिकां ययुः॥१३॥

अर्थ—हे राजन्! इसी बीच देव-शत्रु असुरों के संहार के लिए और श्रेष्ठ देवों की रक्षा के लिए **ब्रह्मा**, **शिव**, **कार्तिकेय**, **विष्णु** की तथा **इन्द्र** की अत्यन्त ओजस्विनी बल-सम्पन्ना शक्तियाँ उनके शरीरों से निकल कर उन्हीं के रूपों में **चण्डिका** के निकट जा पहुँचीं।

व्याख्या—**अति-वीर्य-बलान्विताः**—'वीर्यः = उत्साह-शक्ति, बल = देह-शक्ति' (**वंशोद्धार**)।

शक्तयः—सात देव-शक्तियाँ—(१) **ब्रह्मा** की शक्ति '**ब्रह्माणी**' या '**ब्राह्मी**'; (२) **ईश** या **महेश्वर** की शक्ति '**माहेश्वरी**'; (३) गुह या **कुमार कार्तिकेय** की शक्ति '**कौमारी**'; (४) **विष्णु** की शक्ति '**वैष्णवी**'; (५) **वराह** की शक्ति '**वाराही**'; (६) **नृसिंह** की शक्ति '**नारसिंही**' और (७) **इन्द्र** की शक्ति '**इन्द्राणी**'।

ये **देव-शक्तियाँ** वास्तव में **समष्टि-शक्ति-भूता आद्या-शक्ति भगवती चण्डिका** की विभिन्न व्यष्टि-शक्तियाँ ही हैं। **विशुद्ध चण्डी** के ५।३२, १०।५, १०।८ और ११।१३-१९ श्लोकों से इस तथ्य की पुष्टि होती है।

यस्य देवस्य यद्-रूपं, यथा भूषण-वाहनम्।
तद्-वदेव हि तच्छक्तिरसुरान् योद्धुमाययौ॥१४॥

अर्थ—जिस देवता का जो रूप था और जैसे आभूषण-वाहन थे, उस देवता की शक्ति ठीक उसी प्रकार के समान रूपादि में असुरों से युद्ध करने के लिए आईं।

हंस-युक्त-विमानाग्रे, साक्ष-सूत्र-कमण्डलुः।
आयाता ब्रह्मणः शक्तिर्ब्रह्माणी साऽभिधीयते॥१५॥

अर्थ—सर्व-प्रथम **हंस** द्वारा सञ्चालित विमान पर **जप-माला** और **कमण्डलु** के साथ **ब्रह्मा की शक्ति** आईं। वे '**ब्रह्माणी**' कही जाती हैं।

व्याख्या—**विमानाग्रे**—विमान के आगे अर्थात् सम्मुख, यह अर्थ भी सम्भव है।

ब्रह्माणी—'**ब्रह्माणं आनयति चेष्टयति इति**' (**नागो जी**)। ब्रह्मांणी सृष्टि की शक्ति हैं। **श्रीदुर्गा-पूजा** में **ब्रह्माणी** आदि माताओं की पूजा होती है। वहाँ इनका ध्यानात्मक प्रणाम-मन्त्र निम्न प्रकार है—

ॐ चतुर्मुखीं जगद्धात्रीं, हंसारूढां वर-प्रदाम् ।
सृष्टि-रूपां महा-भागां, ब्रह्माणीं तां नमाम्यहम्॥

'**मत्स्य-पुराण**', २६१।२४ में **ब्रह्माणी** का ध्यान—

ब्रह्माणी ब्रह्म-सदृशी, चतुर्वक्त्रा चतुर्भुजा।
हंसाधिरूढा कर्तव्या, साक्ष-सूत्र-कमण्डलुः॥

ब्रह्माणी ने युद्ध करते समय अपने **कमण्डलु** से कुश-द्वारा मन्त्र-पूत जल छिड़क-छिड़क कर असुरों को शक्ति-हीन कर दिया था (देखें '**विशुद्ध चण्डी**', ८।३३, ९।३८, ११।१३)।

माहेश्वरी वृषारूढा, त्रिशूल-वर-धारिणी।
महाऽहि-वलया प्राप्ता, चन्द्र-रेखा-विभूषणा॥१६॥

अर्थ—**बैल** पर सवार, श्रेष्ठ **त्रिशूल** हाथ में लिए, **महा-सर्प** के कङ्गन पहने, **चन्द्र-कला** से सुशोभित **माहेश्वरी** पहुँच गईं।

व्याख्या—**महाहि-वलया**—'**महाही तक्षकान् तौ वलयौ यस्याः सा**' अर्थात् एक हाथ में **तक्षक** और दूसरे हाथ में **अनन्त** नामक दो **महा-सर्पों** को वलय-रूप में धारण करनेवाली **(नागो जी)**।

माहेश्वरी—ये संहार-शक्ति हैं। **दुर्गा-पूजा** में इनका ध्यानात्मक प्रणाम-मन्त्र—

ॐ वृषारूढां शुभां शुक्लां, त्रिनेत्रां वरदां शिवाम्।
माहेश्वरीं नमाम्यद्य, सृष्टि-संहार-कारिणीम्॥

'**मत्स्य पुराण**', २६१।२६ में **माहेश्वरी का ध्यान** निम्न प्रकार है—

जटा-मुकुट-संयुक्ता, वृषस्था चन्द्र-शेखरा।
कपाल-शूल-खट्वाङ्ग-वरदाढ्या चतुर्भुजा॥

कौमारी शक्ति-हस्ता च, मयूर-वर-वाहना।
योद्धुमभ्याययौ दैत्यानम्बिका गुह-रूपिणी॥१७॥

अर्थ—**शक्ति** नामक अस्त्र हाथ में लिए, श्रेष्ठ **मोर** पर बैठी हुई, कार्तिकेय-रूपवाली **माता कौमारी** भी दैत्यों से युद्ध करने के लिए आ गईं।

व्याख्या—**गुह-रूपिणी**—(१) '**गूहते सेनां संवृणोति गुहः**' अर्थात् अपनी सेना को छिपाए रहते हैं, वे। देव-सेनापति **कार्तिकेय**। (२) '**गुहं कुमारं आकारेण रूपयति दर्शयति गुह-रूपिणी**' अर्थात् **कार्तिकेय** का रूप धारण करनेवाली **(शान्तनवी)**।

कौमारी—दुर्गा-पूजा में इनका ध्यानात्मक प्रणाम-मन्त्र निम्न प्रकार निर्दिष्ट है—

ॐ कौमारीं पीत-वसनां, मयूर-वर-वाहनाम् ।
शक्ति-हस्तां सिताङ्गीं तां, नमामि वरदां सदा ॥

'**अग्नि-पुराण**', ५०।१९ में—'**कौमारी शिखिगा रक्ता, शक्ति-हस्ता द्वि-बाहुका**'।

'**विशुद्ध चण्डी**', ११।१५ में **कौमारी** को '**मयूर-कुक्कुट-वृता**' बताया है। '**मत्स्य-पुराण**', २६१-२७ में लिखा है—'**कुमार-रूपा कौमारी, मयूर-वर-वाहना। रक्त-वस्त्र-धरा तद्-वच्छूल-शक्ति-धरा मता। हार-केयूर-सम्पन्ना, कृकवाकु-धरा तथा॥**

तथैव वैष्णवी शक्तिर्गरुडोपरि-संस्थिता।
शङ्ख-चक्र-गदा-शार्ङ्ग-खड्ग-हस्ताभ्युपाययौ॥१८॥

अर्थ—उसी प्रकार **गरुड़** के ऊपर बैठी हुई **वैष्णवी शक्ति शङ्ख, चक्र, गदा, धनुष** और **खड्ग** हाथों में लिए आकर उपस्थित हो गईं।

व्याख्या—**वैष्णवी**—ये स्थिति या पालिनी शक्ति हैं। इनके हाथों की संख्या में मत-भेद है। कोई उन्हें **चतुर्भुजा**, तो कोई **षड्-भुजा**, तो कोई **अष्ट-भुजा** मानता है। यथा—

(१) **नागो जी भट्ट** के अनुसार **वैष्णवी षड्-भुजा** हैं। '**शार्ङ्ग**' या **धनुष** से '**वाण**' की भी प्रतीति होती है। '**वामन-पुराण**', ५६।६ में कहा है—

बाहुभिर्गरुडारूढा, शङ्ख-चक्र-गदाऽसिनी।
शार्ङ्ग-वाण-धरा जाता, वैष्णवी रूप-शालिनी॥

अर्थात् **शङ्ख, चक्र, गदा, असि, धनुष** और **बाण** लिए हैं। **गुप्तवती-टीका** का भी यही मत है।

(२) **'शार्ङ्ग'** या **धनुष** के साथ जैसे **'वाण'** की प्रतीति होती है, वैसे ही **'असि'** या **खड्ग** के साथ **'चर्म'** या **ढाल** की भी व्यञ्जना होती है। इसे मानने से देवी के सात हाथों में अस्त्र ज्ञात होते हैं और एक हाथ आयुध-हीन रह जाता है, किन्तु इसमें कोई आपत्ति की बात नहीं है क्योंकि **कौमारी, माहेश्वरी** आदि भी एक ही आयुधवाली हैं। अथवा **'शङ्ख'** के साथ **'पद्म'** की अवस्थिति भी मानी जा सकती है, जिससे **वैष्णवी देवी** की आठों भुजाएँ आयुध-युक्ता हो जाती हैं। इस प्रकार वे **अष्ट-भुजा** हैं **(दंशोद्धार टीका)**।

तन्त्र-प्रकाशिका-टीकाकार गोपाल चक्रवर्ती के अनुसार **दक्ष-यज्ञादि** अवसरों पर कहीं-कहीं **अष्ट-भुज विष्णु** के आविर्भाव का उल्लेख है। यथा, **भागवत** के चौथे स्कन्ध में—
शङ्खाब्ज-चक्र-शर-चाप-गदाऽसि-चर्म-व्यग्रैर्हिरणमय-भुजैरिव कर्णिकारः।

(३) जो **वैष्णवी** को **चतुर्भुजा** मानते हैं, उन्होंने उक्त श्लोक की व्याख्या इस प्रकार की है—

(क) **'अभ्युप'** शब्द का अर्थ है बाहु-मूल, **'अभ्युपो बाहु-मूलं स्यात् इति विश्वः'।** १ **शङ्ख** (पाञ्च-जन्य), २ **चक्र** (सुदर्शन), ३ **गदा** (कौमोदकी), ४ **शार्ङ्ग** (धनुष), ५ **खड्ग** (नन्दक)—**'एतानि पञ्च हस्ताभ्युपेषु यस्याः सा'** अर्थात् **शङ्ख, चक्र, गदा** व **धनुष** देवी के चार हाथों में और **खड्ग** उनके बाहु-मूल या बगल में शोभित हैं **(दंशोद्धार-टीका)**। अतः वे **चतुर्भुजा** हैं।

(ख) **'शार्ङ्ग'** शब्द **खड्ग** का विशेषण है—**'शृङ्ग-मयो मुष्टिः अस्य इति शार्ङ्गः, स चासौ खड्गश्चेति चत्वारि आयुधानि अस्याः'** (दंशोद्धार)। इस प्रकार **शङ्ख, चक्र, गदा** व शृङ्ग-मय मुष्टि-वाला **खड्ग**—ये चार आयुध धारण करने से **वैष्णवी चतुर्भुजा** हैं। **तत्त्व-प्रकाशिका** और **शान्तनवी टीका** में भी यही माना गया है।

'विशुद्ध चण्डी' में **'नारायणी-स्तुति'**, ११।१६ के अन्तर्गत **वैष्णवी** को चार आयुधवाली ही वर्णित किया है। **'मत्स्य-पुराण'**, २६१।२९ से भी **चतुर्भुजा**-रूप ज्ञात होता है—

वैष्णवी विष्णु-सदृशी, गरुडे समुपस्थिता।
चतुर्बाहुश्च वरदा, शङ्ख-चक्र-गदा धरा॥

दुर्गा-पूजा में **वैष्णवी का ध्यानात्मक प्रणाम-मन्त्र** निम्न प्रकार है—

ॐ शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-धारिणीं कृष्ण-रूपिणीम्।
स्थिति-रूपां खगेन्द्रस्थां, वैष्णवीं तां नमाम्यहम्॥

यज्ञ-वाराहमतुलं, रूपं या बिभ्रती हरेः।
शक्तिः साप्याययौ तत्र, वाराहीं बिभ्रती तनुम्॥१९

अर्थ—अनुपम यज्ञाङ्ग-कल्पित **वराह** के रूप को धारण करनेवाली **हरि** की जो शक्ति हैं, वे भी **वाराही**-शरीर से शोभा पाती हुई उस युद्ध-क्षेत्र में आ पहुँचीं

व्याख्या—**यज्ञ-वराह**—**भगवान् विष्णु** ने **वराह**-रूप से पृथ्वी को अपने दाँतों पर स्थापित कर प्रलय-सागर से बाहर निकाला था। यह **विष्णु का तीसरा अवतार** है। **वराहावतार** द्वारा **हिरण्याक्ष दैत्य** का वध हुआ था। **भगवान् विष्णु** के **वराह-देह** छोड़ने पर उस देह के विभिन्न अङ्ग-प्रत्यङ्गों से **अष्टाधिक-सहस्र यज्ञ** और **यज्ञीय उपकरण** उत्पन्न हुए। इसी से **भगवान् विष्णु** का नाम '**यज्ञ-वराह**' पड़ा (देखें '**कालिका-पुराण**', २९।३१)।

'**यज्ञात्मकः यज्ञ-वराहः तस्य इदमिति यज्ञ-वाराहम्**' (तत्त्व-प्रकाशिका)।

वाराही—वराह अवतार की शक्ति। **मत्स्य-पुराण**, २६१।३० में इनका ध्यान—

वाराहीं च प्रवक्ष्यामि, महिषोपरि-संस्थिताम् ।
वराह-सदृशी देवी, शिरश्चामर-धारिणी।
गदा-चक्र-धरा तद्-वद्-दानवेन्द्र-विनाशिनी॥

दुर्गा-पूजा में **वाराही का ध्यानात्मक प्रणाम-मन्त्र** निम्न प्रकार है—

ॐ वराह-रूपिणीं देवीं, दंष्ट्रोद्धृत-वसुन्धराम्।
शुभदां पीत-वसनां, वाराहीं तां नमाम्यहम्॥

नारसिंही नृसिंहस्य, बिभ्रती सदृशं वपुः।
प्राप्ता तत्र सटाक्षेप-क्षिप्त-नक्षत्र-संहतिः॥२०॥

अर्थ—**नारसिंही नृसिंह** के समान देह धारण किए अपने केशों से नक्षत्र-समूह को छिटकाती हुई वहाँ पहुँचीं।

व्याख्या—**नृसिंह**—**भगवान् विष्णु के चौथे अवतार**। दैत्य-राज **हिरण्यकशिपु** का वध इनके द्वारा हुआ। इनकी आधी देह मनुष्य की, शेष आधी सिंह की है। विस्तृत ध्यान, मन्त्र हेतु देखें '**मन्त्र-कोष**'।

नारसिंही—दुर्गा-पूजा में इनका ध्यान निम्न प्रकार है—

ॐ नृसिंह-रूपिणीं देवीं, दैत्य-दानव-दर्पहाम् ।
शुभां शुभ-प्रदां शुभ्रां, नारसिंहीं नमाम्यहम्॥

वज्र-हस्ता तथैवेन्द्री, गज-राजोपरि-स्थिता।
प्राप्ता सहस्र-नयना, यथा शक्रस्तथैव सा॥२१॥

अर्थ—उसी प्रकार **वज्र-धारिणी सहस्र-नेत्रा इन्द्र** की शक्ति **ऐन्द्री** गज-राज **ऐरावत** पर बैठी हुई आ पहुँचीं। जैसे **इन्द्र** हैं, वैसी ही वे भी हैं।

व्याख्या—**मत्स्य-पुराण**, २६१।३२ में ध्यान—

इन्द्राणीमिन्द्र-सदृशीं, वज्र-शूल-गदा-धराम्।
गजासन-गतां देवीं, लोचनैर्बहुभिर्वृताम्।
तप्त-काञ्चन-वर्णाभां, दिव्याभरण-भूषिताम्॥

दुर्गा-पूजा में इन्द्राणी का ध्यानात्मक प्रणाम-मन्त्र—

ॐ इन्द्राणीं गज-कुम्भस्थां, सहस्र-नयनोज्ज्वलाम्।
नमामि वरदां देवीं, सर्व-देव-नमस्कृताम्॥

युद्ध-क्षेत्र में शिव का आविर्भाव

ततः परिवृतस्ताभिरीशानो देव-शक्तिभिः।
हन्यन्तामसुराः शीघ्रं, मम प्रीत्याऽऽह चण्डिकाम्॥२२॥

अर्थ—तदनन्तर **शिव ईशान** ने उन देव-शक्तियों से परिवेष्टित होकर **चण्डिका** से कहा—मेरी प्रसन्नता के लिए तुरन्त ही असुरों को मार डालो।

चण्डिका-शक्ति अपराजिता का आविर्भाव

ततो देवी-शरीरात् तु, विनिष्क्रान्ताऽति-भीषणा।
चण्डिका-शक्तिरत्युग्रा, शिवा-शत-निनादिनी॥२३॥

अर्थ—तब **चण्डिका देवी** के शरीर से अत्यन्त भयङ्करी, अति क्रोध-युक्ता, शब्द करनेवाली असंख्य शिवाओं से घिरी हुई शक्ति **अपराजिता** बाहर निकल आईं।

व्याख्या—**चण्डिका-शक्तिः**—**अपराजिता** या **शिव-दूती**, ये **चण्डिका** की दूसरी शक्ति हैं। पहली शक्ति हैं **काली** या **चामुण्डा**, जो पहले आविर्भूत हो चुकी हैं।

शिवा-शत-निनादिनी—'**शिवा-शतानाम् अनन्त-शृगालानां नादेन युक्ता**' अर्थात् सैकड़ों शिवाएँ उनके साथ हैं (**गुप्तवती**)। 'शत'-शब्द का प्रयोग असंख्य अर्थ में हुआ है। असंख्य शिवाएँ उनके साथ ही प्रकट हुई थीं (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

'**शिवा गौरी-शृगालयोः**' अर्थात् **शिवा**-शब्द का अर्थ है **गौरी** या **शृगाल**।

अपराजिता द्वारा शिव को दौत्य-कर्म में लगाना

सा चाह धूम्र - जटिलमीशानमपराजिता।
दूत! त्वं गच्छ भगवन्! पार्श्वं शुम्भ-निशुम्भयोः॥२४॥

अर्थ—उन **अपराजिता** नामक **चण्डिका** ने धूम्र-वर्ण-जटावाले **ईशान शिव** से कहा—'हे भगवन्! **शुम्भ** व **निशुम्भ** के पास आप **दूत**-रूप से जाएँ।'

व्याख्या—**अपराजिता**—**विजया-दशमी** के दिन **श्रीदुर्गा का विसर्जन** करने के बाद **कुल-प्रथा** के अनुसार विजय-कामना से **अपराजिता देवी की पूजा** करे।

'अपराजिता रुद्र-लता करोतु विजयं मम'—इस मन्त्र से दाईं बाहु में अपराजिता लता बाँधने का नियम है।

ब्रूहि शुम्भं निशुम्भं च, दानवावति-गर्वितौ।
ये चान्ये दानवास्तत्र, युद्धाय समुपस्थिताः॥२५॥

अर्थ—'अत्यन्त घमण्डी दोनों दैत्यों, **शुम्भ** व **निशुम्भ** और दूसरे जो असुर युद्ध के लिए उद्यत हों, उनसे बता दीजिए।'

त्रैलोक्यमिन्द्रो लभतां, देवाः सन्तु हविर्भुजः।
यूयं प्रयात पातालं, यदि जीवितुमिच्छथ॥२६॥

अर्थ—'कि **इन्द्र** त्रैलोक्य का अधिकार प्राप्त करें, **देवता लोग** यज्ञ-भाग भोग करनेवाले बनें और तुम लोग, यदि जीवित रहना चाहता हो, तो पाताल में चले जाओ।'

व्याख्या—**हविः**—**मनु-संहिता**, ३।२५१ में कहा है—

मुन्यन्नानि पयः सोमो, मांसं यच्चानुपस्कृतम्।
अक्षारं लवणं चैव, प्रकृत्या हविरुच्यते॥

अर्थात् मुनियों द्वारा खाया जानेवाला, अरण्य में होनेवाला, नीवार आदि अन्न, दूध, सोम-रस, अ-विकृत ताजा मांस, सैन्धवादि-विकृत लवण—ये **प्राकृतिक 'हवि'** कहलाते हैं।

बलावलेपादथ चेद्, भवन्तो युद्ध-कांक्षिणः।
तदाऽऽगच्छत तृप्यन्तु, मच्छिवाः पिशितेन वः॥२७॥

अर्थ—'और यदि बल के घमण्ड के कारण तुम लोग युद्ध चाहते हो, तो आओ, मेरी शिवाएँ तुम्हारे मांस द्वारा तृप्त हों।'

व्याख्या—**मच्छिवाः**—शब्द करती हुई मेरी शिवाएँ, जो मेरे साथ उत्पन्न हुई हैं (**नागो जी**)।

कुक्कुराश्च श्रृगालाश्च, हरिणाश्च तथा वयः।
प्रिया भवन्ति शक्तीनां, भैरवाणां वै तथा॥

अर्थात् कुत्ते, सियार, हिरन और कौए—ये **शक्तियों** और **भैरवों** के प्रिय पात्र हैं।

अपराजिता की 'शिव-दूती' उपाधि

यतो नियुक्तो दौत्येन, तया देव्या शिवः स्वयम्।
शिव-दूतीति लोकेऽस्मिंस्ततः सा ख्यातिमागता॥२८॥

अर्थ—क्योंकि उन **देवी अपराजिता** द्वारा स्वयं **शिव** ही **दूत-रूप** में नियुक्त हुए थे, इसलिए इस संसार में वे **'शिव-दूती'** इस नाम से प्रसिद्ध हो गईं।

व्याख्या—**शिव-दूती**—**'शिवः दूतः यस्याः सा।' कालिका-पुराण**, ६१।१०४-८ में ध्यान—

रूपमस्याः प्रवक्ष्यामि, श्रृणु वत्सैक - सम्मतः।
चतुर्भुजं महा - कायं, सिन्दूर - सदृश - द्युतिः॥
रक्त-दन्तं मुण्ड-माला-जटा-जूटार्द्ध-चन्द्र-धृक्।
नाग-कुण्डल-हाराभ्यां, शोभितं नखरोज्ज्वलम्॥
व्याघ्र-चर्म-परीधानं, दक्षिणे शूल-खड्ग-धृक्।
वामे पाशं तथा चर्म, विभ्रदूर्ध्वापर-क्रमात्॥
स्थूल-वक्त्रं च पीनोष्ठं, तुङ्ग-मूर्तिं भयङ्करम्।
निक्षिप्य दक्षिणं पादं, सन्तिष्ठत् कुणपोपरि॥
वाम-पादं श्रृगालस्य, पृष्ठे फेरु - शतैर्वृतम्।
ईदृशीं शिव-दूत्यास्तु, मूर्तिं ध्यायेद् विभूतये॥

चण्डिका और मातृ-गण से असुरों का युद्ध

तेऽपि श्रुत्वा वचो देव्याः, शर्वाख्यातं महाऽसुराः।
अमर्षापूरिता जग्मुर्यत्र कात्यायनी स्थिता॥२९॥

अर्थ—**शुम्भादि** वे **महाऽसुर** भी **महादेव** द्वारा कथित देवी **शिव-दूती** की बात सुनकर क्रोध में भरकर जहाँ **कात्यायनी** अर्थात् **चण्डिका देवी** विद्यमान थीं, वहाँ जा पहुँचे।

व्याख्या—**शर्वः**—'**श्रृणोति हिनस्ति शर्वः शिवः**' अर्थात् समस्त जीवों का संहार करने से **शिव** का नाम '**शर्व**' है (**शान्तनवी**)।

ततः प्रथममेवाग्रे, शर-शक्त्यृष्टि-वृष्टिभिः।
ववर्षुरुद्धतामर्षास्तां देवीममरारयः॥३०॥

अर्थ—तब सबसे पहले **देवी** के सामने उद्दीप्त-क्रोधवाले देव-शत्रु असुरों ने पहुँचकर **वाण, शक्ति** और **ऋष्टि** की वर्षा द्वारा **देवी चण्डिका** को आच्छादित कर दिया।

व्याख्या—**ऋष्टि**—दोनों ओर धारवाला खड्ग-विशेष (**नागो जी**)।

सा च तान् प्रहितान् वाणाञ्छूल-शक्ति-परश्वधान्।
चिच्छेद लीलयाऽऽध्मात-धनुर्मुक्तैर्महेषुभिः॥३१॥

अर्थ—और उन **देवी चण्डिका** ने भी असुरों द्वारा फेंके उन वाणों, शूल-चक्र-फरसों को अनायास ही अपने टङ्कार-ध्वनिवाले धनुष से छोड़े हुए **महा-बाणों** द्वारा छिन्न-भिन्न कर डाला।

व्याख्या—**आध्मात-धनुर्मुक्तैः**—'**आध्मातं टङ्कारेण शब्दितं यत् धनुः ततो मुक्तैः**'। '**आध्मात**'-शब्द से ज्ञात होता है कि **देवी चण्डिका** ने बहुत ही शीघ्रता के साथ धनुष से तीर लगाए और छोड़े, जिससे लगातार टङ्कार-ध्वनि गूँजती रही (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

तस्याग्रतस्तथा काली, शूल-पात-विदारितान्।
खट्वाङ्ग-पोथितांश्चारीन्, कुर्वती व्यचरत् तदा॥३२॥

अर्थ—तब **काली** (चामुण्डा) भी उसी प्रकार शत्रुओं को अपने **शूल** की चोट से विदीर्ण और **खट्वाङ्ग** से मर्दित करती हुई उन **चण्डिका** के आगे-आगे विचरण करने लगीं।

व्याख्या—**तस्याग्रतः**—(१) तस्याः + अग्रतः, छान्दसः सन्धिः **(नागो जी)**। **'तस्या अग्रतः'** होना चाहिए, किन्तु आर्ष सन्धि का प्रयोग है। **चण्डिका देवी** के सामने।

(२) तस्य (शुम्भस्य) + अग्रतः **(तत्त्व-प्रकाशिका)**। शुम्भासुर के सामने।

किन्हीं-किन्हीं का कहना है कि **काली** या **चामुण्डा** का आयुध **'शूल'** नहीं है। अतः इस श्लोक का अर्थ यह होना चाहिए कि—**काली** उस **शुम्भासुर** के सामने, **चण्डिका** के **शूलाघात** से विदीर्ण होकर जो शत्रु तब भी जीवित थे (शूल-पात-विदारितान्), उन्हें **खट्वाङ्ग** से मारती हुई विचरण करने लगीं।

कमण्डलु-जलाक्षेप - हत - वीर्यान् हतौजसः।
ब्रह्माणी चाऽकरोच्छत्रून्, येन येन स्म धावति॥३३॥

अर्थ—**ब्रह्माणी** जिन-जिन स्थानों में पहुँचती थीं, वहाँ-वहाँ शत्रुओं को अपने **कमण्डलु** के जल के सिञ्चन द्वारा शक्ति-हीन और तेज-रहित करने लगीं।

माहेश्वरी त्रिशूलेन, तथा चक्रेण वैष्णवी।
दैत्याञ्जघान कौमारी, तथा शक्त्याति-कोपना॥३४॥

अर्थ—अत्यन्त क्रुद्धा **माहेश्वरी** अपने **त्रिशूल** द्वारा और **वैष्णवी** अपने **चक्र** द्वारा तथा **कौमारी** अपने **शक्ति** नामक अस्त्र द्वारा दैत्यों का वध करने लगीं।

ऐन्द्री कुलिश-पातेन, शतशो दैत्य - दानवाः।
पेतुर्विदारिताः पृथ्व्यां, रुधिरौघ-प्रवर्षिणः॥३५॥

अर्थ—**इन्द्राणी** के **वज्र** की चोट द्वारा सैकड़ों दैत्य और दानव विदीर्ण होकर रक्त की धारा बहाते हुए धरती पर गिर पड़े।

व्याख्या—**दैत्य-दानवाः**—**दितेः अपत्यानि पुमांसः दैत्याः । दनोः अपत्यानि पुमांसः दानवाः (शान्तनवी)**। **कश्यप** की पत्नी **दिति** के पुत्र **'दैत्य'** नाम से प्रसिद्ध हैं। **'दनु' कश्यप** की ही अन्य पत्नी हैं, उनके पुत्र **'दानव'** नाम से विख्यात हैं।

तुण्ड-प्रहार-विध्वस्ता, दंष्टाग्र - क्षत - वक्षसः।
वाराह - मूर्त्या न्यपतंश्चक्रेण च विदारिताः॥३६॥

अर्थ—**वराह-रूपा वाराही** के मुख की चोट से विनष्ट होकर दाँतों के अगले भाग अर्थात् नोक से छाती के फट जाने से और उनके **चक्र** द्वारा विदीर्ण होकर वे दैत्य-दानव-गण गिर पड़े।

नखैर्विदारितांश्चान्यान्, भक्षयन्ती महाऽसुरान्।

नारसिंही चचाराजौ, नादापूर्ण-दिगम्बरा॥३७॥

अर्थ—दिशाओं और आकाश को अपनी गर्जना से गुँजानेवाली **नारसिंही** दूसरे महा-असुरों को अपने नाखूनों से विदीर्ण करती हुई और उन्हें खाती हुई युद्ध-क्षेत्र में घूमने लगीं।

चण्डाट्ट-हासैरसुराः, शिव-दूत्यभि-दूषिताः।

पेतुः पृथिव्यां पतितांस्तांश्च खादाथ सा तदा॥३८॥

अर्थ—**शिव-दूती** के प्रचण्ड अट्टहासों के द्वारा असुर-गण मूर्छित होकर धरती पर गिर पड़े और तब वे उन गिरे हुए असुरों को खाने लगीं।

इति मातृ - गणं क्रुद्धं, मर्दयन्तं महाऽसुरान्।

दृष्ट्वाऽभ्युपायैर्विविधैर्नेशुर्देवारि-सैनिकाः॥३९॥

अर्थ—क्रोधिता माताओं को इस प्रकार नाना उपायों से बड़े-बड़े असुरों को मर्दित करती हुई देखकर देवताओं के शत्रु असुरों के योद्धा-गण भाग चले।

व्याख्या—**मातृ-गण**—माताओं की संख्या के सम्बन्ध में मत-भेद है। '**डामर-तन्त्र**' के **नवार्ण-विधान** में **अष्ट-माताओं** का उल्लेख है। यथा—

ब्राह्मी माहेश्वरी चैव, कौमारी वैष्णवी तथा।

वाराही नारसिंह्यैन्द्री, चामुण्डा मातरः स्मृताः॥

तन्त्रान्तर में कुछ भिन्न नाम दिए हैं, यथा—

ब्रह्माणी वैष्णवी रौद्री, कौमारी शिव-दूतिका।

ऐन्द्री च नारसिंही च, वाराही चाष्ट-मातरः॥

'**शान्तनवी टीका**' में उद्धृत एक वचन के अनुसार सात ही माताएँ हैं। यथा—

ब्राह्मी माहेश्वरी चैव, कौमारी वैष्णवी तथा।

वाराही चैव माहेन्द्री, चामुण्डा सप्त-मातरः॥

'**विशुद्ध चण्डी**' (श्री दुर्गा सप्तशती) के वर्णन के अनुसार **नौ माताएँ** हैं—

(१) ब्रह्माणी, (२) माहेश्वरी, (३) कौमारी, (४) बैष्णवी, (५) वाराही, (६) नारसिंही, (७) ऐन्द्री, (८) काली या **चामुण्डा** और **(९) शिव-दूती।**

माताओं के साथ रक्त-बीज का युद्ध

पलायन-परान् दृष्ट्वा, दैत्यान् मातृ-गणार्दितान्।

योद्धुमभ्याययौ क्रुद्धो, रक्त-वीजो महाऽसुरः॥४०॥

अर्थ—**ब्रह्माणी** आदि माताओं के द्वारा पीड़ित दैत्यों को भागते हुए देखकर महान् असुर **रक्त-वीज** क्रुद्ध होकर युद्ध करने आ पहुँचा।

व्याख्या—**रक्त-वीजः—'रक्तं वीजं कारणं यस्य सः' (नागो जी)। 'गुप्तवती टीका'** में **रक्त-वीज** का परिचय निम्न श्लोक द्वारा दिया है—

भागिनेयो महा-वीर्यस्तयोः शुम्भ-निशुम्भयोः।
क्रोध-वत्याः सुतो ज्येष्ठो, महा-बल-पराक्रमः॥

अर्थात् **महा-वीर रक्त-वीज शुम्भ-निशुम्भ का भाञ्जा** था। उसकी माँ का नाम **क्रोधवती** था और वह उसका **ज्येष्ठ पुत्र** था।

रक्त-बिन्दुर्यदा भूमौ, पतत्यस्य शरीरतः।
समुत्पतति मेदिन्यां, तत्-प्रमाणस्तदाऽसुरः॥४१॥

अर्थ—जब उस **रक्त-वीज** के शरीर से रक्त का एक बूँद पृथ्वी पर गिरता था, तब पृथ्वी से उसी के समान दूसरा असुर उत्पन्न हो जाता था।

व्याख्या—**'देवी-भागवत'**, स्कन्ध ५, अध्याय २९ में कहा है कि **रक्त-वीज** ने **महा-देव** को प्रसन्न कर उनसे उक्त प्रकार का अद्‌भुत वर प्राप्त किया था।

युयुधे स गदा-पाणिरिन्द्र-शक्त्या महाऽसुरः।
ततश्चैन्द्री स्व - वज्रेण, रक्त-बीजमताडयत्॥४२॥

अर्थ—वह महान् असुर **रक्त-वीज** हाथ में **गदा** लेकर **इन्द्राणी** से युद्ध करने लगा। तब **इन्द्राणी** ने भी अपने **वज्र** से रक्त-वीज पर चोट की।

रक्त-वीज के रक्त-विन्दुओं से असंख्य असुरों का जन्म

कुलिशेनाहतस्याशु, बहु सुस्राव शोणितम्।
समुत्तस्थुस्ततो, योधास्तद् -रूपास्तत्-पराक्रमाः॥४३॥

अर्थ—**वज्र** से घायल उस **रक्त-वीज** की देह से तेजी से रक्त गिरने लगा। उस रक्त से उसी के आकारवाले और उसी के समान बलवाले योद्धा उत्पन्न हो गए।

यावन्तः पतितास्तस्य, शरीराद् रक्त-बिन्दवः।
तावन्तः पुरुषा जातास्तद्-वीर्य-बल-विक्रमाः॥४४॥

अर्थ—उस **रक्त-वीज** की देह से रक्त की जितनी बूँदें गिरीं, उतने ही उसके समान बल-वीर्य और विक्रमवाले पुरुष उत्पन्न हो गए।

व्याख्या—**तद्-वीर्य-बल-विक्रमाः—तस्य इव वीर्यं इन्द्रिय-शक्तिः, बलं देह-शक्तिः, विक्रमः उत्साह येषां ते (तत्त्व-प्रकाशिका)**। अर्थात् **वीर्य** = शक्ति-शाली इन्द्रियाँ, **बल** = शारीरिक शक्ति और **विक्रम** = उत्साह।

ते चापि युयुधुस्तत्र, पुरुषा रक्त - सम्भवाः।
समं मातृभिरत्युग्र-शस्त्र-पातातिभीषणम्॥४५॥

अर्थ—रक्त से उत्पन्न वे सब पुरुष भी उस युद्ध-क्षेत्र में अत्यन्त भयानक शस्त्रों का प्रयोग करते हुए अति भीषण भाव के साथ माताओं से युद्ध करने लगे।

पुनश्च वज्र-पातेन, क्षतमस्य शिरो यदा।
ववाह रक्तं पुरुषास्ततो, जाताः सहस्रशः॥४६॥

अर्थ—**इन्द्राणी** के पुनः वज्र मारने से जब उस **रक्त-बीज** का मस्तक घायल हुआ, तब उससे रक्त बहने लगा। उस रक्त से हजारों पुरुष उत्पन्न हो गए।

वैष्णवी समरे चैनं, चक्रेणाभि - जघान ह।
गदया ताडयामास, ऐन्द्री तमसुरेश्वरम्॥४७॥

अर्थ—**वैष्णवी** ने भी युद्ध में **चक्र** द्वारा इस **रक्त-वीज** को घायल किया। **इन्द्राणी** ने उस महान् असुर को **गदा** से मारा।

व्याख्या—**गदया**—किसी-किसी टीकाकार के अनुसार **इन्द्राणी** का अस्त्र '**गदा**' नहीं है। अतः यहाँ '**गदया**' शब्द का अर्थ है 'वचन द्वारा'। '**गदनं गदः पचाद्यच्, टाप्**' अर्थात् **इन्द्राणी** ने क्रूर वचनों द्वारा **रक्त-वीज का तिरस्कार** किया।

ऐन्द्री तम्—कुछ टीकाकारों ने इसे '**ऐन्द्रीतं**'-एक शब्द माना है और यह अर्थ किया है—'**ऐन्द्र्याः शक्तेः इतं पराङ्मुखं स्व-सम्मुखं प्राप्तं**' अर्थात् **ऐन्द्री** से युद्ध करने से लौटकर आया हुआ (ऐन्द्री+इतम्), इसे **वैष्णवी** ने **चक्र** द्वारा आहत और **गदा** द्वारा ताड़ित किया (**नागो जी**)।

वैष्णवी-चक्र-भिन्नस्य, रुधिर-स्राव-सम्भवैः।
सहस्रशो जगद्-व्याप्तं, तत्-प्रमाणैर्महाऽसुरैः॥४८॥

अर्थ—**वैष्णवी** के चक्र से विदीर्ण **रक्त-वीज** के रक्त-पात से उत्पन्न उसी के समान हजारों महान् असुरों से संसार भर गया।

शक्त्या जघान कौमारी, वाराही च तथाऽसिना।
माहेश्वरी त्रिशूलेन, रक्त-वीजं महाऽसुरम्॥४९॥

अर्थ—**कार्तिकेय** की शक्ति **कौमारी** ने **शक्ति-अस्त्र** से और **वराहावतार** की शक्ति **वाराही** ने **खड्ग** से तथा **महेश्वर** की शक्ति **माहेश्वरी** ने **त्रिशूल** से महान् असुर **रक्त-वीज** पर प्रहार किया।

व्याख्या—**वाराही देवी** का केवल मुख ही वराह के तुल्य समझना चाहिए, शेष सभी अङ्ग हाथ-पैर अन्य देव-देवियों के समान ही हैं। अतः युद्ध में उनके द्वारा **खड्ग** का प्रयोग करने के सम्बन्ध में कोई शङ्का नहीं करनी चाहिए (**शान्तनवी**)।

'**वाराही-अनुग्रहाष्टक**' स्तोत्र में **वाराही देवी** का रूप द्रष्टव्य है—

त्वामम्ब! तप्त-कनकोज्ज्वल-कान्तिमन्तर्ये चिन्तयन्ति युवती-तनुमागलान्ताम्।
चक्रायुध-त्रिनयनाम्बर-पोतृ-वक्त्रां, तेषां पादाम्बुज-युगां प्रणमन्ति देवाः॥

अर्थात् हे **माता वाराहि!** तुम तपे हुए सोने के समान उज्ज्वल कान्तिवाली हो। तुम नीचे से लेकर गले तक युवती-शरीर धारण करती हो। तुम **चक्र** नामक अस्त्र लिए हो, **तीन नेत्रवाली** हो, श्रेष्ठ **वराह-मुखी** हो। जो हृदय में तुम्हारे इस रूप का ध्यान करते हैं, उनके चरणों को देवता भी प्रणाम करते हैं।

स चापि गदया दैत्यः, सर्वा एवाहनत् पृथक्।
मातृः कोप-समाविष्टो, रक्त-वीजो महाऽसुरः॥५०॥

अर्थ—और वह दैत्य महान् असुर **रक्त-वीज** भी क्रोधित होकर **गदा** द्वारा सभी माताओं पर अलग-अलग आघात करने लगा।

व्याख्या—**दैत्यः महाऽसुरः**—'**दितेः अपत्यं दैत्यं। महान्तः असुराः यस्माद् इति न पौनरुक्त्यम्**'। दिति की सन्तान होने से **दैत्य** कहा है। जिससे बड़े-बड़े असुर उत्पन्न हुए, वह महान् '**असुर**'—इस प्रकार अर्थ करने से '**दैत्य**' और '**असुर**' के उल्लेख में पुनरुक्ति-दोष नहीं प्रतीत होता (**नागो जी**)।

सर्वा एवाहनत् पृथक्—इस कथन से **रक्त-वीज** की अति शीघ्र प्रहार करने की सामर्थ्य का ज्ञान होता है (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

तस्याहतस्य बहुधा, शक्ति-शूलादिभिर्भुवि।
पपात् यो वै रक्तौघस्तेनासञ्छतशोऽसुराः॥५१॥

अर्थ—**शक्ति, शूल** आदि अस्त्रों द्वारा बहुत प्रकार से घायल उस **रक्त-वीज** का जो रक्त-प्रवाह पृथ्वी पर गिरा, उससे सैकड़ों असुर उत्पन्न हो गए।

व्याख्या—**शक्ति-शूलादिभिः**—माताओं के अस्त्र—१ **ब्राह्मी**—शत्रु-हन्ता मन्त्र, २ **वैष्णवी**—चक्र, ३ **माहेश्वरी**—शूल, ४ **कौमारी**—शक्ति, ५ **ऐन्द्री**—वज्र (कुलिश), ६ **वाराही**—चक्र, मुख, नख, पञ्जर, ७ **शिव-दूती**—शूल, पिनाक (धनुष), ८ **काली**—शूल, चक्र (**शान्तनवी**)।

तैश्चासुरासृक्-सम्भूतैरसुरैः सकलं जगत्।
व्याप्तमासीत् ततो देवा, भयमाजग्मुरुत्तमम्॥५२॥

अर्थ—**रक्त-वीज** असुर के रक्त से उत्पन्न उन असुरों से सारा संसार भर गया। इससे देव-गण बड़े भय-भीत हुए।

व्याख्या—**देवी भागवत**, ५।२९ में इस प्रसङ्ग का विवरण पठनीय है—'देव-गण उस असंख्य **रक्त-वीज**-समूह को युद्ध करते देख भयभीत, विषण्ण और शोकार्त हो उठे। वे सोचने लगे कि इसके रक्त से उत्पन्न इन सहस्रों विशालकाय, महा-वीर दानवों से आज क्या हमारा विनाश हो जाएगा? यहाँ अकेली **अम्बिका**, **काली** और **वैष्णवी** आदि माताएँ भर हैं। इन असंख्य दानवों को जीतने का दायित्व केवल इन्हीं पर निर्भर करता है। बड़ा ही कष्टकर कार्य हो गया देखते हैं। इस पर यदि कहीं अचानक **शुम्भ-निशुम्भ** भी युद्ध-क्षेत्र में आ जाएँ, तो महान् अनर्थ हो जाएगा।'

चण्डिका द्वारा देवताओं को अभय-दान और काली को निर्देश

तान् विषण्णान् सुरान् दृष्ट्वा, चण्डिका प्राह सत्वरा।
उवाच कालीं चामुण्डे! विस्तीर्णं वदनं कुरु॥५३॥

अर्थ—उन देवताओं को व्याकुल देखकर **चण्डिका** ने शीघ्रता से आश्वासन दिया और **काली** से कहा कि 'हे **चामुण्डे**! तुम अपने मुख को फैलाओ।'

व्याख्या—**प्राह-सत्वरा**—(१) '**सत्वरा त्वरया सहिता चण्डिका सुरान् प्राह, यूयं मा विषीदत इति शेषः**' अर्थात् चण्डिका ने शीघ्रता से देवताओं से कहा कि 'तुम लोग व्याकुल मत हो'—यह वाक्य यहाँ छिपा है, यह समझने से अर्थ की सङ्गति बैठ जाती है (**नागो जी**)।

(२) कोई-कोई टीकाकार '**प्राहं-सत्वरा**' को एक ही समास-बद्ध पद मानकर यह अर्थ करते हैं कि—**प्रहन्यतेऽत्र इति प्राहः रणः, तत्र सत्वरा त्वरावती**'। '**प्राह**' शब्द का अर्थ है युद्ध। युद्ध के प्रति सत्वरा (शीघ्रतावाली) होकर (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

(३) **कोई-कोई** '**प्राहसत्त्वरा**' पाठ लेकर यह अर्थ करते हैं कि—'**चण्डिका प्राहसत् त्वरा उवाच कालीं**—' अर्थात् देवताओं को व्याकुल देखकर महा-शक्ति की सामर्थ्य के सम्बन्ध में उनकी अज्ञता पर **चण्डिका** हँसीं और शीघ्रता से **काली** से कहा (**दंशोद्धार टीका**)।

मच्छस्त्र-पात-सम्भूतान्, रक्त-बिन्दून् महाऽसुरान्।
रक्त-बिन्दोः प्रतीच्छ त्वं, वक्त्रेणानेन वेगिना॥५४॥

अर्थ—तुम तेजी से अपने इस फैले हुए मुख से मेरे शस्त्र की चोट से उत्पन्न रक्त-विन्दुओं को और रक्त-विन्दुओं से उत्पन्न असुरों को खाती जाओ।

व्याख्या—**रक्त-विन्दोः**—'**रक्त-विन्दूभ्यः**'। जाति के अर्थ में यहाँ एक-वचन का प्रयोग हुआ है (**नागो जी**)।

भक्षयन्ती चर रणे, तदुत्पन्नान् महाऽसुरान्।
एवमेष क्षयं दैत्यः, क्षीण-रक्तो गमिष्यति॥५५॥

अर्थ—उन रक्त-विन्दुओं से उत्पन्न महाऽसुरों को खाती हुई तुम युद्ध-क्षेत्र में घूमती रहो। इस प्रकार यह **रक्त-बीज** दैत्य रक्त से शून्य होकर विनष्ट हो जाएगा।

भक्ष्यमाणास्त्वया चोग्रा, न चोत्पत्स्यन्ति चापरे।
इत्युक्त्वा तां ततो देवी, शूलेनाभि-जघान तम्॥५६॥

अर्थ—तुम्हारे द्वारा खाए जाकर अन्य उग्र दैत्य और न उत्पन्न होंगे। **देवी चण्डिका** ने उन **काली** से ऐसा कहकर उस **रक्त-वीज** को **शूल** से मारा।

काली द्वारा रक्त-वीज के रक्त का पान

मुखेन काली जगृहे, रक्त-बीजस्य शोणितम्॥५७॥

अर्थ—तब **काली** (चामुण्डा) ने अपने मुख से **रक्त-वीज** के रक्त को ग्रहण कर लिया।

ततोऽसावाजघानाथ, गदया तत्र चण्डिकाम्।

न चास्या वेदना चक्रे, गदा-पातोऽल्पिकामपि॥५८॥

अर्थ—तदनन्तर उस **रक्त-वीज** ने भी वहाँ **गदा** से **चण्डिका** को मारा, किन्तु **गदा** की चोट ने इन **चण्डिका** को कुछ भी पीड़ा नहीं पहुँचाई।

तस्याहतस्य देहात् तु, बहु सुस्राव शोणितम्।

यतस्ततस्तद्-वक्त्रेण, चामुण्डा सम्प्रतीच्छति॥५९॥

अर्थ—उस घायल **रक्त-वीज** के शरीर से बहुत रक्त बहने लगा। **चामुण्डा** जहाँ-तहाँ मुख से उस रक्त को पीने लगीं।

व्याख्या—**यतः ततः**—(१) '**यतः यस्मिन् क्षणे ततः तस्मिन्नैव क्षणे**' अर्थात् जिस क्षण रक्त गिरता, उसी क्षण उसे पी जातीं (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

(२) '**यतः यस्मात् देह-प्रदेशात् ततः तस्मादेव देह-प्रदेशात्**' अर्थात् शरीर के जिस स्थान से रक्त बहता, **चामुण्डा** उसी स्थान से उसे पी जातीं।

मुखे समुद्गता येऽस्या, रक्त-पातान् महाऽसुराः।

तांश्च खादाथ चामुण्डा, पपौ तस्य च शोणितम्॥६०॥

अर्थ—इन **चामुण्डा** के मुख में रक्त गिरने से जो महाऽसुर उत्पन्न हुए, उन्हें **चामुण्डा** ने खा डाला। फिर उस **रक्त-वीज** के रक्त को भी पी डाला।

व्याख्या—पहले ८।४१ में कहा है कि **रक्त-वीज** के शरीर से रक्त की एक बूँद भूमि पर गिरते ही उसके समान दूसरा असुर उत्पन्न हो जाता, किन्तु यहाँ कहा है कि **चामुण्डा** के मुख में गिरे रक्त से असुर उत्पन्न हुए। इस बात की सङ्गति कैसे बैठे? इस सम्बन्ध में **टीकाकार विद्याविनोद** का कथन है कि 'मूल प्रकृति की अंश-भूता **चामुण्डा** में सभी कार्य-पदार्थों (क्षिति आदि पञ्च-भूत) की सूक्ष्म रूप में अवस्थिति होने से उनके मुख का पार्थिवत्व सिद्ध होता है (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

चण्डिका द्वारा रक्त-बीज का वध

देवी शूलेन वज्रेण, बाणैरसिभिर्ऋष्टिभिः।

जघान रक्त-बीजं तं, चामुण्डा-पीत-शोणितम्॥६१॥

अर्थ—**देवी चण्डिका** ने उस **रक्त-वीज** को, जिसका रक्त **चामुण्डा** ने पी डाला था, **शूल, वज्र, वाणों, खड्ग** की चोटों और **दुधारा ऋष्टि** द्वारा मार डाला।

व्याख्या—**असिभिः**-असि अर्थात् **खड्ग** की अनेक चोटों को सूचित करने के लिए बहु-वचन का प्रयोग हुआ है (**शान्तनवी**)।

स पपात मही-पृष्ठे, शस्त्र-सङ्घ-समाहतः।

नीरक्तश्च मही-पाल! रक्त-बीजो महाऽसुरः॥६२॥

अर्थ—हे **राजा सुरथ**! शस्त्रों के समूह द्वारा घायल और रक्त-हीन होकर वह महा-असुर **रक्त-बीज** पृथ्वी-तल पर गिर पड़ा।

ततस्ते हर्षमतुलमवापुस्त्रिदशा नृप!
तेषां मातृ-गणो जातो, ननर्तासृङ्-मदोद्धतः॥६३॥

अर्थ—हे **राजा सुरथ**! तब उन देवताओं ने अनुपम आनन्द प्राप्त किया। उनके शरीर से आविर्भूत **ब्रह्माणी** आदि माताएँ रक्त-पान से उन्मत्त हो नृत्य करने लगीं।

व्याख्या—**असृङ्-मदोद्धतः—(१) 'असृग्भिः यो मदः मत्तता, तेन उद्धतः सन्', (२) 'असृक् रक्त मद आसव इव, तेन उद्धतः सन्'** अर्थात् रक्त-पान से उत्पन्न मत्तता से उन्मत्त या रक्त-रूपी मद्य-पान से उन्मत्त (**तत्त्व-प्रकाशिका**)। इससे युद्धान्त में **मातृ-गण** के '**वीर-पान**' की सूचना मिलती है। '**वीर-पानं तु यत् पानं वृत्ते भाविनि वा रणे**' अर्थात् युद्ध-समाप्ति पर विजय पाने के श्रम को दूर करने के लिए या युद्ध के पूर्व देह और मन को उत्साह से उद्दीप्त करने के लिए वीरों द्वारा जो मद्य-पान किया जाता है, उसे '**वीर-पान**' कहते हैं।

मातृ-गण—ब्रह्माणी आदि माताओं की पूजा अति प्राचीन काल से होती आ रही है। **सप्त-मातृकाओं की मूर्तियाँ** एक ही प्रस्तर-खण्ड पर पास-पास खुदी हुई सारे भारत में मिली हैं। **एलोरा** के प्रसिद्ध **कैलाशनाथ-मन्दिर** में ऐसा ही एक प्रस्तर-खण्ड विद्यमान है। उसमें उत्कीर्ण **मातृकाओं** का क्रम यह है—**१ ब्रह्माणी, २ माहेश्वरी, ३ कौमारी, ४ वैष्णवी, ५ वाराही, ६ इन्द्राणी, ७ चामुण्डा**। इन **मातृकाओं** के एक ओर **वीर-भद्र** और दूसरी ओर **गणेश** की मूर्तियाँ उत्कीर्ण मिलती हैं। उक्त **मातृकाओं** में से **चामुण्डा, ब्रह्माणी, वाराही** और **इन्द्राणी**—इन **मातृकाओं** की अलग-अलग मूर्तियाँ भी पाई गई हैं।

आठवें अध्याय के पाठान्तर

श्लोक-संख्या	'विशुद्ध चण्डी' का पाठ	प्रचलित पाठ
२	क्षयितेष्वसुरेश्वरः	क्षपितेष्वसुरेश्वरः
४	चतुरशीति	१. चतुराशीतिः, २. चतुरशीतिः
५	कोटि-वीर्याणि	कोटि-संख्यानि
५	धौम्राणां	धूम्राणां
८	आयान्तं	आयातं
९	ततः सिंहो महा-नादमतीव	१. ततः सिंहो महा-नादान् २. स च सिंहो महा-नादम्
९	तन्नादं	१. तान् नादान्, २. तन्नादान्
९	अम्बिका चोप-वृंहयत्	अम्बिका चाप्यवृंहयत्
१०	नादापूरित-दिङ्-मुखा	शब्दा-पूरित-दिङ्-मुखा

श्लोक-संख्या	'विशुद्ध चण्डी' का पाठ	प्रचलित पाठ
१०	जिग्ये	जज्ञे
११	स-रोषैः	शरौघैः
१२	भवायामर-सिंहानाम्	भवायामर-सैन्यानाम्
१३	तथेन्द्रस्य च शक्तयः	तथैवन्द्रस्य शक्तयः
१५	हंस-युक्त-विमानाग्रे	हंस-युक्त-विमानस्था
१९	यज्ञ-वाराहमतुलं, रूपं या विभ्रती हरेः	जज्ञे-वाराहमतुलं, रूपं या विभ्रतो हरेः
२२	परिवृतस्ताभिरीशानो	परिवृता ताभिरीशाना
२२	चण्डिकाम्	चण्डिका
२३	भीषणा	पाशिनी
२८	दौत्येन	दूत्येन
२८	शिव-दूतीति	शिव-दूता
२९	यत्र	यतः
३०	ववर्षुः	ववृषुः
३१	सा च तान् प्रहितान्	सा च तत्प्रहितान्
३१	शूल-शक्ति-परश्वधान्	शूल-चक्र-परश्वधान्
३२	तस्याग्रतस्तथा	तस्यास्तथाग्रतः
३२	खट्वाङ्ग-पोथितांश्चारीन्	खट्वाङ्ग-पोथितांश्चान्या
३२	कुर्वती	कुर्वन्ती
३३	जलाक्षेप-हत-वीर्यान्	१. जलाक्षेपाद् हत-वीर्यान् २. जलक्षेप-हत-वीर्या
३५	पेतुर्विदारिताः पृथ्व्यां	पेतुर्विदारिता भूमे
३६	वाराह-मूर्त्या	वराह-मूर्त्या
३७	नादापूर्ण-दिगम्बरा	नादापूरिता-दिङ्-मुखा
३८	शिव-दूत्यभि-दूषिताः	शिव-दूत्याभि-दूषिताः
४१	मेदिन्यां तत्-प्रमाणस्तदाऽसुरः	मेदिन्यास्तत्-प्रमाणो महाऽसुरः
४३	बहु सुस्राव शोणितम्	तस्य सुस्राव शोणितम्
५३	प्राह सत्वरा	प्राह सत्तदा
५३	विस्तीर्णं वदनं	विस्तरं वदनं
५४	वक्त्रेणानेन वेगिना	१ वक्त्रेनानेन वेगिता, २. रक्त-वीजान् महाऽसुरान् ३. रक्त-विन्दून् प्रतीच्छत्वं ४. मच्छस्त्र-पात-सम्भूतान्
६३	तेषां मातृ-गणो जातो	हते मातृ-गणस्तस्मिन्

***

उत्तर या उत्तम चरितम्

नवमः अध्यायः

निशुम्भ-वध

मेधस ऋषि से राजा सुरथ का प्रश्न

॥ राजोवाच॥१॥

विचित्रमिदमाख्यातं, भगवन्! भवता मम।

देव्याश्चरित-माहात्म्यं, रक्त-वीज-बधाश्रितम्॥२॥

अर्थ—**राजा सुरथ** ने **मेधस मुनि** से कहा—हे भगवन्! आपने **रक्त-बीज-वध** के सम्बन्ध में **देवी चण्डिका** की यह अद्भुत चरित-महिमा मुझसे कही है।

व्याख्या—**भगवन्**—जो अतीत (भूत-काल की) और अनागत (भविष्य-काल की) बातों को जानता है, उसे '**भगवान्**' कहते हैं (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

चरित-माहात्म्यं—(१) '**चरितं कर्म, माहात्म्यं प्रभावः**' अर्थात् देवी के कर्म और उनका प्रभाव (**नागो जी**)।

(२) '**चरितं चेष्टितं तस्य माहात्म्यं औदार्यम्**' अर्थात् देवी के क्रिया-कलापों की महिमा (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

भूयश्चेच्छाम्यहं श्रोतुं, रक्त - बीजे निपातिते।

चकार शुम्भो यत् कर्म, निशुम्भश्चाति-कोपनः॥३॥

अर्थ—**रक्त-बीज** के मारे जाने पर अत्यन्त क्रुद्ध **शुम्भ** और **निशुम्भ** ने जो कार्य किए, उन्हें भी मैं सुनना चाहता हूँ।

ऋषिरुवाच ॥४॥

चकार कोपमतुलं, रक्त-बीजे निपातिते।

शुम्भासुरो निशुम्भश्च, हतेष्वन्येषु चाहवे॥५॥

अर्थ—**मेधस ऋषि** ने **राजा सुरथ** से कहा—युद्ध में **रक्त-वीज** के मरने पर और अन्य असुरों के मारे जाने पर **शुम्भ** और **निशुम्भ** असुरों ने अत्यन्त क्रोध किया।

हन्य-मानं महा-सैन्यं, विलोक्यामर्षमुद्-वहन्।
अभ्यधावन्निशुम्भोऽथ, मुख्ययाऽसुर-सेनया॥६॥

अर्थ—तब महती सेना को मारी गई देखकर **निशुम्भ** क्रोध करके प्रधान असुर-सेना के साथ **देवी** की ओर तेजी से चला।

तस्याग्रतस्तथा पृष्ठे, पार्श्वयोश्च महाऽसुराः।
सन्दष्टौष्ठ-पुटाः क्रुद्धा, हन्तुं देवीमुपाययुः॥७॥

अर्थ—उस **निशुम्भ** के सामने और पीछे तथा दोनों ओर विशाल-काय असुर-गण क्रुद्ध होकर नीचे के ओठ चबाते हुए **देवी** को मारने के लिए आए।

व्याख्या—**सन्दष्टौष्ठ-पुटाः**—(१) '**ओष्ठः पुट इव ओष्ठ-पुटः, सन्दष्टं ओष्ठ-पुटः यैः ते**'—'पुट'-शब्द से परस्पर-संयुक्त दो पात्रों का बोध होता है। यहाँ ओष्ठ-शब्द से नीचे और ऊपर के दोनों ओठों को समझना चाहिए (**शान्तनवी**)।

(२) '**सन्दष्टौ दन्ताः निष्पीड्यौ ओष्ठ-पुटौ, ओष्ठाधरौ यैः तादृशाः**' अर्थात् दाँतों से जिन्होंने अपने दोनों ओठों को दबा रखा है (**काशीनाथ**)।

आजगाम महा-वीर्यः, शुम्भोऽपि स्व-बलैर्वृतः।
निहन्तुं चण्डिकां कोपात्, कृत्वा युद्धं तु मातृभिः॥८॥

अर्थ—अति शक्ति-शाली **शुम्भासुर** भी अपनी सेनाओं से घिरकर **ब्रह्माणी** आदि माताओं से युद्ध कर **चण्डिका** को मारने के लिए क्रोध-पूर्वक आ गया।

ततो युद्धमतीवासीद्, देव्या शुम्भ-निशुम्भयोः।
शर-वर्षमतीवोग्रं, मेघयोरिव वर्षतोः॥९॥

अर्थ—तब दो बादलों के समान अत्यन्त तीव्र वाणों की वर्षा करते हुए **शुम्भ** और **निशुम्भ** का **देवी चण्डिका** के साथ घोर संग्राम होने लगा।

व्याख्या—**शुम्भ** और **निशुम्भ** की तुलना जल-वर्षा करनेवाले दो बादलों से की गई है। बादलों से जैसे धुआँधार जल-वर्षा होती है, उसी प्रकार ये दोनों असुर **देवी** पर लगातार वाण-वर्षा करने लगे।

चिच्छेदास्ताञ्छरांस्ताभ्यां, चण्डिका स्व-शरोत्करैः।
ताडयामास चाङ्गेषु, शस्त्रौघैरसुरेश्वरौ॥१०॥

अर्थ—**चण्डिका** ने अपने वाण-समूह द्वारा उन दोनों के फेंके हुए वाणों को छिन्न-भिन्न कर दिया और शस्त्रों के द्वारा दोनों असुर-राजाओं अर्थात् **शुम्भ** एवं **निशुम्भ** के सारे अङ्गों पर प्रहार किया।

चण्डिका के साथ निशुम्भ का युद्ध

निशुम्भो निशितं खड्गं, चर्म चादाय सुप्रभम्।
अताडयन् मूर्ध्नि सिंहं, देव्या वाहनमुत्तमम्॥११॥

अर्थ—**निशुम्भ** ने तेज धारवाला **खड्ग** और **उज्ज्वल ढाल** लेकर **देवी चण्डिका** के श्रेष्ठ **वाहन सिंह** के मस्तक पर आघात किया।

व्याख्या—**चर्म**—फलक, ढाल। शरीर को ढँकनेवाले शस्त्र को '**चर्म**' कहते हैं। लकड़ी और चमड़े के भेद से यह दो प्रकार की होती है। इसके गुण हैं—शरीर को ढँकने की शक्ति, लघुता, दृढ़ता और दुर्भेद्यता। इसके दोष हैं—स्वल्पता, गुरुता, मृदुता, सहज-भेद्यता और विरुद्ध-वर्णता। ब्राह्मणादि-भेद से '**चर्म**' क्रमश: श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण-वर्ण की ग्राह्य है। प्राय: वह बहु-रङ्गी होती है।

ताडिते वाहने देवी, क्षुरप्रेणासिमुत्तमम्।
निशुम्भस्याशु चिच्छेद, चर्म चाप्यष्ट-चन्द्रकम्॥१२॥

अर्थ—अपने **वाहन सिंह** पर चोट पड़ने पर **देवी चण्डिका** ने **खुरप्र** नामक वाण से **निशुम्भ** के श्रेष्ठ **खड्ग** और उसकी **ढाल** को, जो **आठ चन्द्राकार चिह्नों** से सुशोभित थी, तत्क्षण ही छिन्न-भिन्न कर डाला।

व्याख्या—**खुरप्रेण**—क्षुर (छुरे) की आकृतिवाला एक विशेष वाण, जिसे '**क्षुरप्र**' या '**खुरप्र**' कहते हैं।

अष्ट-चन्द्रकं—'**अष्टौ चन्द्राः चन्द्राकाराः मणि-मयाश्चन्द्रक-विशेषाः यत्र**' अर्थात् आठ चन्द्राकार मणियों से निशुम्भ की ढाल सुशोभित थी (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

छिन्ने चर्मणि खड्गे च, शक्तिं चिक्षेप सोऽसुरः।
तामप्यस्य द्विधा चक्रे, चक्रेणाभि-मुखागताम्॥१३॥

अर्थ—**ढाल** और **खड्ग** के छिन्न-भिन्न होने पर उस **असुर निशुम्भ** ने **शक्ति** नामक अस्त्र फेंका। सम्मुख आती हुई उस शक्ति के भी **देवी** ने **चक्र** द्वारा दो टुकड़े कर दिए।

कोपाध्मातो निशुम्भोऽथ, शूलं जग्राह दानवः।
आयातं मुष्टि-पातेन, देवी तच्चाप्यचूर्णयत्॥१४॥

अर्थ—तब क्रोध से जलते हुए **दानव निशुम्भ** ने **शूल** लिया। **देवी चण्डिका** ने आते हुए उस **शूल** को भी **मुट्ठी की चोट** से चूर-चूर कर दिया।

आविध्याथ गदां सोऽपि, चिक्षेप चण्डिकां प्रति।
साऽपि देव्या त्रिशूलेन, भिन्ना भस्मत्वमागता॥१५॥

अर्थ—अब उस **निशुम्भ** ने **गदा** को घुमाकर **चण्डिका** की ओर फेंका। वह **गदा** भी **देवी** के **त्रिशूल** द्वारा छिन्न-भिन्न होकर भस्म हो गई।

व्याख्या—**त्रिशूलेन**—अग्नि-गर्भ त्रिशूल द्वारा (**शान्तनवी**)। पुराणों में अग्नि छोड़नेवाले **त्रिशूल** का वर्णन मिलता है।

निशुम्भ की मूर्च्छा

ततः परशु-हस्तं तमायान्तं दैत्य-पुङ्गवम्।
आहत्य देवी वाणौघैरपातयत भू-तले॥१६॥

अर्थ—तब **देवी चण्डिका** ने अपनी ओर आते हुए कुठार-हस्त उस **दैत्य-श्रेष्ठ निशुम्भ** को बाणों के द्वारा घायल कर पृथ्वी पर गिरा दिया।

तस्मिन् निपतिते भूमौ, निशुम्भे भीम-विक्रमे।
भ्रातर्यतीव संक्रुद्धः, प्रययौ हन्तुमम्बिकाम्॥१७॥

अर्थ—उस भीषण पराक्रमी भाई **निशुम्भ** के पृथ्वी पर गिरने पर **शुम्भ** अत्यन्त क्रोधित होकर **अम्बिका** को मारने के लिए चल पड़ा।

स रथस्थस्तथाऽत्युच्चैर्गृहीत-परमायुधैः।
भुजैरष्टाभिरतुलैर्व्याप्याशेषं बभौ नभः॥१८॥

अर्थ—रथ पर बैठा हुआ वह **शुम्भ** अनुपम और अति दीर्घ आठ हाथों में महान् अस्त्रों को लिए हुए सारे आकाश को घेर कर शोभित हुआ।

चण्डिका से शुम्भ का युद्ध

तमायान्तं समालोक्य, देवी शङ्खमवादयत्।
ज्या-शब्दं चापि धनुषश्चकारातीव-दुःसहम्॥१९॥

अर्थ—**देवी चण्डिका** ने उस **शुम्भ** को आते हुए देखकर अपना **शङ्ख** बजाया और **धनुष** की डोरी का **अत्यन्त असहनीय टङ्कार-घोष** भी किया।

व्याख्या—**ज्या**—धनुष की डोरी, जिसे '**गुण**' भी कहते हैं। **धनुर्वेद** के अनुसार यह तीन प्रकार के पदार्थों से बनती है—१ सूत, २ स्नायु, ३ लता। '**सूत**' क्रमशः पट्ट, कौषेय व कपास तीन प्रकार का होता है। हरिण, महिष और गो के स्नायु क्रमशः मध्यम व अधम माने गए हैं। लता भी अर्क, मूर्वा व चीर—तीन प्रकार की होती है (देखें '**कोदण्ड-मण्डनं**', अध्याय ६)।

पूरयामास ककुभो, निज-घण्टा-स्वनेन च।
समस्त-दैत्य-सैन्यानां, तेजो-वध-विधायिना॥२०॥

अर्थ—**देवी** ने सारी असुर-सेनाओं के तेज को नष्ट करनेवाली अपने **घण्टे की ध्वनि** से सभी दिशाओं को भर दिया।

ततः सिंहो महा-नादैस्त्याजितेभ-महा-मदैः।
पूरयामास गगनं, गां तथैव दिशो दश॥२१॥

अर्थ—तब **देवी-वाहन सिंह** ने हाथियों के मद-स्राव को दूर करनेवाले भीषण गर्जन द्वारा आकाश, पृथ्वी और पास की दसो दिशाओं को भर दिया।

व्याख्या—**त्याजितेभ-महा-मदः**—देवी-वाहन सिंह की भीषण गर्जना को सुनकर असुर-पक्ष के मतवाले हाथी इतने भयभीत हुए कि उनकी कनपटी से मद का बहना अचानक बन्द हो गया।

उप-दिशः—(१) '**समीप-भूताः दश दिशः**' अर्थात् पास की दस दिशाएँ (**तत्त्व-प्रकाशिका**)। (२) **उप-दिक्-सहिता दिशः**' अर्थात् छः उप-दिशाओं सहित चार दिशाएँ—कुल दस दिशाएँ (**चतुर्धरी**)। (३) '**उप**' शब्द को '**पूरयामास**' क्रिया से जोड़ें, तो '**उप-पूरयामास**' शब्द बनता है। यहाँ '**उप**' शब्द अधिकता को सूचित करता है। पहले की **शङ्ख, ज्या** और **घण्टे की ध्वनि** की अपेक्षा **सिंह की गर्जना** अधिक प्रबल थी। उसके सामने पहले की ध्वनि दब गई, यह '**उप**'-शब्द से ध्वनित होता है (**शान्तनवी**)।

किसी-किसी टीकाकार ने यहाँ '**गां तथैव दिशो दश**'—यह पाठ स्वीकार किया है, जो सुगम है।

ततः काली समुत्पत्य, गगनं क्ष्मामताडयत्।
कराभ्यां तन्निनादेन, प्राक्-स्वनास्ते तिरोहिताः॥२२॥

अर्थ—तब **काली (चामुण्डा)** ने आकाश में छलाँग लगाकर दोनों हाथों से पृथ्वी पर चोट की। उस शब्द द्वारा वे पहले की ध्वनियाँ दब गईं।

व्याख्या—**काली** ने छलाँग लगाकर पृथ्वी पर आकर हाथों से भूमि में आघात कर जो घोर शब्द उत्पन्न किया, उसके आगे **शङ्ख, धनुष, घण्टा** और **सिंह की ध्वनियाँ** फीकी पड़ गईं।

किसी-किसी टीकाकार ने दूसरे प्रकार अन्वय किया है—'**काली समुत्पत्य गगनं क्ष्मां (च) कराभ्यामताडयत्**' अर्थात् **काली** ने उछल कर आकाश और पृथ्वी दोनों पर हाथों से आघात किया।

अट्टाट्ट - हासमशिवं, शिव - दूती चकार ह।
तैः शब्दैरसुरास्त्रेसुः, शुम्भः कोपं परं ययौ॥२३॥

अर्थ—**शिव-दूती** ने **अमङ्गल-सूचक अति ऊँचा हास्य** किया। इन सब शब्दों के द्वारा असुर लोग भयभीत हो उठे और **शुम्भ** को अत्यन्त क्रोध हुआ।

व्याख्या—**अट्टाट्ट-हासं**—अट्ट + अट्टहांस। पाठान्तर है—**अट्टाट्ट-हासं**।

दुरात्मंस्तिष्ठ तिष्ठेति, व्याजहाराम्बिका यदा।
तदा जयेत्यभिहितं, देवैराकाश-संस्थितैः॥२४॥

अर्थ—'हे **पापात्मा शुम्भ**! ठहरो, ठहरो'—इस प्रकार जब **चण्डिका देवी** ने कहा, तब आकाश में स्थित देवता '**जय जय**' कह उठे।

शुम्भेनागत्य या शक्तिर्मुक्ता ज्वालाति-भीषणा।
आयान्ती वह्नि-कूटाभा, सा निरस्ता महोल्कया॥२५॥

अर्थ—**शुम्भ** ने आकर **अग्नि-शिखा** द्वारा अति भयङ्करी जो शक्ति फेंकी, अग्नि-राशि के समान प्रकाशवाली वह **देवी** के **महोल्का** नामक अस्त्र से नष्ट हो गई।

सिंह-नादेन शुम्भस्य, व्याप्तं लोक-त्रयान्तरम्।
निर्घात-निःस्वनो घोरो, जितवानवनी-पते॥२६॥

अर्थ—हे राजन्, **सुरथ**! **शुम्भासुर** के **सिंह-नाद** से तीन लोकों के मध्य स्थान भर गए। प्रचण्ड आकस्मिक उत्पातों की ध्वनि से वह **सिंह-नाद** दब गया।

व्याख्या—**लोक-त्रयान्तरं**—भूः, भुवः और स्वः—इन तीन लोकों का मध्य-स्थल अर्थात् भुवर्लोक (**चतुर्धरी**)।

निर्घात-निःस्वनः—(१) **शुम्भ** द्वारा फेंकी **वह्नि-कूटाभा-शक्ति** से **देवी की महोल्का-शक्ति** के टकराने से उत्पन्न प्रचण्ड शब्द (**गुप्तवती**), (२) उत्पातों की ध्वनि (**नागो जी**), (३) मेघ-हीन आकाश में भीषण वज्र-ध्वनि, यह पापात्मा असुर का अमङ्गल-सूचक महोत्पात था (**शान्तनवी**)। '**शब्द-माला**' में कहा है—

वायुनाभिहते वायौ, गगनाच्च पतत्यधः।
प्रचण्ड-घोर-निर्घोषो, निर्घात इति कथ्यते॥

अर्थात् वायु द्वारा वायु के ताड़ित होने पर आकाश से पृथ्वी पर गिरनेवाला प्रचण्ड गर्जन शब्द '**निर्घात**' कहलाता है। **ज्योतिष** के अनुसार '**निर्घात**' सुनाई पड़ने पर कोई मङ्गल-कार्य नहीं करना चाहिए।

शुम्भ-मुक्ताञ्छरान् देवी, शुम्भस्तत् प्रहिताञ्छरान्।
चिच्छेद स्व-शरैरुग्रैः, शतशोऽथ सहस्रशः॥२७॥

अर्थ—**देवी चण्डिका** ने **शुम्भ** द्वारा फेंके सैकड़ों और सहस्रों वाणों को और **शुम्भ** ने **देवी** द्वारा फेंके सैकड़ों-सहस्रों वाणों को अपने-अपने तीक्ष्ण वाणों द्वारा काट डाला।

व्याख्या—इससे **देवी** और **शुम्भासुर** के समान-युद्ध की सूचना मिलती है (**नागो जी**)।

शुम्भासुर की मूर्च्छा

ततः सा चण्डिका क्रुद्धा, शूलेनाभि-जघान तम्।
स तथाऽभिहतो भूमौ, मूर्छितो निपपात ह॥२८॥

अर्थ—तब उन **चण्डिका देवी** ने कुपिता होकर उस **शुम्भ** को **शूल** द्वारा भीषण रूप से मारा, जिससे वह घायल हो मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

निशुम्भ का सचेत होकर देवी से पुनः युद्ध करना

ततो निशुम्भः सम्प्राप्य, चेतनामात्त-कार्मुकः।
आजघान शरैर्देवीं, कालीं केशरिणं तथा॥२९॥

अर्थ—तब **निशुम्भ** ने संज्ञा-लाभ कर धनुष लेकर वाणों से **देवी चण्डिका**, **चामुण्डा काली** और **वाहन सिंह** पर प्रहार किया।

व्याख्या—**कार्मुक—कृमुक + अण्**, कृमुक की लकड़ी से बना **धनुष**। **धनुर्वेद** के अनुसार **धनुष** लोहा, शृङ्ग या लकड़ी से तीन प्रकार के बनते हैं। **अग्नि-पुराण** (२४५।८-११) में लिखा है कि लोहा या शृङ्ग से अलग-अलग या दोनों से **धनुष** बनाए। शृङ्ग से बने **धनुष** को स्वर्ण-विन्दुओं से सजाए। टेढ़ा-मेढ़ा, सिकुड़ा हुआ और छिद्र-युक्त **धनुष** अच्छा नहीं होता। स्वर्ण, रौप्य, ताम्र या लोहे से; महिष, शरभ या मृग की सींग से या चन्दन, बेत, साल, बबुल या ककुभ की लकड़ी से या शरत्-काल में संगृहीत बाँस से जो **धनुष** बनता है, वह उत्तम होता है।

पुनश्च कृत्वा बाहूनामयुतं दनुजेश्वरः।
चक्रायुधेन दितिजश्छादयामास चण्डिकाम्॥३०॥

अर्थ—फिर **दिति-पुत्र दानव-राज निशुम्भ** ने **दस सहस्र भुजाएँ** धारण कर **चक्र** नामक अस्त्र से **चण्डिका देवी** को ढँक दिया।

व्याख्या—**दितिजः दनुजेश्वर—निशुम्भ दनु का पुत्र** था। फिर भी **दिति** की सन्तान दैत्यों के समान ही उसका शील-स्वभाव था। इसी से उसे '**दितिज**' कहा है (**नागो जी**)। '**मार्कण्डेय पुराण**' (अध्याय १०४) के अनुसार **कश्यप ऋषि** ने **दक्ष की १३ कन्याओं** से विवाह किया था, जिनसे **१३ विभिन्न जातियाँ** उत्पन्न हुईं—१ अदिति से **देव-जाति**, २ दिति से **दैत्य**, ३ दनु से **दानव**, ४ विनता से **गरुड़** व **अरुण**, ५ खगा से **यक्ष** व **राक्षस**, ६ कद्रु से **नाग**, ७ मुनि से **गन्धर्व**, ८ क्रोधा से **कुल्य**, ९ अरिष्टा से **अप्सरा**, १० इरा से **ऐरावतादि मातङ्ग**, ११ ताम्रा से **श्रेणी** आदि **कन्याएँ** (**भागवत** के अनुसार **श्येन, गृद्ध** आदि), १२ इला से **पादप (वृक्ष)** और १३ प्रधा से **पतङ्ग-जाति**।

चक्रायुधेन—(१) '**चक्रमेव आयुधं अस्त्रं तेन**' अर्थात् चक्र नामक अस्त्र द्वारा (**सिद्धान्त-वागीश**), (२) '**चक्राणि च आयुधानि वाणाश्च तत् चक्रायुधं तेन**' अर्थात् चक्रों और वाणों द्वारा (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

ततो भगवती क्रुद्धा, दुर्गा दुर्गार्ति-नाशिनी।
चिच्छेद तानि चक्राणि, स्व-शरैः सायकांश्च तान्॥३१॥

अर्थ—तब सङ्कट और क्लेश-नाशिनी **भगवती दुर्गा (चण्डिका देवी)** ने कुपिता होकर अपने वाणों द्वारा **निशुम्भ** के फेंके उन **चक्रों** और **वाणों** को छिन्न-भिन्न कर दिया।

व्याख्या—**दुर्गार्त्ति-नाशिनी**—'**दुर्गः सङ्कटं आर्त्तिः पीड़ा, यद्वा दुर्गे सङ्कटे या आर्त्तिः, तां नाशयति**' अर्थात् दुर्ग = सङ्कट, आर्त्ति = पीड़ा। या कठिन सङ्कट में जो पीड़ा होती है, उसे नष्ट करती है (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

दुर्गा—'**देवी भागवत**', ९।५०।५३-५६ में लिखा है कि जिसे केवल स्मरण करने से सारी विपत्तियाँ और भय दूर हो जाते हैं, वे **दुर्गा** सभी की उपास्या हैं। ये **अन्तर्यामिनी देवी** बुद्धि की अधिष्ठात्री देवता हैं। दुर्गम सङ्कट का नाश करने से इनका नाम '**दुर्गा**' है। इनके सम्बन्ध में विशेष जानने हेतु '**श्रीदुर्गा-कल्पतरु**' द्रष्टव्य है।

ततो निशुम्भो वेगेन, गदामादाय चण्डिकाम्।
अभ्यधावत वै हन्तुं, दैत्य-सेना-समावृतः॥३२॥

अर्थ—तब **निशुम्भ** दैत्य-सेना से घिर कर गदा लेकर **चण्डिका** को मारने के लिए तेजी से आगे-आगे बढ़ा।

तस्यापतत एवाशु, गदां चिच्छेद चण्डिका।
खड्गेन शित-धारेण, स च शूलं समाददे॥३३॥

अर्थ—**चण्डिका** ने उसके आते ही उसकी **गदा** को तीक्ष्ण धारवाले **खड्ग** द्वारा छिन्न-भिन्न कर दिया और **निशुम्भ** ने भी **शूल** ले लिया।

व्याख्या—**गदा**—'**वायु-पुराण**' के अनुसार '**गद**' नामक एक भयङ्कर असुर की हड्डी वज्र से भी अधिक कठिन थी। उसी की हड्डी से **विष्णु की गदा** बनी थी। **स्वायम्भुव मन्वन्तर** में **हेतिरक्ष नामक असुर** ब्रह्मा से वर पाकर अजेय हो गया था। उसका विनाश **विष्णु** ने अपनी उसी **गदा** से किया। तभी से उनका नाम '**गदाधर**' पड़ गया।

'**धनुर्वेद**' के अनुसार **गदा-युद्ध** बड़ा कठिन होता है। उसके लिए विशेष बल और विविध प्रकार की गति का शिक्षण आवश्यक है। यह लोहे की बनी होती है।

चण्डिका द्वारा निशुम्भ का वध

शूल-हस्तं समायान्तं, निशुम्भममरार्दनम्।
हृदि विव्याध शूलेन, वेगाविद्धेन चण्डिका॥३४॥

अर्थ—**चण्डिका** ने हाथ में **शूल** लिए आनेवाले **देव-पीड़क निशुम्भ** के हृदय को तेजी से फेंके हुए **शूल** द्वारा बेध दिया।

भिन्नस्य तस्य शूलेन, हृदयान्निःसृतोऽपरः।
महा-बलो महा-वीर्यस्तिष्ठेति पुरुषो वदन्॥३५॥

अर्थ—**शूल** द्वारा विदीर्ण उस **निशुम्भ** के हृदय से एक दूसरा महा-शक्ति-शाली और अति-वीर्य-सम्पन्न असुर '**ठहरो, ठहरो**' कहता हुआ बाहर निकला।

तस्य निष्क्रामतो देवी, प्रहस्य स्वनवत् ततः।
शिरश्चिच्छेद खड्गेन, ततोऽसावपतद् भुवि॥३६॥

अर्थ—फिर **देवी चण्डिका** ने शब्द-सहित ऊँचे स्वर से हँसकर उस निकलते हुए असुर का सिर **खड्ग** द्वारा काट डाला। तब वह **निशुम्भ** पृथ्वी पर गिर पड़ा।

व्याख्या—**प्रहस्य**—'**सारी माया मुझसे ही उत्पन्न हुई है, मेरी ही माया का सहारा लेकर मुझे ही मारना चाहता है**'—यह सोचकर देवी हँसीं (**शान्तनवी**)।

मातृ-गण और सिंह द्वारा असुर-सेना का नाश

ततः सिंहश्चखादोग्रं, दंष्ट्रा क्षुण्ण-शिरोधरान्।
असुरांस्तांस्तथा काली, शिव-दूती तथाऽपरान्॥३७॥

अर्थ—तब **देवी-वाहन सिंह** तीखे दाँतों से असुरों की गरदनों को छिन्न-भिन्न करता हुआ उन्हें खाने लगा। उसी प्रकार **चामुण्डा काली** और **शिव-दूती** अन्य असुरों का भक्षण करने लगीं।

कौमारी-शक्ति-निर्भिन्नाः, केचिन्नेशुर्महाऽसुराः।
ब्रह्माणी-मन्त्र-पूतेन, तोयेनान्ये निराकृताः॥३८॥

अर्थ—कोई महा-असुर **कौमारी की शक्ति** द्वारा विदीर्ण होकर नष्ट हो गए। दूसरे **ब्रह्माणी** के मन्त्र द्वारा पवित्र जल द्वारा विनाश को प्राप्त हुए।

व्याख्या—**मन्त्र**—गुप्त रूप से उच्चार्य, वर्ण-मय, **निगमागम-शास्त्र** से गुप्त उपदेश द्वारा प्राप्य, प्रणवादि मन्त्र (**शान्तनवी**)। कहा है कि—'**मननात् त्रायते यस्मात् तस्मान्मन्त्रः प्रकीर्तितः**' अर्थात् मनन मात्र से रक्षा करता है, इसी से '**मन्त्र**' नाम पड़ा है।

माहेश्वरी-त्रिशूलेन, भिन्नाः पेतुस्तथाऽपरे।
वाराही-तुण्ड-घातेन, केचिच्चूर्णी-कृता भुवि॥३९॥

अर्थ—उसी प्रकार अन्य असुर **माहेश्वरी** के **त्रिशूल** द्वारा छिन्न-भिन्न होकर और कुछ असुर **वाराही** के मुख की चोट से विदीर्ण होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

खण्डं खण्डं च चक्रेण, वैष्णव्या दानवाः कृताः।
वज्रेण चैन्द्री-हस्ताग्र-विमुक्तेन तथाऽपरे॥४०॥

अर्थ—दानव-गण **वैष्णवी** के **चक्र** द्वारा और अन्य असुर **ऐन्द्री** के हाथ से फेंके गए **वज्र** द्वारा टुकड़े-टुकड़े कर दिये गए।

केचिद् विनेशुरसुराः, केचिन्नष्टा महाऽऽहवात्।
भक्षिताश्चापरे काली, शिव-दूती-मृगाधिपैः॥४१॥

अर्थ—कोई असुर मारे गए, कोई महा-युद्ध से भाग गए और दूसरे असुर **काली, शिव-दूती** तथा **सिंह** द्वारा खा डाले गए।

नवें अध्याय के पाठान्तर

श्लोक-संख्या	'विशुद्ध चण्डी' का पाठ	प्रचलित पाठ
६	मुद्वहन्	मुदवमन्
१२	क्षुरप्रेण	खुरप्रेण
१५	आविध्याथ गदां	आविव्याध गदां
१७	प्रययौ हन्तुमम्बिकाम्	प्रययौ योद्धुमम्बिकाम्
२१	गां तथैव दिशौ दश	गां तपोपदिशो दश
३०	चक्रायुधेन	चक्रायुतेन
३७	क्षुण्ण-शिरोधरान्	क्षुण्ण-महीतलान्
४०	खण्डं खण्डं च	खण्ड खण्डश्च

***

उत्तर या उत्तम चरितम्

दशमः अध्यायः

शुम्भ-वध

॥ ऋषिरुवाच ॥१॥

निशुम्भं निहतं दृष्ट्वा, भ्रातरं प्राण-सम्मितम्।
हन्य-मानं बलं चैव, शुम्भः क्रुद्धोऽब्रवीद् वचः॥२॥

अर्थ—**ऋषि मेधस** ने **महाराज सुरथ** से कहा—प्राणों के समान भाई **निशुम्भ** को मारा गया और सेनाओं को विनष्ट होती देखकर **शुम्भ** ने कुपित होकर कहा—

चण्डिका से शुम्भ का कथन

बलावलेपाद् दुष्टे! त्वं, मा दुर्गे! गर्वमावह।
अन्यासां बलमाश्रित्य, युद्धयसे याति-मानिनी॥३॥

अर्थ—बल के गर्व से दुष्टा **हे दुर्गे!** तुम घमण्ड मत करो क्योंकि गर्विता होती हुई भी तुम दूसरों की शक्ति का सहारा लेकर युद्ध करती हो।

व्याख्या—**बलावलेपाद् दुष्टे**—(१) '**बलेन यः अवलेपः गर्वः तेन दुष्टे दुर्विनीते हे बल-गर्वे दुर्विनीते**' अर्थात् बल के कारण जो गर्व होता है, उसके कारण धृष्ट होना (**नागोजी**)। (२) '**बलः मातृ-गणः तस्माद् अवलेपः गर्वः तेन दुष्टे उद्धते**' अर्थात् 'बल' से मातृ-गण का बोध होता है। उनकी शक्ति के कारण गर्व होकर देवी उद्धता हुईं (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

अन्यासां बलमाश्रित्य युध्यसे—**शुम्भासुर** का आशय यह है कि **देवी** ने पहले गर्व-पूर्वक घोषणा की थी कि '**जो मुझे संग्राम में जीतेगा**' (५।१२०) इत्यादि, किन्तु वास्तव में अन्य शक्तियों के सहारे **देवी** ने युद्ध किया है। **काली** ने **चण्ड-मुण्ड** को मारा, **रक्त-बीज** का रक्त-पान भी **काली** ने ही किया। **ब्रह्माणी** आदि **देव-शक्तियों** की सहायता से **निशुम्भ** को मारा गया। इस प्रकार **देवी** ने अपने संग्राम की प्रतिज्ञा का उल्लङ्घन किया।

शुम्भ की सारी सेनाएँ नष्ट हो गईं। सभी सेनापति और भाई **निशुम्भ** मार डाले गए। युद्ध-क्षेत्र में **शुम्भासुर** अब अकेला है, किन्तु **देवी चण्डिका** की कुछ भी क्षति नहीं हुई है। **देवी-**

गणों के साथ वे पूर्ण-शक्ति-सम्पन्ना हैं। **शुम्भ** इसी से क्षुब्ध होकर **देवी** को उलाहना देता है कि '**हे दुर्गे!** तुम दूसरों के सहारे युद्ध करती हो। अतः तुम्हें गर्व नहीं करना चाहिए।'

चण्डिका का उत्तर—देवी एका अद्वितीया

॥ देव्युवाच ॥४॥

एकैवाऽहं जगत्यत्र, द्वितीया का ममापरा।

पश्यैता दुष्ट! मय्येव, विशन्त्यो मद्-विभूतयः॥५॥

अर्थ—**देवी चण्डिका** ने **शुम्भासुर** से कहा—इस संसार में मैं एक ही हूँ। मुझसे भिन्न अन्य दूसरा कौन है? हे **दुर्बुद्धि शुम्भ**! ये सारी मेरी विभूतियाँ मुझमें ही प्रवेश करती हैं। देखो।

व्याख्या—**एकैवाहं**—श्रुति में कहा है—'**एकमेवाद्वितीयं**' (**छान्दोग्य उपनिषद्**, ६।२।१, २)। **ब्रह्म** एक और अद्वितीय है। इससे ज्ञात होता है कि **ब्रह्म** में **सजातीय**, **विजातीय** व **स्वगत** इन **तीन भेदों में से एक भी भेद नहीं** है। वृक्ष और मनुष्य भिन्न जाति के हैं, उनकी परस्पर-भिन्नता को '**विजातीय भेद**' कहते हैं। आम और नारियल के वृक्षों में '**सजातीय भेद**' है और वृक्ष के फल, फूल, शाखा या पत्तों जैसे विभिन्न भागों में '**स्वगत भेद**' द्रष्टव्य है।

इस संसार की समस्त वस्तुओं में ये **तीनों भेद** पाए जाते हैं। केवल '**ब्रह्म**' ही एक-मात्र विलक्षण तत्त्व है, जिसमें उक्त **कोई भेद नहीं** है। **ब्रह्म-स्वरूपिणी आद्या शक्ति भगवती चण्डिका त्रिविध भेदों से रहिता, एका, अद्वितीया** हैं।

द्वितीया का ममापरा—'**मैं परमात्मा-स्वरूपिणी हूँ, अतः मेरी सहायिका दूसरी कौन शक्ति है? कोई नहीं**', यही तात्पर्य है (**नागो जी**)।

श्रुति में कहा है, '**न तु तद्-द्वितीयमस्ति**' (**वृहदारण्यक उपनिषद्**, ४।३।२३), '**नेह नानास्ति किञ्चन**' (**कठोपनिषत्**, ४।११)। **श्रीभगवती गीता**, ३।१७-१९ में भी **भगवती** ने **हिमालय** को इस सम्बन्ध में समझाया है कि '**इस चराचर में मेरे सिवा अन्य किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं है। ब्रह्म-रूपिणी एक-मात्र मैं ही ईश्वरादि विविध रूपों में प्रतीत होती हूँ।**'

मय्येव विशन्त्यो मद्-विभूतयः—इस कथन से भेद का निराकरण हो जाता है। अनुभव में आनेवाला भेद वास्तविक नहीं है (**नागो जी**)।

'**शान्तनवी टीका**' में **देवी का कथन** दूसरे शब्दों में उद्धृत है—

जगतो नाहमन्या स्यात्, स्यान्मदन्यज्जगच्च न।

जगतो मम चाप्यैक्याद्, व्यक्तिरन्या ततोऽस्ति का॥

अहं च जगती चैका, जगती मन्मयी मतः।

दुग्ध-वद् दधि चाप्येकं, दधि दुग्ध-मयं यतः॥

अर्थात् मैं जगत् से अलग नहीं हूँ और जगत् भी मुझसे अलग नहीं है। मेरे और जगत् के बीच अभिन्नता होने का कारण मेरे सिवा अन्य क्या है? जिस प्रकार दही दूध-मय है और दूध ही दही-रूप में बदलता है, उसी प्रकार **एक-मात्र मैं ही जगन्मयी हूँ** और **जगत् भी मन्मय** है।

'**गीता**', १०।७ की टीकाओं से '**विभूति**'-शब्द के तीन अर्थ ज्ञात होते हैं—१ विस्तार (**शङ्कर**), २ विविध प्रकार का होना—**विविधा भूतिः भवनं, वैभव-सर्वात्मकता (आनन्दगिरि)**, ३ ऐश्वर्य (**रामानुज**)।

'**विभूति**' आश्रय या अधिष्ठान की सत्ता के बिना अलग सत्ता रखनेवाली कोई विशेष वस्तु नहीं है। **ब्रह्म-रूपिणी चण्डिका** की विभूतियाँ उन्हीं की लीला-विलास मात्र हैं। उनका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। **आसुरी बुद्धि** के कारण **शुम्भ** इस **सूक्ष्म तत्त्व** को समझने में असमर्थ था। इसी से **देवी** ने प्रत्यक्ष रूप से उसे दिखाया कि **ब्रह्माणी** आदि शक्तियाँ एक-एक कर उनकी देह में लीन हो गईं। '**मुण्डकोपनिषद्**', १।१।७ में—'**यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च**' अर्थात् मकड़ा जैसे स्वयं ही सूत्र उत्पन्न करता है और उसे खा जाता है, उसी प्रकार **आद्या शक्ति चण्डिका** इच्छा मात्र से अपनी सत्ता से विभूतियों की सृष्टि करती हैं और इच्छा करते ही उन्हें अपने में लय कर लेती हैं।

चण्डिका के शरीर में मातृ-गण का लीन होना

॥ ऋषिरुवाच ॥६॥

ततः समस्तास्ता देव्यो, ब्रह्माणी-प्रमुखा लयम्।
तस्या देव्यास्तनौ जग्मुरेकैवासीत् तदाऽम्बिका॥७॥

अर्थ—तब **ब्रह्माणी** आदि वे सारी देवियाँ उन **देवी चण्डिका** के शरीर में लीन हो गईं। तब **अम्बिका चण्डी** अकेली ही रह गईं।

व्याख्या—**लयं जग्मुः**—ब्रह्मादि से उत्पन्न होने पर भी **मातृ-गण** के **चण्डिका** में लय होने के वर्णन से यह स्पष्ट है कि **भगवती चण्डिका** ही सबकी उपादान-स्वरूपा हैं। **मातृ-गण** मूल-शक्ति से अभिन्न हैं, यह इस प्रकार बताया गया है (**नागो जी**)।

अम्बिका—'**अम्बा एवं अम्बिका, जगन्माता।**' 'सौभाग्य-भास्कर' में **श्री भास्कर राय** ने (**ललिता-सहस्रनाम-भाष्य**) में स्पष्ट किया है—'**इच्छा-ज्ञान-क्रिया-शक्तीनां समष्टिः अम्बिका इत्युच्यते।**' अर्थात् **इच्छा-शक्ति, ज्ञान-शक्ति** और **क्रिया-शक्ति**—इन तीनों की समष्टि-रूपिणी आद्या शक्ति को '**अम्बिका**' कहते हैं।

॥ देव्युवाच ॥८॥

अहं विभूत्या बहुभिरिह रूपैर्यदास्थिता।
तत्-संहृतं मयैकैव, तिष्ठाम्याजौ स्थिरो भव॥९॥

अर्थ—**देवी चण्डिका** ने **शुम्भ** से कहा—'मैं अपने वैभव द्वारा इस युद्ध-क्षेत्र में जिन अनेक स्वरूपों से विद्यमान थी, उन्हें मैंने वापस ले लिया है। अब मैं अकेली ही खड़ी हूँ, तुम युद्ध में स्थिर हो जाओ।

व्याख्या—**अहं विभूत्या...आस्थिता**—'सौभाग्य-भास्कर' में **श्रीभास्कर राय** लिखते हैं, '**भक्तानु-जिघृक्षया तत्तद्-वासनानुसारेण कार्य-भेदेन च गृहीतानां रूपाणां अनन्तत्वात्।**'

अर्थात् **ब्रह्म-रूपिणी आद्या शक्ति** अद्वितीया होती हुई भी भक्तों पर कृपा करने के लिए उनकी विविध भावनाओं एवं कामनाओं के अनुसार असंख्य रूप धारण करती हैं।

'**सुप्रभेद तन्त्र**' में कहा है—'**यतीनां मन्त्रिणां चैव ज्ञानिनां योगिनां तथा, ध्यान-पूजा-निमित्तं हि तनुर्गृह्णाति मायया।**' अर्थात् यतियों, मन्त्र-साधकों, ज्ञानियों और योगियों के ध्यान तथा पूजन के लिए **भगवती** अपनी माया द्वारा अनेक प्रकार के शरीर ग्रहण करती हैं।

'**कालिका पुराण**' भी कहता है—'**मायैका भिन्न-रूपेण कमलाख्या सरस्वती, सावित्री सा च सन्ध्या च भूता कार्यस्य भेदतः।**' अर्थात् एक-मात्र **महा-माया** ही कार्य-भेद से **कमला, सरस्वती, सावित्री, सन्ध्या** आदि भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होती हैं।

चण्डिका से शुम्भासुर का युद्ध

॥ ऋषिरुवाच ॥१०॥

ततः प्रववृते युद्धं, देव्याः शुम्भस्य चोभयोः।
पश्यतां सर्व-देवानामसुराणां च दारुणम्॥११॥

अर्थ—**ऋषि मेधस** ने **महाराज सुरथ** से कहा—तब सभी देवों के देखते-देखते असुर-गण के सामने **देवी चण्डिका** तथा **शुम्भ**—दोनों का भीषण संग्राम होने लगा।

व्याख्या—**दारुणम्**—**शुम्भ** जीते, तो देवों को भय, **देवी** जीतें, तो असुरों को भय, इस प्रकार दोनों पक्षों को भय-दायक होने से इस युद्ध को '**दारुण**' कहा है (**शान्तनवी**)।

शर-वर्षैः शितैः शस्त्रैस्तथास्त्रैश्चैव दारुणैः।
तयोर्युद्धमभूद् भूयः, सर्व-लोक-भयङ्करम्॥१२॥

अर्थ—वाणों की वर्षा से, तेज धारवाले खड्गादि शस्त्रों से और शंक्ति आदि भीषण अस्त्रों से उन दोनों का समस्त विश्व को डरानेवाला संग्राम पुनः होने लगा।

दिव्यान्यस्त्राणि शतशो, मुमुचे यान्यथाऽम्बिका।
बभञ्ज तानि दैत्येन्द्रस्तत्-प्रतीघात-कर्तृभिः॥१३॥

अर्थ—तब **अम्बिका चण्डी देवी** ने जो सैकड़ों दिव्य अस्त्र छोड़े, उन सबके निवारण करनेवाले अस्त्रों द्वारा **दैत्यराज शुम्भ** ने उन्हें छिन्न-भिन्न कर डाला।

व्याख्या—**दिव्यानि अस्त्राणि**—मन्त्र-पूत, दैवी शक्ति से युक्त, अलौकिक आग्नेयादि अस्त्रों का समूह।

तत्-प्रतीघात-कर्तृभिः—'**तेषां दिव्यास्त्राणां प्रतीघातः निराकरणं तत्-कारिभिः प्रत्यस्त्रैः**' (**तत्त्व-प्रकाशिका**)। आग्नेयास्त्र को वारुणास्त्र से, वारुणास्त्र को वायव्यास्त्र से, वायव्यास्त्र को पन्नगास्त्र से, पन्नगास्त्र को गरुड़ास्त्र से शान्त किया जाता है। इन सबको एक-दूसरे का '**प्रत्यस्त्र**' कहा जाता है (**शान्तनवी**)।

मुक्तानि तेन चास्त्राणि, दिव्यानि परमेश्वरी।
बभञ्ज लीलयैवोग्र-हुङ्कारोच्चारणादिभिः॥१४॥

अर्थ—और **शुम्भ** द्वारा फेंके दिव्य अस्त्रों को **परमेश्वरी** (समस्त प्राणियों का नियन्त्रण करनेवाली) **चण्डिका देवी** ने अपने **भीषण हुङ्कार की ध्वनि आदि** के द्वारा अनायास ही तोड़-फोड़ डाला।

व्याख्या—**उग्र-हुङ्कारोच्चारणादिभिः**—उत्कट क्रोध-युक्त शब्द के उच्चारण आदि से। **'आदि'**-शब्द से क्रोध-पूर्ण दृष्टि के अवलोकन आदि का बोध होता है **(तत्त्व-प्रकाशिका)**।

ततः शर-शतैर्देवीमाच्छादयत सोऽसुरः।
साऽपि तत्-कुपिता देवी, धनुश्चिच्छेद चेषुभिः॥१५॥

अर्थ—तब उस **शुम्भासुर** ने सैकड़ों वाणों द्वारा **देवी चण्डिका** को ढँक दिया। उन **देवी** ने भी क्रोधिता होकर अपने वाणों से उसके धनुष को छिन्न-भिन्न कर दिया।

व्याख्या—**शर**—एक विशेष तृण का नाम। प्राचीन-काल में इससे वाण बनाए जाते थे। आज भी संथाल, भील आदि पहाड़ी जातियाँ शर द्वारा वाण तैयार कर प्रयोग में लाती हैं। **'कोदण्ड-मण्डन'** के ७वें अध्याय में लिखा है—

चाप-योनिर्द्विधा प्रोक्ता, शर-नाराच-संज्ञया।
शरौ वैणव-मौञ्जौ द्वौ, नाराचो लौह-निर्मितः॥

अर्थात् चाप-योनि या वाण के दो भेद हैं—१ **शर**, २ **नाराच**। बाँस व मूँज के तृण द्वारा दो प्रकार के **'शर'** बनते हैं। **'नाराच'** वाण स्निग्ध, अभग्न व सुदृढ़ लोहे द्वारा दो हाथ लम्बा बनाया जाता है।

छिन्ने धनुषि दैत्येन्द्रस्तथा शक्तिमथाददे।
चिच्छेद देवी चक्रेण, तामप्यस्य करे स्थिताम्॥१६॥

अर्थ—अब उस प्रकार धनुष के छिन्न-भिन्न हो जाने पर **दैत्य-राज शुम्भ** ने **शक्ति-अस्त्र** को लिया। **देवी-चण्डिका** ने **चक्र** द्वारा उसके हाथ में स्थित उस **शक्ति** को भी छिन्न-भिन्न कर दिया।

व्याख्या—**धनु**—यह दो प्रकार का होता है—१ **शार्ङ्ग** अर्थात् शृङ्ग या सींग से बना, २ **बाँस** से बना। कहा है—**'शार्ङ्गिकं त्रिणतं प्रोक्तं, वैणवं सर्व-नामितम्'** अर्थात् **सींग का धनुष** तीन स्थानों से झुकता है और **बाँस का धनुष** सब ओर से झुकता है। प्रायः **गजारोही** व **अश्वारोही** **शार्ङ्ग-धनुष** का प्रयोग करते हैं और **रथस्थ** व **पैदल योद्धा** बाँस के बने धनुष का। जिस बाँस में ३, ५, ७, ९ गाँठें होती हैं, उसका धनुष शुभ होता है। ४, ६ या ८ गाँठवाले बाँस का धनुष अशुभ होता है। ९ गाँठवाला धनुष **'कोदण्ड'** नाम से प्रख्यात है। ४ हाथ का धनुष उत्तम, साढ़े तीन हाथ

का मध्यम और ३ हाथ का अधम माना गया है। जिस धनुष से पत्थर पर चोट करते हैं, उसे '**उपल-क्षेपक**' कहते हैं। यह तीन हाथ लम्बा व दो अंगुल चौड़ा होता है।

ततः खड्गमुपादाय, शत-चन्द्रं च भानु-मत्।
अभ्यधावत् तदा देवीं, दैत्यानामधिपेश्वरः॥१७॥

अर्थ—तब **दैत्यों का राजाधिराज शुम्भ** खड्ग और चमकीली सौ चन्द्रों से शोभित ढाल लेकर **देवी** की ओर दौड़ा।

व्याख्या—**शत-चन्द्रं**—'**शत-चन्द्राः चन्द्राकाराः मणि-मयाः यत्र तत्, शत-चन्द्राख्यं फलकं**' अर्थात् सौ चन्द्राकार मणियों से जटित ढाल (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

दैत्यानां अधिपेश्वरः—'**दैत्यानां ये अधिपाः, तेषां अपि ईश्वरः**' (चतुर्धरी)। **धूम्र-लोचन, चण्ड-मुण्ड, रक्त-वीज, निशुम्भ** आदि दैत्य-नायकों का स्वामी अर्थात् **शुम्भासुर**।

तस्यापतत एवाशु, खड्गं चिच्छेद चण्डिका।
धनुर्मुक्तैः शितैर्वाणैश्चर्म चार्क-करामलम्॥१८॥

अर्थ—**चण्डिका** ने धनुष से फेंके गए तीक्ष्ण वाणों द्वारा आते हुए उस **शुम्भ** के सूर्य-किरणों के समान उज्ज्वल **खड्ग** और **ढाल** को तत्क्षण ही छिन्न-भिन्न कर डाला।

व्याख्या—किसी-किसी संस्करण में इस श्लोक के बाद अर्द्ध-श्लोक मिलता है। यथा—'**अश्वांश्च पातयामास, रथं सारथिना सह।**'

खड्ग—वैशम्पायन-कृत '**धनुर्वेद**' के अनुसार अस्त्रों में सबसे पहले '**खड्ग**' का ही प्रचार हुआ। फिर **वेणु-पुत्र राजा पृथु** के समय में **धनुष** आदि का प्रचलन हुआ। पचास अंगुल का **खड्ग** उत्तम और २५ अंगुल का मध्यम माना गया है। **खड्ग** में दर्पण के समान अपना मुख नहीं देखना चाहिए और न जूठे मुँह उसे छूना चाहिए। **खड्ग** का मूल्य या उसकी जाति किसी को न बताए। **वराह-मिहिर-कृत 'वृहत्-संहिता'** के ५०वें अध्याय में **खड्ग** के लक्षणों का वर्णन है। उससे ज्ञात होता है कि **खड्ग** इतने तीक्ष्ण बनते थे कि उससे पत्थर भी कट जाता था।

हताश्वः स तदा दैत्यश्छिन्न-धन्वा वि-सारथिः।
जग्राह मुद्गरं घोरमम्बिका-निधनोद्यतः॥१९॥

अर्थ—तब उस **दैत्य शुम्भ** ने, जिसका घोड़ा मारा जा चुका था और जिसका **धनुष** छिन्न-भिन्न हो चुका था तथा **सारथी** भी मर चुका था, **अम्बिका चण्डी** का विनाश करने को प्रस्तुत हो **भयङ्कर मुद्गर** को ग्रहण किया।

व्याख्या—**मुद्गर**—लोहे का लगुड़ (**तत्त्व-प्रकाशिका**)। **धनुर्वेद** के अनुसार **मुद्गर** का मूल पतला, स्कन्ध मोटा होता है और शीर्ष नहीं होता। लम्बाई तीन हाथ, तौल अष्ट-भार, मुष्टि-युक्त, आकार गोल, परिधि एक हाथ। इसकी क्रिया पाँच प्रकार की है—'**ताड़नं छेदनं विप्र! तथा चूर्णनमेव च, मुद्गरस्य तु कर्माणि** तथा प्लवन-घातनम्।' (**अग्नि-पुराण**, २५२।१४)।

चिच्छेदापततस्तस्य, मुद्‌गरं निशितैः शरैः।
तथापि सोऽभ्यधावत् तां, मुष्टिमुद्यम्य वेगवान्॥२०॥

अर्थ—आते हुए उस **शुम्भ** के **मुद्‌गर** को तीक्ष्ण वाणों द्वारा **चण्डिका** ने छिन्न-भिन्न कर दिया। फिर भी वह मुट्ठी बाँधकर तेजी से उन **देवी** की ओर दौड़ा।

स मुष्टिं पातयामास, हृदये दैत्य-पुङ्गवः।
देव्यास्तं चापि सा देवी, तलेनोरस्यताडयत्॥२१॥

अर्थ—उस **दैत्य-श्रेष्ठ शुम्भ** ने **देवी चण्डिका** के हृदय पर मुट्ठी का प्रहार किया। उन **देवी** ने भी थप्पड़ से उसके वक्ष-स्थल पर चोट की।

तल-प्रहाराभि-हतो, निपपात मही-तले।
स दैत्य-राजः सहसा, पुनरेव तथोत्थितः॥२२॥

अर्थ—वह **दैत्यराज शुम्भ** थप्पड़ की चोट से आहत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और अचानक फिर उठकर खड़ा हो गया।

शुम्भ से देवी का शून्य में बाहु-युद्ध

उत्पत्य च प्रगृह्योच्चैर्देवीं गगनमास्थितः।
तत्रापि सा निराधारा, युयुधे तेन चण्डिका॥२३॥

अर्थ—**देवी चण्डिका** को पकड़ कर और उछल कर **शुम्भ** ऊँचे आकाश में जा खड़ा हुआ। वहाँ भी वह **चण्डिका आधार-रहिता** ही उसके साथ युद्ध करने लगीं।

व्याख्या—**निराधारा**—(१) आकाश में खड़े होने को कोई आधार नहीं होता, किन्तु **देवी** ने वहाँ **शुम्भासुर** से उसी प्रकार युद्ध किया, मानो वे पृथ्वी पर खड़ी होकर युद्ध कर रही हों। (२) **'निर्गत आधारः अधिष्ठानान्तरं यस्याः। सर्व-जगदधिष्ठानस्य सत्यत्वेन' आधारान्तरा-योगात्'** अर्थात् **भगवती** ही समस्त जगत् की वास्तविक अधिष्ठान-स्वरूपा हैं। उनका कोई अन्य आधार या आश्रय नहीं है **(सौभाग्य-भास्कर)**। अतः वे **'निराधारा'** हैं।

नियुद्धं खे तदा दैत्यश्चण्डिका च परस्परम्।
चक्रतुः प्रथमं सिद्ध-मुनि-विस्मय-कारकम्॥२४॥

अर्थ—तब आकाश में **शुम्भासुर** और **चण्डिका** पहले एक-दूसरे से सिद्धों व मुनियों को आश्चर्य-जनक बाहु-युद्ध करने लगे।

व्याख्या—**नियुद्ध**—बाहु-युद्ध, मल्ल-युद्ध। **धनुर्वेद** में कहा है कि आयुध बिना जो द्वन्द्व-युद्ध होता है, उसे **'नियुद्ध'** कहते हैं। **'अग्नि-पुराण'**, २४९।६ के अनुसार यह **अधम युद्ध** है—

धनुः-श्रेष्ठानि युद्धानि, प्रास-मध्यानि तानि च।
तानि खड्ग-जघन्यानि, बाहु-प्रत्यवराणि च॥

अर्थात् **धनुर्युद्ध** श्रेष्ठ, **प्रास-युद्ध** मध्यम, **खड्ग-युद्ध** और **बाहु-युद्ध** अधम हैं। '**महा-भारत**', विराट् पर्व में छद्म-वेशी **भीमसेन** और **जीमूत मल्ल** के नियुद्ध का वर्णन है। '**श्रीमद्-भागवत**', दशम स्कन्ध (अध्याय ४३, ४४) में **कंस** द्वारा आयोजित **धनुर्यज्ञ** में **श्रीकृष्ण-बलराम** के साथ **चाणूर**, **मुष्टिकादि मल्लों** के **बाहु-युद्ध** का विवरण है। इन सबसे ज्ञात होता है कि इस युद्ध में हाथों से हाथों में, पैरों से पैरों में, वक्ष से वक्ष में, जाँघों से जाँघों में, मस्तक से मस्तक में चोट की जाती है। **नीलकण्ठ** ने '**महा-भारत**' की अपनी टीका में **मल्ल-शास्त्र** के आधार पर विस्तृत वर्णन किया है।

ततो नियुद्धं सु-चिरं, कृत्वा तेनाम्बिका सह।
उत्पात्य भ्रामयामास, चिक्षेप धरणी-तले॥२५॥

अर्थ—फिर **अम्बिका चण्डी** ने **शुम्भ** से अनेक क्षणों तक बाहु-युद्ध कर उसे उठाकर चक्कर देते हुए पृथ्वी पर फेंक दिया।

स क्षिप्तो धरणीं प्राप्य, मुष्टिमुद्यम्य वेगितः।
अभ्यधावत दुष्टात्मा, चण्डिका-निधनेच्छया॥२६॥

अर्थ—वह **दुरात्मा शुम्भ देवी** द्वारा फेंके जाने पर पृथ्वी पर पहुँचकर मुट्ठी बाँधकर **चण्डिका** को मार डालने की इच्छा से तेजी से दौड़ा।

चण्डिका द्वारा शुम्भ का वध

तमायान्तं ततो देवी, सर्व-दैत्य-जनेश्वरम्।
जगत्यां पातयामास, भित्वा शूलेन वक्षसि॥२७॥

अर्थ—तब **देवी चण्डिका** ने सभी दैत्यों के स्वामी उस **शुम्भ** को आते हुए देखकर अपने **शूल** से उसके वक्षःस्थल को विदीर्ण कर पृथ्वी पर गिरा दिया।

स गतासुः पपातोर्व्यां, देवी-शूलाग्र-विक्षतः।
चालयन् सकलां पृथिवीं, साब्धि-द्वीपां स-पर्वताम्॥२८॥

अर्थ—**देवी के शूल** के अगले भाग से चोट खाकर वह **शुम्भासुर** प्राण-हीन होकर समुद्रों, द्वीपों-सहित, पहाड़ों से युक्ता सारी पृथ्वी को कँपाता हुआ भू-तल पर गिर पड़ा।

शुम्भ-वध से जगत् में शान्ति की प्रतिष्ठा

ततः प्रसन्नमखिलं, हते तस्मिन् दुरात्मनि।
जगत् स्वास्थ्यमतीवाप, निर्मलं चाभवन्नभः॥२९॥

अर्थ—तब उस **दुष्टात्मा शुम्भ** के मारे जाने पर सारा संसार प्रसन्न होकर अत्यन्त सुन्दर अवस्था को प्राप्त हो गया और आकाश स्वच्छ हो गया।

उत्पात-मेघाः सोल्का ये, प्रागासंस्ते शमं ययुः।
सरितो मार्ग-वाहिन्यस्तथाऽऽसंस्तत्र पातिते॥३०॥

अर्थ—पहले जो उल्काओं सहित अनिष्ट-सूचक बादल घिरे हुए थे, उस **शुम्भ** के मारे जाने पर वे सब शान्त हो गए और नदियाँ अपने निर्दिष्ट मार्ग से बहने लगीं।

व्याख्या—कुछ टीकाकार २८वें श्लोक से पहले २९वें श्लोक का पाठ मानते हैं।

उत्पात-मेघाः—अनिष्ट-सूचक बादल, जो **देव-पक्ष** के लिए शुभ और **दैत्य-पक्ष** के लिए अशुभ थे (**नागो जी**)। अचानक जो **अशुभ-सूचक दैवी घटना** होती है, उसे '**उत्पात**' कहते हैं। ये तीन प्रकार के होते हैं—१ **दिव्य**, २ **आन्तरीक्ष्य**, ३ **भौम**। चन्द्र-सूर्य-ग्रहणादि '**दिव्य**', उल्का-पातादि '**आन्तरीक्ष्य**' और भू-कम्पादि '**भौम**' उत्पात हैं। **वराह मिहिर-कृत '**वृहत्-संहिता**'**, ४६वें अध्याय में इनके लक्षण बताए हैं।

उल्का—(१) दिव्य तेज (**नागो जी**), (२) ज्वाला (**शान्तनवी**)। आकाश में रेखाकार गिरते हुए तेज-पुञ्ज को '**उल्का**' कहते हैं। **वराह मिहिर** के अनुसार यह विविध प्रकार की होती है। कभी प्रेत, प्रहरण, खर, करभ, नक्र, कपि, दंष्ट्री, लांगूल और मृग के आकार की और कभी गोधा, सर्प व धूम-रूपा तथा कभी दो शिखावाली होती है। यह '**उल्का**' सारे आकाश में लगातार घूमती हुई आकाश के बीच से गिर पड़ती है। यह राजा व राज्य के विनाश एवं जन-समाज के सङ्कट की सूचना देती है।

मार्ग-वाहिन्यः—**मार्गं वहन्ति स्रवन्ति मार्ग-वाहिन्यः** (**शान्तनवी**)। नदियाँ फिर पूर्व-वत् उत्पथ-गामिनी नहीं होतीं (**नागो जी**)।

ततो देव-गणाः सर्वे, हर्ष-निर्भर-मानसाः।
बभूवुर्निहते तस्मिन्, गन्धर्वा ललितं जगुः॥३१॥
अवादयंस्तथैवान्ये ननृतुश्चाप्सरो-गणाः॥३२॥

अर्थ—तब उस **शुम्भ** के मारे जाने पर सभी देवताओं के चित्त आनन्द से भर गए। गन्धर्व मधुर स्वर से गाने लगे और दूसरे गन्धर्व भी बाजा बजाने लगे तथा अप्सराएँ नाचने लगीं।

ववुः पुण्यास्तथा वाताः, सुप्रभोऽभूद् दिवाकरः।
जज्वलुश्चाग्नयः शान्ताः, शान्ता दिग्-जनित-स्वनाः॥३३॥

अर्थ—और **पवित्र हवाएँ** बहने लगीं, **सूर्य** उत्तम किरणोंवाला हो गया तथा **यज्ञीय अग्नियाँ** प्रशान्त होकर शान्ति-पूर्ण दिशाओं में शब्द गुँजाती हुई जलने लगीं।

व्याख्या—**ववुः पुण्यास्तथा वाताः**—**देवी** द्वारा **असुर** के मारे जाने के फल-स्वरूप प्रकृति में चारों ओर शान्ति छा गई। क्षुब्ध वायु-मण्डल शान्त हो उठा। वायु धूल-धक्कड़ से रहित होकर कुछ ठण्डी व सुगन्धित हो धीरे-धीरे चलने लगी।

जज्वलुश्चाग्नय: शान्ता:—१ **गार्हपत्य**, २ **आहवनीय** और ३ **दक्षिण**—ये तीनों प्रकार की **यज्ञ की अग्नियाँ** धुएँ से रहित हो स्वच्छ रूप में प्रज्वलित हो गईं अर्थात् **शुम्भासुर का वध** हो जाने पर **वैदिक यज्ञ** यथा-विधि पूर्व-वत् होने लगे।

शान्त-दिग्-जनित-स्वना:—(१) **शान्तासु दिक्षु जनित: स्वनो यै: तेऽग्नय:।** शान्त अर्थात् शुभ-सूचक दिशाओं में शब्द उत्पन्न करनेवाली अग्नियाँ (**दंशोद्धार-टीका**)। यज्ञीय अग्नियों के प्रशान्त प्रज्वलन की ध्वनि से दिशाएँ शान्त हो गईं। (२) **दिक्षु जनित: स्वनो दिग्-जनित-स्वन:, शान्तो दिग्-जनित-स्वनो येषां।** पहले जो अग्नियाँ दिशाओं की दाह-सूचक अमङ्गल ध्वनि करती थीं, वे अब शूभ-सूचक हो गईं (**चतुर्धरी टीका**)।

कुछ टीकाकार '**शान्ता: दिग्-जनित-स्वना:**' यह पाठ मानते हैं। **दिग्-जनित शब्द** अर्थात् **उत्पात-सूचक शब्द** शान्त हो गए।

दुष्टात्मा शुम्भासुर के शासन-काल में **आसुरी शक्ति** की प्रबलता के कारण **अत्याचार, उत्पीड़न** व **विविध पाप** होते थे। फलत: प्रकृति में भी भयानकता दिखाई देती थी। **असुर-नाश** के बाद **दैवी शक्ति की प्रधानता** हुई और **धर्म-राज्य** स्थापित हुआ। फल-स्वरूप प्रकृति में भी **शान्ति-पूर्ण वातावरण** हो गया। श्लोक २८ से ३२ तक इसी तथ्य का वर्णन है।

प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् **वराह मिहिर** ने कहा है—'**अपचारेण नराणामुपसर्ग: पाप-सञ्चयाद् भवति। संसूचयन्ति दिव्यान्तरिक्ष-भौमास्तदुत्पाता:। मनुजानां अपचाराद् अपरक्ता देवता: सृजन्त्येतान्।**' (वृहत्-संहिता, ४६।२-३)।

अर्थात् मनुष्य के **अनुचित आचरण** से पाप-सञ्चय होकर **उपसर्ग** की सृष्टि होती है। **दिव्य, आन्तरिक्ष** व **भौम उत्पात** उसकी सूचना देते हैं। मनुष्यों के दुराचार से विरक्त होकर **देव-गण** इन **उत्पातों** को उत्पन्न करते हैं।

ऋत-मय अर्थात् **भगवन्निष्ठ** व **सत्कर्मी** मनुष्यों के होने से **प्रकृति** में चारों ओर **शान्ति** रहती है, सारे **प्राकृतिक पदार्थ** जीवों के लिए **हितकर** रहते हैं। **वायु** मधुरता बिखेरती हुई चलती है, **नदियाँ** माधुर्य वितरित करती हुई बहती हैं। इसी उद्देश्य से **साधक** निरन्तर **प्रार्थना** करते रहते हैं। **ऋग्वेद** १, ९०।६-८) के '**मधुमती सूक्त**' में यही प्रार्थना है—

'मधु वाता ऋतायते, मधु क्षरन्ति सिन्धव:, मावीर्न सन्त्वौषधी:।'

अर्थात् **ऋत-मय पुरुष** के लिए वायु **मधु** बिखेरें, नदियाँ **मधु** बहाएँ और औषधियाँ **मधु-मय** हों।

'मधु नक्तमुतोषसे, मधु-मत् पार्थिवं रज:, मधु द्यौरस्तु न: पिता।'

अर्थात् रात्रि और उषा **मधु-मय** हों, पृथ्वी की धूल **मधु-मय** हो, पितृ-स्थानीय द्यु-लोक हमारे लिए **मधु-मय** हो।

'मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमां अस्तु सूर्यः, माध्वीर्गावो भवन्तु नः।'

अर्थात् वनस्पति हमारे लिए **मधु-मय** हो, सूर्य **मधु-मय** हो और गाएँ हमारे लिए **मधु-मयी** हों।

दसवें अध्याय के पाठान्तर

श्लोक-संख्या	'विशुद्ध चण्डी' का पाठ	प्रचलित पाठ
३	याति-मानिनी	१. अति-मानिनि, २. चाति-मानिनी
१२	तथास्त्रैश्चैव दारुणैः	तथास्त्रैश्च सु-दारुणैः
१२	भूयः	भूय
१६	शक्ति मथाददे	शक्तिं समाददे
१६	करे स्थिताम्	कर स्थितांम्
१७	अभ्यधावत् तदा देवीं	अभ्यधावत तां देवीं
१९	हताश्वः	हतासि
२५	उत्पात्य	१. उत्पाट्य, २. उत्क्षिप्य
२५	भ्रामयामास	भ्रमयामास
२६	वेगितः	१. वेगतः, २. वेगवान्
२८	देवी-शूलाग्र-विक्षतः	देवी-शूलाग्र-विक्षितः
२९	स्वास्थ्यमतीवाप	सुस्थमतीवासीत्
३३	शान्ता दिग्	शान्त-दिग्

***

उत्तर या उत्तम चरितम्

एकादशः अध्यायः

नारायणी स्तुति

देव्या स्तुतिः

ॐ ऋषिरुवाच॥१॥

देव्या हते तत्र महाऽसुरेन्द्रे, सेन्द्राः सुरा वह्नि - पुरो - गमास्ताम्।
कात्यायनीं तुष्टुवुरिष्ट-लाभाद्, विकाशि-वक्त्राब्ज-विकाशिताशाः॥२॥

अर्थ—**मेधस ऋषि** ने **महाराज सुरथ** से कहा—उस युद्ध में **देवी चण्डिका** द्वारा **महा-असुर-राज शुम्भ** के मारे जाने पर **इन्द्र-सहित देव-गण अग्नि-देव** को आगे कर अभीष्ट-प्राप्ति के लिए प्रसन्न-मुख और पूर्ण-मनोरथ होकर **कात्यायनी चण्डिका देवी** की स्तुति करने लगे।

व्याख्या—**वह्नि-पुरोगमाः**—'**वह्निः पुरो-गमः अग्र-गो येषां ते**'। श्रुति में कहा है कि '**अग्निरग्रे प्रथमो देवतानां**' अर्थात् **अग्नि** का देवताओं में पहला स्थान है। '**अग्निर्वै देवानां मुखं**' अर्थात् **अग्नि** देवों के मुख-स्वरूप हैं।

कात्यायनी—(१)'**कात्यायनाश्रमे प्रादुर्भूतत्वात् कात्यायनी**'। **महिषासुर**-वध के लिए पराजित देवों के तेज-समूह से **महर्षि कात्यायन** के आश्रम में **देवी** का प्रादुर्भाव हुआ था, इसी से उन्हें '**कात्यायनी**' कहते हैं (**तत्त्व-प्रकाशिका**)। (२) **सर्व-देव-तेजः-समूहात्मिकाया देव्या इयं संज्ञा** अर्थात् सभी **देवों के तेज-समूह से बनी देवी** का नाम (**सौभाग्य-भास्कर**)। '**वामन पुराण**', १८।१३ में भी कहा है—

तच्चापि तेजो वरमुत्तमं महन्नाम्ना पृथिव्यामभवत् प्रसिद्धम्।
कात्यायनीत्येव तदा बभौ सा, नाम्ना च तेनैव जगत्-प्रसिद्धा॥

नागो जी के अनुसार यहाँ इस नाम का उल्लेख यह सूचित करता है कि **देवी** के विभिन्न स्वरूप मूलतः एक ही हैं—'**अनेन परस्परं आसाम् ऐक्यं सूचयति।**'

विकाशिताशाः—(१) **'विकाशिताः फलिता आशा मनोरथाः येषां ते।' महिषासुर** का वध होने से **देव-गण** का मनोरथ पूरा हो गया। (२) **'विकाशिताः आशाः दिशः यैः ते'** अर्थात् जिनके तेज से दसों दिशाएँ प्रकाशित हो उठीं, ऐसे **देव-गण**।

देवि! प्रपन्नार्ति-हरे! प्रसीद, प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य।
प्रसीद विश्वेश्वरि! पाहि विश्वं, त्वमीश्वरी देवि! चराचरस्य॥३॥

अर्थ—हे शरणागत भक्तों के दुःख दूर करनेवाली **देवि!** प्रसन्न हो जाओ। हे सारे संसार की **जननि!** प्रसन्न हो जाओ। हे **जगदीश्वरि!** प्रसन्न हो जाओ। जगत् की रक्षा करो। हे **देवि!** तुम स्थावर व जङ्गमात्मक विश्व की स्वामिनी हो।

व्याख्या—**गुप्तवती टीका** के अनुसार यह स्तोत्र **'नारायणी-सूक्त'** है। **'लक्ष्मी-तन्त्र'** में कहा है—

नारायणी-स्तुतिर्नाम, सूक्तं परम-शोभनं। पुरन्दर! तथा दृष्टं, देवैरग्नि-पुरोगमैः॥

अर्थात् हे **पुरन्दर (इन्द्र)! 'नारायणी-स्तुति'** नामक सूक्त बड़ा कल्याणकारी है। यह **अग्नि**-प्रमुख देवों द्वारा किया दृष्टिगत होता है। इस **स्तव** से भक्ति-पूर्वक पूजा करने से **देवी** भक्त को सर्वज्ञ बना देती हैं।

देवि—द्योतन-शीले। 'भगवती गीता' १।२७ में **चण्डिका की दिव्य ज्योति** का वर्णन है—

कोटि-सूर्य-प्रतीकाशं, चन्द्र-कोटि-सुशीतलम्।
विद्युत्-कोटि-समानाभमरुणं तत्-परं महः॥

अर्थात् अरुण-वर्ण का वह परम तेज करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशवाला, करोड़ों चन्द्रमाओं के समान शीतल और करोड़ों बिजलियों के समान दीप्तिवाला है।

प्रपन्नार्ति-हरे—'प्रपन्नानां शरणागतानां आर्तिः दुःखं तां हरति इति सम्बोधने।' अर्थात् आध्यात्मिक, आधिभौतिक व आधिदैविक—इन तीन दुःखों से पीड़ित जीव जब **जगदम्बा की शरण** में जाता है, तब **देवी** उसके सारे दुःख दूर कर देती हैं।

प्रसीद—भक्ति की अभिवृद्धि के लिए **तीन बार 'प्रसीद'** कहा है **(तत्त्व-प्रकाशिका)**। **देवी की प्रसन्नता** के बिना केवल तपस्या द्वारा सिद्धि नहीं मिलती। **साधक की तपस्या** और **देवी की प्रसन्नता**—इन दोनों का जब संयोग होता है, तभी **सिद्धि** मिलती है। **श्वेताश्वतर उपनिषद्**, ६।२१ में कहा है कि **तपः-प्रभाव** या साधक की **तप-शक्ति** और **देव-प्रसाद** या **परमात्मा की कृपा**—इन दोनों के मिलने से **ब्रह्म-ज्ञान** होता है। **'देवी-भागवत'** में भी उक्ति है—

न तदस्ति पृथिव्यां वा, दिवि प्राप्यं सु-दुर्लभम्।
प्रसन्नायां शिवायां यदप्राप्यं नृप-सत्तम!

अर्थात् हे नृप-श्रेष्ठ! पृथ्वी या स्वर्ग में ऐसी कोई दुर्लभ वस्तु नहीं है, जो **देवी शिवा** के प्रसन्न होने पर भक्त को न मिले।

मातः जगतोऽखिलस्य—(१) '**हे मातः! अखिलस्य जगतः प्रति प्रसीद**' अर्थात् हे माता! सारे जगत् पर प्रसन्न हो जाओ। (२) '**अखिलस्य जगतः मातः! प्रसीद**' अर्थात् हे सारे जगत् की माता! प्रसन्न हो जाओ।

भास्कर राय ने '**सौभाग्य-भास्कर**' में कहा है—'**दुरन्त-दुःख-हरण-क्षमासु सर्वोत्तमा जगन्मातैव, स्वस्मिन् दयावत्त्वापादनाय मातृत्वेनैव स्तोतव्या**' अर्थात् दुष्कर दुःखों को दूर करने में समर्थ सभी शक्तियों में **जगन्माता** ही सर्व-श्रेष्ठ हैं। अतः अपने ऊपर उनकी दया पाने के लिए **मातृ-रूप** की ही स्तुति करनी चाहिए।

पाहि विश्वं—तुम सारे जगत् की **लक्ष्मी**-रूप से रक्षा करो (**शान्तनवी**)। **आसुरिक शक्तियों के उत्पीड़न से विश्व की रक्षा** करने में एक-मात्र **विश्वेश्वरी** ही समर्थ हैं।

त्वं ईश्वरी चराचरस्य—'**चराचरस्य मध्ये त्वं ईश्वरी स्वतन्त्रा, इतरत् सर्वं त्वत्-पर-तन्त्रं इति भावः**' अर्थात् इस स्थावर-जङ्गमात्मक जगत् की तुम्हीं एक-मात्र ईश्वरी हो। तुम स्वतन्त्र हो, अन्य सभी तुम्हारे अधीन हैं (**नागो जी**)।

'**सौभाग्य-भास्कर**' में कहा है—'**पराहन्ता एव ईश्वरत्वं तद्-वतीत्यर्थः। ईश्वरता कर्तृत्वं स्वतन्त्रता चित्-स्वरूपता चेति। इति चाहन्तायाः पर्यायाः सद्भिरुच्यन्ते।**'

अर्थात् **पराहन्ता** (परम व्यक्ति-सत्ता) को ही **ईश्वरत्व** कहते हैं। **ईश्वरता, कर्तृत्व, स्वतन्त्रता, चित्-स्वरूपता**—ये सभी **अहन्ता** के ही पर्याय-रूप हैं।

आधार-भूता जगतस्त्वमेका, मही-स्वरूपेण यतः स्थिताऽसि।
अपां स्वरूप - स्थितया त्वयैतदाप्यायते कृत्स्नमलंघ्य - वीर्ये!॥४॥

अर्थ—जिसे उलङ्घन न किया जा सके, ऐसे प्रभाववाली हे **देवि!** तुम जगत् की अद्वितीय आधार-स्वरूपा हो, इसी से पृथ्वी-रूप से विद्यमान हो। जल-रूप से अवस्थिता तुम इस सारे विश्व को तृप्त करती हो।

व्याख्या—**आधार-भूता**—आश्रय-रूपा (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

मही-स्वरूपेण यतः स्थिताऽसि—**अथर्व-वेद** के **पृथ्वी-सूक्त** में ऋषि द्वारा **पृथ्वी-रूप की स्तुति** की गई है। यथा—

त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं, विभर्षि द्वि-पदस्त्वं चतुष्पदः। तवेमे पृथिवि पञ्च-मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं, मर्तभ्य उद्यन्त सूर्यो रश्मिभिरातनोति॥ विश्वस्त्वं मातरमोषधीनां, ध्रुवां भूमिं पृथिवीं धर्मणा धृतां। शिवां स्योनामनु चरेम विश्वहा॥

अर्थात् **हे मातः पृथिवि**! तुमसे उत्पन्न होकर मनुष्य तुम्हीं पर विचरण करते हैं। तुम्हीं दो पायों व चौपायों—सभी जीवों को धारण करती हो। पञ्च-विध यह मानव जाति तुम्हारी ही सन्तान है। तुम्हारी इन सन्तानों पर **उदीयमान सूर्य** किरणों द्वारा अमृत-ज्योति विकीर्ण करता है। जो सारी औषधियों की जननी है, जो धर्म द्वारा स्थिर है, जो कल्याण-मयी व सुखदा है, उसी सुस्थिरा विस्तीर्णा **पृथिवी** पर हम चिर-काल तक विचरण करते रहें।

अपां स्वरूप-स्थितया—अपां स्वरूपेण स्थिता स्वरूप-स्थिता तया जल-रूपया इत्यर्थः (तत्त्व-प्रकाशिका)। **ऋग्वेद**, ९।१-३ में ऋषि द्वारा वर्णन है—

आपो हिष्ठा मयो भुवस्तान ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे॥ यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उशीतिरिव मातरः॥ तस्मा अरं गमाय वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः॥

अर्थात् हे **जल-समूह**! तुम सुख के निदान हो, तुम हमारे लिए भोज्यान्न का विधान करो और हमें परम रमणीय **ब्रह्म-दर्शन** का अधिकारी बनाओ। हे **जल-समूह**! पुत्र-हितैषिणी माता जैसे दूध पिलाकर पुत्र का पोषण करती है, उसी प्रकार तुम हमें अपने कल्याण-मय रस-भोग का अधिकारी बनाओ। हे **जल-समूह**! तुम जिस रस को देकर सारे जगत् को तृप्त करते हो, उस रस से हम भी तृप्ति पाएँ—उसके भोग के लिए हमें अधिकारी बनाओ।

त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्त-वीर्या, विश्वस्य बीजं परमाऽसि माया।
सम्मोहितं देवि! समस्तमेतत्, त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्ति-हेतुः॥५॥

अर्थ—हे **देवि!** तुम असीम शक्ति-शालिनी **वैष्णवी शक्ति** हो। तुम जगत् की मूल कारण **महा-माया** हो। तुम्हारे द्वारा यह सारा विश्व विमुग्ध रहता है। प्रसन्न होने पर तुम्हीं संसार में मोक्ष का कारण हो।

व्याख्या—**वैष्णवी शक्ति—यया शक्त्या विष्णुर्भगवान् अशेष-लोकान् पालयति।** जिस शक्ति द्वारा **भगवान् विष्णु** सारे लोकों का पालन करते हैं **(शान्तनवी)**। **'देवी-पुराण'** में इस नाम की व्याख्या है—**'शङ्ख-चक्र-गदा धत्ते, विष्णु-माता तथारिहा। विष्णु-रूपाऽथवा देवी, वैष्णवी तेन गीयते॥'** अर्थात् **शङ्ख, चक्र, गदा** धारण करने से ये **विष्णु-माता** हैं। ये शत्रु का नाश करती हैं अथवा **विष्णु-रूपिणी** होने से देवी **'वैष्णवी'** नाम से कही जाती हैं।

अनन्त-वीर्या—वृहदारण्यक-उपनिषत् ३।८।६ में **महर्षि याज्ञवल्क्य** ने **गार्गी** को **ब्रह्म-शक्ति के अनन्त वीर्य** का परिचय दिया है—

'एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि! सूर्या-चन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः, एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि! द्यावा-पृथिव्यौ विधृते तिष्ठतः, एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि! निमेषो मुहूर्त्तो अहो-रात्राण्यर्ध-मासा मास-ऋतवः संवत्सरा इति विधृतास्तिष्ठन्त्येतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि! प्राच्योऽन्या नद्यः स्यन्दन्ते श्वेतेभ्यः पर्वतेभ्यः प्रतीच्योऽन्या यां यां च दिशमनु।'

अर्थात् हे **गार्गि**! इसी अक्षर के नियन्त्रण में **चन्द्र** और **सूर्य**, **द्यु-लोक** और **पृथ्वी**, **निमेष**, **मुहूर्त्त**, **अहोरात्र**, **पक्ष**, **मास**, **ऋतु** और **संवत्सर-समूह** हैं, इसी के प्रशासन में **श्वेत पर्वत** से निकल कर **प्राच्य** और **प्रतीची नदियाँ** अपनी-अपनी दिशा में बहती हैं।

विश्वस्य बीजं—त्वं विश्वस्य बीजं मूल-कारणं अर्थात् तुम सृष्टि की अव्यक्त-बीज-स्वरूपा **मूल प्रकृति** या **परमा माया** हो **(चतुर्धरी)**।

नागो जी के अनुसार इस श्लोक के पहले चरण में **भगवती चण्डिका** की **पालन-शक्ति** का और दूसरे चरण में **कारण-शक्ति** का प्रतिपादन हुआ है।

परमा माया—महा-माया। ये **विद्या** और **अविद्या-रूपिणी** हैं। '**देवी भागवत**' में कहा है—

विद्याऽविद्येति देव्या द्वे, रूपे जानीहि पार्थिव!।
एकया मुच्यते जन्तुरन्यया बध्यते पुनः॥

विद्या द्वारा जीव को **मुक्ति** मिलती है, **अविद्या** से वह **बन्धन** में पड़ता है।

त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्ति-हेतुः—मुक्ति-दात्री च त्वं इत्याहुः। वै निश्चये त्वं प्रसन्ना सती भुवि जगति मुक्ति-हेतुः मुक्तेः कारणं अर्थात् **महा-माया** '**अविद्या**'-रूप से जीव को मोह में डाल देती हैं और वही प्रसन्न होने पर '**विद्या**'-रूप से शरणागत भक्तों को संसार से मुक्ति दिला देती हैं **(तत्त्व-प्रकाशिका)**।

विद्याः समस्तास्तव देवि! भेदाः, स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्, का ते स्तुतिः स्तव्य-परा परोक्तिः॥६॥

अर्थ—हे **देवि!** सारी विद्याएँ और संसार में शिल्पादि कलाओंवाली सारी स्त्रियाँ तुम्हारे ही अंश हैं। एक **माता**-रूप से तुम इस विश्व को व्याप्त किए हो। स्तुति-योग्यों में तुम सर्व-श्रेष्ठ हो। तुम्हारे प्रति सर्वोत्तम प्रार्थना क्या हो सकती है?

विद्याः समस्तास्तव देवि! भेदाः—'**तव भेदाः त्वत्-स्वरूप - विशेषाः**' (देवी-भाष्य)। '**विष्णु-पुराण**' में कहा है—'**यज्ञ-विद्या महा-विद्या, गुह्य-विद्या च शोभने! आत्म-विद्या च देवि! त्वं, विमुक्ति-फल-दायिनी। आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता, दण्ड-नीतिस्त्वमेव च।**'

अर्थात् **यज्ञ-विद्या, गुह्य-विद्या** व मुक्ति-फल-दायिनी **आत्म-विद्या** देवी ही हैं। '**आन्वीक्षिकी**' या दर्शन-विद्या, '**त्रयी**' या वेद-विद्या, '**वार्ता**' या कृषि, वाणिज्य-सम्बन्धी विद्या तथा दण्ड-नीति की विद्या **देवी** के ही स्वरूप हैं।

विद्या—'**याज्ञवल्क्य स्मृति**' में **१४ विद्याएँ** बताई हैं—**१ पुराण, २ न्याय, ३ मीमांसा, ४ स्मृति, ५-८ चार वेद, ९-१४ छः वेदाङ्ग** (१ शिक्षा, २ कल्प, ३ व्याकरण, ४ निरुक्त, ५ छन्द, ६ ज्योतिष)। '**विष्णु पुराण**' में **१८ विद्याओं** का उल्लेख है—**१-६ छः वेदाङ्ग, ७-१० चार वेद, ११ मीमांसा, १२ न्याय, १३ स्मृति, १४ पुराण, १५ आयुर्वेद, १६ धनुर्वेद, १७ गान्धर्व वेद (सङ्गीत), १८ अर्थ-शास्त्र**।

टीकाकार काशीनाथ के अनुसार यहाँ '**विद्या**' से **काली, तारा** आदि **दस महा-विद्याओं** का तात्पर्य है।

स्त्रियः सकलाः—(१) चतुःषष्टि-कलोपेताः पातिव्रत्य-सौन्दर्य-तारुण्याद्युपेताः समस्ताः स्त्रियोऽपि तवांशाः अर्थात् **६४ कलाओं से युक्त** और **सतीत्व, सौन्दर्य, यौवन** आदि गुणोंवाली सारी नारियाँ **देवी** के स्वरूप हैं **(नागो जी)**। **(२) सकलाश्चतुःषष्टि-कला-**

सहिताः षोडश-कामकला-सहिताश्चेति अर्थात् **६४ कलाओं व १६ काम-कलाओंवाली नारियाँ (गुप्तवती)**।

(३) आद्या शक्ति या **प्रकृति** की विभिन्न मूर्तियाँ भी '**कला**'-शब्द से सूचित होती हैं। '**देवी-भागवत**', स्कन्ध ९ व '**ब्रह्म-वैवर्त-पुराण**', **प्रकृति-खण्ड** में **कला** और **कलांश-रूपिणी** बहुत-सी देवियों का वर्णन है। यथा—**गङ्गा, तुलसी, मनसा, देवसेना** या **षष्ठी, मङ्गल-चण्डिका, काली, वसुन्धरा, स्वाहा, स्वधा, दक्षिणा, दीक्षा, स्वस्ति, पुष्टि, धृति, दया, प्रतिष्ठा, कीर्ति, शान्ति, लज्जा, बुद्धि, मेधा, स्मृति, मूर्ति, निद्रा, सन्ध्या, क्षुधा, पिपासा, श्रद्धा, भक्ति** इत्यादि।

इस संसार में **स्त्रियाँ—देवी की अंश-स्वरूपा** हैं। उनका अपमान होने से प्रकृति का ही अपमान होता है। '**देवी भागवत्**', ९।१।१३७ में कहा है—**कलांशांश-समुद्भूताः प्रति-विश्वेषु योषितामवमानेन प्रकृतेश्च पराभवः**।

'**ब्रह्म-वैवर्त-पुराण**' में कहा है—'**यत्-किञ्चित् त्रिषु लोकेषु, स्त्री-रूपं देवि! दृश्यते। तत्-सर्वं त्वत्-स्वरूपं स्यादिति शास्त्रेषु निश्चयः**।' अर्थात् तीनों लोकों में जो कुछ स्त्री-रूप दिखाई देता है, वह सब हे **देवि!** तुम्हारे ही स्वरूप हैं। यही शास्त्रों का सिद्धान्त है।

'**पराशर स्मृति**' ने इसीलिए निर्देश किया है कि—'**स्त्रियस्तुष्टाः स्त्रियो रुष्टास्तुष्टा रुष्टाश्च देवताः। वर्द्धयन्ति कुलं तुष्टा, नाशयन्त्यवमानिताः**।' अर्थात् स्त्रियों के सन्तुष्ट रहने से देवता तुष्ट होते हैं और स्त्रियों के रुष्ट होने से देवता क्रुद्ध होते हैं। सन्तुष्टा होने से स्त्रियाँ **कुल की श्री** को बढ़ाती हैं और अपमानिता होने से **वंश का नाश** कर देती हैं।

का ते स्तुतिः स्तव्य-पराऽपरोक्तिः—(१) 'त्वं स्तव्य-परा, का परोक्तिः ते स्तुतिः? न कापि इत्यर्थः'। हे **देवि!** स्तुति-योग्यों में तुम सर्व-श्रेष्ठ हो। ऐसी कौन-सी श्रेष्ठ उक्ति है, जिससे तुम्हारी स्तुति की जाए? अर्थात् ऐसी कोई उक्ति नहीं है **(सिद्धान्त-वागीश)**।

(२) स्तव्य-पराऽपरोक्तिः त्वमेव, अतः का ते स्तुतिः? एवं च त्वत्तः पृथग्-भूतस्य अभावात्, अतस्ते स्तुत्य-विषये परा अपरा गौणी मुख्या च या उक्तिः तद्-रूपा स्तुतिः का इत्यर्थः। यद्वा उक्ति-रूपा त्वमेव, अतः का ते स्तुतिः? अर्थात् तुमसे अलग कुछ भी नहीं है, अतः तुम्हारी स्तुति क्या हो? **परा** व **अपरा** अर्थात् **मुख्य** व **गौण** उक्ति को ही स्तुति कहते हैं। तुम **सर्व-स्वरूपा** हो, अतः कोई भी उक्ति तुम्हारे अनुरूप नहीं है। दूसरे शब्दों में तुम्हीं **उक्ति-रूपा** हो, फिर तुम्हारी स्तुति कैसे हो? **(नागो जी)**।

(३) दंशोद्धार-टीका के अनुसार **परा** व **अपरा** उक्ति से **१ परा (सूक्ष्मा), २ पश्यन्ती, ३ मध्यमा** व **४ वैखरी**—इन चार वाक् का बोध होता है। इसी **चतुर्विधा वाक्** द्वारा स्तुत्य की प्रार्थना की जाती है, किन्तु **देवी** स्वयं **वाक्-स्वरूपा** हैं, अतः उनकी **स्तुति असम्भव** है।

मुख से उच्चारित शब्द का नाम '**वैखरी**' है। इसके पीछे '**मध्यमा वाक्**' रहती है। यह वह सूक्ष्म ध्वनि है, जो मन-ही-मन चिन्तन करते समय अस्फुट रूप में रहती है। इस ध्वनि के भी पीछे '**पश्यन्ती**' और उसके भी पीछे अनिर्वचनीय शब्द-शक्ति '**परा-वाक्**' रहती है। **देवी** वाग्वादिनी-रूप में **चतुर्विधा वाक् की जननी हैं—'शब्दानां जननी त्वमेव भुवने वाग्वादिनी-त्युच्यसे' (लघु-स्तव)।**

सर्व-भूता यदा देवी, स्वर्ग-मुक्ति-प्रदायिनी।
त्वं स्तुता स्तुतये का वा, भवन्तु परमोक्तयः॥७॥

अर्थ—जब तुम **सर्व-स्वरूपिणी, प्रकाश-मयी, स्वर्ग** और **मोक्ष-दायिनी** हो, तब तुम्हारी स्तुति करने के लिए कौन-सी श्रेष्ठ बातें हों!

व्याख्या—**देवी की स्तुति** करना सम्भव नहीं है, इसी का पुनः प्रतिपादन है।

सर्व-भूता—विश्वात्मिका (**नागो जी**)। पृथकता होने से ही स्तुति सम्भव है, ऐक्य होने पर स्तुति असम्भव हो जाती है। '**देवी-पुराण**', ७।३३ में कहा है—

स्तोता त्वं च स्तुतिस्त्वं च, वेत्ता त्वं वेदनी च त्वम्।
कोऽहं स्तोता स्तवः कस्य, क्रियते वाक्-प्रलापनम्॥

अर्थात् हे माता! तुम्हीं स्तोता हो, तुम्हीं स्तुति; तुम्हीं ज्ञाता हो, तुम्हीं जतानेवाली। स्तव करनेवाला मैं कौन और किसकी स्तुति? यह स्तव केवल वाक्-प्रपञ्च ही है।

स्वर्ग-मुक्ति-प्रदायिनी—भोग-मोक्ष-दात्री। सकाम भक्त को स्वर्ग और निष्काम को मोक्ष।

स्तुतये का वा भवन्तु परमोक्तयः—देवी निर्गुणा, निराकारा, ब्रह्म-स्वरूपा हैं, अतः वाक्य व मन से परे हैं। ऐसी **देवी की स्तुति** करना सम्भव नहीं है। देवी को सगुणा, साकारा मानें, तो भी वे विश्व-व्यापिनी हैं। उनकी लीला इतनी विलक्षण है कि उसे स्तव में व्यक्त करना असम्भव है।

सर्वस्य बुद्धि-रूपेण, जनस्य हृदि संस्थिते!
स्वर्गापवर्गदे देवि! नारायणि! नमोऽस्तु ते॥८॥

अर्थ—सभी लोगों के हृदय में बुद्धि-रूप से विराजमाने, स्वर्ग व मोक्ष-प्रदे, हे **देवि नारायणि!** तुम्हें प्रणाम।

व्याख्या—**बुद्धि-रूपेण**—निश्चयात्मक ज्ञान को बुद्धि कहते हैं (**नागो जी**)। बुद्धि दो प्रकार की होती है—**१ व्यवसायात्मिका, २ अव्यवसायात्मिका**। पहली बुद्धिवाले **जगदम्बा** को ही जीवन का एक-मात्र आश्रय मानकर उन्हीं के ध्यान में लगे रहते हैं और **मोक्ष**-लाभ करते हैं। दूसरी बुद्धिवाले **सुख-भोग-कामना** से **सकाम अनुष्ठान** करते रहते हैं और **स्वर्ग** को प्राप्त करते हैं। **देवी** इस **द्वि-विधा बुद्धि** के रूप में सभी जीवों के हृदय में रहती हैं।

'**देवी-भागवत**', १।१।१ में **देवी-गायत्री-मन्त्र** है—'**ॐ सर्व-चैतन्य-रूपां तामाद्यां विद्यां च धीमहि, बुद्धिं या नः प्रचोदयात्।**' अर्थात् जो हमारी बुद्धि को प्रेरित करती हैं, उन **सर्व-चैतन्य-रूपिणी आद्या** का मैं ध्यान करता हूँ।

वहीं (१२।१४।२७) **गायत्री का प्रणाम-मन्त्र है—'ॐ सच्चिदानन्द-रूपां तां गायत्री-प्रतिपादितां, नमामि ह्रीं-मयीं देवीं धियो या नः प्रचोदयात्।'**

नारायणी—'नारायणस्य विष्णोः शक्तिर्नारायणी। यद्वा नारस्य जीव-समूहस्य अयनी स्थान-भूता तद्-रूपा अर्थात् **नारायणी** या **विष्णु की शक्ति।** अथवा जीवों की आश्रय-रूपिणी **(नागो जी)**। **'महा-भारत'** के अनुसार **'नर'** या **'ब्रह्म'** से उत्पन्न तत्त्वों को **'नार'** कहते हैं। वे तत्त्व ही जिसका **'अयन'** (आश्रय) हैं, वह **नारायण** कहलाता है। **'मनुस्मृति'** १/१० में कहा है कि **'नर'** से सर्व-प्रथम उत्पन्न जल को **'नार'** कहते हैं। जल का आश्रय लेने से परमात्मा का नाम **'नारायण'** है। **'ब्रह्म-वैवर्त-पुराण'** के अनुसार **'नर'** अर्थात् जीव-मात्र का आश्रय होने से भगवान् को **'नारायण'** कहते हैं। **'देवी-पुराण'** में लिखा है—**'जलायना नराधारा समुद्र-शयनाऽपि वा नारायणी समाख्याता नर-नारी-प्रवर्तिका।'** अर्थात् **भगवती 'नर'** या जल अथवा **नर-समूह की आश्रय** हैं किंवा समुद्र उनकी शय्या है, अतः वे **'नारायणी'** कहलाती हैं। **वे नर-नारी की सृष्टि-कारिणी** हैं।

'ब्रह्म-वैवर्त पुराण', प्रकृति-खण्ड, ५७।९ में कहा है—**'यशसा तेजसा रूपैर्नारायण-समा गुणैः, शक्तिर्नारायणस्येयं तेन नारायणी स्मृता'** अर्थात् यश, तेज, रूप व गुणों द्वारा नारायण के समान होने से **नारायण की शक्ति 'नारायणी'**-नाम से विख्यात हैं।

'देवी-भागवत', १।२०।६६ के अनुसार **'सुपार्श्व'** नामक पीठ-स्थान में **भगवती नारायणी-**स्वरूप में विराजमान हैं।

कला - काष्ठादि - रूपेण, परिणाम - प्रदायिनि!
विश्वस्योपरतौ शक्ते! नारायणि! नमोऽस्तु ते॥९॥

अर्थ—**कला, काष्ठा** आदि काल-विभागों के रूप में रूपान्तर का विधान करनेवाली, विश्व के संहार में समर्था हे **नारायणि!** तुम्हें प्रणाम।

व्याख्या—इस श्लोक में **'काल-रूपिणी देवी'** की स्तुति है।

कला-काष्ठादि-रूपेण—१८ निमेष = **१ काष्ठा**, ३० काष्ठा = **१ कला**। 'आदि'-शब्द से **क्षण, मुहूर्त्त** आदि का बोध होता है **(नागो जी)**। **'काल'** नित्य पदार्थ है। इसका आदि, मध्य, अन्त नहीं है। सूर्य की गति के अनुसार इसके शेष विभाग हैं—२० कला = **मुहूर्त्त,** ३० मुहूर्त्त = **अहोरात्र**, १५ अहोरात्र = **पक्ष**, २ पक्ष = **मास**, २ मास = **ऋतु**, ३ ऋतु = **अयन**, २ अयन = **वत्सर**, १२ वत्सर = **युग**। **'निमेष'** उतने समय को कहते हैं, जो लघु स्वर के उच्चारण में लगता है। **'निमेष'** से भी सूक्ष्म **'काल'** तीन कोटियों में विभक्त है—**लव, स्यन्द** और **त्रुटि।**

परिणाम-प्रदायिनि—(१) **'परिणाम'-**शब्द का अर्थ है प्राणी की काया व अवयवों के उपचय-लक्षणों की वृद्धि, इसे देनेवाली **(शान्तनवी)**। (२) **'परिणाम'-**शब्द से यहाँ जीव के **षड्-विध विकारों** का बोध होता है। **१ जन्म, २ अस्तित्व, ३ वृद्धि, ४ विपरिणाम, ५ अपक्षय, ६ विनाश**—ये **छः विकार** हैं **(गुप्तवती)**।

विश्वस्योपरतौ शक्ते—(१) **विश्वस्य-उपरतौ विनाशे शक्ते निपुणे** अर्थात् काल-रूप में तुम सारे विश्व का ध्वंस करने में समर्थ हो (**तत्त्व-प्रकाशिका**)। (२) '**शक्त**' के स्थान पर '**सक्त**' पाठ भी मिलता है—'**सक्ते आसक्ते प्रवृत्त इति यावत्**' अर्थात् तुम काल-रूप में सारे जगत् के संहार में प्रवृत्त हो (**चतुर्धरी**)।

सर्व-मङ्गल-मङ्गल्ये! शिवे! सर्वार्थ-साधिके!
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि! नारायणि! नमोऽस्तु ते॥१०॥

अर्थ—सब मङ्गलों की मङ्गल-रूपिणी, कल्याण-मयि, सारे अभीष्टों को पूर्ण करनेवाली, **त्रि-नयने, हे गौरि, हे नारायणि!** तुम्हें प्रणाम।

व्याख्या—देवी काल-रूप में केवल **संहार-कारिणी** ही नहीं हैं, वे सभी मङ्गलों की हेतु-भूता **पालन-कर्त्री** भी हैं। इस श्लोक में उनके **मङ्गल-स्वरूप** की स्तुति है।

सर्व-मङ्गल-मङ्गल्ये—(१) **सर्व-मङ्गलानां मङ्गल-स्वरूपे** (नागो जी), (२) **मङ्गलमेव मङ्गल्यं, सर्वेषां मङ्गलानां मङ्गल-हेतूनां मङ्गल-जनन-शक्ति-रूपा**, (३) '**सर्व-मङ्गल-माङ्गल्ये**' पाठ की *व्याख्या*—**सर्वेषां मङ्गलादीनां यन्माङ्गल्यं मङ्गल-स्वभावः तद्-रूपे। मङ्गलानामपि मङ्गलं त्वमेव इत्यर्थः** (चतुर्धरी)।

'**मङ्गल' के साधन** आठ हैं—**१ ब्राह्मण, २ गो, ३ अग्नि, ४ स्वर्ण, ५ घृत, ६ सूर्य, ७ जल, ८ राजा**। '**अत्रि स्मृति**' में '**मङ्गल**'-शब्द का तात्पर्य बताया है—**प्रशस्ताचरणं नित्यमप्रशस्त-विवर्जनं, एतद्धि मङ्गलं प्रोक्तमृषिभिर्ब्रह्म-वादिभिः**' अर्थात् सदा श्रेष्ठ कर्म करना और अधर्म कर्मों का त्याग करना—यही '**मङ्गल**' है।

सर्व-मङ्गला—'**ब्रह्म-वैवर्त पुराण**', **प्रकृति-खण्ड** में इस नाम की व्याख्या दी है—

मङ्गलं मोक्ष-वचनं, चा-शब्दो दातृ-वाचकः।
सर्वान् मोक्षान् या ददाति, सा एव सर्व-मङ्गला॥
हर्षे सम्पदि कल्याणे, मङ्गलं परिकीर्तितम्।
तांस्तु ददाति या देवी, सा एव सर्व-मङ्गला॥

'**मङ्गल**' अर्थात् मोक्ष, '**आ**' अर्थात् देनेवाली। जो **सब प्रकार की मुक्ति-रूपी मङ्गल** को देती हैं, उन्हीं को '**सर्व-मङ्गला**' कहते हैं। **हर्ष, सम्पदा** व **कल्याण** के अर्थ में '**मङ्गल**'-शब्द का प्रयोग है। इन सबको देनेवाली का नाम है '**सर्व-मङ्गला**'।

वर्द्धमान (बङ्गाल) में '**सर्व-मङ्गला' देवी** की विशेष मान्यता है। '**विष्णु-धर्मोत्तर**' में इनका स्वरूप बताया है—

चतुर्बाहुः प्रकर्तव्या, सिंहस्था सर्व-मङ्गला।
अक्ष-सूत्रं कजं दक्षे, शूल-कुण्डी-धरोत्तरे॥

अर्थात् **चतुर्भुजा, सिंह-वाहिनी सर्व-मङ्गला देवी** बाँएँ हाथों में **अक्ष-सूत्र** व **कमल** और दाएँ हाथों में **शूल** व **कमण्डलु** धारण किए हैं।

शिवा —'**सौभाग्य-भास्कर**' में **भास्कर राय** ने अनेक अर्थ बताए हैं— (१) '**वश कान्तौ शिवः स्मृतः इति! कान्तिरिच्छा। पर-शिवेच्छा-रूपा इत्यर्थः। इच्छा-रूपायाः शक्तेः शिवाधारकत्वात् इति भावः।**' अर्थात् '**वश**'-धातु से '**शिव**'-शब्द बना है। '**वश्**' का अर्थ है **कान्ति** या **इच्छा**। **परम शिव** की इच्छा-रूपिणी ही '**शिवा**' हैं, जिनकी आराधना **शिव** करते हैं। (२) **शिवं करोति इति वा**—जो '**शिव**' या **मङ्गल** करती हैं, वे हैं '**शिवा**'। (३) **शिवं मोक्षं ददाति इति शिवा**—मोक्ष देने से '**शिवा**' नाम है। '**देवी पुराण**', ३७।३ में भी कहा है—

शिवा मुक्तिः समाख्याता, योगिनां मोक्ष-गामिनी।
शिवाय यो जपेद् देवीं, शिवा लोके ततः स्मृता॥

अर्थात् '**शिवा**'-शब्द का अर्थ है मुक्ति। देवी योगियों को मोक्ष देती हैं। **शिव** (मुक्ति) के लिए **देवी की उपासना** की जाती है। इसी से उन्हें '**शिवा**' कहते हैं।

(४) **शिवाभेदा वा शिवा**—देवी **शिवा** से अभिन्ना हैं, अतः '**शिवा**' नाम है। '**लिङ्ग-पुराण**' में—

परमात्मा शिवः प्रोक्तः, शिवा सैव प्रकीर्तिता—अर्थात् '**शिव**' व '**शिवा**' एक ही हैं।

सर्वार्थ-साधिके—'**सर्वार्थान् धर्मार्थ-काम-मोक्षाख्यान् साधयति इति सर्वार्थ-साधिका**' अर्थात् **धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष**—इन सभी अभीष्टों को पूरा करनेवाली (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

शरण्ये—विष, अग्नि, घोर भय आदि से रक्षा करती हैं, अतः '**शरण्या**' नाम है।

त्र्यम्बके—(१) '**त्रीणि अम्बकानि नेत्राणि यस्याः सा त्र्यम्बका**' अर्थात् तीन नेत्रोंवाली। '**देवी-पुराण**' में कहा है—

सोम-सूर्यानलास्त्रीणि, यन्नेत्राण्यम्बकानि सा।
तेन देवी त्र्यम्बकेति, मुनिभिः परिकीर्तिता॥

चन्द्रमा, सूर्य व अग्नि—ये **देवी के तीन नेत्र**-स्वरूप हैं। इसी से उन्हें '**त्र्यम्बका**' कहते हैं।

(२) '**त्रयाणां ब्रह्म-विष्णु-रुद्राणां अम्बिका माता वा**' अर्थात् **ब्रह्मा, विष्णु** और **रुद्र**—इन तीनों की माता होने से देवी का नाम '**त्र्यम्बका**' है (**सौभाग्य-भास्कर**)।

(३) **त्रिभिः लोकैः देवैः ब्रह्म-विष्णु-शिवैः वा अम्ब्यते आश्रीयते असौ त्र्यम्बा स्वार्थे कः** अर्थात् **तीनों लोक** या **त्रि-देव ब्रह्मा-विष्णु-शिव देवी पर आश्रित** हैं, अतः वे '**त्र्यम्बका**' कहलाती हैं (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

(४) '**त्रयो अम्बाः वर्णाः अकारोकार-मकाराः प्रतिपादकाः यस्याः स्वार्थे कः**' अर्थात् तीन '**अम्ब**' अर्थात् वर्ण—**अ, उ, म** जिनके प्रतिपादक हैं या **प्रणव** द्वारा प्रतिपाद्या देवी का नाम '**त्र्यम्बका**' है (**दंशोद्धार**)।

गौरी—'**योग-वाशिष्ठ**' के अनुसार '**गौराङ्गी गौराङ्ग-देहत्वात्**' अर्थात् गौर अङ्गवाली होने से देवी का नाम '**गौरी**' है। '**पद्म-पुराण**' में बताया है कि '**गौरी**' **कान्यकुब्ज की पीठाधिष्ठात्री देवी** हैं। '**तन्त्रसार**' में इनका ध्यान दिया है—

हेमाभां विभ्रतीं दोर्भिर्दर्पणाञ्जन-साधने।
पाशांकुशौ सर्व-भूषां, तां गौरीं सर्वदा भजे॥

अर्थात् **स्वर्ण-वर्णा देवी गौरी** दो हाथों में **दर्पण** व **अञ्जन-शलाका** और अन्य दो हाथों में **पाश** व **अंकुश** लिए हैं तथा सभी प्रकार के आभूषण पहने हैं।

सृष्टि-स्थिति-विनाशानां, शक्ति-भूते सनातनि!
गुणाश्रये गुण-मये! नारायणि! नमोऽस्तु ते॥११॥

अर्थ—सृष्टि-स्थिति-विनाश की शक्ति-स्वरूपे, नित्ये, तीनों गुणों की आश्रय-भूते, त्रिगुण-मयि हे **नारायणि**! तुम्हें प्रणाम।

व्याख्या—**सृष्टि-स्थिति-विनाशानां शक्ति-भूते**—'**सृजतीति सृष्टिर्ब्रह्मा, स्थापयति, पालयतीति वा स्थितिर्विष्णुः, विनाशयतीति विनाशः शिवः, तेषां शक्तयः विसर्ग-पालन-विनाश-रूप-व्यापाराः तत्-स्वरूपे** अर्थात् देवी ही **ब्रह्मा** की **सृष्टि-शक्ति**, **विष्णु** की **स्थिति-शक्ति**, **शिव** की **संहार-शक्ति** हैं (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

शक्तिः—'**देवी भागवत**' ९।२।१० में इसकी व्याख्या दी है—

ऐश्वर्य-वचनः शश्च, क्तिः पराक्रम एव च।
तत्-स्वरूपा तयोर्दात्री, सा शक्तिः परिकीर्तिता॥

अर्थात् '**श**' ऐश्वर्य का, '**क्ति**' पराक्रम का बोधक है। इनके स्वरूपवाली व इन्हें देनेवाली '**शक्ति**'।

गुणाश्रये—(१) '**गुणानां महदादीनां आश्रय-भूते**' अर्थात् महद् आदि गुणों की आधार-भूते (**नागो जी**)। (२) **पुरुष-रूपे** (**दंशोद्धार**)।

गुण-मये—'**सत्त्वाद्यात्मक प्रकृति-रूपे**' अर्थात् सत्त्व, रजः व तमः—इन तीन गुणोंवाली प्रकृति-रूपिणी (**दंशोद्धार**)। (२) '**अगुण-मये**' पाठ लें, तो अर्थ होगा—'**अविद्यमान-गुण-कृत-विकारे**' अर्थात् निर्गुणे (**नागो जी**)। **परा-शक्ति** मात्र जड़ प्रकृति नहीं है। वह **प्रकृति** व **पुरुष** उभयात्मिका है।

शरणागत - दीनार्त - परित्राण - परायणे!
सर्वस्यार्त्ति-हरे देवि! नारायणि! नमोऽस्तु ते॥१२॥

अर्थ—हे **देवि!** तुम शरणापन्न दीन व दुःखी जनों की रक्षा करनेवाली और सबके दुःख दूर करनेवाली हो। हे **नारायणि**, तुम्हें प्रणाम।

व्याख्या—**शरणागत-दीनार्त्त-परित्राण-परायणे**—**दीनाः दारिद्र्याभिहताः, आर्त्ताः, रोगाद्यभिभूताः, शरणागताश्च, तेषां परित्राणं रक्षणं, तदेव परमयनं अभीष्टं यस्याः** अर्थात् शरण में आए दीन-दुखियों की रक्षा करना **जगदम्बा का स्वभाव** है (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

सर्वस्यार्त्ति-हरे—'**न केवलं शरणागतानां अपितु सर्वस्य आर्त्ति-हरा**' अर्थात् **जगदम्बा** न केवल शरण में आए भक्तों के अपितु सभी दुःखी जीवों के दुःख दूर करती हैं (**देवी-भाष्य**)।

मातृका-रूपिणी नारायणी की स्तुति

हंस-युक्त-विमानस्थे, ब्रह्माणी-रूप-धारिणि!
कौशाम्भः-क्षरिके देवि! नारायणि! नमोऽस्तु ते॥१३॥

अर्थ—हंस-युक्त विमान पर विराजमाने, कमण्डलु से जल छिड़कनेवाली **ब्रह्माणी**-रूप-धारिणि, हे **नारायणि!** तुम्हें प्रणाम।

व्याख्या—इस श्लोक से २१वें श्लोक तक के नौ श्लोकों में देवताओं ने भगवती के लीला-विग्रह **आठ मातृकाओं की स्तुति** की है।

कोशाम्भः-क्षरिके—(१) '**कुशं जलं तस्यायं कोशः कमण्डलुः, तदम्भसः क्षरिके सेचिके**' (नागो जी)। **कुश**—जल, **कौश**—कमण्डलु। (२) '**कुशस्य इदं अम्भः कौशाम्भः, कुश-मन्त्रितं जलं, तत् क्षरति इति**' अर्थात् **कुश द्वारा अभिमन्त्रित जल**, उसका सिञ्चन करनेवाली (**चतुर्धरी**)।

ब्रह्माणी—'**देवी-पुराण**' में कहा है कि '**ब्रह्माणी, ब्रह्म-जननाद् ब्रह्मणो जीवनेन वा**' अर्थात् **ब्रह्मा** को जन्म या जीवन देनेवाली। '**ललिता-सहस्त्रनाम**' में भी है—'**ब्रह्माणी ब्रह्म-जननी**'।

अष्टम अध्याय में १२वें श्लोक की व्याख्या में **ब्रह्माणी का पुराणोक्त ध्यान** दे चुके हैं। उनका तन्त्रोक्त ध्यान '**विश्वसार तन्त्र**' में निम्न प्रकार है—

दण्डं कमण्डलु-करमक्ष-सूत्राभयं तथा।
विभ्रती कनकच्छायां, ब्राह्मी कृष्णाजिनोज्ज्वला॥

'**पूर्व-कारणागम**', द्वादश पटल में—

चतुर्भुजा विशालाक्षी, तप्त-काञ्चन-सन्निभा।
वरदाभय-हस्ता च, कमण्डल्वक्ष-मालिका॥
हंस-ध्वजा हंसारूढा, जटा-मुकुट-धारिणी।
रक्त-पद्म-समासीना, ब्रह्माणी ब्रह्म-रूपिणी॥

ब्रह्माणी, वैष्णवी, रुद्राणी—इन तीनों के सम्बन्ध में '**कुब्जिका तन्त्र**', प्रथम पटल में बताया है कि वस्तुतः **सृष्टि, पालन** व **संहार**—ये कार्य क्रमशः ये ही तीनों करती हैं। **ब्रह्मा, विष्णु** व **रुद्र**—तीनों '**प्रेत**'-रूप हैं। शक्ति के निकल जाने पर वास्तव में सभी देवता जड़-वत् हो जाते हैं क्योंकि प्रकृति की सहायता के बिना वे अपना कार्य करने में समर्थ नहीं होते।

आद्या-शक्ति की ज्ञान-शक्ति ही '**ब्रह्माणी**', इच्छा-शक्ति ही '**वैष्णवी**' और क्रिया-शक्ति ही '**रुद्राणी**' या '**माहेश्वरी**' नाम से कही गई हैं। **ब्रह्माणी** आदि माताएँ **भगवती की विभूतियाँ** मात्र हैं।

त्रिशूल-चन्द्राहि-धरे, महा-वृषभ-वाहिनि!
माहेश्वरी-स्वरूपेण, नारायणि! नमोऽस्तु ते॥१४॥

अर्थ—**माहेश्वरी**-रूप में **त्रिशूल, चन्द्र-कला** व **सर्प-धारिणि, विशाल बैल** पर विराजमाने, हे **नारायणि!** तुम्हें प्रणाम।

व्याख्या—**माहेश्वरी**—'**कूर्म पुराण**' में स्वयं **महा-देव** कहते हैं—

एषा माहेश्वरी गौरी, मम शक्तिर्निरञ्जना।
शान्ता सत्या सदानन्दा, परं पदमिति श्रुतिः॥

अर्थात् यह '**माहेश्वरी**' मेरी ही शक्ति है, जो निर्मल, सत्य, आनन्द-मयी, परं पद है। '**पूर्व-कारणागम**' के अनुसार इनका ध्यान निम्न प्रकार है—

त्रि-नेत्रा शुक्ल-वर्णा च, शूल-पाणिर्वृष-ध्वजा।
वरदाभय-हस्ता च, साक्ष-माला-कराान्विता॥
जटा-मुकुटिनी शम्भोर्भूषणी सा माहेश्वरी॥

इनका पुराणोक्त ध्यान आठवें अध्याय के श्लोक १६ की व्याख्या में दिया है।

मयूर-कुक्कुट-वृते, महा-शक्ति-धरेऽनघे!
कौमारी-रूप-संस्थाने, नारायणि! नमोऽस्तु ते॥१५॥

अर्थ—**मोर** व **कुक्कुट** से वेष्टिते, **महा-शक्ति** नामक अस्त्र-धारिणि, निष्पापे, कौमारी-रूप में विराजमाने, हे **नारायणि**! तुम्हें प्रणाम।

व्याख्या—**मयूर-कुक्कुट-वृते**—(१) **देवी कौमारी** मोर की पूँछ से आवृत्त हैं अर्थात् पूँछ फैलाए हुए मोर पर बैठी हैं (**नागो जी**); (२) **मयूर** और **कुक्कुट** दोनों से वेष्टिता (**तत्त्व-प्रकाशिका**); (३) **कुक्कुट**-शब्द का अर्थ है श्रेष्ठ। **श्रेष्ठ मयूर** पर विराजमाना (**तत्त्व-प्रकाशिका**), (४) **मयूर**-व्यूहाकार एवं **कुक्कुट**-व्यूहाकार में सज्जित सैनिकों से वेष्टिता या कुक्कुट नामक अलङ्कार से सुशोभिता। **देवी कौमारी** मयूरासीना हैं और कुक्कुट नामक आभूषण पहने हैं (**शान्तनवी**)।

मयूर और **कुक्कुट** की पूजा **स्कन्द (सुब्रह्मण्य)** के आवरण-देवताओं के रूप में करने की विधि है। '**स्कन्द पुराण**' के अनुसार **स्कन्द** द्वारा मारे गए **शूर** व **पद्म** नामक असुर **मयूर** व **कुक्कुट** रूप धारण कर उनके **वाहन** व **ध्वज** बने; अन्य मत से **स्कन्द** को **गरुड़** ने **मयूर** और **अरुण** ने **कुक्कुट** दिया था। '**वायु पुराण**' में बताया है कि **स्कन्द** को **वायु-देव** ने वाहन-रूप में **मयूर** दिया था और **त्वष्टा** ने उन्हें खेलने हेतु **काम-रूपी कुक्कुट**।

कौमारी—देखें, ८।१७ की व्याख्या। '**अंशुमद् भेदागम**' में **कौमारी** का ध्यान—

चतुर्भुजा त्रिनेत्रा च, रक्त-वस्त्र-समन्विता।
सर्वाभरण-संयुक्ता, वाचिकाबद्धमाकुटी॥
शक्ति-कुक्कुट-हस्ता च, वरदाभय-पाणिनी।
मयूर-ध्वज-वाही स्याद्, उदुम्बर-द्रुमाश्रिता॥

'**विष्णु-धर्मोत्तर**' में—

कौमारी रक्त-वर्णा स्यात्, षड्-वक्त्रा सार्क-लोचना।
रवि-बाहुर्मयूरस्था, वरदा शक्ति-धारिणी॥
पताकां विभ्रती दण्डं, पात्रं वाणं च दक्षिणे।
वामे चापमथो घण्टां, कमलं कुक्कुटं त्वधः॥
परशुं विभ्रती तीक्ष्णं, तदधस्त्वभयान्विता॥

शङ्ख - चक्र-गदा - शार्ङ्ग - गृहीत - परमायुधे!
प्रसीद वैष्णवी-रूपे, नारायणि! नमोऽस्तु ते॥१६॥

अर्थ—**शङ्ख, चक्र, गदा** व **शृङ्ग** के बने **धनुष** या **शृङ्ग-मय मुष्टिवाले खड्ग** जैसे श्रेष्ठ अस्त्र-धारिणि, **वैष्णवी**-रूप में विराजमाने, हे **नारायणि**! तुम्हें प्रणाम।

व्याख्या—**वैष्णवी**—देखें, ८।१८ की व्याख्या। '**विश्वसार तन्त्र**' में **वैष्णवी** का ध्यान—

चक्रं घण्टां गदां खड्गं, विभ्रती सु-मनोहरा।
तमाल-श्यामला ध्येया, वैष्णवी शर्म-दायिनी॥

कल्याण-कारिणी, श्याम-वर्णा **वैष्णवी** चार भुजाओं में **चक्र, घण्टा, गदा, खड्ग** लिए हैं।

'**विष्णु-धर्मोत्तर**' के अनुसार **वैष्णवी** छः भुजावाली हैं—

वैष्णवी तार्क्ष्यस्था श्यामा, षड्-भुजा वन-मालिनी।
वरदा गदिनी दक्षे, विभ्रती चाम्बुज - स्रजम्॥
शङ्ख-चक्राभयान् वामे, सा चेयं विलसद्-भुजा॥

गरुड़-वाहना वैष्णवी के दाएँ तीन हाथों में **वर-मुद्रा, गदा, पद्म-माला** और बाँएँ तीन हाथों में **शङ्ख, चक्र, अभय-मुद्रा** हैं।

गृहीतोग्र-महा-चक्रे, दंष्ट्रोद्धृत-वसुन्धरे।
वराह-रूपिणि शिवे! नारायणि! नमोऽस्तु ते॥१७॥

अर्थ—भीषण महा-चक्र-धारिणि, अपनी दंष्ट्रा (दाँत) द्वारा पृथिवी का उद्धार करनेवाली, वराह-रूप धारिणि, मङ्गल-मयि, हे **नारायणि**! तुम्हें प्रणाम।

व्याख्या—**वाराही**—देखें, ८।१९ की व्याख्या। '**विश्वसार तन्त्र**' में **वाराही का ध्यान**—

मूषलं करवालं च, खेटकं तथा हलं। करैश्चतुर्भिर्वाराही, ध्येया काल-घनच्छविः॥

'**पूर्व-कारणागम**' के अनुसार **वाराही** का ध्यान—

कृष्णा पीताम्बरा शार्ङ्गी, सर्व-सम्पत्-करा नृणाम्।
पवित्रतालंकृतोपरस्का, पाद-नूपुर-संयुता॥
सव्येऽभय-हलं चैव, मूसलं वरमन्यके।
वराह-वक्त्री वाराही, यम-भूषण-भूषणी॥

अर्थात् **वाराही** वराह-मुखी, यम के समान भूषण व वाहन-युक्ता, कृष्ण-वर्णा, पीताम्बर-धारिणी, शार्ङ्ग (धनुष या खड्ग) धारिणी, भक्तों को सर्व-सम्पत्ति देनेवाली हैं। ये पवित्रा हैं, वक्षः स्थल-अलंकृता और पैरों में नूपुर-धारिणी हैं। दाहिने दोनों हाथों में **अभय-मुद्रा** व **हल** और बाँएँ दोनों हाथों में **मूसल** व **वर-मुद्रा** धारण किए हैं।

नृसिंह - रूपेणोग्रेण, हन्तुं दैत्यान् कृतोद्यमे!
त्रैलोक्य-त्राण-सहिते, नारायणि! नमोऽस्तु ते॥१८॥

अर्थ—भीषण **नृसिंह**-रूप से दैत्यों को मारने में प्रवृत्ते, तीनों लोकों की रक्षा के लिए कल्याण-कारिणि, हे **नारायणि!** तुम्हें प्रणाम।

व्याख्या—**त्रैलोक्य-त्राण-सहिते**—(१) '**त्रैलोक्य-त्राणाय सम्यक् हिते**' अर्थात् त्रैलोक्य रक्षा के लिए सबकी हित-कारिणी (**नागो जी**)। (२) '**त्रैलोक्य-त्राणं त्रैलोक्य-रक्षा तदुपाय-भूता मूर्तिरित्यर्थः, तत् सहिते तद्-युक्ते**' अर्थात् त्रैलोक्य-कारिणी स्वरूप से युक्ता (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

नारसिंही—८।२० की व्याख्या देखें।

किरीटिनि महा-वज्रे, सहस्र-नयनोज्ज्वले!
वृत्र-प्राण-हरे चैन्द्रि, नारायणि! नमोऽस्तु ते॥१९॥

अर्थ—मुकुट-धारिणि, महा-वज्र-धारिणि, सहस्र नेत्रों से दीप्ति-मयि, **वृत्रासुर** की प्राण-नाशिनि, **इन्द्र-शक्ति**-रूपिणि, हे **नारायणि**! तुम्हें प्रणाम।

व्याख्या—**वृत्र-प्राण हरे**—'**देवी-भागवत**' ६।५।६७-६८ में बताया है कि **भगवती परा-शक्ति** ने ही **वृत्रासुर** को मोहित किया और **महा-माया** ने समुद्र-फेन में प्रवेश किया, जिसके द्वारा **इन्द्र** वृत्रासुर को मारने में समर्थ हो सके। इसी से तीनों लोकों में सभी '**वृत्र-निहन्त्री**' कहकर **देवी की स्तुति** करते हैं, जब कि प्रत्यक्ष रूप में असुर का वध करने से **इन्द्र** का एक नाम '**वृत्रहा**' पड़ गया।

ऐन्द्री—(**इन्द्राणी**)—८।२१ की व्याख्या देखें। '**अंशुमद्-भेदागम**' में **इन्द्राणी** का ध्यान—

चतुर्भुजा त्रिनेत्रा च, रक्त-वर्णा किरीटिनी।
शक्ति-वज्र-धरा चैव, वरदाभय-पाणिनी॥
सर्वाभरण-संयुक्ता, गज-ध्वज-स-वाहिनी।
इन्द्राणी चेति विख्याता, कल्पद्रुम-समाश्रिता॥

अर्थात् **इन्द्राणी** त्रिनेत्रा, रक्त-वर्णा, गजासीना, मुकुट-धारिणी हैं। चार भुजाएँ हैं, जिनमें **शक्ति, वज्र, वर** व **अभय-मुद्रा** हैं। वे सभी आभूषणों से विभूषिता, गज-ध्वजावाली हैं और कल्प-वृक्ष के नीचे विराजमाना हैं।

'**विष्णु-धर्मोत्तर**' के अनुसार **ऐन्द्री** का ध्यान—

ऐन्द्री सहस्त्र-दृक् सौम्या, हेमाभा गज-संस्थिता।
वरदा सूत्रिणी वज्रं, विभ्रत्यूर्ध्वं तु दक्षिणे।
वामे तु कलशं पात्रं, त्वभयं तदधः करे॥

('**श्रीतत्त्व-निधि**' में '**वामे तु कमलं**' है)

अर्थात् **ऐन्द्री** सहस्त्र नेत्रोंवाली, सौम्या, स्वर्ण-वर्णा और गजासीना हैं। छः भुजाएँ हैं—दाहिनी तीन भुजाओं में नीचे से **वर-मुद्रा**, **सूत्र** व **वज्र** और बाँईं तीन भुजाओं में ऊपर से **कलश** (या **कमल**), **पात्र** व **अभय मुद्रा** हैं।

शिव-दूती-स्वरूपेण, हत-दैत्य-महा-बले!
घोर-रूपे महा-रावे, नारायणि! नमोऽस्तु ते॥२०॥

अर्थ—**शिव-दूती**-स्वरूप से दैत्यों की महा-सैन्य की विनाश-कारिणि, भीषण-रूपवाली, घोर-गर्जन-कारिणि, हे **नारायणि!** तुम्हें प्रणाम।

व्याख्या—'**यजुर्वेदीय रुद्राध्याय**' में **रुद्र** की दो शक्तियों के रूप में **शिव-दूती** व **चामुण्डा** का उल्लेख है। इसी प्रकार अन्य देवी-मूर्तियों का सङ्केत **श्रुति** में मिलता है (**देवी-भाष्य**)।

शिव-दूती—८।२८ की व्याख्या देखें। '**पद्म-पुराण**' के अनुसार **शिव-दूती पुष्कर तीर्थ की अधिष्ठात्री देवी** हैं। इनकी मूर्ति के लक्षण '**मत्स्य-पुराण**' में दिए हैं—

तथैवार्त्त-मुखी शुष्का, शुष्क-काया विशेषतः।
बहु-बाहु-युता देवी, भुजगैः परि-वेष्टिता॥
कपाल-मालिनी भीमा, तथा खट्वाङ्ग-धारिणी।
शिव-दूती तु कर्तव्या, शृगाल-वदना शुभा॥
आलीढासन-संस्थाना, तथा राजंश्चतुर्भुजा।
असृक्-पात्र-धरा देवी, खड्ग-शूल-धरा तथा॥
चतुर्थस्तु करस्तस्यास्तथा कार्यस्तु सामिषः॥

अर्थात् **शिव-दूती** शृगाल-मुखी हैं। मुख व्याकुल व सूखा है, शरीर भी सूखा व साँपों द्वारा लिपटा है। गले में कपाल-माला है। खट्वाङ्ग लिए हैं, **बहु-भुजा** या **चतुर्भुजा** हैं। आलीढासना हैं। चार भुजाओं में **रक्त-पात्र**, **खड्ग**, **शूल** व **मांस-खण्ड** लिए हैं (दाईं जानु सामने या आगे कर बाँईं जानु पीछे रखे, तो '**आलीढ़ासन**' होता है)।

'**श्री तत्त्व-निधि**' के अनुसार **शिव-दूती** का ध्यान—

वामाधो रक्त-पात्रं तदुपरि च गदां खेट-पाशौ दधानाम्।
दक्षैः पद्मं कुठारं तदुपरि च महा-खड्गमप्यंकुशम्॥
मध्याह्लार्क-प्रभाभां नव-मणि-विलसद्-भूषणामष्ट-हस्ताम्।
दूतीं नित्यां त्रि-नेत्रां सुर-गण-मुनिभिः स्तूयमानां भजेऽहम्॥

अर्थात् **शिव-दूती** दोपहर के सूर्य के समान उज्ज्वल कान्ति-मयी, त्रिनेत्रा व अष्ट-भुजा हैं। बाँईं चार भुजाओं में नीचे से **रक्त-पात्र, गदा, खेटक** व **पाश** और दाईं चार भुजाओं में नीचे से **पद्म, कुठार, खड्ग** व **अंकुश** लिए हैं। नव-रत्न-जटित भूषणों से वे अलंकृता और देवों व मुनियों द्वारा संस्तुता हैं।

दंष्ट्रा कराल-वदने, शिरो-माला-विभूषणे!
चामुण्डे मुण्ड-मथने, नारायणि! नमोऽस्तु ते॥२१॥

अर्थ—भीषण दाँतों द्वारा भयानक मुखवाली, मुण्ड-माला-विभूषिते, मुण्डासुर-नाशिनि, **चामुण्डे**, हे **नारायणि**! तुम्हें प्रणाम।

व्याख्या—७।२७ की व्याख्या देखें। **'वराह-पुराण'**, ९६।६७ के अनुसार तमो-गुण-युता **रुद्र-शक्ति** ही **चामुण्डा**-नाम से ख्यात हैं। वे ही संसार में असंख्य प्रकार की भयङ्करी मूर्तियों को धारण कर विराजमान हैं—

नव-कोट्यस्तु चामुण्डा, भेद-भिन्ना व्यवस्थिता।
या रौद्री तामसी शक्तिः, सा चामुण्डा प्रकीर्तिता॥

'अग्नि-पुराण' में **चामुण्डा** का ध्यान—

चामुण्डा कोटराक्षी स्यान्निर्मांसा तु त्रिलोचना।
निर्मांसा अस्थि-सारा वा, ऊर्ध्व-केशी कृशोदरी॥
द्वीपि-चर्म-धरा वामे, कपालं पट्टिशं करे।
शूलं कर्त्री दक्षिणेऽस्याः, शवारूढाऽस्थि-भूषणा॥

अर्थात् **चामुण्डा** के तीन नेत्र कोटरों में धँसे हैं, देह में मांस नहीं है केवल हड्डियाँ ही हैं, केश खड़े हैं, पेट पचका है, व्याघ्र-चर्म पहने हैं, बाँएँ हाथ में **कपाल** व **पट्टिश** और दाएँ में **शूल** व **छुरी** हैं, **शवासीना** हैं और **अस्थि के आभूषण** धारण किए हैं।

'अंशुमद्-भेदागम' में **चामुण्डा** का ध्यान—

चतुर्भुजा त्रि-नेत्रा च, रक्त-वर्णोर्ध्व-केशिका।
कपाल-शूल-हस्ता च, वरदाभय-पाणिनी॥
शिरोमालोपवीता च, पद्म-पीठोपरि-स्थिता।
व्याघ्र-चर्माम्बर-धरा, वट-वृक्ष-समाश्रिता॥
चामुण्डा-लक्षणं ह्येवमेक-वेरे च तत्-समम्।
वाम-पाद-स्थिताः सर्वाः, सव्य-पाद-प्रलम्बिताः॥

अर्थात् **चामुण्डा** चतुर्भुजा, त्रिनेत्रा व रक्त-वर्णा हैं। केश खड़े हैं। हाथों में **कपाल, शूल, वर** व **अभय-मुद्रा** हैं। यज्ञोपवीत के समान **मुण्ड-माला** है, **पद्मासना** हैं। व्याघ्र-चर्म पहने वट-वृक्ष के नीचे विराजमाना हैं।

'**विष्णु-धर्मोत्तर**' के अनुसार **चामुण्डा** का ध्यान—

चामुण्डा प्रेतगा रक्ता, विकृतास्याऽहि-भूषणा।
दंष्टोग्रा क्षीण-देहा च, गर्त्ताक्षी भीम-रूपिणी॥
दिग्-बाहुः क्षाम-कुक्षिश्च, मुसलं कवचं शरम्।
अंकुशं विभ्रती खड्गं, दक्षिणे त्वथ वामतः॥
खेटं पाशं धनुर्दण्डं, कुठारं चेति विभ्रती॥

अर्थात् **चामुण्डा** शवासना, रक्त-वर्णा, घोर-मुखी, सर्प-भूषणा व तीक्ष्ण-दंष्ट्रा हैं। क्षीण-देहा, कोटराक्षी, भयङ्करी व कृशोदरा हैं। **दश-भुजा** हैं, बाँईं पाँच भुजाओं में **मूशल, कवच, वाण, अंकुश** व **खड्ग** और दाईं पाँच भुजाओं में **खेटक, पाश, धनुष, दण्ड** व **कुठार** हैं।

नारायणी के लक्ष्मी, सरस्वती आदि रूप-भेद

लक्ष्मि लज्जे महा-विद्ये, श्रद्धे पुष्टि-स्वधे ध्रुवे!
महा-रात्रि महा-माये, नारायणि! नमोऽस्तु ते॥२२॥

अर्थ—हे **नारायणि**! तुम्हीं **लक्ष्मी, लज्जा, महा-विद्या (ब्रह्म-विद्या), श्रद्धा, पुष्टि, स्वधा, ध्रुवा (नित्या), महा-रात्रि (प्रलय)** और **महा-अविद्या-स्वरूपिणी** हो। तुम्हें प्रणाम।

व्याख्या—इस मन्त्र और आगे के मन्त्र में **भगवती नारायणी** के **लक्ष्मी, लज्जा** आदि रूपों का उल्लेख करते हुए उनमें से प्रत्येक के प्रति और इन विभूतियों की आधार-स्वरूपिणी के प्रति प्रणाम किया गया है। इससे **भगवती के अनन्त ऐश्वर्य और सर्वात्मक स्वरूप का बोध** होता है।

लक्ष्मी—'**ऋग्वेदोक्त-श्रीसूक्ताभिहित-स्वरूपा, श्री-वीज-रूपा वा**' अर्थात् **ऋग्वेद** के **श्री-सूक्त** में वर्णित **श्री** या **लक्ष्मी** अथवा **श्री-वीज** 'श्रीं'-रूपा **(देवी-भाष्य)**।

'**सौभाग्य-लक्ष्मी उपनिषद्**' में **श्री देवी** का ध्यान—

अरुण-कमल-संस्था, तद्-रजः-पुञ्ज-वर्णा।
कर-कमल-धृतेष्टाऽभीति-युग्माम्बुजा च॥
मणि - कटक - विचित्रालंकृताकल्प - जालैः।
सकल-भुवन-माता, सन्ततं श्रीः श्रियै नः॥१॥

अर्थात् जो रक्त-कमल पर बैठी हैं, उस कमल के पराग-समूह जैसी आभावाली हैं, चार हाथों में **वर, अभय** व **एक-एक कमल** लिए हैं, मणि-मय कटकादि सुन्दर आभूषणों से सुशोभिता हैं, वे **जगदम्बा श्री-देवी** सदा हमें ऐश्वर्य से सम्पन्न करें।

भूयाद्-भूयो द्वि-पद्माभय-वरद-करा तप्त-कार्त्तस्वराभा,
शुभ्राभ्राभेभ - युग्म - द्वय - कर - धृत - कुम्भाद्भिरासिञ्च्यमाना।
रक्तौघाबद्ध-मौलि - विमल-तर-दुकूलार्त्तवालेपनाढ्या,
पद्माक्षी पद्म-नाभोरसि कृत-वसतिः पद्मगा श्रीः श्रियै नः॥२॥

अर्थात् जो चार हाथों में **कमल, अभय** व **वर-मुद्रा** लिए हैं, तप्त-स्वर्ण जैसी आभावाली हैं। शुभ्र मेघ जैसे दो हाथी एक-एक ओर खड़े होकर सूँड़ में लिए कुम्भ के जल द्वारा जिनके मस्तक की केश-राशि निबद्ध है, जो क्षौम वस्त्र पहने हैं, रक्त-वर्ण के आलेपन से जो विभूषिता हैं, **कमल-नयना** हैं, **विष्णु के वक्षःस्थल पर विराजमाना** हैं, **कमलासीना** हैं, वे **श्री-देवी** हमें सम्पद्-दायिनी हों।

'देवी-भागवत', ९।१।२२-२८ में लिखा है कि **शुद्ध-सत्त्व-स्वरूपा लक्ष्मी** सभी सम्पत्तियों की अधिष्ठात्री देवता हैं। स्वर्ग में वे **स्वर्ग-लक्ष्मी**, राज-महल में **राज-लक्ष्मी**, गृहस्थों के घर में **गृह-लक्ष्मी** हैं।

'मत्स्य-पुराण', २६१।४०-४६ में **द्वि-भुजा लक्ष्मी देवी** का वर्णन है—

श्रियं देवीं प्रवक्ष्यामि, नवे वयसि संस्थिता।
सु-यौवनां पीन-गण्डां, रक्तोष्ठीं कुञ्चित-भ्रुवम्॥
नाग-हस्तौपमौ बाहू, केयूर-कटकोज्ज्वलौ।
पद्मं हस्ते प्रदातव्यं, श्री - फलं दक्षिणे भुजे॥
पार्श्वे तस्या स्त्रियः कार्याश्चामर-व्यग्र-पाणयः।
पद्मासनोपविष्टा तु, पद्म-सिंहासन-स्थिता॥
करिभ्यां स्नाप्यमानासौ, भृङ्गाराभ्यामनेकशः।
प्रक्षालयन्तौ करिणौ, भृङ्गाराभ्यां तथाऽपरौ॥

इस ध्यान के अनुसार **श्री-देवी** एक हाथ में **कमल**, दूसरे में **श्री-फल** (नारियल) लिए हैं। बगल में खड़ी स्त्रियाँ चँवर डुला रही हैं। वे कमल-सिंहासन पर पद्मासन से बैठी हैं। चार हाथियों द्वारा उनका प्रक्षालन किया जाता है।

'तन्त्रसार' में चतुर्भुजा और **'अंशुमद्-भेदागम'** में **द्वि-भुजा लक्ष्मी देवी** के ध्यान हैं। इस सम्बन्ध में **'विष्णु-धर्मोत्तर'** में निर्देश है कि **भगवान् विष्णु** के सान्निध्य में **द्वि-भुजा** रूप का और स्वतन्त्र रूप में **चतुर्भुजा**-रूप का ध्यान करना चाहिए।

लज्जा—(१) **जुगुप्सित-करणे कुत्सा-रूपा, सन्मार्ग-प्रवृत्ति-रूपा।** (२) शक्ति का विशेष-रूप (**तत्त्व-प्रकाशिका**), (३) लज्जा-वीज **'ह्रीं'**-रूपा।

'देवी-भागवत', ९।१।११३ में **लज्जा देवी** को **परमा प्रकृति** की कला या अंश-विशेष बताया है।

शान्तिर्लज्जा च भार्ये द्वे, सुशीलस्य च पूजिते।
याभ्यां विना जगत् सर्वमुन्मत्तमिव नारद!॥

अर्थात् **शान्ति** व **लज्जा**—ये सुशील की दो पत्नियाँ हैं, जिनके बिना संसार उन्मत्त-जैसा हो जाता है।

तन्त्रों में **१६ स्वर-वर्णों की सोलह अधिष्ठात्री स्वर-शक्तियाँ** बताई हैं। उनमें से एक **'लज्जा'** है। ये सभी शक्तियाँ विद्युत् जैसी आभावाली हैं और हाथों में **कमल** व **अभय-मुद्रा** धारण करती हैं।

महा-विद्या—(१) **महद्-ब्रह्म, तत्-प्राप्ति-हेतुर्विद्या उपनिषद्-रूपा** अर्थात् जिस विद्या द्वारा महत् अर्थात् **ब्रह्म का साक्षात्कार** हो, उसे **महा-विद्या** या **उपनिषद्** कहते हैं (**चतुर्धरी**)।

(२) **महा-विद्या मुक्ति-लक्षणा, ब्रह्माभिन्नां जगद् इति अद्वैत-भावना** अर्थात् **ब्रह्म** व **जगत्** अभिन्न हैं—इस **अद्वैत-भावना** द्वारा जीव को मुक्ति मिलती है। यह **मुक्ति-दायिनी विद्या** ही **महा-विद्या** है (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

'रूप-मण्डन' में **महा-विद्या** का स्वरूप वर्णित है—

एक-वक्त्रा चतुर्हस्ता, मुकुटेन विराजिता।
प्रभा-मण्डल-संयुक्ता, कुण्डलान्वित-शेखरा॥
अक्षाब्ज-वीणा-पुस्तकं, महा-विद्या प्रकीर्तिता॥

अर्थात् **देवी महा-विद्या** एकानना, चतुर्भुजा हैं। चार भुजाओं में **अक्ष-माला, पद्म, वीणा** व **पुस्तक** लिए हैं। ज्योतिर्मण्डल, मुकुट व कुण्डल से सुशोभिता हैं।

(३) **काली-तारादि दश-महा-विद्या**-रूपिणी। **१ काली, २ तारा, ३ षोडशी, ४ भुवनेश्वरी, ५ भैरवी, ६ छिन्नमस्ता, ७ धूमावती, ८ वगला, ९ मातङ्गी, १० कमला**—इनका विशेष विवरण **'दश-महा-विद्या तन्त्र'** में द्रष्टव्य है (सम्पादक)।

श्रद्धा—(१) आस्तिक्य-बुद्धि (**नागो जी**)। (२) वेदार्थ में दृढ़ विश्वास-रूपा (**तत्त्व-प्रकाशिका**)। **'गुरु-वेदान्त-वाक्येषु विश्वासः श्रद्धा'** अर्थात् गुरु-वचनों व वेदान्त-वाक्यों में दृढ़ विश्वास ही श्रद्धा है (**वेदान्त-सार**)।

'गीता', ४।४० में **भगवान्** ने कहा है कि श्रद्धावान् ही वह ज्ञान प्राप्त कर पाता है, जिससे परम शान्ति मिलती है। **'यजुर्वेद'**, १९।३० में कहा है—**'श्रद्धया सत्यमाप्यते'** अर्थात् श्रद्धा से सत्य की उपलब्धि होती है। **'ऋग्वेद'** के दशम मण्डल का १५१वाँ सूक्त **'श्रद्धा-सूक्त'** नाम से विख्यात है, जिसकी देवता **'श्रद्धा देवी'** हैं। इसके अतिरिक्त **'ऋग्वेद'** के षष्ठ, सप्तम व नवम मण्डल में स्थान-स्थान पर **'श्रद्धा'** की कथा है। यज्ञानुष्ठान के पूर्व वैदिक ऋषि **'श्रद्धा देवी'** के शरणागत होते थे। चित्त को श्रद्धा-मय करने के लिए **'ऋग्वेद'**, १०।१५१।५ के निम्न मन्त्र मननीय हैं—

श्रद्धां प्रातर्हवामहे। श्रद्धां माध्यन्दिनं परि।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रूचि। श्रद्धे! श्रद्धापयेह नः॥

अर्थात् हम प्रातः-काल **श्रद्धा** का आवाहन करते हैं। मध्याह्न-काल में हम **श्रद्धा** का आवाहन करते हैं। अस्ताचल-गामी सूर्य के समय हम **श्रद्धा** का आवाहन करते हैं। हे **श्रद्धे!** हमें श्रद्धा-युक्त करो।

'देवी-भागवत', ९।१।१२३ में **'श्रद्धा'** को **परमा प्रकृति की कला** बताया है। कहा है कि **'श्रद्धा'** और **'भक्ति'** वैराग्य की दो पत्नियाँ हैं। जिनकी कृपा से जीवन्मुक्ति मिलती है। **'पद्म-पुराण'**, सृष्टि-खण्ड के अनुसार **कपाल-मोचन तीर्थ** में **सावित्री 'श्रद्धा देवी'** के नाम से पूजी जाती हैं।

तन्त्रों में १६ काम-कलाओं में 'श्रद्धा' को पहला स्थान प्राप्त है। यथा—**१ श्रद्धा, २ प्रीति, ३ रति, ४ भूति, ५ कान्ति, ६ मनोभवा, ७ मनोहरा, ८ मनोरमा, ९ मदना, १० उत्पादिनी, ११ मोहिनी, १२ दीपनी, १३ शोधना, १४ वशङ्करी, १५ रजनी, १६ प्रिय-दर्शिनी।**

पुष्टि—'देवी-भागवत', ९।११।१०१ में **'पुष्टि'** को प्रकृति की एक कला बताया है। कहा है कि **गणेश की पत्नी 'पुष्टि'** हैं, जिनके बिना प्राणी क्षीण हो जाते हैं। **'पद्म-पुराण'** के अनुसार **देवदारु-वन की अधिष्ठात्री 'पुष्टि देवी'** हैं।

स्वधा—वृहदारण्यक उपनिषद्, ५।८१ के अनुसार धेनु-स्वरूपिणी **वाग्-देवी** अपने **'स्वाहा'**-कार व **'वषट्-कार'** थनों से देवों का, **'स्वधा'**-कार थन से **पितरों** का और **'हन्त'-कार** थन से **मनुष्यों** का पोषण करती हैं।

'सप्तशती', प्रथम अध्याय के **'रात्रि-सूक्त'** में **ब्रह्मा** द्वारा **महा-माया** का एक नाम **'स्वधा'** बताया गया है।

'देवी-भागवत', ९।१।९९ के अनुसार **'स्वधा देवी'** प्रकृति की एक कला हैं। वे **पितृ-गण की पत्नी** हैं, जिनके बिना पितृ-गण दान स्वीकार नहीं करते।

ध्रुवा—(१) नित्या **(तत्त्व-प्रकाशिका)**, (२) प्रणव-स्वरूपा **(देवी-भाष्य)**, (३) शाश्वती, ब्रह्म-रूपा **(शान्तनवी)**।

महा-रात्रि—(१) हे महा-रात्रि! **'शान्तनवी'** टीका में पाठान्तर—**'महा-रात्रे'**।

(२) प्रलय-लक्षणा रात्रि **(तत्त्व-प्रकाशिका)**।

(३) कल्पान्त में प्रलयात्मिका रात्रि **(दंशोद्धार)**। **'ब्रह्म-वैवर्त पुराण'**, प्रकृति-खण्ड, अध्याय ५ में बताया है कि **ब्रह्मा का लय** होने पर जो **महा-कल्प** होता है, उसे **'महा-रात्रि'** कहते हैं।

(४) **'रात्रिरिव रात्रिः अविद्या, महती सर्व-व्यापिनी, सा चासौ चेति' (तत्त्व-प्रकाशिका)। महा-रात्रिरिति सर्व-प्राणि-मोह-करी देवी एव उच्यते'** अर्थात् **'रात्रि'**-शब्द **अविद्या** का बोधक है। जो सब प्राणियों को मोहित करती है, वह महती **अविद्या**-रूपिणी देवी ही **'महा-रात्रि'** नाम से ख्यात हैं **(शान्तनवी)**।

(५) **'रात्रि-सूक्तोक्त-रूपा मोह-हेतुत्वेन रात्रि-तुल्यतया परमात्म-साहित्येन महत्त्वाच्च महा-रात्रि-शब्देन दुर्गाभिधीयते'** अर्थात् **'महा-रात्रि' दुर्गा का नाम** है **(देवी-भाष्य)**। **रात्रि-सूक्त (ऋग्वेद, १०।१२१)** में इनका स्वरूप वर्णित है। **'देवी-पुराण'**, १६।३० में भी कहा है—

काल-रात्रिर्महा-रात्री, भद्र-काली कपालिनी।

चामुण्डा चण्डिनी चण्डी, चण्ड-मुण्ड-विनाशिनी॥

(६) **तन्त्रों** के अनुसार आधी रात के बाद के दो मुहूर्त्त का काल '**महा-रात्रि**' कहलाता है। यह अत्यन्त पुण्य-मय काल है, इसमें किए गए जप, दानादि कर्म अक्षय होते हैं।

महाऽविद्या—'**महती अविद्या सर्वावरण-समर्थो महा-मोहः तद्-रूपे**' अर्थात् भगवती ही अविद्या-रूप से जीवों के आत्म-चैतन्य को आवृत कर मोह में डालती हैं (**नागो जी**)। '**कालिका-पुराण**', ५।२५ में कहा है—

एका त्वं द्विविधा भूत्वा, मोक्ष-संसार-कारिणी।

विद्याऽविद्या-स्वरूपेण, स्व-प्रकाशा प्रकाशतः॥

'**शान्तनवी टीका**' में पाठान्तर है—'**महा-माये**'।

मेधे सरस्वति वरे, भूति बाभ्रवि तामसि!

नियते त्वं प्रसीदेशे, नारायणि! नमोऽस्तु ते॥२३॥

अर्थ—**मेधा-रूपिणि, सरस्वति, श्रेष्ठे**, सत्त्व-गुण-मयि, रजोगुण-मयि, तमोगुण-मयि, नियति-रूपे, **ईश्वरि!** तुम प्रसन्न हो। हे **नारायणि!** तुम्हें प्रणाम।

व्याख्या—**मेधा**—(१) धारणा-वती बुद्धि (**नागो जी**)। '**अग्नि-पुराण**' में कहा है—'**धीर्धारणावती मेधा**'। (२) सकलार्थ की अवधारण-शक्ति (**तत्त्व-प्रकाशिका**)। (३) बहु-ग्रन्थ-धारण-शक्ति (**चतुर्धरी**)।

'**ऋग्वेद**' के खिलांश में दस ऋचाओंवाला '**मेधा-सूक्त**' है। '**मत्स्य-पुराण**' में **सरस्वती** के आठ रूपों में '**मेधा**' का उल्लेख है—

लक्ष्मीर्मेधा धरा पुष्टि, गौरी तुष्टिः प्रभा धृतिः।

एताभिः पाहि तनुभिरष्टाभिर्मां सरस्वति!॥

'**पद्म-पुराण**' के अनुसार **मेधा देवी काश्मीर में अधिष्ठिता** हैं। '**प्रपञ्चसार तन्त्र**', ७।९ में '**मेधा**' को **सरस्वती** की **नौ शक्तियों** में प्रमुख स्थान दिया है—

मेधा प्रज्ञा प्रभा विद्या, धीर्धृति-स्मृति-बुद्धयः।

विद्येश्वरीति सम्प्रोक्ता, भारत्याः नव-शक्तयः॥

'**शारदा-तिलक तन्त्र**', ६।११ की टीका में **श्री राघव भट्ट** ने इनका ध्यान लिखा है—

कृताञ्जलि-द्वय-करास्तत्-तदूर्ध्व-कर-द्वये।

दधत्यः पुस्तकं कुम्भं, श्वेतः सुन्दर-मूर्तयः॥

अर्थात् ये श्वेत-वर्णा, सुन्दर-मूर्ति, चतुर्भुजा हैं। नीचे के दो हाथ अञ्जलि-बद्ध हैं, ऊपर के दो हाथों में **पुस्तक** व **कुम्भ** हैं।

सरस्वती—**आचार्य यास्क** ने '**निरुक्त**' ग्रन्थ, २।२३ में '**सरस्वती**'- शब्द के दो अर्थ दिए हैं–**१ नदी-रूपा, २ देवता-रूपा। ऋग्वेद**, १।३।१३ मन्त्र के भाष्य में **सायण** ने भी लिखा है–

द्वि-विधा हि सरस्वती, विग्रह-वद्-देवता नदी-रूपा।

ऋग्वेद के विभिन्न-मण्डलों में **सरस्वती** के अनेक मन्त्र मिलते हैं। कहीं **नदी-रूपा सरस्वती** की स्तुति है, तो कहीं **वाग्-देवी सरस्वती** की। प्रथम मण्डल के तृतीय सूक्त की १०, ११, १२ इन तीन ऋचाओं को '**सारस्वत तृच्**' कहते हैं।

'**सरस्वती-रहस्योपनिषद्**' में **सरस्वती-तत्त्व** व **साधन-पद्धति** वर्णित है। उसमें उनका **ध्यान** व **प्रणाम-मन्त्र** दिया है—

नीहार-हार-घनसार-सुधाकराभां, कल्याणदां कनक-चम्पक-दाम-भूषाम्।
उत्तुङ्ग-पीन-कुच-कुम्भ-मनोहराङ्गीं, वाणीं नमामि मनसा वचसा विभूत्यै॥

अर्थात् हिम, कर्पूर व चन्द्र के समान शुभ्र-वर्णा, स्वर्ण-चम्पक-माला से विभूषिता, पीनोन्नत-पयोधरा, मनोहर अङ्गोंवाली, कल्याण-दायिनी **सरस्वती** को विभूति-लाभ के लिए मन व वचन से प्रणाम करता हूँ।

अक्ष-सूत्रांकुश-धरा, पाश-पुस्तक-धारिणी।
मुक्ता-हार-समायुक्ता, वाचि तिष्ठतु मे सदा॥

अर्थात् **देवी सरस्वती** चार भुजाओं में **अक्ष-माला, अंकुश, पाश** व **पुस्तक** लिए हैं। मुक्ता-हार से विभूषिता देवी सदा मेरी वाणी में निवास करें।

'**देवी-भागवत**', नवें स्कन्ध, प्रथम अध्याय में बताया है कि सृष्टि के समय **परमा प्रकृति दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री** व **राधा**—इन पाँच स्वरूपों में प्रकट हुईं।

तन्त्रों में **सरस्वती** को मुख्यत: **पञ्चाशत्-वर्ण-मातृकाओं की अधिष्ठात्री भारती** या **वागीश्वरी** के रूप में निर्दिष्ट किया गया है। देखें, '**हिन्दी-तन्त्रसार**'।

भूति—हे भूति! (१) सत्त्व-प्रधाना (**नागो जी**)। (२) ऐश्वर्य-रूपा (**तत्त्व-प्रकाशिका**)। (३) '**शान्तनवी टीका**' में पाठान्तर है—'**भूते**'। (४) **तन्त्रों** के अनुसार '**भूति देवी**' सोलह काम-कलाओं में अन्यतमा हैं।

बाभ्रवी—'**मेदिनी कोष**' के अनुसार '**बभ्रु**'-शब्द के अर्थ हैं—**अग्नि, शिव, विष्णु, विशाल, नकुल** व **पिङ्गल-वर्ण**। टीका-कारों ने '**बभ्रु**' से बने '**बाभ्रवी**' शब्द के अर्थ विविध प्रकार से किए हैं—(१) रजो-गुण-युक्ता (**नागो जी**)। (२) हे **बाभ्रुवि वैष्णवि!** अथवा हे **माहेश्वरि!** अथवा हे **महति!** (**तत्त्व-प्रकाशिका**)। (३) **भूति, बाभ्रुवि** व **तामसि**—इन तीन सम्बोधनों से देवी के **सात्त्विकी, राजसी** व **तामसी** अर्थात् **गुणत्रयात्मिका-स्वरूप** का बोध होता है (**दंशोद्धार**)।

तामसी—(१) तमो-गुण-युक्ता (**नागो जी**)। (२) तमो-गुण-सम्बन्धिनी, जगत्-संहार-कारिणी (**शान्तनवी**)। (३) महा-काली (**देवी-भाष्य**)। (४) **परमेश्वरी महा-लक्ष्मी** ने

प्रलय-काल में सारे विश्व को शून्य देखकर केवल तमो-गुण द्वारा एक अन्य मूर्ति धारण की। यही '**तामसी**' या '**महा-काली**' हैं (**प्राधानिक रहस्य**)।

नियतिः—सम्बोधन में **नियते!** (१) प्राक्तन-कर्म-रूपिणी या दैव-रूपिणी (**तत्त्व-प्रकाशिका**)। (२) अदृष्ट-समष्टि-रूपा (**देवी-भाष्य**)। (३) विश्व-सृष्टि की कारण-भूता- '**कालः स्वर्भवो नियतिर्यदृच्छा**' (**श्वेताश्वतर**, १।२)। (४) पुण्य-पापात्मक कर्म (**शाङ्कर-भाष्य**)।

कुछ टीकाकार '**नियता**' शब्द के सम्बोधन-रूप में '**नियते**' का अर्थ इस प्रकार करते हैं—**नियता निश्चयात्मिका वृत्ति-रूपा** अथवा **नित्या**।

ईशा—(१) स्वामिनी (**शान्तनवी**)। (२) सकल-करण-समर्था (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

'**मेधे सरस्वति वरे**' (११।२३) के बाद कहीं-कहीं निम्न श्लोक अतिरिक्त मिलता है—

सर्वतः पाणि-पादान्ते! सर्वतोऽक्षि-शिरो-मुखे।
सर्वतः श्रवण-घ्राणे! नारायणि! नमोऽस्तु ते॥

'**तत्त्व-प्रकाशिका**' में इस श्लोक को '**अनार्ष**' बताया है क्योंकि यह मूल संहिता में नहीं है। केवल '**शान्तनवी**' टीका में इस श्लोक को मान्यता दी है और इसकी व्याख्या भी की है। यथा-

अर्थ—सर्वत्र हाथ, पैर व अङ्गोंवाली, सर्वत्र नेत्र, शिर व मुखवाली, सर्वत्र कान व नाकवाली, हे **नारायणि!** तुम्हें प्रणाम।

व्याख्या—इससे देवी की **सर्व-प्राणि-रूपता** का बोध होता है।

सर्वतः पाणि-पादान्ते—'**पाणयश्च वादाश्च पाणि-पादाम्। सर्वतः सर्वत्र पाणि-पादं अन्तः अवयवः यस्याः सा तथोक्ता**'—अर्थात् सर्वत्र तुम्हारे हाथ, पैर व अङ्ग विस्तृत हैं। इस प्रकार **नारायणी के विराट् रूप का वर्णन** है। '**श्रीभगवती-गीता**', ३।३१ में भी कहा है— '**सहस्त्र-शीर्ष-नयनं तथा कोटि-सूर्य-प्रतीकाशं विद्युत्-कोटि-सम-प्रभम्।**' अर्थात् **देवी की विराट् मूर्ति** के सहस्त्र मस्तक, सहस्त्र नेत्र, सहस्त्र पैर हैं। यह मूर्ति कोटि सूर्यों के समान प्रकाशमाना व कोटि बिजलियों के समान उज्ज्वला है। इत्यादि।

दुर्गा

सर्व - स्वरूपे सर्वेशे! सर्व - शक्ति - समन्विते!
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि! दुर्गे देवि! नमोऽस्तु ते॥२४॥

अर्थ—सर्व-स्वरूपवाली, सर्वेश्वरी, सर्व-शक्ति-सम्पन्ने, हे देवि! सभी प्रकार के भय से हमारी रक्षा करो। हे **दुर्गे देवि!** तुम्हें प्रणाम।

व्याख्या—**सर्व-स्वरूपे**—(१) **सर्व-जगत्-त्रयं स्वरूपं यस्याः सा, हे तथोक्ते** (शान्तनवी)। (२) **निखिल-कार्य-कारण-रूपे** (तत्त्व-प्रकाशिका)।

'**देवी उपनिषद्**', १८ में **भगवती दुर्गा की सर्व-स्वरूपता** का वर्णन है—'**सैषाऽष्टौ वसवः। सैषैकादश-रुद्राः। सैषा द्वादशादित्याः। सैषा विश्वेदेवाः सोमपा अ-सोमपाश्च। सैषा**

यातुधाना असुरा रक्षांसि पिशाचा यक्षाः सिद्धाः। सैषा सत्त्व-रजस्तमांसि। सैषा प्रजापतीन्द्र-मनवः। सैषा ग्रह-नक्षत्र-ज्योतींषि कला-काष्ठादि-काल-रूपिणी।'

अर्थात् यह **देवी** ही **८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, विश्वेदेव-गण, सोम पीनेवाले व न पीनेवाले देव-गण-स्वरूपा** है। यही **यातुधान, असुर, राक्षस, पिशाच, यक्ष, सिद्धादि देव-योनि-स्वरूपा** है। यही **सत्त्व-रजः-तमो-गुण-रूपिणी** है। यही **प्रजापति, इन्द्र** व **मनु-स्वरूपा** है। यही **ग्रह-नक्षत्रादि-ज्योति-स्वरूपा** एवं **कला-काष्ठादि काल-स्वरूपिणी** है।

सर्वेशे—(१)'**सर्वस्य ईशा**' (स्वामिनी)—**शान्तनवी**। (२) सभी कार्य-करणों की नियन्त्री या प्रेरयित्री। इससे देवी का आदि-कारणत्व बताया है (**तत्त्व-प्रकाशिका**)। (३) '**देवी-भागवत**' (१।४।४५-४९) में **भगवान् विष्णु, ब्रह्मा** से स्पष्ट कहते हैं—'**जगत्-सञ्जनने शक्तिस्त्वयि तिष्ठति राजसी, तया विरहितस्त्वं न तत्-कर्म-करणे प्रभुः। नाहं पालयितुं शक्तः संहर्तुं नापि शङ्करः, तदधीना वयं सर्वे वर्त्तामः विभो।**'

अर्थात् जगत् की सृष्टि करने में तुममें **राजसी** '**शक्ति**' विद्यमान है, उसके बिना तुम सृष्टि-कर्म नहीं कर सकते। इसी प्रकार **मैं जगत् का पालन** करने में, **शङ्कर** संहार करने में उसके बिना समर्थ नहीं हैं। हम सभी उसी **सर्वेश्वरी** के अधीन हैं।

सर्व-शक्ति-समन्विते—उक्त-अनुक्त समग्र-शक्ति से युक्ता (**तत्त्व-प्रकाशिका**)। '**योग-वाशिष्ठ**', ३।१००।१-१० में कहा है—

चिच्छक्तिर्ब्रह्मणो राम! शरीरेष्वभिदृश्यते।
स्पन्द-शक्तिश्च वातेषु, जड-शक्तिस्तथोपले॥
द्रव्य-शक्तिस्तथाम्भःसु, तेजः-शक्तिस्तथानले।
शून्य-शक्तिस्तथाकाशे, भाव-शक्तिर्भव-स्थितौ॥
ब्रह्मणः सर्व-शक्तिर्हि, सर्वत्र दश-दिग्-गता।
नाश-शक्तिर्विनाशेषु, शोक-शक्तिश्च शोकिषु॥
आनन्द-शक्तिर्मुदिते, वीर्य-शक्तिस्तथा भटे।
सर्गेषु सर्ग-शक्तिश्च, कल्पान्ते सर्व-शक्तिता॥

अर्थात् हे **राम! ब्रह्म की चिच्छक्ति** ही सब शरीरों में दिखाई देती है। वायु में **स्पन्दन-शक्ति**, पत्थर में **जड़-शक्ति**, जल में **द्रव-शक्ति**, अग्नि में **तेज-शक्ति**, आकाश में **शून्य-शक्ति**—इस प्रकार संसार की स्थिति में **व्यवहार-शक्ति** है। **ब्रह्म की सारी शक्ति ही दशों दिशाओं में व्याप्त** है! **नाश-शक्ति** विनाश में, **शोक-शक्ति** शोकाकुल व्यक्तियों में, **आनन्द-शक्ति** प्रसन्न व्यक्तियों में, **वीर्य-शक्ति** वीरों में, **सृष्टि-शक्ति** सृष्टि में, प्रलय-काल में **सर्व-शक्ति** दृष्टि-गत होती है।

भयेभ्यस्त्राहि नो देवि—**भगवती दुर्गा** सभी भयों से रक्षा करती हैं। इसी से उनका एक नाम '**अभया**' है। '**देवी-उपनिषद्**' में ऋषि की प्रार्थना है—'**नमामि त्वामहं देवीं, महा-भय-विनाशिनीम्।**'

दुर्गा—'**दुर्गा**' की महिमा अत्यन्त विस्तृत है। उनके अनेक स्वरूप प्रसिद्ध हैं—**१ नील-कण्ठी, २ क्षेमङ्करी, ३ हर-सिद्धि, ४ रुद्रांश-दुर्गा, ५ वन-दुर्गा, ६ अग्नि-दुर्गा, ७ जय-दुर्गा, ८ विन्ध्य-वासिनी दुर्गा, ९ रिपु-मारिणी दुर्गा, १० महिष-मर्दिनी दुर्गा, ११ शूलिनी दुर्गा** इत्यादि। विशेष विवरण हेतु देखें—'**श्रीदुर्गा-कल्पतरु**' (सम्पादक)।

कात्यायनी

एतत् ते वदनं सौम्यं, लोचन - त्रय -भूषितम्।
पातु नः सर्व-भीतिभ्यः, कात्यायनि! नमोऽस्तु ते॥२५॥

अर्थ—त्रिनेत्रों से सुशोभित तुम्हारा यह मनोहर मुख सब प्राणियों से हमारी रक्षा करे। हे **कात्यायनि!** तुम्हें प्रणाम।

व्याख्या—**देवी** के सभी अङ्ग, शस्त्र व अस्त्रादि उनकी माया के विलास मात्र हैं। अतः ये सभी **चिन्मय** हैं। इसी से **सप्तशती** के इन चार मन्त्रों में इन सबके प्रति देवों ने प्रार्थना की है **(तत्त्व-प्रकाशिका)**।

लोचन-त्रय-भूषितं—देवी का दायाँ नेत्र **सूर्य**-स्वरूप, बाँयाँ नेत्र **चन्द्र**-स्वरूप और ललाटस्थ तीसरा नेत्र **अग्नि**-स्वरूप है।

सर्व-भूतेभ्यः—'**सर्व-भूत-विकारेभ्यः प्राणिभ्यश्च**' अर्थात् सभी भौतिक विकारों व सभी प्राणियों के उपद्रवों से **(नागो जी)**।

शान्तनवी टीका में '**सर्व-भीतिभ्यः**' पाठ मानकर उसकी व्याख्या की है—'**समस्तेभ्यो भयेभ्यः काल-त्रय-सम्भविभ्यः**' अर्थात् काल-त्रय के समस्त भयों से।

कात्यायनी—'**कात्यैः ब्रह्म-निष्ठैः अय्यते प्राप्यते असौ इति, कात्यायना-श्रमोत्पन्नत्वाद् वा कात्यायनीति व्युत्पत्तिः**' अर्थात् '**कात्य**'—ब्रह्म-निष्ठ पुरुषों की एकान्त आश्रया या **कात्यायन ऋषि** के आश्रम में आविर्भूता होने से '**कात्यायनी**' **(देवी-भाष्यम्)**।

'**कालिका-पुराण**', ६।११ में कहा है—

तत्-तेजोभिर्धृत-वपुर्देवी कात्यायनेन वै।
सन्धुक्षिता पूजिता च, तेन कात्यायनी स्मृता॥

अर्थात् देवताओं के तेज से शरीर धारण करनेवाली देवी सर्व-प्रथम **महर्षि कात्यायन** द्वारा सन्दीपिता और पूजिता हुईं, इससे '**कात्यायनी**' नाम से वे सम्बोधित की गईं। वहीं यह भी बताया है कि **कात्यायनी देवी** का आविर्भाव **आश्विन कृष्णा चतुर्दशी** को हुआ। **आश्विन शुक्ला सप्तमी** को देवी ने शरीर धारण किया। **अष्टमी** को देवों ने उन्हें अलंकृत किया। **नवमी**

को विविध उपहारों से उनकी पूजा की गई और उन्होंने **महिषासुर का वध** किया। **दशमी** को देवों ने उन्हें विदा किया और वे अन्तर्धान हो गईं।

'**श्रीमद्-भागवत**', १०।२२।४ में वर्णित है कि **श्रीकृष्ण** को पति-रूप में प्राप्त करने के लिए **गोप-कन्याओं** ने हेमन्त ऋतु के प्रथम मास में हविष्य भोजन कर **कात्यायनी देवी** की पूजा की। वे अरुणोदय के समय यमुना-जल में स्नान करतीं और जल के पास ही बालू से **कात्यायनी देवी की प्रतिमा** बनाकर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्यादि से उनकी पूजा कर निम्न प्रकार प्रार्थना करती थीं—

कात्यायनि! महा-माये! महा-योगिन्यधीश्वरि!
नन्द-गोप-सुतं देवि! पति मे कुरु ते नमः॥

अर्थात् हे **कात्यायनि!** हे **महा-योगिनि!** हे अधीश्वरि! हे देवि! नन्द-गोप के पुत्र को मेरा स्वामी बनाओ—तुम्हें नमस्कार है।

'**मत्स्य-पुराण**', २६०वें अध्याय में **कात्यायनी देवी की मूर्ति के लक्षण** वर्णित हैं—

कात्यायन्याः प्रवक्ष्यामि, रूपं दश-भुजं तथा।
त्रयाणामपि देवानामनुकारानुकारिणीम्॥

अर्थात् **कात्यायनी देवी दश-भुजा** हैं। **ब्रह्मा, विष्णु, शिव**—इन्हीं **देव-त्रय** के अनुरूप अस्त्र ये धारण किए हैं।

वहीं, २६०।५६-६५ में **देवी का विस्तृत ध्यान** दिया है—

ॐ जटा - जूट - समायुक्तमर्द्धेन्दु - कृत - शेखराम्।
लोचन-त्रय-संयुक्तां, पूर्णेन्दु-सदृशाननाम्॥
अतसी-पुष्प-वर्णाभां, सुप्रतिष्ठां सुलोचनाम्।
नव-यौवन-सम्पन्नां, सर्वाभरण-भूषिताम्॥
सुचारु-दशनां तद्-वत्, पीनोन्नत-पयो धराम्।
त्रिभङ्ग-स्थान-संस्थानां, महिषासुर-मर्दिनीम्॥
मृणालायत - संस्पर्श - दश - बाहु - समन्विताम्।
त्रिशूलं दक्षिणे दद्यात्, खड्गं चक्रं क्रमादधः॥
तीक्ष्ण-वाणं तथा शक्तिः, वामतोऽपि निबोधत।
खेटकं पूर्ण-चापं च, पाशमंकुशमेव च॥
घण्टां च परशुं वापि, वामतः सन्निवेशयेत्।
अधस्तान्महिषं तद्-वद्-विशिरस्कं प्रदर्शयेत्॥
शिरच्छेदोद्भवं तद्-वद्, दानवं खड्ग-पाणिनम्।
हृदि शूलेन निर्भिन्नं, निर्यदन्त्र-विभूषितम्॥

रक्त-रक्तीकृताङ्गं च, रक्त-विस्फुरतेक्षणम्।
वेष्टितं नाग-पाशेन, भृकुटी-भीषणाननम्।।
स-पाश-वाम-हस्तेन, धृत-केशं च दुर्गया।
वमद् रुधिर-वक्त्रं च, देव्याः सिंहं प्रदर्शयेत्।।
देव्यास्तु दक्षिणं पादं, समं सिंहोपरि स्थितम्।
किञ्चिदूर्ध्वं तथा वाममंगुष्ठं महिषोपरि।।

अर्थ सरल है। **'कालिका-पुराण'**, ६१।२१-२२ के दो श्लोक अतिरिक्त हैं—

उग्रचण्डा प्रचण्डा च, चण्डोग्रा चण्ड-नायिका।
चण्डा चण्डवती चैव, चामुण्डा चण्डिका तथा।।
आभिः शक्तिभिरष्टाभिः, सततं परि-वेष्टिताम्।
चिन्तयेत् सततं देवीं, धर्मार्थ-काम-मोक्षदाम्।।

'काली-विलास तन्त्र' में भी यही ध्यान है। कुछ पाठान्तर अवश्य हैं। **'तन्त्रसार'** में ध्यान निम्न प्रकार दिया है—

सव्य - पाद - सरोजेनालंकृतोरु - मृगाधिपाम्।
वाम - पादाग्र - दलित - महिषासुर - निर्भराम्।।
सुप्रसन्नां सुवदनां चारु-नेत्र-त्रयान्विताम्।
हार - नूपुर - केयूर - जटा - मुकुट - मण्डिताम्।।
विचित्र - पट्ट - वसनामर्द्ध - चन्द्र - विभूषिताम्।
खड्ग-खेटक-वज्राणि, त्रिशूलं विशिखं तथा।।
धारयन्तीं धनुः पाशं, शङ्खं घण्टां सरोरुहम्।
बाहुभिर्ललितैर्देवीं, कोटि-चन्द्र-सम-प्रभाम्।।
समावृतैर्दिविषदैर्देवैराकाश - संस्थितैः।
स्तूयमानं मोद-मानैर्लोक-पालादिभिः सदा।।

भद्र-काली

ज्वाला - करालमत्युग्रमशेषासुर - सूदनम्।
त्रिशूलं पातु नो भीतेर्भद्रकालि! नमोऽस्तु ते।।२६।।

अर्थ—हे **भद्र-कालि**! ज्वलन्त शिखा द्वारा भीषण, अत्यन्त प्रचण्ड और असंख्य दानवों का विनाश करनेवाला तुम्हारा **त्रिशूल** भयों से हमारी रक्षा करे। तुम्हें प्रणाम।

व्याख्या—**भद्र-काली—'भद्रा च सा काली च भद्र-काली'** (शान्तनवी)। **'देवी पुराण'**, ३७।८० में इस नाम की व्युत्पत्ति निम्न प्रकार दी है—

त्रुट्यादि उच्यते कालः, कालश्चान्ते विनाशने।

भद्रं करोति सा धाता, भद्र-काली मता ततः॥

अर्थात् '**काल**' शब्द का अर्थ है त्रुटि आदि समय, शेष व मृत्यु। देवी सभी समयों में, मृत्यु-काल व शेष में भी '**भद्र**' या **मङ्गल** करती हैं। इसी से वे '**भद्र-काली**' कहलाती हैं।

शाङ्खायन गृह्य-सूत्र, २।१४।१४ में '**भद्र-काली**' का उल्लेख है—

अदितिरिह जनिष्ट दक्ष या दुहिता तव। तां देवा अन्वजायन्त भद्रा अमृत-बन्धवः। अतो देवी भद्र-काली समभवत्। अतो ब्रह्मन्नधीहि भद्र-काली-विद्यां त्र्यक्षराम्।

इत्यादि **अथर्व-वेदीय** वाक्य में शुद्धात्म-विज्ञान की देनेवाली **देवी भद्र-काली** का उल्लेख है।

दक्ष-यज्ञ के विनाश के लिए **भगवान् शिव** ने **वीर-भद्र** को उत्पन्न किया। इसी समय भगवती के क्रोध से **भद्र-काली** उत्पन्न हुईं। कोटि **योगिनियों** के साथ इन्होंने **वीर-भद्र** द्वारा **दक्ष-यज्ञ** का विनाश किया। **श्रीदुर्गा-पूजा** के समय **भगवती दुर्गा** के साथ अभिन्न-रूप में **भद्र-काली** की भी पूजा होती है। पूजन-मन्त्र है—

ॐ दक्ष-यज्ञ-विनाशिन्यै महा-घोरायै योगिनी-कोटि-परिवृतायै भद्र-काल्यै ह्रीं दुर्गायै नमः।

'**कालिका-पुराण**' ६०।११८-९ में बताया है कि भगवती ने आदि सृष्टि में **अष्टादश-भुजा उग्र-चण्डा-रूप** में, द्वितीय सृष्टि में **षोडश-भुजा भद्र-काली-रूप** में और वर्तमान सृष्टि में **दश-भुजा दुर्गा-रूप** में **महिषासुर** को मारा है।

'**कालिका-पुराण**' ६०।५९-६४ में **भद्र-काली का ध्यान** निम्न प्रकार दिया है—

अतसी-पुष्प-वर्णाभा, ज्वलत्-काञ्चन-कुण्डला।

जटा-जूट-सखण्डेन्दु-मुकुट-त्रय-भूषिता॥

नाग-हारेण सहिता, स्वर्ण-हार-विभूषिता।

शूलं चक्रं च खड्गं च, शङ्खं वाणं तथैव च॥

शक्तिं वज्रं च दण्डं च, नित्यं दक्षिण-बाहुभिः।

विभ्रती सततं देवी, विकाश-दशनोज्ज्वला॥

खेटकं चर्म-चापं च, पाशं चांकुशमेव च।

घण्टां पर्शुं च मूषलं, विभ्रती वाम-पाणिभिः॥

सिंहस्था नयनै रक्त-वर्णैस्त्रिभिरति-ज्वला।

शूलेन महिषं भित्वा, तिष्ठन्ती परमेश्वरी॥

वाम-पादेन चाक्रम्य, तत्र देवी जगन्मयी॥

तन्त्रों के अनुसार '**भद्र-काली**' काली के मूर्ति-भेद रूप में पूजनीया हैं। '**तन्त्रसार**' में उनका ध्यान इस प्रकार दिया है—

क्षुत्-क्षामा कोटराक्षी मसि-मलिन-मुखी मुक्त-केशी रुदन्ती।

नाहं तृप्ता वदन्ती जगदखिलमिदं ग्रासमेकं करोमि॥

हस्ताभ्यां धारयन्ती ज्वलदनल-शिखा-सन्निभं पाश-युग्मम्।

दन्तैर्जम्बू-फलाभैः परिहरतु भयं पातु मां भद्र-काली।।

सरस्वती से भी अभिन्न रूप में **भद्र-काली** की उपासना होती है। यथा—

ॐ भद्र-काल्यै नमो नित्यं, सरस्वत्यै नमो नमः।

वेद-वेदाङ्ग-वेदान्त-विद्या-स्थानेभ्य एव च स्वाहा।।

'कालिका-पुराण', ६०।१२२:१२४ में **भद्र-काली के उग्र-चण्डा-रूप का ध्यान** दिया है–

या मूर्तिः षोडश-भुजा, भद्र-कालीति विश्रुता।

तथैव मूर्तिं बाहुभ्यामपराभ्यां तु विभ्रती।।

दक्षिणाधो गदां वाम-पाणिना पान-पात्रकम्।

सुरा-पूर्णं च शिरसा, मुण्ड-मालां निवेशयन्।।

भिन्नाञ्जन-चय-प्रख्या, प्रचण्डा सिंह-वाहिनी।

रक्त-नेत्रा महा-काया, युक्ताऽष्टादश-बाहुभिः।।

हिनस्ति दैत्य-तेजांसि, स्वनेनापूर्य या जगत्।

सा घण्टा पातु नो देवि! पापेभ्योऽनः सुतानिव।।२७।।

अर्थ—हे **देवि!** तुम्हारा जो घण्टा अपने शब्द द्वारा जगत् को परिपूर्ण कर असुरों के तेज को विनष्ट कर देता है, वह घण्टा, जैसे माता पुत्रों की रक्षा करती है, वैसे ही सभी पापों से हमारी रक्षा करे।

व्याख्या—**पापेभ्योऽनः सुतानिव**—**'अनः'**-शब्द के अर्थ हैं—**(१) माता, (२) पिता, (३) प्राणी, (४) शकट।** माता-पिता जैसे पुत्रों की रक्षा करते हैं, वैसे ही **(शान्तनवी)**।

'पापेभ्यः स्व-सुतानिव'—पाठ भी मिलता है। अर्थ वही है।

घण्टा—पूजा के समय **घण्टा-ध्वनि** द्वारा भूत-प्रेत-पिशाचादि विघ्न-कारी जीवों को दूर करने की विधि है। घण्टा की ध्वनि से साधक का चित्त प्रशान्त, भक्ति-पूर्ण और एकाग्र हो जाता है। **'स्कन्द-पुराण'**, **विष्णु-खण्ड** में **घण्टा-नाद की महिमा** वर्णित है—

सर्व-वाद्य-मयी घण्टा, सर्व-देव-मयी यतः।

तस्मात् सर्व-प्रयत्नेन, घण्टा-नादं तु कारयेत्।।

सर्व-वाद्य-मयी घण्टा, सर्वदा मम वल्लभा।

वादनाल्लभते पुण्यं, यज्ञ-कोटि-शतोद्भवम्।।

मदीयार्चन-वेलायां, घण्टा-नादं करोति यः।

नश्यन्ति तस्य पापानि, शत-जन्मार्जितान्यपि।।

अर्थात् **भगवान् विष्णु** का कथन है कि अर्चन-काल में जो घण्टा बजाता है, उसके सैकड़ों जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं।

चण्डिका

असुरासृग्-वसा - पङ्क - चर्चितस्ते करोज्ज्वलः।
शुभाय खड्गो भवतु, चण्डिके! त्वां नता वयम्॥२८॥

अर्थ—हे **चण्डिके!** असुरों के रक्त व मेद-रूपी पङ्क से लिप्त और किरणों द्वारा उज्ज्वल तुम्हारा **खड्ग** हमारे लिए मङ्गलकारी हो। हम तुम्हें प्रणाम करते हैं।

व्याख्या—**करोज्ज्वलः**—(१) **करं हस्तं उज्ज्वलयति**, (२) **करैः किरणैरुज्ज्वला वा** अर्थात् हाथ को उज्ज्वल करनेवाला या अपनी किरणों द्वारा उज्ज्वल (**नागो जी**)। (३) **ते तव करेण हस्त-सम्पर्केण उज्ज्वलः अतिशय-दीप्तः** अर्थात् तुम्हारे हाथ के स्पर्श द्वारा उज्ज्वल होने से अत्यन्त दीप्तिमान (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

अस्त्र-पूजा—**चिन्मयी देवी** के हाथों में विराजमान आयुध भी चिन्मय हैं। इसी से २६-२८ मन्त्रों में उनकी प्रार्थना की गई है। '**लक्ष्मी-तन्त्र**' में **देवी, इन्द्र** से कहती हैं—

आयुधानि च देवानां, यानि यानि सुरेश्वर!
मच्छक्तयस्तदाकाराण्यायुधानि ममाभवन्॥

अर्थात् हे **इन्द्र!** देवताओं के जो-जो आयुध हैं, वे सब मेरी ही शक्ति के अंश हैं। मेरे आयुध उन्हीं के आयुधों के समान आकारवाले हैं।

श्रीदुर्गा-पूजा की **महाष्टमी** तिथि में **भगवती दुर्गा के आयुधों की पूजा** की विधि है।

चण्डिका—(१) '**रुद्र-यामलोक्त रुद्र-चण्डिका कवच**' में **श्रीचण्डिका का ध्यान**—

या चण्डी मधु-कैटभादि-दलनी या माहिषोन्मूलनी।
या धूम्रेक्षण-चण्ड-मुण्ड-मथनी या रक्त-वीजाशनी॥
शक्तिः शुम्भ-निशुम्भ-दैत्य-दलनी या सिद्धि-दात्री परा।
सा देवी नव-कोटि-मूर्ति-सहिता मां पातु विश्वेश्वरी॥

अर्थ स्पष्ट है। '**श्रीचण्डिका-प्रातः-स्मरण स्तोत्र**' में कहा है—

प्रातर्नमामि महिषासुर-चण्ड-मुण्ड-शुम्भासुर - प्रमुख-दैत्य-विनाश-दक्षाम्।
ब्रह्मेन्द्र-रुद्र-मुनि-मोहन-शील-लीलां, चण्डीं समस्त-सुर-मूर्तिमनेक-रूपाम्॥

श्रीचण्डिका के दो मुख्य भेद हैं—(१) **रुद्र-चण्डी**, (२) **मङ्गल-चण्डी**। '**रुद्र-चण्डी**' के सम्बन्ध में '**श्रीरुद्र-चण्डी**' पुस्तक द्रष्टव्य है। उसके ध्यान की दूसरी पंक्ति में '**कोटि-चन्द्र-समासीनां**' के स्थान पर पाठान्तर है '**कोटि-चन्द्र-समाभासां**', जो अधिक शुद्ध है। इसी प्रकार पाँचवीं-पंक्ति में '**किञ्चिज्जिह्वाग्र-लोहितां**' पाठ अधिक उपयुक्त है।

'**मङ्गल-चण्डी**' का ध्यान '**देवी-भागवत**', ९।६७।२५-२६ के अनुसार यह है—

देवीं षोडश-वर्षीयां, शश्वत्-सुस्थिर-यौवनाम्।
बिम्बोष्ठीं सुदन्तीं शरत्-पद्म-निभाननाम्॥

श्वेत-चम्पक-वर्णाभां, सुनीलोत्पल-लोचनाम्।
जगद्धात्रीं च दात्रीं च, सर्वेभ्यः सर्व-सम्पदाम्॥
मङ्गलेषु परा-दक्षां, तां तु मङ्गल-चण्डिकाम्।
संसार-सागरे घोरे, ज्योति-रूपां सदा भजे॥

रोगाऽनशेषानपहंसि तुष्टा, रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान्।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां, त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति॥२९॥

अर्थ—तुम प्रसन्न होने पर समस्त रोगों को और कुपित होने पर सभी इच्छित कामनाओं को नष्ट कर देती हो। तुम पर आश्रित लोगों को विपत्ति नहीं होती, अपितु तुम्हारे आश्रित लोग सभी के आश्रय-दाता हो जाते हैं।

व्याख्या—इस मन्त्र के **सम्पुट-पाठ** से सब प्रकार के रोगों से छुटकारा मिल जाता है। **रोगानशेषानपहंसि तुष्टा–हे देवि! त्वं त्वदाराधनेन तुष्टा सती त्वामाश्रितानां अशेषान् रोगान् अपहंसि नाशयसि** अर्थात् आराधना से प्रसन्न होकर तुम आश्रित भक्तों के समस्त रोगों या उपद्रवों का नाश कर देती हो (**शान्तनवी**)। **रुजन्तीति रोगाः उपद्रवाः तान्** (दंशोद्धार)।

रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान्—हे देवि! त्वं रुष्टा सती अभीष्टान् वाञ्छितान् सकलान् कामान् अर्थात् विनिहंसि अर्थात् कुपित होने पर तुम सभी काम्य वस्तुओं को नष्ट कर देती हो (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

किसी-किसी टीकाकार के मत से '**अभीष्ट**'-शब्द से भावी काम्य वस्तुओं का और '**काम**'-शब्द से वर्तमान में उपभोग्य वस्तुओं का बोध होता है।

एतत् कृतं यत् कदनं त्वयाऽद्य, धर्म-द्विषां देवि! महाऽसुराणाम्।
रूपैरनेकैर्बहुधाऽऽत्म-मूर्तिम्, कृत्वाऽम्बिके! तत् प्रकरोति काऽन्या॥३०॥

अर्थ—हे **देवि, अम्बिके!** तुम्हारे द्वारा आज अपने स्वरूप को अनेक रूपों में बहु प्रकार से विभक्त कर **धर्म-द्वेषी महा-असुरों** का यह जो विनाश किया गया है, उसे अन्य और कौन कर सकता है?

व्याख्या—**कदनं**—'**कदनं मृत्यु-तापयोः** अर्थात् '**कदनं**'-शब्द के दो अर्थ हैं—मृत्यु व ताप (**मेदिनी**)।

रूपैरनेकैर्बहुधात्म-मूर्तिं कृत्वा—आत्म-मूर्तिमेव अनेकैः रूपैः ब्रह्माण्यादि-काल्यादि-लक्षणैः, अभेदे तृतीया। बहुधा बहु-प्रकारा अर्थात् **एका अद्वितीया परमेश्वरी** ही **ब्रह्माणी, वैष्णवी, माहेश्वरी, काली** आदि बहु रूपों में प्रकट हुई हैं (**नागो जी**)। '**मनु-स्मृति**' में कहा है–

एकात्वे सति नानात्वं, नानात्वे सति चैकता।
अचिन्त्यं ब्रह्मणो रूपं, कस्तद् वेदितुमर्हति॥

विद्यासु शास्त्रेषु विवेक-दीपेष्वाद्येषु वाक्येषु च का त्वदन्या?
ममत्व - गर्तेऽति - महान्धकारे, विभ्रामयत्येतदतीव विश्वम्॥३१॥

अर्थ—विविध विद्याओं, बहु-विध शास्त्रों और विवेक-प्रदीप के समान श्रुति-वाक्यों के होते हुए भी तुम्हारे सिवा अन्य कौन ममता-रूप अत्यन्त अँधेरे गड्ढे में इस विश्व को बार-बार घुमा सकता है?

व्याख्या—**विद्यासु**—(१) चौदह विद्याएँ **(शान्तनवी)**। (२) इन्द्रजाल, गारुड़कादि-उप-विद्याएँ **(तत्त्व-प्रकाशिका)**। देखें, मन्त्र ११।६ की व्याख्या।

शास्त्रेषु—(१) मन्वादि-कृत स्मृति-शास्त्र-समूह **(नागो जी)**। (२) तर्क-मीमांसादि या नीति-शास्त्रादि **(तत्त्व-प्रकाशिका)**।

विवेक-दीपेषु—(१) **उपनिषत्सु** (नागो जी)। (२) **विवेकः आत्मनात्म-विचारः, तं दीपयन्ति इति विवेक - दीपानि उपनिषद् - वाक्यानि तेषु** अर्थात् **'विवेक-दीप'** से उपनिषद् या **वेदान्त** का बोध होता है **(तत्त्व-प्रकाशिका)**। (३) कुछ टीकाकारों के मत से **'विवेक-दीपेषु'** विशेषण है **'आद्येषु वाक्येषु'** का। **'विवेक-दीपेषु ज्ञान-प्रकाशेषु'** (चतुर्धरी)।

आद्येषु वाक्येषु—(१) **वेदेषु** (गुप्तवती)। (२) **कर्म-काण्ड-पर-वेद-वाक्येषु** (नागो जी)। **गुप्तवती-टीका** के अनुसार **'आद्य वाक्य'** से **वेद** के **कर्म-काण्ड** व **ज्ञान-काण्ड** दोनों का बोध होता है, किन्तु **नागो जी भट्ट** के मत से **'आद्य वाक्य'** द्वारा **वेद** के **कर्म-काण्ड** का और **'विवेक-दीप'** द्वारा **ज्ञान-काण्ड** या **उपनिषद्** का बोध होता है।

विद्यासु...आद्येषु वाक्येषु—अनादरे सप्तमी। तानि अनादृत्य तज्जन्य-विवेकमपनीय अर्थात् इन समस्त विद्याओं, शास्त्रों और वेद-वाक्यों की उपेक्षा कर अर्थात् इनके द्वारा उत्पन्न विवेक-बुद्धि को नष्ट करके **(शान्तनवी)**।

ममत्व-गर्ते—ममत्वं अ-स्वकीये स्वकीयत्वाभिमानः तदेव गर्त्त इव, गर्त्तः पातु-हेतुत्वात् अर्थात् जो वस्तु अपनी नहीं है, उसे अपना मान कर जो अभिमान होता है, उसे ही **'ममत्व'** कहते हैं। **'ममत्व'** की तुलना अति अँधेरे गड्ढे से की गई है। इसमें एक बार जो गिरा, उसका निकलना बड़ा कठिन होता है **(तत्त्व-प्रकाशिका)**।

अति-महान्धकारे—अति महान् मोह-रूपः अन्धकारः तस्मिन् अर्थात् ममत्व से फँसे हुए चित्त में विवेक का तनिक भी प्रकाश नहीं होता **(दंशोद्धार)**।

त्वदन्या का अतीव विभ्रामयति—(१) **पुनः पुनः प्रवर्तति, भ्रान्तमन्यथा-बुद्धिं वा करोति, इति बद्ध-हेतुत्वं प्रतिपादितं** अर्थात् जीव को मोह में डालकर संसार-चक्र में बार-बार तुम्हीं घुमाती हो। इससे **देवी ही बन्धन का कारण** हैं, यह ज्ञात होता है **(तत्त्व-प्रकाशिका)**। (२) **त्वमेव विष्णु-माया महा-माया विश्वं मोहयसि ममत्वे योजयसि नान्या** अर्थात् **देवी** ही **विष्णु-माया** या **महा-माया** के रूप में विश्व को मोह में डालती हैं **(शान्तनवी)**।

कुछ टीकाकारों ने इस मन्त्र की व्याख्या भिन्न प्रकार की है—'**विद्यासु शास्त्रेषु विवेक-दीपेषु आद्येषु वाक्येषु च त्वदन्या का?**' अर्थात् विविध विद्याओं, बहु-विध शास्त्रों और विवेक-दीप के समान श्रुति-वाक्यों में तुम्हारे सिवा अन्य कौन है? **देवी** ही **परा** व **अपरा** विद्या की प्रवर्तिका हैं, वे ही समस्त विद्याओं की प्रतिपाद्या हैं। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि **देवी विद्या** व **अविद्या** उभयात्मिका हैं। एक ओर **विद्या**-रूप से वे ज्ञान का प्रकाश फैलाती हैं, तो दूसरी ओर **अविद्या**-रूप से जीव को ममत्व में डालकर जन्म-मरण के चक्र में घुमाती रहती हैं। भगवती ही जीव को **भव-बन्धन** में डालती हैं और वे ही उससे **मुक्ति** दिलाती हैं।

रक्षांसि यत्रोग्र-विषाश्च नागा, यत्रारयो दस्यु-बलानि यत्र।
दावानलो यत्र तथाऽब्धि-मध्ये, तत्र स्थिता त्वं परिपासि विश्वम्॥३२॥

अर्थ—जहाँ राक्षस व तीव्र विषवाले सर्प हैं, जहाँ शत्रु, चोर-डाकू व दावाग्नि हैं; वहाँ और समुद्र के बीच में भी तुम विद्यमान रहकर जगत् का परिपालन करती हो।

व्याख्या—सभी स्थानों में एक-मात्र **देवी** ही विविध रूपों में जगत् का पालन करती हैं, इस बात की पुष्टि करते हुए देवताओं ने स्तुति की है (**तत्त्व-प्रकाशिका**)। '**वायु-पुराण**' में है—

अरण्ये प्रान्तरे वापि, जले वापि स्थलेऽपि वा।
व्याघ्र-कुम्भीर-चौरेभ्यो, भय-स्थाने विशेषतः॥
स्वपँस्तिष्ठन् व्रजन् मार्गे, प्रजपन् भोजने रतः।
कीर्तयेत् सततं देवीं, स वै मुच्यते बन्धनात्॥

अर्थ सरल है। तात्पर्य यही है कि सभी सङ्कटों में **देवी** ही रक्षा करती हैं।

विश्वेश्वरि! त्वं परिपासि विश्वं, विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम्।
विश्वेश-वन्द्या भवती भवन्ति, विश्वाश्रया ये त्वयि भक्ति-नम्राः॥३३॥

अर्थ—तुम **विश्वेश्वरी** हो, अतः विश्व का पालन करती हो। तुम **विश्व-रूपा** हो, अतः विश्व को धारण करती हो। तुम **ब्रह्मादि विश्वेश्वरों की भी पूज्या** हो। जो तुम्हारी भक्ति में झुका हुआ है, वह विश्व का आश्रय-दाता होता है।

व्याख्या—**विश्वात्मिका धारयसीति विश्वं**—(१) जगद्-रूपिणी होने से तुम जगत् को धारण करती हो, यह जगत् तुम्हारा ही अंश-भूत है (**तत्त्व-प्रकाशिका**)। (२) जिस प्रकार जीव शरीर को धारण करता है, उसी प्रकार देवी विश्व को अपने शरीर-रूप में धारण करती हैं (**देवी-भाष्य**)।

विश्वेश-वन्द्या—विश्वेश-गण अर्थात् इन्द्र, ब्रह्मा आदि देवों की भी वन्दनीया (**नागो जी**)।

विश्वेश-वन्द्या…भक्ति-नम्राः—इसके अन्वय व अर्थ में टीकाकारों में मत-भेद है—(१) **यतो भवती विश्वेशानाम् इन्द्र-ब्रह्मादीनामपि स्तुत्या, अतस्त्वयि भक्ति-नम्राः एते विश्वाश्रया भवन्ति** अर्थात् विश्व के ईश्वरों की पूज्या होने से तुम्हारे भक्त आश्रय-दाता होते

हैं (नागो जी)। (२) **ये त्वयि भक्ति-नम्राः, ते विश्वेश-वन्द्या भवन्ति; अतो भवती विश्वाश्रया विश्वैः आश्रीयते सेव्यते सर्वोपास्या इत्यर्थः** अर्थात् जो तुम्हारी भक्ति में झुकते हैं; वे विश्व के ईश्वरों के भी वन्दनीय होते हैं। प्रणाम का फल इस प्रकार का होने से तुम विश्व की आश्रयणीया हो अर्थात् सबकी उपास्या हो **(तत्त्व-प्रकाशिका)**।

भवती भवाय—यह पाठ भी मिलता है। **हे देवि! भवती भक्त-वर्गाणां भवाय सम्पदे प्रसन्ना भवतु इत्यर्थः** अर्थात् आप भक्तों की सम्पत्ति-वृद्धि-कारिणी हों **(शान्तनवी)**।

देवताओं की प्रार्थना

देवि! प्रसीद परिपालय नोऽरि-भीते—
नित्यं यथाऽसुर-वधादधुनैव सद्यः।
पापानि सर्व-जगतां प्रशमं नयाशु,
उत्पात-पाक-जनितांश्च महोप-सर्गान्॥३४॥

अर्थ—हे **देवि!** प्रसन्न होओ। जिस प्रकार आपने इस समय क्षण मात्र में असुर-वध के द्वारा हमारी रक्षा की है, उसी प्रकार सदैव हम लोगों की शत्रु-भय से रक्षा करें। सारे जगत् के पापों और अधर्म के फल-स्वरूप उत्पन्न उपसर्गों को आप शीघ्र ही शान्त कर दें।

व्याख्या—**उत्पात-पाक-जनितान्**—(१) **उत्पातो दिव्यान्तरीक्ष-भौम-रूपः। तस्य पाकः फल-परिणतिः तेन जनितान् उत्पादितानि** अर्थात् उल्का-पातादि अनिष्ट-सूचक आकस्मिक दैवी घटनाओं को **उत्पात** कहते हैं (देखें, १०।२९ की व्याख्या)। इन उत्पातों के फल की परिणति, उससे उत्पन्न **(तत्त्व-प्रकाशिका)**। (२) **अत्र ह्यधर्म उत्पात-शब्देन विवक्षितः, उत्पात हेतुत्वात्। अधर्मस्य पाकः परिणतिः तेन जनितान्** अर्थात् यहाँ **'उत्पात'**-शब्द से **अधर्म** का बोध होता है। **अधर्म** के फल-स्वरूप उत्पन्न **(शान्तनवी)**।

महोपसर्गान्—दुर्भिक्ष-मरकादि-लक्षणान् अर्थात् दुर्भिक्ष, महा-मारी, बाढ़, अकाल-मृत्यु आदि को **'उपसर्ग'** कहते हैं **(तत्त्व-प्रकाशिका)**। ये सब **अधर्म** के फल-स्वरूप उत्पन्न होते हैं। (देखें, १०।३२ की व्याख्या)।

इस मन्त्र में **देवताओं** ने **भगवती चण्डी** से अपने शत्रुओं के नाश की प्रार्थना करने के साथ ही **विश्व-शान्ति** के लिए भी उनसे प्रार्थना की है। **सत्त्व-गुणवाले देवों** के हृदय में **लोक-कल्याण की कामना** सदैव रहती है।

प्रणतानां प्रसीद त्वं, देवि! विश्वार्ति-हारिणि!
त्रैलोक्य-वासिनामीड्ये, लोकानां वरदा भव॥३५॥

अर्थ—जगत् के क्लेशों को नष्ट करनेवाली हे **देवि!** तुम प्रणाम करनेवाले भक्त पर प्रसन्न होओ। तीनों लोकों के निवासियों की आराध्ये! तुम सभी लोकों के लिए वर-दायिनी होओ।

рджреЗрд╡реА рдХрд╛ рд╡рд░-рджрд╛рди

рджреЗрд╡реНрдпреБрд╡рд╛рдЪ редредрейремредред

рд╡рд░рджрд╛рд╜рд╣рдВ рд╕реБрд░-рдЧрдгрд╛!, рд╡рд░рдВ рдпрдиреНрдордирд╕реЗрдЪреНрдЫрдердГ
рддрдВ рд╡реГрдгреБрдзреНрд╡рдВ рдкреНрд░рдпрдЪреНрдЫрд╛рдорд┐, рдЬрдЧрддрд╛рдореБрдк-рдХрд╛рд░рдХрдореНредредрейренредред

*рдЕрд░реНрде*тАФ**рджреЗрд╡реА рдЪрдгреНрдбрд┐рдХрд╛** рдиреЗ рдХрд╣рд╛тАФрд╣реЗ рджреЗрд╡рддрд╛рдУрдВ! рдореИрдВ рд╡рд░-рджрд╛рдпрд┐рдиреА рд╣реВрдБред рд╡рд┐рд╢реНрд╡ рдХреЗ рд╣рд┐рдд рдХрд░рдиреЗрд╡рд╛рд▓реЗ рдЬрд┐рд╕ рд╡рд░ рдХреЛ рдорди-рд╣реА-рдорди рдЪрд╛рд╣рддреЗ рд╣реЛ, рдЙрд╕реЗ рдХрд╣реЛ, рдореИрдВ рдЙрд╕реЗ рдкреНрд░рджрд╛рди рдХрд░реВрдБрдЧреАред

рджреЗрд╡рд╛ рдКрдЪреБрдГредредрейрезредред

рд╕рд░реНрд╡рд╛-рдмрд╛рдзрд╛-рдкреНрд░рд╢рдордирдВ, рддреНрд░реИрд▓реЛрдХреНрдпрд╕реНрдпрд╛рдЦрд┐рд▓реЗрд╢реНрд╡рд░рд┐!
рдПрд╡рдореЗрд╡ рддреНрд╡рдпрд╛ рдХрд╛рд░реНрдпрдорд╕реНрдорджреН-рд╡реИрд░рд┐-рд╡рд┐рдирд╛рд╢рдирдореНредредрейрепредред

*рдЕрд░реНрде*тАФ**рджреЗрд╡рддрд╛рдУрдВ** рдиреЗ рдХрд╣рд╛тАФрд╣реЗ **рд╕рд░реНрд╡реЗрд╢реНрд╡рд░рд┐!** рддреАрдиреЛрдВ рд▓реЛрдХреЛрдВ рдХреА рд╕рдм рдкреНрд░рдХрд╛рд░ рдХреА рдорд╣рд╛-рдмрд╛рдзрд╛рдУрдВ рдХреЛ рд╢рд╛рдиреНрдд рдХрд░рдиреЗ рдХреЗ рд▓рд┐рдП рд╣рдорд╛рд░реЗ рд╢рддреНрд░реБрдУрдВ рдХрд╛ рд╡рд┐рдирд╛рд╢ рдЗрд╕реА рдкреНрд░рдХрд╛рд░ рдЖрдк рдХрд┐рдпрд╛ рдХрд░реЗрдВред

*рд╡реНрдпрд╛рдЦреНрдпрд╛*тАФрдХреБрдЫ рдЯреАрдХрд╛рдХрд╛рд░реЛрдВ рдиреЗ рдЗрд╕ рдордиреНрддреНрд░ рдХрд╛ рдЕрдиреНрд╡рдп рднрд┐рдиреНрди рдкреНрд░рдХрд╛рд░ рдХрд┐рдпрд╛ рд╣реИтАФ**тАШрдПрд╡рдореЗрд╡ рдпрдерд╛ рдЕрд╕реНрдорджреН рд╡реИрд░рд┐-рд╡рд┐рдирд╛рд╢рдирдВ рддреНрд╡рдпрд╛ рдХреГрддрдВ, рдПрд╡рдВ рддреНрд░реИрд▓реЛрдХреНрдпрд╕реНрдп рд╕рд░реНрд╡рд╛-рдмрд╛рдзрд╛-рдкреНрд░рд╢рдордирдВ рддреНрд╡рдпрд╛ рдХрд╛рд░реНрдпрдореНтАЩ** рдЕрд░реНрдерд╛рддреН рдЗрд╕ рд╕рдордп рдЬреИрд╕реЗ рдЖрдкрдиреЗ рд╣рдорд╛рд░реЗ рд╢рддреНрд░реБрдУрдВ рдХрд╛ рдирд╛рд╢ рдХрд┐рдпрд╛ рд╣реИ, рд╡реИрд╕реЗ рд╣реА рддреАрдиреЛрдВ рд▓реЛрдХреЛрдВ рдХреЗ рд╕рднреА рд╡рд┐рдШреНрдиреЛрдВ рдХреЛ рд╢рд╛рдиреНрдд рдХрд░ рджреЗрдВ (**рддрддреНрддреНрд╡-рдкреНрд░рдХрд╛рд╢рд┐рдХрд╛**)ред

рд╕рд░реНрд╡рд╛-рдмрд╛рдзрд╛-рдкреНрд░рд╢рдордирдВтАФрдЖ рд╕рд░реНрд╡рддреЛ рдмрд╛рдзрд╛ рдЖрдмрд╛рдзрд╛, рд╕рд░реНрд╡рд╛ рдЪрд╛рд╕реМ рдЖрдмрд╛рдзрд╛ рдЪреЗрддрд┐, рддрд╕реНрдпрд╛рдГ рдкреНрд░рд╢рдордирдВ рдкреНрд░рдХрд░реНрд╖реЗрдг рд╢рд╛рдиреНрддрд┐рдГ (рддрддреНрддреНрд╡-рдкреНрд░рдХрд╛рд╢рд┐рдХрд╛)ред **тАШрд╢рд╛рдиреНрддрдирд╡реАтАЩ** рдореЗрдВ **тАШрд╕рд░реНрд╡-рдмрд╛рдзрд╛-рдкреНрд░рд╢рдордирдВтАЩ** рдкрд╛рда рднреА рдорд┐рд▓рддрд╛ рд╣реИред

рджреЗрд╡реА рдХреЗ рднрд╛рд╡реА рдЕрд╡рддрд╛рд░ (рез) рднрдЧрд╡рддреА рдирдиреНрджрд╛

рджреЗрд╡реНрдпреБрд╡рд╛рдЪ редредрекрежредред

рд╡реИрд╡рд╕реНрд╡рддреЗрд╜рдиреНрддрд░реЗ рдкреНрд░рд╛рдкреНрддреЗ, рдЕрд╖реНрдЯрд╛-рд╡рд┐рдВрд╢рддрд┐рдореЗ рдпреБрдЧреЗред
рд╢реБрдореНрднреЛ рдирд┐рд╢реБрдореНрднрд╢реНрдЪреИрд╡рд╛рдиреНрдпрд╛рд╡реБрддреНрдкрддреНрд╕реНрдпреЗрддреЗ рдорд╣рд╛рд╜рд╕реБрд░реМредредрекрезредред

*рдЕрд░реНрде*тАФ**рджреЗрд╡реА рдЪрдгреНрдбрд┐рдХрд╛** рдиреЗ рдХрд╣рд╛тАФ**рд╡реИрд╡рд╕реНрд╡рдд-рдордиреНрд╡рдиреНрддрд░** рдореЗрдВ реирезрд╡реЗрдВ рдпреБрдЧ рдореЗрдВ **рд╢реБрдореНрдн** рд╡ **рдирд┐рд╢реБрдореНрдн** рдирд╛рдордХ рджреЛ рдЕрдиреНрдп рдорд╣рд╛-рдЕрд╕реБрд░ рдЙрддреНрдкрдиреНрди рд╣реЛрдВрдЧреЗред

*рд╡реНрдпрд╛рдЦреНрдпрд╛*тАФрекрез рд╕реЗ релрек рддрдХ рдХреЗ резрек рд╢реНрд▓реЛрдХреЛрдВ рдореЗрдВ **рд╕рд╛рдд рдЕрд╡рддрд╛рд░реЛрдВ рдХрд╛ рдЙрд▓реНрд▓реЗрдЦ** рд╣реИред рдкрд╣рд▓рд╛ рдЕрд╡рддрд╛рд░ рд╣реИ **тАШрднрдЧрд╡рддреА рдирдиреНрджрд╛тАЩ** рдХрд╛ред

рд╡реИрд╡рд╕реНрд╡рддреЗрд╜рдиреНрддрд░реЗтАФрд╡реИрд╡рд╕реНрд╡рдд рдордиреБ рдХреЗ рдЕрдзрд┐рдХрд╛рд░-рдХрд╛рд▓ рдореЗрдВ рдЕрд░реНрдерд╛рддреН **рд╕рд╛рддрд╡реЗрдВ рдордиреНрд╡рдиреНрддрд░** рдореЗрдВ (**рддрддреНрддреНрд╡-рдкреНрд░рдХрд╛рд╢рд┐рдХрд╛**)ред рджреЗрдЦреЗрдВ, резредрез-реи рдХреА рд╡реНрдпрд╛рдЦреНрдпрд╛ред **тАШрд╡рд┐рд╖реНрдгреБ-рдкреБрд░рд╛рдгтАЩ**, резредрейредрезрен-реирежрдХреЗ рдЕрдиреБрд╕рд╛рд░ рдХреБрдЫ рдЕрдзрд┐рдХ рдПрдХ рд╕рдкреНрддрддрд┐ рдЪрддреБрд░реНрдпреБрдЧ рдХрд╛ рдПрдХ рдордиреНрд╡рдиреНрддрд░ рд╣реЛрддрд╛ рд╣реИред рдпрд╣ рдордиреБ рд╡ рд╕реБрд░рд╛рджрд┐-рдЧрдг рдХрд╛ рдЕрдзрд┐рдХрд╛рд░-рдХрд╛рд▓ рд╣реИред рджреИрд╡ рд╡рд░реНрд╖реЛрдВ рдореЗрдВ **рдордиреНрд╡рдиреНрддрд░** = рез рд▓рд╛рдЦ релреи рд╣рдЬрд╛рд░ рд╡рд░реНрд╖ рдФрд░ рдорд╛рдирд╡ рд╡рд░реНрд╖реЛрдВ рдореЗрдВ = рейреж рдХреЛрдЯрд┐ ремрез рд▓рд╛рдЦ реиреж рд╣рдЬрд╛рд░ рд╡рд░реНрд╖ред **резрек рдордиреНрд╡рдиреНрддрд░** = рдПрдХ рдХрд▓реНрдк рдпрд╛ рдПрдХ рдмрд╛рд░ рдкреНрд░рд▓рдп рд╣реЛрддреА рд╣реИред

अष्टा-विंशतिमे युगे—**वैवस्वत मन्वन्तर** ७१ चतुर्युगों का है। उनमें से **२७ चतुर्युग** बीत चुके हैं, अब **२८वाँ चतुर्युग** चल रहा है। इस चतुर्युग (या महा-युग) के **सत्य, त्रेता** व **द्वापर युग** बीत चुके हैं, अब **कलि-युग** चल रहा है। **कलि-युग** ४ लाख ३२ हजार वर्षों का है, जिनमें से लगभग ५ हजार वर्ष अभी बीते हैं। वर्तमान **२८वें चतुर्युग** के **द्वापर** व **कलि** के सन्धि-काल में **भगवती नन्दा** ने प्रकट होकर **शुम्भ** व **निशुम्भ** नामक अन्य दो महा असुरों का वध किया है। **श्रीकृष्ण** भी इसी २८वें युग में ही प्रकट हुए हैं।

उत्पत्स्येते—उत्पन्न होंगे। '**चण्डी-माहात्म्य**' का वर्णन **स्वारोचिष** अर्थात् **दूसरे मन्वन्तर** में **मेधस ऋषि** ने किया है। तदनुसार **वैवस्वत** या **सातवें मन्वन्तर** में **शुम्भ-निशुम्भ** असुरों का प्रादुर्भाव सुदूर भविष्य-काल की घटना है। इसी से यहाँ कहा है—'उत्पन्न होंगे।'

नन्द-गोप-गृहे जाता, यशोदा-गर्भ-सम्भवा।
ततस्तौ नाशयिष्यामि, विन्ध्याचल-निवासिनी।।४२।।

अर्थ—उस समय **नन्द गोप** के घर में **यशोदा** के गर्भ से उत्पन्न होकर **विन्ध्याचल-वासिनी**-रूप में मैं उन दोनों—**शुम्भ** व **निशुम्भ** का नाश करूँगी।

व्याख्या—'**लक्ष्मी-तन्त्र**' में **देवी** का वचन है कि **वैवस्वत मन्वन्तर** में **शुम्भ** व **निशुम्भ**-नामक दो असुर पुनः वर पाकर उद्धत हो देवताओं को पीड़ित करेंगे। तब मैं **नन्द-गोप-कुल** में **यशोदा**-गर्भ से जन्म लेकर '**नन्दा**'-नाम से प्रसिद्ध होकर **विन्ध्य पर्वत** पर निवास करती हुई दोनों का विनाश करूँगी।

नन्दा—**एषा महा-लक्ष्म्यंश-भूता** अर्थात् **नन्दा देवी महा-लक्ष्मी की अंश-भूता** हैं **(नागो जी)**। '**मूर्ति-रहस्य**' में इनका स्वरूप वर्णित है—

नन्दा भगवती नाम, या भविष्यति नन्दजा।
सा स्तुता पूजिता ध्याता, वशीकुर्याज्जगत्-त्रयम्।।
कनकोत्तम-कान्तिः सा, सु-कान्ति-कनकाम्बरा।
देवी कनक - वर्णाभा, कनकोत्तम - भूषणा।।
कमलांकुश - पाशाब्जैरलंकृत - चतुर्भुजा।
इन्दिरा कमला लक्ष्मीः, सा श्रीरुक्माम्बुजासना।।

अर्थात् **नन्दा देवी चतुर्भुजा** हैं। **पद्म, अंकुश, पाश** व **शङ्ख** लिए हैं। **स्वर्ण-पद्म** पर बैठी हैं।

नन्द-गोप-गृहे जाता यशोदा-गर्भ-सम्भवा—द्वापर व **कलि** के सन्धि-काल में जब नारायण देवकी-पुत्र **श्रीकृष्ण** के रूप में आविर्भूत हुए, तभी **भगवती योग-माया** ने **नन्द** के घर में **यशोदा** की कन्या के रूप में जन्म लिया। '**श्रीमद्-भागवत**', १०।२।९-१२ में उल्लेख है—

अथाहमंश - भागेन, देवक्याः पुत्रतां शुभे।
प्राप्स्यामि त्वं यशोदायाः, नन्द-पत्न्यां भविष्यसि।।

इसी कन्या के स्थान पर **वसुदेव**, **श्रीकृष्ण** को रख आए और जब **कंस** ने कन्या को हाथ में लेकर पटकना चाहा, तो वह उसके हाथ से छूटकर आकाश में जा पहुँचीं और **दिव्य अष्ट-भुजा-रूप** में प्रकट हुईं—

दिव्य - स्त्रगम्बरालेप - रत्नाभरण - भूषिता।
धनुः-शूलेषु-चर्मासि-शङ्ख-चक्र-गदा-धरा॥

'महा-भारत', विराट्, पर्व, ६।३४ में **युधिष्ठिर**-कृत **'दुर्गा-स्तोत्र'** में भी **भगवती नन्दा** का उल्लेख है—

यशोदा - गर्भ - सम्भूतां, नारायण - वर - प्रियाम्।
नन्द-गोप-कुले जातां, मङ्गल्यां कुल-वर्द्धिनीम्॥

ततस्तौ नाशयिष्यामि—**'तत्त्व-प्रकाशिका'** टीका में इस प्रसङ्ग में यह पौराणिक वृत्तान्त दिया है—**विन्ध्याचल** में अत्यन्त बलोद्धत **शुम्भ** व **निशुम्भ** के सम्मुख **नन्दा देवी** अचानक आ पहुँचीं। उनके अति मनोहर रूप से मुग्ध होकर दोनों असुरों ने उनसे पाणि-ग्रहण की प्रार्थना की। **देवी** ने कहा कि तुम दोनों में जो अधिक बली होगा, मैं उसी का पाणि-ग्रहण करूँगी। उस पर दोनों एक-दूसरे से भिड़ गए और परस्पर युद्ध में दोनों ही मारे गए।

विन्ध्याचल-निवासिनी—**विन्ध्याचले तत्रापि गङ्गा-तीरे निवासिनी** (गुप्तवती)। **युधिष्ठिर**-कृत **दुर्गा-स्तोत्र** में कहा है—**'विन्ध्ये चैव नग-श्रेष्ठे, तव स्थानं हि शाश्वतम्।'** ('महा-भारत', **विराट् पर्व**, ६।१७)। **'पद्म-पुराण'** में है—**'त्रिकूटे च तथा सीता विन्ध्ये विन्ध्या-धिवासिनी।'** **'देवी-पुराण'**, ४५वें अध्याय में—

विन्ध्येऽवतीर्य देवार्थं, हतो घोरो महा-भटः।
अद्यापि तत्र सावासा, तेन सा विन्ध्य-वासिनी॥

'वामन पुराण' के अध्याय ५१ में कहा है—**'सहस्त्राक्षोऽपि तां गृह्य, विन्ध्यं वेगाज्जगाम ह। तत्र गत्वा तयोवाच, तिष्ठस्वात्र महा-वने। पूज्यमाना सुरैर्नाम्ना, ख्याता त्वं विन्ध्य-वासिनी।'**

'शारदा तिलक' के अनुसार **विन्ध्य-वासिनी देवी** का ध्यान—

सौवर्णाम्बुज-मध्यगां त्रि-नयनां सौदामिनी-सन्निभाम्।
शङ्खं चक्र-वराभयानि दधतीमिन्दोः कलां विभ्रतीम्॥
ग्रैवेयाङ्गद-हार-कुण्डल-धरामाखण्डलाद्यैः स्तुताम्।
ध्यायेद् विन्ध्य-निवासिनीं शशि-मुखीं पार्श्वस्थ-पञ्चाननाम्॥

अर्थात् **देवी विन्ध्य-निवासिनी** स्वर्ण-पद्म के बीच में बैठी हैं। त्रिनेत्रा हैं, विद्युत् जैसी प्रभावाली हैं। चार भुजाओं में **शङ्ख**, **चक्र**, **वर** और **अभय मुद्रा** धारण किए हैं। मस्तक पर

चन्द्र-कला शोभायमान है। **ग्रैवेय, अङ्गद, हार** व **कुण्डल** आभूषण पहने हैं। **इन्द्रादि देव** स्तुति कर रहे हैं। **महादेव** के पार्श्व में **चन्द्र-मुखी देवी विन्ध्य-वासिनी का ध्यान** करना चाहिए।

२. रक्त-दन्तिका

पुनरप्यति-रौद्रेण, रूपेण पृथिवी-तले।
अवतीर्य हनिष्यामि, वैप्रचित्तांस्तु दानवान्॥४३॥

अर्थ—और पुनः मैं अत्यन्त भीषण स्वरूप से भू-तल पर अवतीर्ण होकर **विप्र-चित्ति**-वंश के दानवों का वध करूँगी।

व्याख्या—**पुनरपि**—देवी **रक्त-दन्तिका** भी **वैवस्वत मन्वन्तर** के २८वें चतुर्युग में **द्वापर** के अन्त व **कलि-युग** के प्रारम्भ में अवतीर्ण हुईं (**शान्तनवी**)।

वैप्रचित्तान्—**विप्र-चित्ति** नामक असुर ने **हिरण्यकशिपु** की बहन **सिंहिका** से विवाह किया था। उनकी सन्तानें **वैप्र-चित्त** नाम से प्रसिद्ध हुईं (**तत्त्व-प्रकाशिका**)। '**अग्नि-पुराण**', १९।५ के अनुसार **कश्यप** द्वारा **दिति** के दो पुत्र **हिरण्यकशिपु** व **हिरण्याक्ष** और एक पुत्री **सिंहिका** ने जन्म लिया था। **विप्र-चित्ति** ने **सिंहिका** से विवाह किया, जिससे **राहु** आदि का जन्म हुआ। **सिंहिका** के पुत्र **सैंहिकेय** नाम से प्रसिद्ध हुए। '**वायु-पुराण**', अध्याय ६८ में **१४ वैप्र-चित्त असुरों** के नाम दिए हैं—**१ शतमाल, २ न्यास, ३ शाम्ब, ४ अनुलोम, ५ शुचि, ६ वातापि, ७ सितांशुक, ८ हरकल्प, ९ कालनाभ, १० नरक, ११ भौम, १२ राहु, १३ चन्द्र-प्रमर्दन, १४ सूर्य-प्रमर्दन**।

भक्षयन्त्याश्च तानुग्रान्, वैप्रचितान् महाऽसुरान्।
रक्त-दन्ता भविष्यन्ति, दाडिमी-कुसुमोपमाः॥४४॥

अर्थ—उन प्रचण्ड **वैप्र-चित्त** महा-असुरों को भक्षण करते-करते मेरे दाँत अनार के पुष्पों के समान रक्त-वर्ण के हो जाएँगे।

ततो मां देवताः सर्वे, मर्त्य-लोके च मानवाः।
स्तुवन्तो व्याहरिष्यन्ति, सततं रक्त-दन्तिकाम्॥४५॥

अर्थ—उसके फल-स्वरूप स्वर्ग-लोक में देव-गण व मृत्यु-लोक में मनुष्य लोग स्तुति करते हुए मुझे सदैव '**रक्त-दन्तिका**' नाम से सम्बोधित करेंगे।

व्याख्या—**रक्त-दन्तिका**—**नागो जी भट्ट** के अनुसार ये **काली की अंश-भूता** हैं। केवल दाँत ही नहीं, इनके वेश, आयुध व सारा शरीर ही रक्त-वर्ण माना गया है। इसी से इन्हें '**रक्त-चामुण्डा**' भी कहते हैं। '**मूर्ति-रहस्य**' में इनका ध्यान दिया है—

रक्ताम्बरा रक्त-वर्णा, रक्त-सर्वाङ्ग-भूषणा।
रक्तायुधा रक्त-नेत्रा, रक्त-केशाति-भीषणा॥

रक्त-तीक्ष्ण-नखा रक्त-रसना रक्त-दन्तिका।
वसुधैव विशाला सा, सुमेरु-युग-स्तनी॥
खड्गं पात्रं च मुसलं, लाङ्गलं च विभर्ति सा।
आख्याता रक्त-चामुण्डा, देवी योगेश्वरीति च॥

३. शताक्षी

भूयश्च शत - वार्षिक्यामनावृष्ट्यामनम्भसि।
मुनिभिः संस्तुता भूमौ, सम्भविष्याम्ययोनिजा॥४६॥

अर्थ—और पुनः सौ वर्ष रहनेवाली अनावृष्टि के समय मुनियों द्वारा प्रार्थिता होकर मैं जल-शून्य पृथ्वी पर अयोनि-जन्मा स्वरूप में उत्पन्न होऊँगी।

व्याख्या—'**देवी भागवत**', स्कन्ध ७, अध्याय २८ में **भगवती शताक्षी की कथा** दी है कि **रुरु** नामक असुर के पुत्र **दुर्गम** ने सोचा कि '**वेद ही देवताओं की शक्ति है। वैदिक यज्ञों से पुष्ट होकर ही वे असुरों का नाश करते हैं। अतः वेद को नष्ट कर देना चाहिए।**' ऐसा विचार कर **दुर्गम** ने तप द्वारा **ब्रह्मा** को प्रसन्न कर उनसे **वेदों** की कामना की और यह वर माँगा कि **देवों** को हराने की शक्ति उसे प्राप्त हो। **ब्रह्मा** ने उसे दोनों वर दिए। इस प्रकार **दुर्गमासुर** ने **वेदों** पर अधिकार प्राप्त कर लिया, जिससे पृथ्वी से **वेद** लुप्त हो गए। **वैदिक यज्ञों** के न होने से देवता निर्बल हो गए और **दुर्गमासुर** के आक्रमण करने पर वे हार गए और **स्वर्ग-लोक** से निकाल दिए गए। **यज्ञों** के बन्द होने से वर्षा का भी अभाव हो गया। सौ वर्षों तक वर्षा के न होने से सभी प्राणी मरणासन्न हो गए। इस पर ब्राह्मणों ने **हिमालय** पर जाकर **भगवती की आराधना** कर उन्हें प्रसन्न किया। भगवती '**शताक्षी**'-रूप में प्रकट हुईं। '**शताक्षी देवी**' **चतुर्भुजा** हैं, दाएँ हाथों में **शर-मुष्टि** व **कमल** और बाँएँ हाथों में **क्षुधा** व **तृष्णा-नाशक पुष्प-पल्लव-फल-मूलादि** व **महा-शरासन** लिए हैं। उनके अनन्त नेत्रों से नौ दिनों तक लगातार वर्षा हुई। छिपे हुए देवता भी बाहर निकल आए और '**शताक्षी**'-नाम से उनकी स्तुति की।

ततः शतेन नेत्राणां, निरीक्षिष्यामि यन्मुनीन्।
कीर्तयिष्यन्ति मनुजाः, शताक्षीमिति मां ततः॥४७॥

अर्थ—उस समय क्योंकि मैं सौ नेत्रों से मुनियों को देखूँगी, इसलिए मनुष्य लोग मुझे **शताक्षी** नाम से पुकारेंगे।

व्याख्या—**शताक्षी**—यहाँ सौ-शब्द अनन्त-वाचक है। देवी **अनन्त-नेत्रा** हैं। '**देवी-भागवत**', १।२८।४४ में कहा है—

अस्मच्छान्त्यर्थमतुलं, लोचनानां सहस्रकम्।
त्वया यतो धृतं देवि! शताक्षी त्वं ततो भव॥

वहीं **शताक्षी देवी का ध्यान** इस प्रकार दिया है—

नीलाञ्जन-सम-प्रख्यं, नील-पद्मायतेक्षणम्।
सुकर्कश-समोत्तुङ्ग-वृत्त-पीन-घन-स्तनम्॥

वाण-मुष्टिं च कमलं, पुष्प-पल्लव-मूलकान्।
शाकादीन् फल-संयुक्तानन्त-रस-संयुताम्।।
क्षुत्-तृड्-जरापहान् हस्तैर्विभ्रती च महा-धनुः।
सर्व-सौन्दर्य-सारं तद्-रूपं लावण्य-शोभितम्।।
कोटि-सूर्य-प्रतीकाशं, करुणा-रस-सागरम्।
दर्शयित्वा जगद्धात्री, सानन्त-नयनोद्भवाः।।
मोचयायास लोकेषु, वारि-धाराः सहस्त्रशः।।

'**देवी भागवत**' के अनुसार **भगवती शताक्षी राजर्षि हरिश्चन्द्र की इष्ट-देवी** थीं।

४. शाकम्भरी

ततोऽहमखिलं लोकमात्म - देह - समुद्भवैः।
भरिष्यामि सुराः शाकैरावृष्टेः प्राण-धारकैः।।४८।।
शाकम्भरीति विख्यातिं, तदा यास्याम्यहं भुवि।

अर्थ—हे देवताओं! फिर मैं अपने शरीर से उत्पन्न प्राण-रक्षक शाकों द्वारा वर्षा होने तक समस्त जीवों का पालन करूँगी। तब मैं पृथ्वी पर **शाकम्भरी** नाम से प्रसिद्ध होऊँगी।

व्याख्या—**शाक**—**अमर-कोष** के अनुसार जिसके द्वारा भोजन किया जा सके, वही '**शाक**' कहलाता है। इसके १० भेद हैं—(१) **मूल**, जैसे मूली आदि, (२) **पत्र**, जैसे पटोल आदि, (३) **करीर**, जैसे वंशांकुर आदि, (४) **अग्र**, जैसे वेत्रादि, (५) **फल**, जैसे कूष्माण्ड आदि, (६) **काण्ड**, जैसे उत्पल आदि, (७) **अधिरूढ़क**, जैसे तालास्थि आदि की मज्जा, (८) **त्वक्**, जैसे मातुलुङ्ग आदि, (९) **पुष्प**, जैसे कोविदार आदि, (१०) **कवक**, जैसे छत्रिका आदि।

शाकम्भरी—(१) जो शाक द्वारा जीवों का पालन करे **(तत्त्व - प्रकाशिका)**। (२) लोक-रक्षा के लिए जो अपने शरीर से उत्पन्न शाकों को धारण करे **(शान्तनवी)**। '**देवी-भागवत**', १।२८।४५-४७ के अनुसार **भगवती शताक्षी** से देवता व मुनियों ने प्रार्थना की कि हम क्षुधा से अति व्याकुल हैं, जिससे हम आपकी स्तुति करने में भी असमर्थ हैं। तब भगवती ने अपने हाथ में स्थित **फल, मूल** व **शाक** देकर उन्हें तृप्त किया। तभी से वे '**शाकम्भरी**' नाम से प्रसिद्ध हुईं। '**मूर्ति-रहस्य**' में इनका ध्यान दिया है—

शाकम्भरी नील-वर्णा, नीलोत्पल-त्रिलोचना।
गम्भीर - नाभिस्त्रिवली - विभूषित - तनूदरी।।
सुकर्कश - समोत्तुङ्ग - वृत्त - पीन - घन - स्तनी।
मुष्टिं शिलीमुखापूर्णं, कमला कमलालया।।
पुष्प-पल्लव-मूलादि-फलाढ्यां शाक-सञ्चयम्।
काम्यानन्त-रसैर्युक्तं, क्षुत्-तृणमृत्यु-जरा-पहम्।।

कार्मुकं च स्फुरत्-कान्तिः, बिभ्रतो परमेश्वरी।
शाकम्भरी शताक्षी सा, सैव दुर्गा प्रकीर्तिता॥

'**शाकम्भरी**' ही **शताक्षी** व **दुर्गा**-नामों से प्रसिद्ध हैं।

९. दुर्गा

तत्रैव च वधिष्यामि, दुर्गमाख्यं महाऽसुरम्॥४९॥
दुर्गा-देवीति विख्यातं, तन्मे नाम भविष्यति।

अर्थ—और उसी समय (अर्थात् **शाकम्भरी** अवतार से ही) **दुर्गम** नामक महा असुर का मैं वध करूँगी। तब मेरा नाम **दुर्गा देवी** प्रसिद्ध होगा।

व्याख्या—'**तत्त्व-प्रकाशिका**'-टीकाकार के मत से '**दुर्गा-देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति**' यह अर्द्ध-श्लोक अनार्ष है क्योंकि मूल-संहिता में नहीं मिलता और किसी भी टीकाकार ने इसे स्वीकार नहीं किया है।

महिष-मर्दिनी दुर्गा व **दुर्गमासुर** या **दुर्गासुर**-नाशिनी **दुर्गा** स्वरूपत: अभिन्न होने पर भी लीला-भेद से स्वतन्त्र हैं। इनके आविर्भाव-काल, लीला-स्थल और कार्य अलग-अलग हैं। पहले स्वरूप का आविर्भाव-काल **स्वायम्भुव** या **प्रथम मन्वन्तर**, लीला-स्थल **हिमालय**, कार्य **महिषासुर-वध** है एवं दूसरे का आविर्भाव-काल **वैवस्वत** या **सप्तम मन्वन्तर**, लीला-स्थल **विन्ध्याचल**, कार्य **दुर्गम** या **दुर्ग असुर का वध** है।

दुर्गमासुर-वध—**देवी शताक्षी** का वर्णन (देखें, ११।४६ की व्याख्या) दूत से सुनकर असुर-पति **दुर्गमासुर** सेना लेकर युद्ध करने चला। दोनों का भयानक युद्ध हुआ। **भगवती शताक्षी** के शरीर से **काली**, **तारा**, **षोडशी**, **त्रिपुरा**, **भैरवी**, **रमा**, **बगला**, **मातङ्गी**, **त्रिपुर-सुन्दरी**, **कामाक्षी**, **जम्भिनी**, **मोहिनी**, **छिन्नमस्ता**, **गुह्य-काली** आदि शक्तियाँ आविर्भूत हुईं और २१वें दिन **दुर्गमासुर**, **शताक्षी देवी** द्वारा मारा गया, जिससे तीनों लोकों में पुन: शान्ति स्थापित हुई (**देवी-भागवत**, ७।२८)।

'**स्कन्द-पुराण**', काशी खण्ड, ७१-७२ अध्यायों में **रुरु** दैत्य के पुत्र **दुर्गासुर** के साथ देवी के युद्ध का वर्णन है। '**देवी-भागवत**' के **दुर्गम** का ही नाम यहाँ **दुर्ग** है। यह युद्ध **विन्ध्याचल** में हुआ, अत: देवी '**विन्ध्य-वासिनी दुर्गा**' कही जाती हैं।

'**देवी-भागवत**' १।२८।८३ की टीका में **नीलकण्ठ** का कथन है—'**अत्र शताक्षी शाकम्भरी दुर्गा देवतानां जल-दानान्न-दान-दैत्य-वध-कर्म-भेदेन नाम-भेद-मात्रमेव केवलं, न त्ववतार-भेद इति बोध्यम्।**' अर्थात् **शताक्षी**, **शाकम्भरी** और **दुर्गा** इन तीनों में केवल नाम-भेद है, अवतार-भेद नहीं। '**मूर्ति-रहस्य**' में भी कहा है—'**शाकम्भरी, शताक्षी सा सैव दुर्गा प्रकीर्तिता।**'

'**गुप्तवती**' के अनुसार इन तीन देवियों का स्थान **कृष्णा-वेणी** व **तुङ्ग-भद्रा** नदियों के मध्य भाग में **सह्याद्रि पर्वत** के कुछ पूर्व में प्रसिद्ध है। **नागो जी भट्ट** के अनुसार इनका आविर्भाव-काल है **वैवस्वत मन्वन्तर** का चत्वारिंशत्तम युग। '**लक्ष्मी-तन्त्र**' में भी ऐसा ही कहा है।

६. *भीमा*

पुनश्चाहं यदा भीमं, रूपं कृत्वा हिमाचले॥५०॥

रक्षांसि भक्षयिष्यामि, मुनीनां त्राण-कारणात्।

तदा मां मुनयः सर्वे, स्तोष्यन्त्यानम्र-मूर्तयः॥५१॥

भीमा-देवीति विख्यातं, तन्मे नाम भविष्यति।

अर्थ—और फिर मैं जब **हिमालय** पर्वत पर भीषण रूप धारण कर मुनियों की रक्षा के लिए राक्षसों का नाश करूँगी, तब सभी मुनि शिर झुकाकर मेरी स्तुति करेंगे। मेरा नाम **भीमा देवी** प्रसिद्ध होगा।

व्याख्या—**'लक्ष्मी-तन्त्र'** के अनुसार **भीमा देवी काली की अंश-भूता** हैं। इनका ध्यान है–

भीमाऽपि नील-वर्णैव, दंष्ट्रा-दशन-भासुरा।

चन्द्र-हासं च डमरुं, शिरः पात्रं च विभ्रती।

एक-वीरा काल-रात्रिर्निद्रा तृष्णा दुरत्यया॥

इनका आविर्भाव मन्वन्तर के पचासवें **चतुर्युग** में होगा। इन्हें **'एक-वीरा'** व **'काल-रात्रि'** भी कहते हैं। **'मूर्ति-रहस्य'** में इनका ध्यान प्रायः उक्त ध्यान जैसा ही दिया है—

भीमाऽपि नील-वर्णा सा, दंष्ट्रा-दशन-भासुरा।

विशाल-लोचना नारी, वृत्त-पीन-पयोधरा॥

चन्द्र-हासं च डमरुं, शिरः पात्रं च विभ्रती।

एक-वीरा काल-रात्रिः, सैवोक्ता कामदा स्तुता॥

देवी के अवतारों का काल-निरूपण—**'गुप्तवती'** के अनुसार **श्री भास्कर राय** का कहना है कि **भीमा देवी** का अवतार आज तक हुआ नहीं है। वर्तमान **वैवस्वत मन्वन्तर** के ५०वें चतुर्युग में उनका आविर्भाव होगा। **१ रक्त-दन्तिका, २ शताक्षी, ३ शाकम्भरी, ४ दुर्गा, ५ भीमा** व **६ भ्रामरी**—ये छः अवतार भविष्य के ही हैं। **'लक्ष्मी-तन्त्र'** के अनुसार **वैवस्वत मन्वन्तर** के २८वें चतुर्युग में **शताक्षी** (शाकम्भरी, दुर्गा), ५०वें चतुर्युग में **भीमा** और ६०वें चतुर्युग में **भ्रामरी देवी** प्रकट होंगी।

परन्तु यहाँ यह स्मरणीय है कि वर्तमान **'श्वेत-वराह'** कल्प के पूर्व कल्पों में भी **देवी** के ये सभी अवतार मन्वन्तर व युग-भेद से आविर्भूत हो चुके हैं। अतः वर्तमान में जो साधक इन देवियों को अपनी **कुल देवता** के रूप में जानते-मानते हैं, वह सर्वथा उचित ही है।

७. *भ्रामरी*

यदारुणाख्यस्त्रैलोक्ये, महा-बाधां करिष्यति॥५२॥

तदाऽहं भ्रामरं रूपं, कृत्वाऽसंख्येय-षट्-पदम्।

त्रैलोक्यस्य हितार्थाय, वधिष्यामि महाऽसुरम्॥५३॥
भ्रामरीति च मां लोकास्तदा स्तोष्यन्ति सर्वतः॥५४॥

अर्थ—जिस समय **अरुण** नामक असुर तीनों लोकों में महा उत्पात करेगा, तब मैं असंख्य भौंरों से युक्त **भ्रामरी**-स्वरूप धारण कर तीनों लोकों के कल्याण के लिए महा-असुर **अरुण** का वध करूँगी और तब सभी लोग चारों ओर मेरी **भ्रामरी**-नाम से स्तुति करेंगे।

व्याख्या—**असंख्येय षट्-पदं—असंख्येयाः षट्-पदाः यस्मिन् रूपे तत्** अर्थात् जिस स्वरूप के साथ असंख्य भ्रमर (भौंरे) हैं (**नागो जी**)।

भ्रामरं—पाणि-धृत-भ्रमरं अर्थात् जो हाथों में भ्रमरों को धारण किए हैं (**नागो जी**)।

भ्रामरी—भ्रामराणां स्वामिनी भ्रामरी अर्थात् भ्रमरों की स्वामिनी (**नीलकण्ठ, देवी भागवत**, १०।१३।९९ की टीका)। '**देवी-भागवत**' में है—

भ्रमरैर्वेष्टिता यस्माद्, भ्रामरी या ततः स्मृता।
तस्यै देव्यै नमो नित्यं, नित्यमेव नमो नमः॥

नागो जी के अनुसार ये भी **काली की अंश-भूता** हैं। **श्री भास्कर राय** का कथन है कि '**भीम-रथि** व **काकिनी नदी** के सङ्गम-क्षेत्र में **अनुगुण्ठ** नामक स्थान **भ्रामरी देवी** द्वारा अधिष्ठित है और उसके पूर्व में सन्निति-क्षेत्र में **चन्द्रला परमेश्वरी** नाम से प्रसिद्ध हैं। **भ्रामरी देवी** ही मेरी **कुल-देवता** हैं' (**गुप्तवती**)।

'**मूर्ति-रहस्य**' में **भ्रामरी देवी का स्वरूप** वर्णित है—

तेजो-मण्डल-दुर्द्धर्षा, भ्रामरी चित्र-कान्ति-भृत्।
चित्रानुलेपना देवी, चित्राभरण-भूषिता॥
चित्र-भ्रमर-पाणिः सा, महामारीति गीयते॥

'**देवी-भागवत**', १०।१३।८०-८५ में विस्तार से यह स्वरूप वर्णित है—

वराभय-करा शान्ता, करुणामृत-सागरा।
नाना-भ्रमर-संयुक्त-पुष्ट-माला-विराजिता॥
भ्रमरीभिर्विचित्राभिरसंख्याभिः समावृता।
भ्रमरैर्गायमानैश्च, ह्रीङ्कारमनुमन्वहम्॥
समन्ततः परिवृता, कोटि-कोटिभिरन्विता।
सर्व-शृङ्गार-वेशाढ्या, सर्व-वेद-प्रशंसिता॥

भ्रामरी देवी का अवतार—पाताल के स्वामी **अरुणासुर** ने तप कर **ब्रह्मा जी** से यह वर प्राप्त किया कि 'युद्ध में अस्त्र-शस्त्र द्वारा कोई पुरुष या स्त्री, द्विपद, चतुष्पद या उभयाकार प्राणी उसे मार न सके।' इस वर से अजेय होकर उसने स्वर्ग पर अधिकार जमाया और देवताओं को निकाल बाहर किया। देवताओं की प्रार्थना पर यह आकाश-वाणी हुई कि 'तुम लोग **भुवनेश्वरी**

की आराधना करो और ऐसा उपाय करो कि दैत्यराज **गायत्री मन्त्र** का त्याग कर दे, जिससे वह शक्ति-हीन हो जाएगा।' **देवताओं** ने **वृहस्पति** को भेजा और उनके प्रभाव में आकर **अरुणासुर** ने **गायत्री-मन्त्र** का जप करना छोड़ दिया, फलत: वह निस्तेज हो गया। इधर देवों ने **माया-वीज** का जप करते हुए कठोर तप किया, जिससे प्रसन्न होकर भगवती **भ्रामरी**-रूप में प्रकट हुईं और अपने हाथ में स्थित भ्रमर-समूहों द्वारा सारी दैत्य-सेना सहित **अरुणासुर का संहार** कर डाला (**देवी भागवत**, १०।१३ अध्याय)।

अवतार लेने हेतु देवी की प्रतिश्रुति

इत्थं यदा यदा बाधा, दानवोत्था भविष्यति।
तदा तदाऽवतीर्याऽहं, करिष्याम्यरि-संक्षयम्॥५५॥

अर्थ—इसी प्रकार जब-जब दानवों द्वारा उपद्रव उत्पन्न होंगे, तब-तब मैं अवतार लेकर शत्रुओं का नाश करूँगी।

व्याख्या—**देवी के अवतारों की संख्या**—देवी के अवतार अनन्त हैं, उन सबका वर्णन असम्भव है। यहाँ संक्षेप में कुछ अवतारों का उल्लेख हुआ है **(शान्तनवी)**। '**गुप्तवती**' के अनुसार **एलाम्बा, तुलजा, एकवीरा, योगला** आदि नामों से भी अवतार लेकर भगवती ने असुरों का नाश किया है। ये सभी नाम '**पद्म-पुराण**' के '**अष्ट-शत देवी-तीर्थ-माला**' अध्याय में वर्णित हैं।

अवतार-तत्त्व—'**अप्रपञ्चात् प्रपञ्चे ह्यवतरणं अवतार:**' अर्थात् अप्रपञ्च से प्रपञ्च में **भगवान्** या **भगवती** का अवतरण ही '**अवतार**' कहलाता है। क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर—इन पञ्च-भूतों के विकार से निर्मित प्राकृत जगत् को '**प्रपञ्च**' कहते हैं। पञ्च-भूतों से अतीत पर-व्योम है, वही अप्राकृत धाम '**अप्रपञ्च**' नाम से ज्ञात है। '**सप्तशती**', १।६४-६५ में **मेधस ऋषि** ने बताया है कि **जगन्मूर्ति-स्वरूपा देवी** नित्या हैं। वे सारे जगत् में व्याप्त हैं। फिर भी उनके बहुत प्रकार से आविर्भाव देवताओं के कार्य-वश ज़िस समय हुए, उस समय वे उत्पन्ना कही गई हैं। '**देवी-भागवत**', ५।३३।५५, ५१-५९ में इसी बात को और भी स्पष्ट शब्दों में कहा गया है—

न चोत्पत्तिरनादित्वान्नृप! तस्या: कदाचन।
नित्यैव सा परा देवी, कारणानां च कारणम्॥
चिच्छक्ति: सर्व-भूतेषु, रूपं तस्यास्तदेव हि।
आविर्भाव-तिरोभावौ, देवानां कार्य-सिद्धये॥
यदा स्तुवन्ति तां देवा, मनुजाश्च विशाम्पते।
प्रादुर्भवति भूतानां, दु:ख-नाशाय चाम्बिका॥
नाना-रूप-धरा देवी, नाना-शक्ति-समन्विता।
आविर्भवति कार्यार्थं, स्वेच्छया परमेश्वरी॥

अर्थ सरल है। इसी प्रसङ्ग में **देवी-भागवत**, ५।१८।२२-२३ में **भगवती** का वचन **महिषासुर** के प्रति इस प्रकार है—

यदा यदा हि साधूनां, दुःखं भवति दानव!
तदा तेषां च रक्षार्थं, देहं सन्धारयाम्यहम्॥
अरूपायाश्च मे रूपमजन्मायाश्च जन्म च।
सुराणां रक्षणार्थाय, विद्धि दैत्य! विनिश्चितम्॥

सारांश यह कि **साधु-जनों** एवं **देवताओं की रक्षा** के लिए **अरूपा, अजन्मा भगवती परा-शक्ति** विशिष्ट रूप धारण कर जन्म ग्रहण करती हैं।

'महा-निर्वाण तन्त्र' में **सदा-शिव** का वचन है—

त्वमेव सूक्ष्मा स्थूला त्वं, व्यक्ताव्यक्त-स्वरूपिणी।
निराकाराऽपि साकारा, कस्त्वां वेदितुमर्हति॥
उपासकानां कार्यार्थं, श्रेयसे जगतामपि।
दानवानां विनाशाय, धत्से नाना-विधा तनुः॥
चतुर्भुजा त्वं द्वि-भुजा, षड्-भुजाऽष्ट-भुजा तथा।
त्वमेव विश्व-रक्षार्थं, बहु-शस्त्रास्त्र-धारिणी॥

अर्थात् **भगवती** सूक्ष्म-स्थूल, व्यक्त-अव्यक्त—सभी कुछ हैं। **निराकारा** होते हुए भी **साकारा** हैं। कौन उन्हें जान सकता है? दो, चार, छः, आठ आदि-संख्यक भुजाओं में शस्त्रास्त्र-धारण भी वे **विश्व-रक्षा** के लिए किया करती हैं। यही तथ्य उनके **'अवतार'-तत्त्व** के बोधक हैं।

ग्यारहवें अध्याय के पाठान्तर

श्लोक-संख्या	'विशुद्ध चण्डी' का पाठ	प्रचलित पाठ
२	इष्ट-लाभाद्	इष्ट-लाभात्
२	विकाशि-वक्त्राब्ज-विकाशिताशाः	१. विकासि-वक्त्रास्तु-विकासिताशाः
		२. विकासि-वक्त्राः-सुविकासिताशाः
		३. विकासि-ववृक्त्रांशु-विकासितार्शाः
४	आप्यायते	आप्याप्यते
७	सर्व-भूता	पर्व-भूता
९	कला-काष्ठादि	काष्ठा-कलादि
९	परिणाम-प्रदायिनि	परिमाण-प्रदागिनि
१०	माङ्गल्ये	मङ्गल्ये

श्लोक-संख्या	'विशुद्ध चण्डी' का पाठ	प्रचलित पाठ
१०	त्र्यम्बके	त्र्यम्बिके
११	गुण-मये	गुण-मयि
१५	कुक्कुट-वृते	कुक्कुट-धृते
१६	गृहीत-परमायुधे	गृहीत-विविधायुते
१९	सहस्र-नयनोज्ज्वले	सहस्र-नयनेज्ज्वले
२०	हत-दैत्य-महा-बले	इत-दैत्य महा-बले
२२	लक्ष्मि लज्जे	लक्ष्मी लज्जे
२२	पुष्टि-स्वधे	पुष्टे स्वधे
२२	महा-रात्रि	महा-रात्रे
२३	भूति	भूते
२५	सर्व-भीतिभ्य:	सर्व-भूतेभ्य:
२७	पापेभ्योऽन: सुतानिव	पापेभ्य: स्व-सुतानिव
३१	विभ्रामयत्ये	विभ्रामयस्ये
३३	विश्वेश्वरि	विश्वेश्वरी
३३	भवती भवन्ति	भवती भवाय
३४	सर्व-जगतां प्रशमं नयाशु	सर्वं जगाञ्च शमं नयाशु
३४	उत्पात	ह्युत्पात
३७	वृणुध्वं	वृणीध्वम्
३९	सर्वा-बाधा	सर्व-बाधा
४२	नन्द-गोप-गृहे	नन्द-गोप-कुले
४३	वैप्रचित्तांस्तु	वेप्रचित्तांश्च
४६	संस्तुता	संस्मृता
४७	निरीक्षिष्यामि यन्मुनीन्	निरीक्षिष्ये यतो मुनीन्
४९	वधिष्यामि	हनिष्यामि
५१	भक्षयिष्यामि	क्षययिष्यामि

❋❋❋

सार्थ चण्डी (श्री दुर्गा सप्तशती)

उत्तर या उत्तम चरितम्

द्वादशः अध्यायः

देवी-चरित का माहात्म्य

नित्य चण्डी-पाठ का फल

ॐ देव्युवाच ॥१॥

एभिः स्तवैश्च मां नित्यं, स्तोष्यते यः समाहितः।
तस्याऽहं सकलां बाधां, नाशयिष्याम्यसंशयम्॥२॥

अर्थ—**भगवती चण्डिका** ने देवताओं से कहा—जो व्यक्ति एकाग्र होकर इन सभी स्तुतियों द्वारा मेरी सदा स्तुति करेगा, उसके सभी विघ्नों को मैं निश्चय ही शान्त कर दूँगी।

व्याख्या—यह **देवी-माहात्म्य** धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष चारों पुरुषार्थों की सिद्धि करनेवाला है। '**वाराही तन्त्रादि**' में इसके और भी बहुत से फल बताए हैं। क्रमशः एक आवृत्ति से लेकर सहस्र पाठ तक करते हुए इसके प्रभाव से मुक्ति तक को प्राप्त किया जा सकता है (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

एभिः स्तवैः—'**देवी-माहात्म्य**' के अन्तर्गत जो स्तव हैं, उनके द्वारा—(१) **मधु-कैटभ**-वध के लिए **ब्रह्मा-कृत स्तव**, प्रथम अध्याय। (२) **महिषासुर-वध** के बाद **शक्रादि-कृत स्तव**, चतुर्थ अध्याय। (३) **शुम्भ-निशुम्भ** द्वारा पीड़ित **देवों द्वारा किया गया स्तव**, पञ्चम अध्याय। (४) **शुम्भ-निशुम्भ** के बाद **अग्नि-प्रमुख देवों द्वारा किया गया स्तव**, एकादश अध्याय।

इस प्रसङ्ग में '**तत्त्व-प्रकाशिका**' में बताया है कि कुछ लोग '**एभिः स्तवैः**' के आधार पर केवल उक्त चार स्तवों का ही पाठ पर्याप्त मानते हैं, किन्तु यह ठीक नहीं है क्योंकि '**वाराही तन्त्र**' के अनुसार—

यथाऽश्वमेधः क्रतुराट्, देवानां च यथा हरिः।
स्तवानामपि सर्वेषां, तथा सप्तशती-स्तवः॥

अर्थात् पूरी '**सप्तशती**' ही श्रेष्ठ स्तव है। अतः आदि से अन्त तक उसका पाठ करना चाहिए। '**यामल**' में तो स्पष्ट निर्देश है कि—

पठेदारभ्य सावर्णिः, सूर्य-तनय आदितः।
समापयेत् तु तस्यान्ते, सावर्णिर्भविता मनुः॥

अर्थात् आदि के '**सावर्णिः सूर्य-तनयो**' से लेकर अन्त के '**सावर्णिर्भविता मनुः**' तक पूरी **सप्तशती का पाठ** करना उचित है।

स्तोष्यते यः समाहितः—स्तव-पाठ का पूरा फल तभी प्राप्त होता है, जब एकाग्र होकर भक्ति और श्रद्धा के साथ उसे किया जाए। ऋषियों का निर्देश है कि '**ततः स्तोत्रं पठेन्नित्यं, साधको भक्ति-भावतः**' अर्थात् पूजा के बाद **नित्य भक्ति-पूर्वक स्तोत्र का पाठ** करना चाहिए क्योंकि '**स्तुतिरेव परा पूजा, स्तुतो देवः प्रसीदति**' अर्थात् स्तुति ही श्रेष्ठ पूजा है, स्तुति से देवता प्रसन्न होते हैं।

सकलां बाधां—(१) '**सकलां ऐहिकीं पारलौकिकीं च**' अर्थात् इस संसार की और पर-लोक की सभी प्रकार की बाधाएँ **(नागो जी)**। (२) '**सकलां निःशेषां आध्यात्मिकादि-बाधां पीडां**' अर्थात् आध्यात्मिक, आधि-भौतिक व आधि-दैविक सभी पीड़ाएँ **(तत्त्व-प्रकाशिका)**।

'**देवी-माहात्म्य**' का **नित्य पाठ, श्रवण, कीर्तन** व **स्मरण** करने से **दिव्य-जीवन** प्राप्त करने के मार्ग में आनेवाले सभी प्रकार के विघ्न दूर हो जाते हैं। इस अध्याय के १ से ३० तक के मन्त्रों में इसकी इसी विशेषता को बताया गया है।

तिथि-विशेष में चण्डी-पाठ का फल

मधु-कैटभ-नाशं च, महिषासुर-घातनम्।
कीर्तयिष्यन्ति ये तद्-वद्, वधं शुम्भ-निशुम्भयोः॥३॥
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां, नवम्यां चैक-चेतसः।
श्रोष्यन्ति चैव ये भक्त्या, मम माहात्म्यमुत्तमम्॥४॥
न तेषां दुष्कृतं किञ्चिद्, दुष्कृतोत्था न चापदः।
भविष्यति न दारिद्र्यं, न चैवेष्ट-वियोजनम्॥५॥

अर्थ—जो लोग एकाग्र-चित्त होकर **अष्टमी, नवमी** व **चतुर्दशी** तिथियों में **मधु-कैटभ वध, महिषासुर-वध** और उसी प्रकार **शुम्भ-निशुम्भ के वध का कीर्तन** करेंगे तथा जो भक्ति-पूर्वक मेरे श्रेष्ठ माहात्म्य को सुनेंगे, उन लोगों के कुछ भी पाप न रह जाएँगे। पाप-कर्मों से होनेवाली विपत्तियाँ उन पर नहीं आएँगी, उन्हें दरिद्रता नहीं होगी और प्रिय-जनों का वियोग भी नहीं होगा।

व्याख्या—इसके पूर्व **चार स्तवों के पाठ का फल** बताया है। अब **तीन चरितों से युक्त सम्पूर्ण चण्डी के पाठ का फल** बताते हैं। **देवी-माहात्म्य** नित्य ही पठनीय और श्रवणीय है, तथापि कुछ तिथियों में पाठ करने का विशेष फल होता है। **नागो जी भट्ट** का कथन है कि

अष्टमी, नवमी व चतुर्दशी मुख्य तिथियाँ हैं। '**रुद्र-चण्डी**' में **कृष्ण नवमी, चतुर्दशी, शुक्लाष्टमी** और **पर्व-दिनों** को पाठ के लिए विशेष फल-प्रद माना है।

दुष्कृतोत्था न चापदः—'**पाप-परिपाकजा आपदो न भविष्यन्ति**' अर्थात् पाप के फल-स्वरूप होनेवाली आपत्तियाँ न होंगी (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

शत्रुतो न भयं तस्य, दस्युतो वा न राजतः।
न शस्त्रानल-तोयौघात्, कदाचित् सम्भविष्यति॥६॥

अर्थ—उस **चण्डी-पाठ**-कर्त्ता या श्रोता को शत्रुओं, चोरों या शासक से, शस्त्र, अग्नि, जल-धारा से कभी भी भय नहीं होगा।

चण्डी-पाठ ही श्रेष्ठ स्वस्त्ययन

तस्मान्ममैतन्माहात्म्यं, पठितव्यं समाहितैः।
श्रोतव्यं च सदा भक्त्या, परं स्वस्त्ययनं हि तत्॥७॥

अर्थ—अतः एकाग्र-चित्त साधकों को मेरे इस माहात्म्य को सदैव भक्ति-पूर्वक पढ़ना और सुनना चाहिए। वही श्रेष्ठ स्वस्त्ययन अर्थात् कल्याण-दायक उपाय है।

व्याख्या—**श्रोतव्यं च—पाठाशक्तौ शृणुयाद् इत्यर्थः। फलाधिक्यं इति तु कश्चित्** अर्थात् **चण्डी का पाठ** करने में असमर्थ हो, तो उसे सुनना चाहिए। कुछ के मत से पढ़ने की अपेक्षा सुनने का अधिक फल होता है (**गुप्तवती**)।

स्वस्त्ययनं—स्वस्ति कल्याणं तस्य अयनं मार्गः अर्थात् जिस उपाय से '**स्वस्ति**' अर्थात् कल्याण हो, उसे '**स्वस्त्ययन**' कहते हैं (**नागो जी**)।

चण्डी-पाठ से सभी उपद्रवों की शान्ति

उपसर्गानशेषांस्तु, महा-मारी-समुद्भवान्।
तथा त्रिविधमुत्पातं, माहात्म्यं शमयेन्मम॥८॥

अर्थ—मेरा माहात्म्य **महा-मारी** से उत्पन्न सभी उपद्रवों को और **तीनों प्रकार के उत्पातों** को शान्त कर देता है।

व्याख्या—**महा-मारी**—(१) जन-क्षय-कारी देवता (**नागो जी**), (२) देश-उत्सादन-कारी व्याधि (**देवी-भाष्य**)। सामान्यतः '**महा-मारी**' से संक्रामक रोग से बहु-संख्यक लोगों की मृत्यु का बोध होता है। '**मूर्ति-रहस्य**' में **भ्रामरी देवी** का एक नाम '**महा-मारी**' बताया है।

त्रिविधमुत्पातं—दिव्य-भौमान्तरिक्ष-भेदेन आध्यात्मिकाधि-दैविकाधि-भौतिक-भेदेन वा अर्थात् **१ द्यु-लोक, २ पृथ्वी** व **३ अन्तरिक्ष**—इन तीन स्थानों के अनुसार **तीन प्रकार के उत्पात** या **१ आध्यात्मिक, २ आधि-दैविक** व **३ आधि-भौतिक**—ये तीन प्रकार के दुःख (**गुप्तवती**)।

आध्यात्मिक उत्पात—ज्वरादि शारीरिक **व्याधि** और राग-द्वेषादि मानसिक **आधि**। **आधि-दैविक उत्पात**—देव-कृत **वज्र-पातादि** और **दारिद्र्य-दुःखादि**। **आधि-भौतिक उत्पात**—भूत-प्रेतादि से उत्पन्न **भय, प्रमाद** आदि (**नागो जी**)।

भौम उत्पात—भू-कम्प आदि। **अन्तरिक्ष के उत्पात**—मेघ-हीन आकाश में वज्र-ध्वनि। **स्वर्लोक के उत्पात**—बारम्बार बहु उल्का-पात (**शान्तनवी**)।

'**इत्थं यदा यदा बाधा०**' इत्यादि ११।५५ मन्त्र का जप करने से **महा-मारी** शान्त होती है। '**वाराही-तन्त्र**' के अनुसार त्रिविध उत्पातों के होने पर यत्न-पूर्वक **शत-चण्डी-पाठ** करना चाहिए, उससे मङ्गल होगा।

नित्य चण्डी-पाठ से गृह में देवी का सान्निध्य

यत्रैतत् पठ्यते सम्यङ्, नित्यमायतने मम।
सदा न तद् विमोक्ष्यामि, सान्निध्यं तत्र मे स्थितम्॥९॥

अर्थ—जिस घर में प्रति-दिन मेरा माहात्म्य विधि-पूर्वक पढ़ा जाता है, उस घर को मैं कभी नहीं छोड़ूँगी। वहाँ सदा मेरा सान्निध्य रहेगा।

व्याख्या—**एतत् पठ्यते सम्यक्**—'**सम्यक् अर्थावधारण-पूर्वकं अ-स्खलित-वर्णादि च**' अर्थ-ज्ञान सहित और कोई अक्षर न छूटे, इस प्रकार शुद्ध उच्चारण करते हुए **चण्डी-पाठ** करना चाहिए (**नागो जी**)। स्तोत्र, मन्त्रादि के दो अङ्ग होते हैं—(१) **उच्चारण** उसका बाह्य अङ्ग या शरीर है, (२) **अर्थ-ज्ञान** व **भाव-भक्ति** आन्तरिक अङ्ग या प्राण है। शुद्ध व सुसङ्गत उच्चारण से स्तोत्र, मन्त्रादि सजीव हो उठते हैं और उनके अन्दर की **शब्द-शक्ति** जाग्रत् हो जाती है। इससे उसका कल्पोक्त फल पाठ-कर्त्ता को अवश्य मिलता है।

पूजा, अनुष्ठान आदि में चण्डी-पाठ करना चाहिए

बलि-प्रदाने पूजायामग्नि-कार्ये महोत्सवे।
सर्वं ममैतच्चरितमुच्चार्यं श्राव्यमेव च॥१०॥

अर्थ—देवता के लिए पशु-बलि देते समय, देवार्चना के समय, होमादि अनुष्ठान के समय, पुत्र-जन्म, विवाहादि बड़े उत्सवों के समय मेरा यह सारा चरित अवश्य पठनीय और श्रोतव्य है।

व्याख्या—'**चण्डी-पाठ**' से सभी प्रकार के अनुष्ठानों की त्रुटि दूर होकर वह निर्विघ्न सु-सम्पादित हो जाता है, इसीलिए ऐसे अवसरों पर उसे अवश्य करने का विधान है।

बलि—'**बलि-प्रदानं देवतोद्देश्येन पश्वाद्युपहारः**' अर्थात् देवता के लिए पशु आदि का उपहार देना ही '**बलि-दान**' है। '**बल्यते दीयते इति बलिः**' अर्थात् जो कुछ देवता के प्रति दिया जाता है, उसे '**बलि**' कहते हैं। '**कालिका-पुराण**', ५५।२ की उक्ति है—'**चण्डिकां बलिदानेन तोषयेत् सदा।**' बलिदान द्वारा **चण्डिका** को सदा सन्तुष्ट करना चाहिए। वहीं, ६७।७ में कहा है–

बलिभिः साध्यते मुक्तिर्बलिभिः साध्यते दिवम्।
बलि-दानेन सततं, जयेच्छत्रून् नृपान् नृपः।।

बलि द्वारा मुक्ति, स्वर्ग-लाभ, शत्रुओं का पराभव, शासकों का वशीकरण आदि होता है। **'गायत्री तन्त्र'** का वचन है—

बलि-दानं विना यस्तु, पूजयेत् तारिणीं नरः।
न ज्ञानं न च मोक्षः स्यात्, तेषां पशु-धियां प्रिय!।।

बलि-दान के बिना **तारा** की जो व्यक्ति पूजा करता है, उस 'पशु'-बुद्धि साधक को न ज्ञान मिलता है, न मोक्ष।

'मातृका-भेद-तन्त्र' में कहा है—

बलि-दानं महा-यज्ञं, कलि-काले च चण्डिके।
अश्व-मेधादिकं यज्ञं, कलौ नास्ति सुरेश्वरि!।।

कलि-युग में **'बलि-दान'** ही महा-यज्ञ है क्योंकि **वैदिक अश्वमेधादि यज्ञ** सम्भव नहीं हैं।

'भाव-चूड़ामणि तन्त्र' का निर्देश है—

नाश्रद्धया बलिं दद्यात्, पूजादिषु तथा प्रिये।
साधकानां मते देवि! केवलं नाम-मात्रकम्।।

श्रद्धा के बिना **'बलि'** नहीं देनी चाहिए, अन्यथा वह कहने को ही **'बलि'** होगी, कोई फल नहीं होगा।

जो **'पशु-बलि'** देने में असमर्थ हैं, वे **कूष्माण्ड** (कुम्हड़ा), **इक्षु-दण्ड** (ईख), **मद्य** और **आसव** को **'बलि'**-रूप में दे सकते हैं (**कालिका-पुराण,** ६०।२५)।

पूजा—(१) **'पूजा गन्धादिना अर्चनं' (नागो जी)**; (२) **'पुष्पोपहार-दीपादि-समर्पणं' (शान्तनवी)**। गन्ध, पुष्प, दीपादि उपचारों से देवार्चन करना ही **'पूजा'** है। उपचारों के सम्बन्ध में **'मुद्राएँ एवं उपचार'** (सचित्र) नामक पुस्तक द्रष्टव्य है।

अग्नि-कार्य या होम—(१) **अग्नि-कार्यं देवी-दैवत्या होमः** (नागो जी), (२) **अग्नि-कार्यं फाल्गुने मासि अग्नि-ज्वालार्चनं, यद्वा देवी-माहात्म्य-रूप-माला-मन्त्र-पुरश्चरणान्ते विहित-होमाग्नि-कार्यं** (शान्तनवी)।

उपासना के तीन अङ्ग हैं—**१ पूजा, २ जप, ३ होम**। **'निरुत्तर तन्त्र'**, पृष्ठ १६ में है—

पूजया लभते पूजां, जपात् सिद्धिर्न संशयः।
होमेन सर्व-सिद्धिः स्यात्, तस्मात् त्रितयमाचरेत्।।

'पूजा' से साधक को सम्मान, **'जप'** से मन्त्र-सिद्धि, **'होम'** से सभी सिद्धियाँ मिलती हैं। अतः तीनों को करना चाहिए।

'**देवी-पुराण**', १२६।३-४ में कहा है—'**जपेन चात्मनः शुद्धिरग्नि-कार्येण सम्पदः**' अर्थात् '**जप**' से **आत्म-शुद्धि** और '**होम**' से **सम्पदा की प्राप्ति** होती है। वहीं, १२६।२४ में निर्दिष्ट है कि—

बहु-हव्येन्धने शुद्धे, सु-समिद्धे हुताशने।
विधूमे लेलिहाने च, हुनते यः स सिद्ध्यति॥

अर्थात् बहुत से हव्य, ईंधन, सुन्दर समिधा से युक्त प्रज्वलित अग्नि की लपट में, जो धुएँ से रहित हो, होम करने से अभीष्ट की सिद्धि होती है।

महोत्सवः—(१) पुत्र-जन्म, विवाहादि (**नागो जी**); (२) **शान्तनवी टीका** में बारह मासों में होनेवाले बारह महोत्सवों के नाम दिए हैं—१ चैत्र में **वसन्तोत्सव**, २ वैशाख में **वारण-पुष्प-प्रचारिकोत्सव**, ३ ज्येष्ठ में **जल-क्रीड़ोत्सव**, ४ आषाढ़ में **इन्द्र-ध्वजोत्थानोत्सव**, ५ श्रावण में **दोलान्दोलोत्सव**, ६ भाद्रपद में **इन्द्र-पाणि-धनु-अर्चनोत्सव**, ७ आश्विन में **शरदोत्सव**, ८ कार्तिक में **दीपोत्सव**, ९ मार्गशीर्ष में **मनु-उदयोत्सव**, १० पौष में **निधि-पूजोत्सव**, ११ माघ में **मेरु-उत्सव** और १२ फाल्गुन में **गन्धर्वोत्सव**।

सर्वं ममैतच्चरितं—**एक-देश-जपे तु छिद्रता स्यात्** (शान्तनवी)। महोत्सवादि अनुष्ठान में **पूरी चण्डी का पाठ** करना चाहिए, आंशिक पाठ से '**छिद्रता**' या '**वैगुण्य**'-दोष होता है।

जानताऽजानता वापि, बलि-पूजां तथा कृताम्।
प्रतीच्छिष्याम्यहं प्रीत्या, वह्नि-होमं तथा कृतम्॥११॥

अर्थ—विधि जाननेवाले या न जाननेवाले व्यक्ति द्वारा उस प्रकार अर्थात् **चण्डी-पाठ**-पूर्वक की गई **बलि-सहित पूजा** और उसी प्रकार अर्थात् **चण्डी-पाठ**-पूर्वक किए गए अग्नि में **हवन** को मैं प्रेम-सहित स्वीकार करूँगी।

व्याख्या—**जानताऽजानता वापि**—(१) **विधिज्ञेन, तदज्ञेन** (**नागो जी**); (२) '**ज्ञात्वा कर्माणि कुर्वीत**' अर्थात् **मन्त्रार्थ, अनुष्ठान की विधि** व **तात्पर्य** जानकर ही **बलि** आदि कर्म करने चाहिए, यही शास्त्र की आज्ञा है। वह सब न जानकर कर्मानुष्ठान करने से जो दोष होता है, वह **चण्डी-पाठ** या **श्रवण** से दूर हो जाता है (**गुप्तवती**)।

बलि-पूजां—**बलि-सहितां पूजां** अर्थात् **बलि के बिना पूजा** फल-प्रदा नहीं होती (**नागो जी**)। बलिदान की विधि '**हिन्दी महा-निर्वाण तन्त्र**', पृष्ठ ३८-३९ में द्रष्टव्य है।

वह्नि-होमं—'**वह्नौ मध्वादि-होम-द्रव्य-प्रक्षेपः तं**' अर्थात् अग्नि में तिल, मधु आदि होम-द्रव्य की आहुति देना (**शान्तनवी**)। होम की विधि '**हिन्दी-महा-निर्वाण तन्त्र**', पृष्ठ ३९-४१ में प्रकाशित है।

शारदीय दुर्गोत्सव में चण्डी-पाठ

शरत्-काले महा-पूजा, क्रियते या च वार्षिकी।
तस्यां ममैतन्माहात्म्यं, श्रुत्वा भक्ति-समन्वितः॥१२॥

सर्वा-बाधा-विनिर्मुक्तो, धन-धान्य-सुतान्वितः।
मनुष्यो मत्-प्रसादेन, भविष्यति न संशयः॥१३॥

अर्थ—**शरद् ऋतु** में जो **वार्षिक महा-पूजा** की जाती है, उसमें इस माहात्म्य को भक्ति-पूर्वक सुनकर मनुष्य मेरी कृपा से सभी आपत्तियों से सर्वथा छूटकर धन, धान्य व सन्तान से सम्पन्न होगा, इसमें सन्देह नहीं।

व्याख्या—**शरत्-काले महा-पूजा**—(१) **आश्विन-शुक्ल-प्रतिपदा** से प्रारम्भ दुर्गोत्सव-रूपा **(नागो जी)**। (२) **पितृ-पक्ष** के बाद **प्रतिपदा** से आरम्भ कर **दशमी** तक **देवी की महा-पूजा (शान्तनवी)**। यह महा-पूजा **'शारदीय नवरात्र'** नाम से प्रसिद्ध है। विशेष परिचय हेतु **'नवरात्र-कल्पतरु'** द्रष्टव्य है।

महा-पूजा—(१) जिस पूजा में **महा-स्नान, पूजा, बलि-दान** व **होम**—ये चार कर्म होते हैं, उसे **महा-पूजा** कहते हैं। **'लिङ्ग-पुराण'** के अनुसार **शारदीया महा-पूजा** चतुष्कर्म-मयी शुभ-प्रदा है।

(२) शाक्त साधकों के मत से **नवरात्र** या पर्व-काल में होनेवाली **'निशा-पूजा'** ही, जिसमें विधि-वत् **'चक्रार्चन' (यन्त्रार्चन)** सम्पन्न होता है, **'महा-पूजा'** है (कुल-भूषण)।

वार्षिकी—(१) **प्रति-वर्ष कर्तव्या** (तत्त्व-प्रकाशिका)। **'वर्षेण निर्वृत्ता वार्षिकी सांवत्सरिकी पूजा'** (शान्तनवी)। इसके अनुसार **शारदीया दुर्गा-पूजा** ही **वार्षिक पूजा** है।

(२) **'वर्ष-शब्दो वर्षादौ लाक्षणिकः। तेन चैत्र-शुक्ल-प्रतिपदमारभ्य क्रियमाणा इत्यर्थः।'** अर्थात् **'वर्ष'**-शब्द वर्ष के आदि का सूचक है। अतः **'वासन्तिक'** व **'शारदीय'** दोनों ही **नवरात्रों** की **दुर्गा-पूजा** से आशय है **(नागो जी)**।

(३) **'शरत्-काले शारद-नवरात्रे, वार्षिकी वत्सरस्य आरम्भे क्रियमाणा चैत्र-नवरात्रे इत्यर्थः। चकाराद् आषाढ़-पौष-नवरात्रयोरपि ग्रहणं। तयोरपि देवी-भागवतादौ प्रसिद्धत्वाद्।'** अर्थात् **'शरत्काल'** से **शारदीय नवरात्र**, 'वार्षिकी' से **वासन्तिक नवरात्र** और **'च'**-शब्द से आषाढ़ व पौष के **गुप्त नवरात्रों** का आशय है। **गुप्त नवरात्रों** का उल्लेख **देवी-भागवतादि** में है **(गुप्तवती)**।

'नवरात्र' की पूजा-विधि **'वैदिक नवरात्र पूजा पद्धति'** और **'पौराणिक नवरात्र पूजा पद्धति'** (नवरात्र-कल्पतरु) में द्रष्टव्य है।

सर्वा-बाधा-विनिर्मुक्तो…न संशयः—सभी प्रकार की आपत्तियों के निवारण के लिए इस मन्त्र का **एक लाख जप** या **'पुट-पाठ'** करने की विधि है।

किसी विशेष मन्त्र का पहले उच्चारण कर **'चण्डी'** के प्रत्येक श्लोक का पाठ करना **'पुट-पाठ'** कहलाता है और प्रत्येक श्लोक के आदि और अन्त में उस विशेष मन्त्र का उच्चारण कर पाठ करना **'सम्पुट-पाठ'** माना जाता है। इस प्रकार के पाठ का फल बहुत अधिक होता है।

अनियत-कालिक चण्डी-पाठ का फल

श्रुत्वा ममैतन्माहात्म्यं, तथा चोत्पत्तयः शुभाः।
पराक्रमं च युद्धेषु, जायते निर्भयः पुमान्॥१४॥

अर्थ—मेरे इस माहात्म्य, कल्याण-कारी आविर्भावों और युद्ध-क्षेत्र में पराक्रम को सुनकर लोग निर्भय हो जाते हैं।

व्याख्या—**निर्भयः**—'**भय**'-शब्द ऐहिक व पारत्रिक (पर-लोक) दोनों प्रकार के भयों का बोधक है (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

रिपवः संक्षयं यान्ति, कल्याणं चोप-पद्यते।
नन्दते च कुलं पुंसां, माहात्म्यं मम शृण्वताम्॥१५॥

अर्थ—मेरी महिमा को सुननेवाले लोगों के शत्रुओं का नाश हो जाता है और उनका कल्याण होता है तथा उनके वंश की सानन्द वृद्धि होती है।

व्याख्या—**रिपवः संक्षयं यान्ति**—काम, क्रोधादि छः शत्रुओं का नाश होता है।

नन्दते च कुलं—(१) कुल अर्थात् सन्तति-परम्परा समृद्ध होती है (**तत्त्व-प्रकाशिका**)। (२) वंश को समृद्धि का लाभ होता है।

नैमित्तिक चण्डी-पाठ का फल

शान्ति-कर्मणि सर्वत्र, तथा दुःस्वप्न-दर्शने।
ग्रह-पीडासु चोग्रासु, माहात्म्यं शृणुयान्मम॥१६॥

अर्थ—सब प्रकार के **शान्ति-कर्मों** में और **अशुभ स्वप्न** देखने पर तथा **कठिन ग्रह-पीड़ा** में मेरा माहात्म्य सुनना चाहिए।

व्याख्या—**शान्ति-कर्मणि—उपसर्गादि-निवर्तकं कर्म तस्मिन्, तत्-स्थाने इत्यर्थः** अर्थात् जिसके द्वारा उपसर्गादि शान्त हों, उस प्रकार के कर्म को '**शान्ति-कर्म**' कहते हैं। जिस स्थान में ऐसे कर्म किए जाते हैं, वहाँ उस शान्ति-कर्म को पूर्णाङ्ग और सफलीभूत करने के लिए **चण्डी-पाठ** अवश्य करना चाहिए (**नागो जी**)।

ग्रहादि दोष या **दुःस्वप्नादि** से सूचित अनिष्ट को दूर करने के लिए किए जानेवाले देव-पूजनादि कर्म '**शान्ति-कर्म**' कहलाते हैं। '**तन्त्रसार**' में कहा है—'**रोग-कृत्या-ग्रहादीनां, निरासः शान्तिरीरिता।**' '**मत्स्य-पुराण**' में विविध प्रकार के शान्ति-कर्मों का विधान द्रष्टव्य है।

ग्रह-पीडासु चोग्रासु—अत्यनिष्ट-फलासु ग्रह-कृत्यासु पीडासु (शान्तनवी)। **चण्डी-पाठ** द्वारा अत्यन्त अनिष्ट-कारी ग्रहों का दोष दूर हो जाता है। '**वाराही-तन्त्र**' में लिखा है कि **ग्रह-दोष की शान्ति** के लिए **पाँच बार चण्डी-पाठ** करे।

ग्रह-पीड़ा—'**सूर्यश्चन्द्रो मङ्गलश्च बुधश्चापि वृहस्पतिः, शुक्रः शनैश्चरो राहुः केतुश्चेति नव-ग्रहाः**'—'**जन्म-कुण्डली**' के अनुसार इन **नौ ग्रहों** की स्थिति शुभ या अशुभ होने पर वैसी

ही दशा का भोग सम्बन्धित व्यक्ति को करना होता है। वास्तव में कोई भी ग्रह क्रूर या दुष्ट, शुभ या सौम्य नहीं होता। अपनी स्थिति के अनुसार ही वे शुभ या अशुभ फल देते हैं। प्रत्येक **ग्रह की इष्ट-देवी** एक-एक **महा-विद्या** हैं। यथा—(१) **सूर्य** की इष्ट-देवी **मातङ्गी**, (२) **चन्द्र** की **भुवनेश्वरी**, (३) **मङ्गल** की **वगला**, (४) **बुध** की **षोडशी**, (५) **वृहस्पति** की **तारा**, (६) **शुक्र** की **कमला**, (७) **शनि** की **काली**, (८) **राहु** की **छिन्न-मस्ता** और (९) **केतु** की इष्ट-देवी **धूमावती**। **'चण्डी'-पाठ** से ग्रहों की ये अधिष्ठात्री देवियाँ प्रसन्न होकर **ग्रह-जन्य पीड़ा** को शान्त कर देती हैं।

उप-सर्गाः शमं यान्ति, ग्रह-पीडाश्च दारुणाः।
दुःस्वप्नं च नृभिर्दृष्टं, सु-स्वप्नमुप-जायते॥१७॥

अर्थ—(मेरे माहात्म्य के सुनने से) सभी **उपद्रव** और **कठिन ग्रह-पीड़ाएँ** शान्त हो जाती हैं, लोगों द्वारा देखे गए **अनिष्ट-सूचक बुरे स्वप्न** अच्छे स्वप्नों में बदल जाते हैं।

व्याख्या—**उपसर्गाः**—(१) उत्पात-सूचित दोष-समूह (**तत्त्व-प्रकाशिका**)। (२) अति-वृष्टि, अनावृष्टि आदि प्राकृतिक बाधाएँ (**शान्तनवी**)।

दुःस्वप्नं सुस्वप्नमुपजायते—स्वप्न तीन प्रकार के होते हैं—(**१**) **निष्फल**, (**२**) **सु-स्वप्न**, (**३**) **दुःस्वप्न**। चिन्ता और व्याधि के कारण लोग दिन में जैसा सोचते हैं, वैसा ही स्वप्न वे निद्रावस्था में देखते हैं। ऐसे स्वप्नों का कोई फल नहीं होता; अतः ये **'निष्फल स्वप्न'** कहलाते हैं। दिन में बिना सोचे या देखे गाय, हाथी, घोड़े, अट्टालिका, पर्वत, वृक्षारोहण और भोजन या रोदन करते हुए अपने को स्वप्न में देखे, तो धन-लाभ होता है। इसी प्रकार अन्य अच्छे स्वप्नों का विवरण **'ब्रह्म-वैवर्त पुराण'**, अध्याय ११ में द्रष्टव्य है। स्वप्न में हँसना, विवाह करना या नाच-गाना देखना-सुनना विपत्ति का सूचक है। उक्त पुराण के अध्याय ८२ में विस्तृत विवरण दिया है। **'मार्कण्डेय पुराण'**, अध्याय ४३ में मृत्यु-सूचक दुःस्वप्नों का उल्लेख हुआ है।

दुःस्वप्न-शान्ति—**'ब्रह्म-वैवर्त पुराण'** में **भगवान् श्रीकृष्ण** ने **नन्द जी** से कहा है कि **घृताक्त रक्त-चन्दन** की लकड़ी की आहुति देने और **एक सहस्र गायत्री-जप** से **दुःस्वप्न-सूचित अशुभ की शान्ति** होती है। अथवा **'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं दुर्गति-नाशिन्यै महा-मायायै स्वाहा'** इस मन्त्र का विधि-वत् **दस बार जप** करने से दुःस्वप्न सुस्वप्न में बदल जाता है। **मृत्यु-सूचक स्वप्न** देखे, तो **'ॐ नमो मृत्युञ्जयाय स्वाहा'**—इस मन्त्र का जप करने से अनिष्ट नहीं होता।

चण्डी-पाठ के विशेष विनियोग

बाल-ग्रहाभि-भूतानां, बालानां शान्ति-कारकम्।
सङ्घात-भेदे च नृणां, मैत्री-करणमुत्तमम्॥१८॥

अर्थ—(मेरे इस माहात्म्य का श्रवण) **पूतना-आदि बाल-ग्रहों** से पीड़ित बच्चों के लिए शान्ति-कारक है और लोगों में विग्रह होने पर श्रेष्ठ मित्रता करानेवाला है।

बाल-ग्रह—(१) **बाल-ग्रहा: मातृ-ग्रहादय:** (चतुर्धरी)। (२) **डाकिन्यादय:** (दंशोद्धार)। (३) **बालानां माणवकानां शिशूनां ग्रहा:, पीडा-करा: हिंस्रा: भूता: पूतनादय:** (शान्तनवी)।

'सुश्रुत-संहिता', **'भाव-प्रकाश'** आयुर्वेदिक ग्रन्थों के बाल-रोगों के अन्तर्गत लिखा है कि अनाचार के कारण बच्चों को **'ग्रह'** पीड़ित करते हैं। जिस परिवार में **देवता, पितरों, ब्राह्मणों, अतिथियों** आदि पूज्य जनों का सत्कार नहीं किया जाता या अन्य कोई पाप-कर्म होते हैं, उसके बच्चों को **बाल-ग्रह** सङ्कट में डालते हैं। ये **'ग्रह'** नौ बताए गए हैं—**१ स्कन्द, २ स्कन्दापस्मार, ३ शकुनि, ४ रेवती, ५ पूतना, ६ अन्ध-पूतना, ७ शीत-पूतना, ८ मुख-मुण्डिका, ९ नैगमेय। रावण**-कृत **'बाल-तन्त्र'** में कुछ और नाम मिलते हैं—**१ नन्दा, २ सुनन्दा, ३ कट-पूतना, ४ अर्यका, ५ सूतिका, ६ निऋता, ७ पिलि-पिच्छिका, ८ कामुका** आदि। इनकी पूजा करने पर ये बच्चे को छोड़ देती हैं और वह स्वस्थ हो जाता है।

'चण्डी-पाठ' करने से ये सब **'ग्रह'** शान्त हो जाते हैं। केवल यह १८वाँ मन्त्र भी **बाल-पीड़ा** को शान्त करने के लिए जप किया जाता है और वाञ्छित लाभ होता है।

सङ्घात-भेदे—सजातीय ऐक्य-भावापन्न लोगों में **परस्पर बन्धुत्व-हानि वैमनस्य** व **विरोध** होने पर **चण्डी-पाठ** करने से उनमें **पुन: मैत्री-भाव** होता है **(गुप्तवती)**।

दुर्वृत्तानामशेषाणां, बल-हानि-करं करम्।
रक्षो-भूत-पिशाचानां, पठनादेव नाशनम्॥१९॥

अर्थ—यह (**चण्डी-पाठ या श्रवण**) सभी दुर्वृत्तों की शक्ति का अत्यन्त नाश-कारक है। इसके पाठ मात्र से ही राक्षस, भूत व पिशाचों का विनाश हो जाता है।

व्याख्या—**दुर्वृत्तानां—दुष्टं वृत्तं चरितं येषां ते दुष्टाचारा: दुर्वृत्ता: प्राणिन: तेषां** अर्थात् साधना करते समय साधकों को विविध प्रकार की **दुष्प्रवृत्तियाँ** बाधा पहुँचाती हैं, **'चण्डी-पाठ'** से वे सब दूर हो जाती हैं **(शान्तनवी)**।

रक्षो-भूत-पिशाचानां—रक्षसां मायोप-जीविनां लङ्कादि-वासिनां बाल-ग्रहादीनां पिशाचानां पिशिताशिनां तामसनां च पीडकानां अदृश्य-रूपाणां अर्थात् **राक्षस, भूत** व **पिशाच**—ये तामसी प्रकृति के मानव-पीड़क अदृश्य-रूप-धारी देव-योनि के हैं **(शान्तनवी)**। **'देवी-पुराण'** में आठ प्रकार की **देव-योनि** बताई हैं—

देव - दानव - गन्धर्व - यक्ष - राक्षस - पन्नगा:।
भूता विद्याधराश्चैव, अष्टौ ते देव-योनय:॥

'देवी-भागवत', ८।१८।८।११ में बताया है कि **सिद्ध, चारण** व **विद्याधर** द्वारा अधिकृत दस सहस्र योजन के पवित्र लोक के नीचे के भाग में **यक्ष, राक्षस, पिशाच, भूत व प्रेतों** का

वास-स्थान है। इस ग्रह-नक्षत्र-रहित स्थान को ज्ञानियों ने '**अन्तरिक्ष**' कहा है। जहाँ तक वायु पहुँचती है और बादल पाए जाते हैं, वहीं तक इसकी सीमा है। अन्तरिक्ष के सौ योजन नीचे **पृथ्वी** है।

विघ्नोपसारण—राक्षस, भूत व पिशाचादि **अनिष्ट-कारी देव-योनियाँ** पुण्य कर्मों में विघ्न डालती हैं। इसी से प्रत्येक पूजा के प्रारम्भ में '**विघ्नोपसारण**' की क्रिया की जाती है। '**तन्त्रसार**' की उक्ति है—

आदौ विघ्नान् समुत्सार्य, पश्चादासन-कल्पनम्।
अथवा चासने स्थित्वा, विघ्नानुत्सारयेत् सुधीः॥
ततो दिव्यांश्चान्तरीक्षान्, भौमान् विघ्नान् निवारयेत्।
दिव्य-दृष्ट्या चास्त्र-तोयैः, पार्ष्णि-घात-त्रयेण च॥

अर्थात् पहले विघ्नों को दूर कर आसन बिछाए या आसन पर बैठ कर उन्हें दूर करे। दिव्य-दृष्टि से, '**अस्त्र**' (**फट्**) **मन्त्र** से पवित्र जल द्वारा और तीन बार ठोकर मारकर क्रमशः **दिव्य, अन्तरीक्ष** व **भूमि के विघ्न** दूर करने चाहिए। अपलक दृष्टि से देखना ही '**दिव्य दृष्टि**' है।

चण्डी-पाठ से उक्त सभी विघ्न दूर हो जाते हैं, अन्य कोई क्रिया नहीं करनी पड़ती।

चण्डी-पाठ से देवी का सान्निध्य

सर्वं ममैतन्माहात्म्यं, मम सन्निधि-कारकम्।
पशु-पुष्पार्घ्य-धूपैश्च, गन्ध-दीपैस्तथोत्तमैः॥२०॥

अर्थ—मेरे इस समस्त **माहात्म्य का पाठ** मेरी समीपता को प्रदान करनेवाला है।

व्याख्या—यह मन्त्र अर्द्ध-पद्यात्मक है (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

सर्वं—**कृत्स्नम् एतदादि-मध्यावसान-लक्षणं** अर्थात **प्रथम, मध्यम** व **उत्तम**—इन तीन चरितों से युक्त ही समस्त '**देवी-माहात्म्य**' है (**शान्तनवी**)।

ममैतन्माहात्म्यं—'**देवी-भागवत**', ५।३४।१२—'**चरित-त्रय-पाठं च नित्यं कुर्यात्**' की टीका में **शैव नीलकण्ठ** ने लिखा है कि '**देवी-भागवत**' के प्रथम स्कन्ध में **प्रथम चरित**, पञ्चम स्कन्ध में **मध्यम व उत्तम चरित** वर्णित हैं। '**वामन पुराण**' में भी ये चरित दिए हैं, किन्तु '**मार्कण्डेय पुराण**' में वर्णित '**चरित-त्रय**' ही संक्षिप्त होने के कारण ग्राह्य हैं। उन्हीं का **नित्य-पाठ** करना चाहिए।

मम सन्निधि-कारकं—**मम देव्याः सान्निध्य-भावस्य कारकं नैकट्य-कारकं** अर्थात् **चरित-त्रय के साथ देवी-माहात्म्य का पाठ व श्रवण** करते-करते साधक **देवी का सान्निध्य** प्राप्त कर लेता है।

देवी की संवत्सर-व्यापी पूजा व चण्डी-पाठ

विप्राणां भोजनैर्होमैः, प्रोक्षणीयैरहर्निशम्।
अन्यैश्च विविधैर्भोगैः, प्रदानैर्वत्सरेण या॥२१॥
प्रीतिर्मे क्रियते साऽस्मिन्, सुकृत् सुचरिते श्रुते।
श्रुतं हरति पापानि, तथाऽऽरोग्यं प्रयच्छति॥२२॥

अर्थ—श्रेष्ठ पशु-बलि, पुष्प, अर्घ्य व धूप द्वारा और चन्दनादि गन्ध व दीपक द्वारा, ब्राह्मण-भोजन द्वारा, होम की आहुतियों द्वारा, पञ्चामृतादि अभिषेक द्रव्यों द्वारा, अन्यान्य विविध प्रकार की भोग्य वस्तुओं के दान द्वारा दिन-रात पूजा करते हुए एक वर्ष की अवधि में मेरी जो प्रसन्नता साधक पर होती है, वही प्रसन्नता इस **पवित्र चरित** को एक बार सुनने पर ही साधक को मिल जाती है।

व्याख्या—**पूजादि की अपेक्षा चण्डी-पाठ** देवी को अधिक प्रीति-दायक है।

पशुभिः—(१) **चतुष्पाद्भिः छाग-मेष-महिष-मातङ्गादिभिः। द्वि-पाद्भिः महा-पशुभश्चि नरैः (शान्तनवी)**। (२) पशुः = पशु-बलि **(नागो जी)**।

अर्घ्य—१ जल, २ दूध, ३ कुशाग्र, ४ दही, ५ अक्षत, ६ तिल, ७ जौ व ८ श्वेत सरसों—इन आठ वस्तुओं से '**अर्घ्य**' बनता है **(नागो जी)**।

'**कालिका-पुराण**' के अनुसार पुष्प व चन्दन भी ग्राह्य हैं अथवा इनमें से जो भी प्राप्य हों, उनसे '**अर्घ्य**' देने से कामना-सिद्धि, धन-लाभ, पुत्र-आयु-सुख व मोक्ष-लाभ होता है।

धूपैः च—कपूर, अगुरु, कस्तूरी आदि विविध गन्ध-द्रव्यों द्वारा प्रस्तुत धूप का पूजा में प्रयोग किया जाता है।

गन्धैः—श्वेत व रक्त चन्दन, कपूर, कस्तूरी, अगुरु, कुंकुम आदि गन्ध-द्रव्य।

दीपैः—माणिक्य, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, परमात्मा—इस पञ्च-विध ज्योति की भावना कर देवी को **पञ्च-दीप** देने चाहिए। कपूर और घृतादि द्वारा ये दीप प्रस्तुत होते हैं।

विप्राणां भोजनैः—देवी-भक्त ब्राह्मणों को विधि-पूर्वक भोजन कराना देवी-पूजा का अङ्गीभूत अनुष्ठान माना गया है।

विप्र—विशेषण प्राति पूरयति षट्-कर्माणि किंवा उप्यते धर्म-वीजमत्र अर्थात् जो १ यजन, २ याजन, ३ अध्ययन, ४ अध्यापन, ५ दान, ६ प्रतिग्रह—इन छः कर्मों को करता है या जिसके द्वारा धर्म का प्रचार हो, उसे '**विप्र**' कहते हैं **(भरत)**।

ब्राह्मण-भोजन—'**मनु-स्मृति**', ७।१२५-६ के अनुसार दैव-कार्य में दो और पितृ-कार्य में तीन ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। १ सेवा, २ देश, ३ काल, ४ शुद्धाशुद्ध, ५ पात्रापात्र—इन पाँचों बातों का ध्यान रखते हुए ब्राह्मणों को चुनना चाहिए।

प्रोक्षणीयैः—(१) दही, दूध, घृत, मधु व शर्करा—इस **पञ्चामृत** से अभिषेक या स्नान कराने को '**प्रोक्षण**' कहते हैं **(नागो जी)**। (२) **पञ्चामृत** के समान **गङ्गा** आदि बहु-विध

स्नानीय जल से **महाभिषेक** या **महा-स्नान** होता है **(गुप्तवती)**। (३) '**प्रोक्षण**' का अन्य अर्थ है यज्ञीय पशु के गात्र से स-मन्त्र जल का सेचन, किन्तु यहाँ यह अर्थ ग्राह्य नहीं है क्योंकि '**पशु-बलि**' का उल्लेख आरम्भ में ही हो चुका है। (४) '**शान्तनवी**' **टीका** में पाठान्तर '**प्रेक्षणीयैः**' को मानकर अर्थ किया है—'**दर्शनीय नृत्य-गीत-वाद्य द्वारा**'।

प्रोक्षण व अभ्युक्षण—'**उत्तानेन तु हस्तेन प्रोक्षणं समुदाहृतं, न्युब्जत्वाभ्युक्षणं प्रोक्तं तिरश्चाभ्युक्षणं स्मृतं**' अर्थात् उत्तान (चित) हाथ द्वारा जल-सिञ्चन को '**प्रोक्षण**' और न्युब्ज्य (पट) हाथ से जंल लेकर तिरछे ढङ्ग से सिञ्चन करने को '**अभ्युक्षण**' कहते हैं।

अन्यैश्च विविधैर्भोगैः—वस्त्र, अलङ्कार, माला आदि भोग्य वस्तुओं से देवी-पूजा की जाती है **(नागो जी)**।

देवी के प्रस्ताव-विशेष-श्रवण का विशेष फल

रक्षां करोति भूतेभ्यो, जन्मनां कीर्तनं मम।
युद्धेषु चरितं यन्मे, दुष्ट-दैत्य-निबर्हणम्॥२३॥

अर्थ—मेरे आविर्भावों का वर्णन सुनने से पाप विनष्ट होते हैं और आरोग्य की प्राप्ति होती है तथा भूत-प्रेतादि से रक्षा होती है।

व्याख्या—सम्पूर्ण **चण्डी-पाठ** के अन्तर्गत **तीन 'प्रस्ताव'** हैं—(१) देवी के **अवतार-ग्रहण की कथा**, (२) असुरों के साथ देवी के **युद्ध का वर्णन** और (३) देवी के प्रति **ऋषि व देवों की स्तुतियाँ**। इन **तीनों प्रस्तावों के पाठ एवं श्रवण** से विशेष फल की प्राप्ति होती है, जिसका उल्लेख २३, २४, २५वें श्लोकों में हुआ है। पहले **देवी के अवतार-ग्रहण की कथा** सुनने का फल बताया है।

श्रुतं हरति पापानि—देवी के अवतार-ग्रहण करने की कथा सुनने से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं।

आरोग्यं प्रयच्छति—मानसिक आधि व शारीरिक व्याधि दूर होकर बारम्बार जन्म-मृत्यु-रूप व्याधि से मुक्ति मिलती है।

रक्षां करोति भूतेभ्यः—भूत-प्रेत, पिशाच और सिंह, व्याघ्रादि अनिष्ट-कारी जीवों के आक्रमण तथा पार्थिव या अपार्थिव सभी अशुभ शक्तियों के दुष्प्रभाव से रक्षा होती है।

जन्मनां कीर्तनं मम—मम जन्मनां प्रादुर्भावनां भूत-भविष्यद्-वर्तमानानां कीर्तनं व्याहरणं अर्थात् भूत, भविष्य, वर्तमान काल में देवी के जो भी अवतार हुए, होंगे या हैं, उन सबकी कथा सुनने का उक्त फल होता है **(तत्त्व-प्रकाशिका)**।

तस्मिञ्छ्रुते वैरि-कृतं, भयं पुंसां न जायते।
युष्माभिः स्तुतयो याश्च, याश्च ब्रह्मर्षिभिः कृताः॥२४॥

अर्थ—युद्धों में दुष्ट दैत्यों के विनाश करने का जो मेरा चरित है, उसे सुनने पर लोगों को शत्रु-जनित भय नहीं होता।

इस श्लोक में **देवी के युद्ध-सम्बन्धी चरित** के सुनने का फल बताया है।

निबर्हणं—निबर्हयति नाशयति इति निबर्हणं अर्थात् विनाश करनेवाला **(शान्तनवी)**।

भयं न जायते—देवी के युद्ध-वृत्तान्त के सुनने व मनन करने से प्रचण्ड विक्रमवाली **भगवती के प्रति पाठ-कर्त्ता** या **श्रोता के मन में दृढ़ विश्वास** उत्पन्न होता है कि **आसुरी शक्ति** कितनी भी प्रबल क्यों न हो, **दैवी शक्ति** के समक्ष वह तुच्छ ही होती है। इस विश्वास के फल-स्वरूप निर्भयता उत्पन्न हो जाती है।

ब्रह्मणा च कृतास्तास्तु, प्रयच्छन्ति शुभां मतिम्।
अरण्ये प्रान्तरे वापि, दावाग्नि-परि-वारितः॥२५॥

अर्थ—तुम **देवों** द्वारा **ब्रह्मर्षियों** द्वारा और **ब्रह्मा** द्वारा जो-जो स्तुतियाँ की गई हैं, वे सभी कल्याणकारी बुद्धि प्रदान करती हैं।

व्याख्या—इस श्लोक में **देवी के प्रति की गई स्तुतियों के पाठ व श्रवण** का फल बताया है।

युष्माभिः स्तुतयो याश्च—अत्र प्रथम-चरणे देवी-सूक्त-नारायणी-सूक्ताख्य-स्तोत्र-निर्देशः अर्थात् श्लोक के इस प्रथम चरण में '**देवी-सूक्त**' व '**नारायणी-सूक्त**', इन दो स्तोत्रों का निर्देश हुआ है **(गुप्तवती)**। पञ्चम अध्याय में '**नमो देव्यै महा-देव्यै शिवायै सततं नमः**' इत्यादि जो **देव-कृति स्तुति** है, वही **पौराणिक** या **तान्त्रिक** '**देवी-सूक्त**' नाम से प्रसिद्ध है और ग्यारहवें अध्याय में '**देवि! प्रपन्नार्ति-हरे प्रसीद**' इत्यादि जो **देव-कृत स्तुति** है, उसे '**नारायणी-सूक्त**' कहते हैं।

याश्च ब्रह्मर्षिभिः कृताः—(१) **ब्रह्मणा ऋषिभिः सह या युष्माभिः कृता, महिषान्त-करी सूक्त-रूपा इत्यर्थः, यदा तत्-स्तुतौ ऋषीणामपि कर्तृत्वं** अर्थात् ब्रह्मा व ऋषियों सहित देवों ने '**देव्या यया ततमिदं जगदात्म-शक्त्या**' इत्यादि जो स्तुति चौथे अध्याय में की है, वह '**महिषान्त-करी सूक्त**' नाम से ख्यात है। इसे '**शक्रादि-स्तुति**' भी कहते हैं **(नागो जी)**।

(२) **सु-मेधसा मार्कण्डेयण च तत्-पूर्वैश्च ब्रह्मर्षिभिः मयि देव्यां विषये याश्च स्तुतयः कृताः 'तथापि ममतावर्त्ते मोह-गर्त्ते निपातिता' इत्यादयः** अर्थात् **सुमेधा, मार्कण्डेय** और उनसे पूर्व-वर्ती **ब्रह्मर्षियों** ने **देवी** के सम्बन्ध में जो स्तुतियाँ की हैं, वे सब। जैसे पहले अध्याय में ४८-५२ श्लोक।

ब्रह्मर्षिभिः—'**ऋषति गच्छति संसार-पारं इति ऋषिः**' अर्थात् जो ज्ञान द्वारा संसार को पार कर जाते हैं, वे ही ऋषि हैं। ये सात प्रकार के हैं—**(१) ब्रह्मर्षि वशिष्ठ** आदि, **(२) देवर्षि नारद** आदि, **(३) महर्षि व्यास** आदि, **(४) परमर्षि भेल** आदि, **(५) काण्डर्षि जैमिनि** आदि, **(६) श्रुतर्षि सुश्रुत** आदि और **(७) राजर्षि जनक** आदि—**रत्न-कोष**।

ब्रह्मणा च कृताः—ब्रह्मणा च याः स्तुतयः कृताः 'त्वं स्वाहा' इत्याद्याः अर्थात् ब्रह्मा ने प्रथम अध्याय में **योग-निद्रा** की स्तुति '**त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्-कार-स्वरात्मिका**' इत्यादि की है **(तत्त्व-प्रकाशिका)**। यह **पौराणिक** '**रात्रि-सूक्त**' नाम से विख्यात है।

कृताः—कृता इति च दृष्टा इत्यर्थकं लक्ष्मी-तन्त्रैक-वाक्यत्वाद् इति अवधेयं। एवं चैतानि सर्वाणि स्तोत्राणि अकर्तृकाणि इति बोध्यं अर्थात् यहाँ '**कृत**'-शब्द का अर्थ है '**दृष्ट**'। '**लक्ष्मी-तन्त्र**' के अनुसार ये सभी स्तोत्र अनादि-सिद्ध, नित्य और अपौरुषेय हैं। देवता या ऋषि इन स्तोत्र-मन्त्रों के रचयिता न होकर '**द्रष्टा**' मात्र हैं (**नागो जी**)। '**ऋषि**'-शब्द का अर्थ ही है द्रष्टा—'**ऋषयो मन्त्र-द्रष्टारः**'।

शुभां मतिं—(१) **तत्त्व-ज्ञान-साधिका** बुद्धि (**तत्त्व-प्रकाशिका**), (२) **मोक्ष व अभ्युदय-कारिणी** बुद्धि (**नागो जी**)।

'**तत्त्व-प्रकाशिका**'-टीका-कार **श्री गोपाल चक्रवर्ती** के अनुसार उक्त तीन श्लोकों में प्रस्ताव-भेद से फल का उल्लेख होने से यह प्रतीत होता है कि कामना के अनुसार केवल तत्सम्बन्धी प्रस्ताव का पाठ व श्रवण करना चाहिए, किन्तु वास्तव में **सम्पूर्ण चण्डी** का ही पाठ व श्रवण कर्त्तव्य है। इसी प्रकार सन्तान-कामी व्यक्तियों के लिए यद्यपि '**हरि-वंश**' का '**मन्वादि-वंश-भेद**' ही प्रशस्त है, तथापि पाठ या श्रवण पूरी '**हरिवंश-संहिता**' का ही किया जाता है।

देवी-माहात्म्य के स्मरण से सङ्कट-मोचन

दस्युभिर्वा वृतः शून्ये, गृहीतो वापि शत्रुभिः।
सिंह-व्याघ्रानु-यातो वा, वने वा वन-हस्तिभिः॥२६॥
राजा क्रुद्धेन चाज्ञप्तो, वध्यो बन्ध-गतोऽपि वा।
आघूर्णितो वा वातेन, स्थितः पोते महार्णवे॥२७॥
पतत्सु चापि शस्त्रेषु, संग्रामे भृश-दारुणे।
सर्वा-बाधासु घोरासु, वेदनाऽभ्यर्दितोऽपि वा॥२८॥
स्मरन् ममैतच्चरितं, नरो मुच्येत सङ्कटात्॥२९॥

अर्थ—जङ्गल में दावाग्नि से घिर जाने पर या प्रान्तर में चोर-डाकुओं द्वारा घेरे जाने पर या निर्जन स्थान में शत्रुओं द्वारा पकड़े जाने पर या वन में सिंह, व्याघ्र या जङ्गली हाथियों द्वारा पीछा किए जाने पर, कुपित शासक द्वारा फाँसी की आज्ञा होने पर या कारागार में शृङ्खला-बद्ध होने पर या महा-सागर में जहाज पर रहते समय तूफान द्वारा झटके खाने पर या अत्यन्त भीषण युद्ध में शस्त्रों की बौछार में पड़ जाने पर या सब प्रकार के भीषण उपद्रवों में पीड़ा से अत्यन्त व्याकुल होने पर मेरे इस चरित का स्मरण करता हुआ मनुष्य सङ्कट से मुक्त हो जाता है।

व्याख्या—**देवी-माहात्म्य के पाठ व श्रवण का फल** बताकर अब यह घोषित करते हैं कि **देवी के चरित का** '**स्मरण**' मात्र अद्भुत फल देनेवाला है।

बन्ध-गतः— जञ्जीरों में बँधा या कारागार में बन्द (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

सर्वा-बाधासु—दुर्भिक्ष, महामारी आदि भीषण विपत्तियों में (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

वेदनाभ्यर्दितः—(१) दुःख से पीड़ित (**नागो जी**), (२) ब्रण, विस्फोटकादि पीड़ा से अभिभूत (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

स्मरन्...सङ्कटात्—दावाग्नि जैसे आकस्मिक सङ्कटों में पड़ने पर '**चण्डी-पाठ**' जैसे अनुष्ठान सम्भव नहीं होते। उस समय केवल **मन-ही-मन देवी-चरित का स्मरण** करना चाहिए। इस प्रकार के स्मरण मात्र से ही सारे सङ्कटों से मुक्ति मिल जाती है (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

सब प्रकार की बाधाओं और आपत्तियों के निवारण के लिए '**सर्वा-बाधासु... सङ्कटात्**' (१२।२९) मन्त्र का '**पुट-पाठ**' या **लक्ष-जप** अभीष्ट फल-प्रद होता है।

श्री सङ्कटा-देवी—'**पद्म-पुराण**' के अनुसार वन में अज्ञातवास करनेवाले दुःखी **युधिष्ठिर** को सङ्कटों से मुक्त होने के लिए **मार्कण्डेय मुनि** ने '**सङ्कटा देवी**' का **नामाष्टक** बताया था। यथा—

'सङ्कटा' प्रथमं नाम, द्वितीया 'विजया' तथा।
तृतीयं 'कामदा' प्रोक्ता, चतुर्थं 'दुःख-हारिणी'॥
'सर्वाणी' पञ्चमं नाम, षष्ठं 'कात्यायनी' तथा।
सप्तमं 'भीम-नयना', 'सर्व-रोग-हरा' ऽष्टकम्॥
नामाष्टकमिदं पुण्यं, त्रि-सन्ध्यं श्रद्धयान्वितः।
यः पठेत् पाठयेद् वापि, नरो मुच्यते सङ्कटात्॥

काशी-क्षेत्र में **वीरेश्वर शिव** के उत्तर ओर और **चन्द्रेश्वर शिव** के पूर्व-भाग में '**सङ्कटा' देवी** विराजमाना हैं। ये **श्री दुर्गा** की ही विशिष्ट मूर्ति हैं। **दश-भुजा**, **त्रि-नेत्रा** और **माला-कमण्डलु-वर-गदा-पद्म-त्रिशूल-डमरु-चाप-असि-चर्म-धारिणी** हैं।

मम प्रभावात् सिंहाद्या, दस्यवो वैरिणस्तथा।
दूरादेव पलायन्ते, स्मरतश्चरितं मम॥३०॥

अर्थ—मेरे प्रभाव से सिंह आदि हिंसक पशु, चोर-डाकू और सभी शत्रु मेरे चरित को स्मरण करनेवाले व्यक्ति से दूर भाग जाते हैं।

व्याख्या—**देवी-माहात्म्य का नित्य स्मरण** करनेवाले व्यक्ति के हृदय में **भगवती चण्डिका की शक्ति** जाग्रत हो उठती है, जिसके प्रभाव से कोई भी अनिष्टकारी तत्त्व उसके पास नहीं आ सकते।

आवृत्ति-संख्या—सप्तशती के '**श्रुतं हरति पापानि**' (१२।२२), '**तस्मिन् श्रुते**' (१२।२४), '**स्मरन् ममैतच्चरितं**' (१२।२९) और '**स्मरतश्चरितं मम**' (१२।३०) आदि स्थलों में **चण्डी के पाठ, श्रवण व स्मरण का उल्लेख** है, किन्तु कितनी बार पाठादि करे, इस सम्बन्ध में संख्या का कोई उल्लेख नहीं है। यद्यपि एक बार के पाठ, श्रवणादि से वाञ्छित फल मिल सकता है,

तथापि **बारम्बार पाठ, श्रवणादि** की विधि है क्योंकि शास्त्र का वचन है कि '**यो भूय आरभते तस्मिन् फल-विशेषः**' अर्थात् यदि किसी कार्य को बारम्बार किया जाता है, तो विशेष फल की प्राप्ति होती है। **महर्षि जैमिनि** ने कहा है कि '**फलस्य कर्म-निष्पत्तेस्तेषां लोक-वत् परिमाणतः फल-विशेषः स्यात्**' अर्थात् जैसे लौकिक कर्षणादि कर्मों में अधिकता होने से अधिक फल मिलता है, उसी प्रकार **वेद-पाठादि** के सम्बन्ध में भी समझना चाहिए। जहाँ पर फल-विशेष की प्राप्ति के लिए आवृत्ति-संख्या बताई गई है, वहाँ भी उस संख्या से अधिक जपादि करने से अधिक फल मिलता है। '**काल**' के कारण भी फल-प्राप्ति में विलम्ब होता है। इसी से **तन्त्र** की उक्ति है—'**कलौ संख्या चतुर्गुणा**' अर्थात् कलि-काल में निर्दिष्ट संख्या का चार गुना जपादि करना चाहिए।

शुम्भ-निशुम्भ-वध की परि-समाप्ति

ऋषिरुवाच॥३१॥

इत्युक्त्वा सा भगवती, चण्डिका चण्ड-विक्रमा।
पश्यतामेव देवानां, तत्रैवान्तरधीयत॥३२॥

अर्थ—**मेधस ऋषि** ने **महाराज सुरथ** से कहा—प्रचण्ड प्रताप-शालिनी वह **भगवती चण्डिका देवी** ये सारी बातें कहकर देवताओं के देखत-ही-देखते उसी स्थान में अन्तर्धान हो गईं।

व्याख्या—दसवें अध्याय में **शुम्भासुर-वध**, ११वें अध्याय में **देव-कृत नारायणी-स्तुति, भगवती द्वारा वर-प्रदान और उनके भावी अवतारों का कथन** हुआ है। १२वें अध्याय के ३०वें श्लोक तक **देवी-माहात्म्य** के **पाठ, श्रवण, कीर्तन व स्मरण का फल** बताया है। अब ३१ से ३५ तक के श्लोकों में **शुम्भ-निशुम्भ-वध के वर्णन का उप-संहार** करते हैं।

चण्ड-विक्रमा—'**देवी-भागवत**', १२।८।७७-७८ में **भगवती की अचिन्त्य शक्ति** व **प्रभाव** के सम्बन्ध में **देव-राज इन्द्र** के प्रति स्वयं **जगदम्बा** की उक्ति है—

सृष्टि-स्थिति-तिरोधाने, प्रेरयाम्यहमेव हि,
ब्रह्माणं च तथा विष्णुं, रुद्रं वै कारणात्मकम्।
मद्-भयाद् वाति पवनो, भीत्या सूर्यश्च गच्छति,
इन्द्राग्नि-मृत्युवस्तद्-वत्, साऽहं सर्वोत्तमा स्मृता॥

अर्थात् मैं ही कारणाभिमानी **ब्रह्मा**, **विष्णु** व **रुद्र** को इस विश्व की सृष्टि, स्थिति व संहृति के कार्यों में प्रेरित करती हूँ। मेरे ही भय से **पवन** बहता है, **सूर्य** उदय व अस्त होता है, **इन्द्र-अग्नि-यमादि देवता** अपने-अपने कार्य करते हैं। अतः मैं ही सर्व-श्रेष्ठा हूँ।

तत्रैव—(१) **तस्मिन् स्थाने एव** अर्थात् **देवी** उसी स्थान में अन्तर्धान हो गईं (**तत्त्व-प्रकाशिका**)। (२) **देव-शरीरेषु एव** अर्थात् **देवी** समस्त देव-शरीरों में विलीन हो गईं (**शान्तनवी**)।

तेऽपि देवा निरातङ्काः, स्वाधिकारान् यथा पुरा।
यज्ञ-भाग-भुजः सर्वे, चक्रुर्विनिहतारयः॥३३॥

अर्थ—वे सभी देवता भी शत्रुओं का संहार हो जाने के फल-स्वरूप निर्भय होकर पूर्व-वत् यज्ञ-भाग ग्रहण करते हुए अपने-अपने पद के अनुसार कार्य करने लगे।

दैत्याश्च देव्या निहते, शुम्भे देव-रिपौ युधि।
जगद्-विध्वंसिनि तस्मिन्, महोग्रेऽतुल - विक्रमे॥३४॥
निशुम्भे च महा-वीर्ये, शेषाः पातालमाययुः॥३५॥

अर्थ—संसार का नाश करनेवाले, अति भयङ्कर, अनुपम पराक्रमी, अत्यन्त शक्तिशाली उन देव-शत्रु **शुम्भ** और **निशुम्भ** के **देवी चण्डिका** द्वारा युद्ध में मारे जाने पर बचे हुए दैत्य भी पाताल में चले गए।

व्याख्या—**पाताल—पतन्ति अस्मिन् दुष्क्रिया-वन्त इति, पादस्य तले वर्तते इति वा 'पातालं'** अर्थात् दुष्कर्म करनेवालों का इस लोक में पतन होता है अथवा पैरों के नीचे अवस्थित होने से इस लोक का नाम **'पाताल'** है।

अन्तरिक्ष के नीचे पृथ्वी सौ योजन विस्तृत है। इस पृथ्वी के नीचे **सात विवर** हैं—**(१) अतल, (२) वितल, (३) सुतल, (४) तलातल, (५) महा-तल, (६) रसातल** और **(७) पाताल**। ये सभी **'विल-स्वर्ग'** नाम से ख्यात हैं। ये स्वर्ग की अपेक्षा समधिक सुख-प्रद हैं, सभी प्रकार के भोगों, ऐश्वर्यों एवं सुख-समृद्धि से परिपूर्ण हैं। यहीं बलवान् दैत्य, दानव व सर्प-गण का निवास है, जो बड़े मायावी हैं। इन **सप्त पातालों** का विस्तृत विवरण **'देवी-भागवत'**, ८।१८-२० में द्रष्टव्य है।

महा-माया का स्वरूप

एवं भगवती देवी, सा नित्याऽपि पुनः पुनः।
सम्भूय कुरुते भूप! जगतः परि-पालनम्॥३६॥

अर्थ—हे महाराज सुरथ! वे **भगवती देवी** नित्या अर्थात् जन्मादि विकारों से रहित होती हुई भी इस प्रकार बारम्बार आविर्भूत होकर संसार का परिपालन करती हैं।

व्याख्या—**सप्तशती** के पहले अध्याय में **राजा सुरथ** ने **महा-माया** का स्वरूप जानने की इच्छा प्रकट की थी, उसके उत्तर में **महर्षि मेधस** ने **मधु-कैटभ**-नाशार्थ **महा-काली**-रूप में **देवी** के आविर्भाव, **महिषासुर**-वधार्थ **महा-लक्ष्मी**-रूप में और **शुम्भ-निशुम्भ** के वध के लिए **महा-सरस्वती**-रूप में उनके आविर्भाव का वर्णन किया। अब उस सबका समाहार करते हुए ऋषि **देवी के स्वरूप एवं उनकी उपासना-प्रणाली** का उल्लेख करते हैं।

एवं—प्रथम चरितादि में कथित क्रम के अनुसार।

नित्याऽपि—जन्मादि छः विकारों से रहिता होती हुई भी **(तत्त्व-प्रकाशिका)**। ये विकार हैं-**(१) अस्ति— सत्ता, (२) जायते— उत्पत्ति, (३) वर्द्धते— वृद्धि, (४) विपरिणमते—**

परिणाम या **रूपान्तरता**, (५) **अप-क्षीयते— अपचय** या **क्षय**, (६) **विनश्यति—विनाश** या **अदर्शन**। विश्व के सभी पदार्थ इन **छः विकारों** के अधीन हैं। **भगवती महा-माया** इन सबके परे हैं।

सम्भूय—आविर्भूय, प्रादुर्भावं अवतारं अवाप्य अर्थात् अवतार-रूप में प्रादुर्भूत होकर **(शान्तनवी)**।

तयैतन्मोह्यते विश्वं, सैव विश्वं प्रसूयते।
सा याचिता च विज्ञानं, तुष्टा ऋद्धिं प्रयच्छति॥३७॥

अर्थ—उन्हीं **देवी** द्वारा यह संसार मोहित होता है, वे ही विश्व को जन्म देती हैं और प्रार्थिता होकर वे ही प्रसन्न होकर **तत्त्व-ज्ञान** तथा **ऐश्वर्य** प्रदान करती हैं।

व्याख्या—**देवी की महिमा** पहले वर्णित होने पर भी उसके स्पष्ट बोध के लिए ऋषि यहाँ पुनः उसका उल्लेख करते हैं।

तयैतन्मोह्यते विश्वं—भगवती महा-माया इस विश्व को मोहित अर्थात् अविवेक से युक्त या ममता-ग्रस्त करके रखती हैं **(शान्तनवी)**।

सैव विश्वं प्रसूयते—वे ही आदि प्रकृति हैं। अतः जगत् की वे ही उत्पादिका हैं। '**एव**'-शब्द से **सृष्टि-कार्य में देवी का स्वातन्त्र्य** प्रतिपादित होता है। **वैदिक देवी-सूक्त** में कहा है कि '**अहमेव वात इव प्रवाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा**' अर्थात् जिस प्रकार वायु अन्य किसी के द्वारा प्रेरित न होकर स्वेच्छा से प्रवाहित होती है, उसी प्रकार भगवती भी स्वतः सृष्ट्यादि कार्य में प्रवृत्त होती हैं। इस कथन से भी उक्त तथ्य की पुष्टि होती है। '**महा-निर्वाण तन्त्र**', ४।१०-११ में **देवी के प्रति सदा-शिव की उक्ति** है—

त्वं परा प्रकृतिः साक्षात्, ब्रह्मणः परमात्मनः।
त्वत्तो जातं जगत् सर्वं, त्वं जगज्जननी शिवे!॥
महदाद्यणु-पर्यन्तं, यदेतत् स-चराचरम्।
त्वयैवोत्पादितं भद्रे! त्वदधीनमिदं जगत्॥

अर्थ स्पष्ट है। इसी प्रकार '**शक्ति-सूत्र**' में कहा है कि—'**चितिः स्वतन्त्रा विश्व-सिद्धि-हेतुः**' अर्थात् स्वतन्त्रा या स्वाधीना चिति-शक्ति ही विश्व-सिद्धि की कारण है।

सा याचिता च विज्ञानं प्रयच्छति—(१) भक्तों द्वारा प्रार्थना करने पर वह देवी **विज्ञान** अर्थात् **विवेक-पूर्वक ज्ञान** देती हैं **(शान्तनवी)**। (२) '**सा अयाचिता**' विग्रह करें, तो अर्थ होगा कि **निष्काम भाव से आराधना** करने पर भी, बिना प्रार्थना किए ही देवी भक्त को विज्ञान अर्थात् **आत्म-तत्त्व-ज्ञान** प्रदान करती हैं **(नागो जी)**। (३) पाठान्तर है '**सा याचितार्थ-विज्ञानं**'।

तुष्टां ऋद्धिं प्रयच्छति—(१) सकाम-भाव से उपासना करनेवालों को देवी प्रसन्न होकर ऐश्वर्य प्रदान करती हैं **(नागो जी)**। (२) '**ऋद्धिं**' के स्थान पर '**वृद्धिं**' भी मिलता है **(शान्तनवी)**, जिसके अनुसार देवी महती सम्पत्ति देती हैं।

'**तत्त्व-प्रकाशिका**' के अनुसार उक्त श्लोक का *अर्थ*—**देवी** भक्ति द्वारा प्रसन्न होकर साधक की प्रार्थना के अनुसार उसे यथा-योग्य **विज्ञान** व **ऋद्धि** प्रदान करती हैं। इस प्रकार **देवी भोग** और **मोक्ष-दायिनी** होने से अधिकारी व्यक्ति को उसकी वासना के अनुरूप वर देती हैं, यह बोध होता है।

महा-काली

व्याप्तं तयैतत् सकलं, ब्रह्माण्डं मनुजेश्वर!
महा-काल्या महा-काले, महा-मारी-स्वरूपया॥३८॥

अर्थ—हे **राजा सुरथ!** महा-प्रलय के समय में महा-मृत्यु-रूपिणी उन **महा-काली** द्वारा यह सारा विश्व व्याप्त हो जाता है।

व्याख्या—**महा-काले**—(१) प्रलय-समय में **(तत्त्व-प्रकाशिका)**; (२) महा-प्रलय में **(दंशोद्धार)**; (३) महान् अकाल अर्थात् अनिष्ट-काल, कालाग्नि-रुद्र, उस समय प्रस्तुत होनेवाले महा-काल अर्थात् संहार-समय में **(शान्तनवी)**।

महा-काली—विशेष विवरण हेतु '**काली-कल्पतरु**' नामक पुस्तक द्रष्टव्य है।

महा-मारी-स्वरूपया—(१) महा-मारी = संहार-क्रिया तद्-रूपा **(नागो जी)**; (२) **मारयति संहरति मारः। महांश्चासौ मारश्च संहारकः महा-मारः कालाग्नि-रुद्रः। तस्येयं स्त्री महा-मारी। सा स्वरूपं यस्या सा देवी महा-मारी स्वरूपा, तया (शान्तनवी)**।

महा-मारी-स्वरूपा महा-काली के सम्बन्ध में '**शान्तनवी टीका**' में निम्नोक्ति उद्धृत है–

मृत्यु-जिह्वा महा-मारी, जगत्-संहार-कारिणी।
महा-रात्रिर्महा-निद्रा, महा-काल्यति-तामसी॥
सैव कालानल-ज्वाला, सैव विद्या तनः-प्रसूः।
सैव मोह-प्रसूर्मृत्युः, सैव सर्वाधि-देवता॥

ब्रह्माण्डं—'**मनु-संहिता**' १।८-९, १२-१३ के अनुसार **स्वयम्भू भगवान्** ने सृष्टि की इच्छा से पहले अपने शरीर से '**जल**' उत्पन्न किया। उस जल में उन्होंने '**बीज**' छोड़ा, जिससे तत्क्षण स्वर्ण के रँगवाला सूर्य-वत् उज्ज्वल एक '**अण्ड**' उत्पन्न हुआ। सब लोकों के **पितामह ब्रह्मा** ने स्वयं इस अण्ड में जन्म ग्रहण किया। एक ब्राह्म-वर्ष तक वहाँ निवास कर उन्होंने उस अण्ड को अपने ध्यान-बल से दो भागों में बाँट दिया। ऊर्ध्व-भाग में **स्वर्गादि लोक**, अधोभाग में **पृथिव्यादि** और मध्य भाग में **आकाश, अष्ट-दिक्, समुद्र**-नामक जल-स्थान उन्होंने स्थापित किए।

प्रलय—'**कूर्म-पुराण**', ४३।५-९ के अनुसार '**प्रलय**' चार प्रकार की है—(१) **नित्य**, (२) **नैमित्तिक**, (३) **प्राकृत** और (४) **आत्यन्तिक**। इस संसार में सुषुप्ति-काल में सभी भूतों की जो '**लय**' होती है, वही '**नित्य-प्रलय**' कही गई है। कल्पान्त में **ब्रह्मा** के निद्रित होने पर **भूः**, **भुवः**, **स्वः**—इन तीन लोकों की जो प्रलय होती है, उसे '**नैमित्तिक प्रलय**' कहते हैं। **महद्**, **अहङ्कार** आदि स्थूल-भूत-पर्यन्त होनेवाली प्रलय को '**प्राकृत प्रलय**' मानते हैं और **तत्त्व-ज्ञान** के लिए योगी-गण की परमात्मा में जो लय होती है, उसे '**आत्यन्तिक प्रलय**' कहते हैं।

सैव काले महा-मारी, सैव सृष्टिर्भवत्यजा।
स्थितिं करोति भूतानां, सैव काले सनातनी॥३९॥

अर्थ—वे ही **भगवती महा-माया** प्रलय-काल में **संहार-शक्ति-रूपिणी** होती हैं, अजन्मा होती हुई भी **सृष्टि-रूपा** होती हैं और नित्या होती हुई भी वे स्थिति-काल में **सब प्राणियों का पालन** करती हैं।

व्याख्या—**भगवती महा-माया** तमो-गुण-मयी होकर प्रलय-काल में **रुद्र**-रूप से संहार करती हैं, रजो-गुण-मयी होकर सृष्टि-काल में **ब्रह्मा**-रूप से सृष्टि करती हैं और सत्त्व-गुण-मयी होकर स्थिति-काल में **विष्णु**-रूप से पालन करती हैं। वस्तुतः वे **देवी त्रिगुणातीता, अजा** व **सनातनी** हैं।

भव-काले नृणां सैव, लक्ष्मीर्वृद्धि-प्रदा गृहे।
सैवाऽभावे तथाऽलक्ष्मीर्विनाशायोप - जायते॥४०॥

अर्थ—वे ही **भगवती महा-माया** सम्पद्-काल में मनुष्यों को समृद्धि-दायिनी **लक्ष्मी**-रूप में और वे ही विपद्-काल में विनाश के निमित्त **अलक्ष्मी**-रूप में उत्पन्न होती हैं।

व्याख्या—**देवी** ही **लक्ष्मी** व **अलक्ष्मी**, भाव व अभाव-स्वरूपिणी हैं। अध्याय ४ के ५वें मन्त्र में भी यही बात कही जा चुकी है। '**पद्म-पुराण**' में **अलक्ष्मी देवी** का ध्यान दिया है—

अलक्ष्मीं कृष्णा-वर्णां च, क्रोधनां कलह-प्रियाम्।
कृष्णा-वस्त्र-परीधानां, लौहाभरण-भूषिताम्।
भग्नासनस्थां द्वि-भुजां, शर्कराघृष्ट-चन्दनाम्।
सम्मार्जनी-सव्य-हस्तां, दक्षिण-हस्त-सूर्पकाम्॥
तैलाभ्यङ्गित-गात्रां च, गर्दभारोहणां भजे॥

अर्थात् **अलक्ष्मी देवी** कृष्ण-वर्णा हैं। वे क्रोध-परायणा, कलह-प्रिया, काला वस्त्र पहननेवाली, लोहे के अलङ्कारों से विभूषिता, फटे आसन पर विराजमाना और द्वि-भुजा हैं। उनका शरीर शर्करा और चन्दन से लिप्त है। बाँएँ हाथ में वे **झाड़ू** और दाएँ में **सूप** लिए हैं। उनके शरीर में तेल लगा है और वे गधे पर सवार हैं।

महा-माया को प्रसन्न करने का उपाय व फल

स्तुता सम्पूजिता पुष्पैर्धूप - गन्धादिभिस्तथा।
ददाति वित्तं पुत्रांश्च, मतिं धर्मे गतिं शुभाम्।।४१।।

अर्थ—स्तव द्वारा आराधिता और पुष्प, धूप, गन्ध आदि द्वारा समुचित प्रकार से पूजिता होकर **देवी** धन व पुत्र एवं धर्म में शुभ बुद्धि प्रदान करती हैं।

व्याख्या—इस श्लोक में **सुमेधा ऋषि** ने **राजा सुरथ** को **देवी का सान्निध्य** प्राप्त करने का उपाय और उसका फल बताया है (**शान्तनवी**)।

पुत्रांश्च—'**च**'-शब्द आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य आदि का सूचक है (**शान्तनवी**)।

मतिं धर्मे तथा (गति) शुभां—(१) धर्म के सम्बन्ध में शुभ अर्थात् श्रद्धा-भक्ति-युक्ता या निष्काम-लक्षणा बुद्धि (**तत्त्व-प्रकाशिका**)। (२) **शान्तनवी टीका** के अनुसार '**विशुद्ध चण्डी**' में पाठान्तर स्वीकार किया गया है—'**मतिं धर्मे गतिं शुभां**'। धार्मिक बुद्धि और शुभ गति अर्थात् मोक्ष।

देवी की प्रसन्नता प्राप्त करने का उपाय है **स्तुति** व **पूजा**। **देवी की प्रसन्नता** के फल-स्वरूप भोग व मोक्ष मिलता है। '**श्रीभगवती-गीता**' १०।३०-३१ में **पूजा का फल** निम्न प्रकार बताया है—

य एवं पूजयेद् देवीं, श्रीमद्-भुवन-सुन्दरीम्।
न तस्य दुर्लभं किञ्चित्, कदाचित् क्वचिदस्ति हि।।
देहान्ते तु मणि-द्वीपं, मम यात्येव सर्वथा।
ज्ञेयो देवी-स्वरूपोऽसौ, देवा नित्यं नमन्ति तम्।।

पूजा के भेद—'**भगवती गीता**', ९।३ में स्वयं **जगदम्बा** ने **हिमालय** को बताया है कि मेरी पूजा दो प्रकार की है—**१ बाह्य, २ आभ्यन्तर**। **बाह्य पूजा** के भी दो भेद हैं—**१ वैदिक, २ तान्त्रिक**। **वैदिक बाह्य पूजा** दो प्रकार की है—**१ विराट् स्वरूप की पूजा, २ प्रतीक की पूजा**। विराट् स्वरूप की पूजा में **अनन्त-शीर्ष, अनन्त-नयन, अनन्त-चरण** व **सर्व-शक्ति-समन्वित**, जीवों के बुद्धि-प्रेरक, परात्पर, **अति महत् परम रूप-विश्व-रूप का ध्यान** कर नित्य पूजा करे, स्मरण करे, नमस्कार करे। **प्रतीक-पूजा** में **प्रतिमा** या **विशुद्ध भूमि** में, **सूर्य** या **चन्द्र-मण्डल** में, **जल** में, **वाण-लिङ्ग** में, **मन्त्र** में, **महा-पट** या **हृदय-कमल** में **देवी का ध्यान** कर यथा-शक्ति विविध उपचारों द्वारा उनकी **पूजा** करे।

विधि-पूर्वक **बाह्य पूजा** करते-करते जब चित्त स्वत: अन्तर्मुखी हो जाए, तब '**आभ्यन्तर**' या '**मानस पूजा**' करने का अधिकार मिलता है। यह पूजा भी दो प्रकार की है—**१ साधारा, २ निराधारा**। हृदय-कमल के दहराकाश में **मातृका-वर्णों** से रचित आधार पर गुरूपदिष्ट विधि से **देवी की आराधना** करना '**साधारा**'-पूजा है। **निर्विकल्प ज्ञान-धारा** को संवित् कहते हैं,

इसी **संवित्-रूपिणी देवी** में मन को लय करना **'निराधारा'**-पूजा है। इस सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए **'भगवती गीता'**, ९।४४-४६ द्रष्टव्य है। **'हिन्दी महा-निर्वाण तन्त्र'**, अध्याय ५ में **मानस पूजा (अन्तर्याग)** का विस्तृत वर्णन है।

पूजा के विविध उपचारों की जानकारी के लिए **'मुद्राएँ एवं उपचार'** पुस्तक उपयोगी है।

बारहवें अध्याय के पाठान्तर

श्लोक-संख्या	'विशुद्ध चण्डी' का पाठ	प्रचलित पाठ
२	नाशयिष्याम्य	शमयिष्याम्य
३	घातनम्	सूदनम्
७	परं स्वस्तययनं हि तत्	परं स्वस्तययनं महत्
११	बलि-पूजां	बलिं पूजां
११	प्रीत्या	प्रीता
१३	सर्वा-बाधा-विनिर्मुक्तो	सर्व-बाधा-विनिर्मुक्तो
१३	धन-धान्य-सुतान्वित:	धन-धान्य-समन्वित:
१४	तथा चो्त्पत्तय: शुभा:	१. तथोत्पत्ती: पृथक् शुभा: २. तथा चाधीत्य भक्तित:
१४	पराक्रमं च	पराक्रमांश्च
१५	उप-पद्यते	उप-जायते
२०	सन्निधि-कारकम्	सान्निध्य-कारकम्
२१	प्रोक्षणीयै:	प्रेक्षणीयै:
२२	सुकृत् सुचरिते	१. सकृदुच्चरिते २.सकृच्चरिते
२३	जन्मनां	जन्मिनां
२५	ब्रह्मणा च कृतास्तास्तु	ब्रह्मणा च कृता यास्ता:
२५	प्रयच्छन्ति शुभां मतिम्	प्रयच्छन्ति शुभां गतिम्
२७	चाङ्मप्तो	वाङ्मप्तो
२८	पतत्सु चापि	पतत्सु वापि
३४	जगद्-विध्वंसिनि	जगद्-विध्वंसके
३७	सा याचिता च विज्ञानं	सा याचितार्थ विज्ञानम्
३७	तुष्टा ऋद्धिं प्रयच्छति	तुष्टा वृद्धिं प्रयच्छति
४१	गतिं शुभाम्	तथा शुभाम्

***

सार्थ चण्डी (श्री दुर्गा सप्तशती)

उत्तर या उत्तम चरितम्

त्रयोदशः अध्यायः

सुरथ व समाधि को वर-प्रदान

ॐ ऋषिरुवाच॥१॥

एतत् ते कथितं भूप! देवी-माहात्म्यमुत्तमम्।
एवं प्रभावा सा देवी, ययेदं धार्यते जगत्॥२॥

अर्थ—**मेधस ऋषि** ने **महाराज सुरथ** से कहा—हे राजन्! **देवी** का यह श्रेष्ठ माहात्म्य तुम्हें बताया गया। जिसके द्वारा यह जगत् धारण किया जाता है, वे **देवी महा-माया** ऐसी ही प्रभाव-शालिनी हैं।

व्याख्या—**राजा सुरथ** ने **महा-माया** के स्वरूप, उनकी उत्पत्ति व आविर्भाव के सम्बन्ध में पूछा था (१।५४-५५)। उत्तर में **मेधस ऋषि** ने पिछले १२ अध्यायों में **भगवती की महिमा** का वर्णन किया। अब वे उसका उप-संहार करते हैं।

उत्तमं—सकल-पुरुषार्थ-साधक (**तत्त्व-प्रकाशिका**)। देवी-माहात्म्य के पाठ व श्रवण से धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष—ये चारों फल मिलते हैं। इसी से इसे '**उत्तम**' कहा है।

देवी—क्रीडार्थक '**दिव्**'-धातु से '**देवी**'-शब्द बना है। जो स्वयं अपने से क्रीड़ा करती है, उसी **चित्-शक्ति** को '**देवी**' कहते हैं।

धार्यते—इस शब्द से सृष्टि, स्थिति व प्रलय का बोध होता है (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

विद्या तथैव क्रियते, भगवद्-विष्णु-मायया॥३॥

अर्थ—और वे ही **भगवती विष्णु-माया** तत्त्व-ज्ञान उत्पन्न करती हैं।

व्याख्या—**विद्या क्रियते**—**विद्या तत्त्व-ज्ञान-लक्षणा च क्रियते उत्पाद्यते, एतेन मोक्षदा च इत्युक्तं** अर्थात् **तत्त्व-ज्ञान देनेवाली विद्या** को उत्पन्न करने से **देवी** मुक्ति-दायिनी भी हैं (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

सप्तशती, १।५२ में भी कहा है—'**सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतु-भूता सनातनी**'। **शक्रादि-स्तुति**, ४।९ में भी इस तथ्य की पुष्टि है।

वैदिक देवी-सूक्त की पाँचवीं ऋचा के पूर्वार्द्ध में **देवी की उक्ति है**—

अहमेव स्वयमिदं वदामि, जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।

अर्थात् देवताओं और मनुष्यों द्वारा सेवित इस '**ब्रह्म-तत्त्व**' का उपदेश मैंने स्वयं किया है।

तथैव—'**दंशोद्धार टीका**' के अनुसार यदि पाठान्तर '**ययैव**' स्वीकार करें, तो वाक्य होगा—'**ययेदं धार्यते जगत् तयैव**' अर्थात् जो इस जगत् को धारण करती हैं, उन्हीं के द्वारा।

विष्णु-माया—'**कालिका-पुराण**', ६।५८ में कहा है—

अव्यक्तं व्यक्त-रूपेण, रजः-सत्त्व-तमो-गुणैः।
विभज्य यार्थं कुरुते, विष्णु-मायेति सोच्यते॥

अर्थात् जो अव्यक्त को सत्त्व, रजः व तमः इन तीन गुणों द्वारा व्यक्त रूप में विभक्त कर प्रयोजन को सिद्ध करती हैं, वे '**विष्णु-माया**' नाम से ख्यात हैं।

तया त्वमेष वैश्यश्च, तथैवान्ये विवेकिनः।
मोह्यन्ते मोहिताश्चैव, मोहमेष्यन्ति चापरे॥४॥

अर्थ—उन्हीं **विष्णु-माया** या **महा-माया** के द्वारा तुम **सुरथ** और यह **वैश्य समाधि** तथा अन्यान्य ज्ञानाभिमानी लोग मोहित होते हैं, पहले भी मोहित हुए हैं और अन्य विवेकी लोग भी भविष्य में मोहित होंगे।

व्याख्या—**विवेकिनः**—(१) लौकिक शास्त्र के ज्ञाता **(नागो जी)**। (२) तुम्हारे मत से विवेकी होते हुए भी वास्तव में जो अविवेकी अर्थात् तत्त्व-ज्ञान से रहित हैं **(देवी-भाष्य)**।

केवल शास्त्रीय ज्ञान से **महा-माया** के मोह-जाल से बचा नहीं जा सकता। **सप्तशती**, १।५० में भी यही बात कही जा चुकी है। उल्लेखनीय है कि **राजा सुरथ** ने १।४० में प्रश्न किया था कि ज्ञानी होते हुए भी हम मोह में क्यों पड़े हैं? उसी के उत्तर में **ऋषि मेधस** पुनः अपना मन्तव्य प्रकट करते हैं कि 'केवल तुम लोग ही नहीं, अन्यान्य लोग भी वर्तमान, भूत व भविष्य में मोह-ग्रस्त हुए हैं और होंगे। **भगवती की शरण** में जाने पर ही इस मोह से मुक्ति मिल पाती है।'

महा-माया-तत्त्व

महा-माया—(१) **वि-सदृश-प्रतीति-साधनं माया। तस्या महत्त्वं च सर्व-विषयत्वमिति महा-माया ईश्वर-शक्तिः** अर्थात् जो मिथ्या ज्ञान उत्पन्न करती है, वही '**माया**' है। इसके महत्त्व और सभी विषयों में व्याप्त होने के कारण इसका नाम '**महा-माया**' पड़ा है। यह **ईश्वर की शक्ति** है **(नागो जी)**।

(२) **माति ईश्वरमपि वशीकरोतीति माया। यद्वा मीयते ज्ञायते परमेश्वरोऽनया इति माया** अर्थात् जो ईश्वर को भी वशीभूत कर लेती है, वह '**माया**' है अथवा **इसके द्वारा परमेश्वर को जान सकते हैं**, इसी से '**माया**' नाम पड़ा है **(तत्त्व-प्रकाशिका)**।

(३) **दुर्घटन-घटना-पटीयसी माया, विषय-विसदृश-प्रतीति-साधनं वा। सा च परमेश्वर-शक्तिः भगवद्-रूप-विशेषः। महती सर्व-व्यापिका चासौ माया चेति महा-माया** अर्थात् असम्भव को भी सम्भव बना देनेवाली '**माया**' है, मिथ्या ज्ञान उत्पन्न करती है, **परमेश्वर**

की शक्ति और भगवान् का रूप-विशेष है। महती एवं सर्व-व्यापिका होने से '**महा-माया**' कहलाती है (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

(४) **महती चासौ माया चेति महा-माया। ब्रह्मा-विष्णु-शिवादीनां मोह-जनकत्वात् महा-माया** अर्थात् **ब्रह्मा-विष्णु-शिव** आदि को भी मोह में डालनेवाली होने से '**महा-माया**' नाम है (**शाक्तानन्द-तरङ्गिणी**)।

(५) '**कालिका-पुराण**', ६।६१-६४ में '**महा-माया**' का स्वरूप वर्णित है—

गर्भान्तर्ज्ञान-सम्पन्नं, प्रेरितं सूति-मारुतैः।
उत्पन्नं ज्ञान-रहितं, कुरुते या निरन्तरम्॥
पूर्वाति-पूर्वं सन्धातुं, संस्कारेण नियोज्य च।
आहारादौ ततो मोहं, ममत्वं ज्ञान-संशयम्॥
क्रोधोपरोध-लोभेषु, क्षिप्त्वा क्षिप्त्वा पुनः पुनः।
पश्चात् कामे नियोज्याशु, चिन्ता-युक्तमहर्निशम्॥
आमोद-युक्तं वासना-सक्तं जन्तुं करोति या।
महा-मायेति सा प्रोक्ता, तेन सा जगदीश्वरी॥

अर्थात् गर्भ में जीव को **तत्त्व-ज्ञान** होने पर भी सूति-वायु से प्रेरित होकर वह भूमि पर आता है। उस समय उसे जो **तत्त्व-ज्ञान** से शून्य कर देती है और पूर्व-जन्मों के संस्कार-वश **आहारादि कर्मों** में उसे जो निरन्तर प्रवृत्त रखती है, **मोह-ममता** व **संशय** उसमें उत्पन्न करती है; जो जीव को बारम्बार **क्रोध, लोभ** व **मोह** में डालकर बाद में अहर्निश उस चिन्ताकुल जीव को **काम-वासना** में फँसाकर **आमोद-युक्त** एवं **वासना-रत** बनाती है, उसी का नाम '**महा-माया**' है। अपनी इसी शक्ति के कारण वह **जगदीश्वरी** कहलाती है।

महा-माया के दो भेद—जो महा-माया मुक्ति-दायिनी है, उसे '**विद्या**' और जो संसार के बन्धन में डालती है, उसे '**अविद्या**' कहते हैं।

महा-माया की शरणागति

तामुपैहि महाराज! शरणं परमेश्वरीम्।
आराधिता सैव नृणां, भोग-स्वर्गापवर्गदा॥५॥

अर्थ—हे **महाराज सुरथ**! उसी **भगवती महा-माया** की शरण ग्रहण करो। वे ही उपासना करने पर मनुष्यों को ऐहिक भोग, स्वर्ग और मुक्ति प्रदान करती हैं।

व्याख्या—**महा-माया** की शरणागति ही मोह से छूटने का एक-मात्र उपाय है। यही **श्री चण्डी का सार-तत्त्व** है।

महा-राज—मेधस ऋषि ने **राजा सुरथ** और **समाधि** दोनों को ही उपदेश दिया था, किन्तु प्रश्न-कर्त्ता **राजा सुरथ** ही थे, इसी से उन्हीं को सम्बोधित किया है।

परमेश्वरीं—सर्वेश्वरी। सर्वेश्वर **पर-ब्रह्म की शक्ति** होने से **परमेश्वरी** कहा है। **शङ्कराचार्य** ने भी '**सौन्दर्य-लहरी**' में **महा-माया** को '**पर-ब्रह्म-महिषी**' नाम से सम्बोधित किया है।

सैव—यहाँ '**एव**'-शब्द से यह प्रतिपादित किया है कि निश्चित ही, निस्सन्देह-रूप से। अथवा '**स्वातन्त्र्याय एव शब्दः**' अर्थात् भोग, स्वर्ग व अपवर्ग देने में **देवी** स्वतन्त्र हैं। **भोग**—ऐहिक राज्यादि सुख, **स्वर्ग** —पारलौकिक इन्द्र-लोकादि, **अपवर्ग** — मोक्ष (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

महा-माया की आराधना—इस सम्बन्ध में '**देवी-भागवत**' की टीका में **शैव नील-कण्ठ** ने लिखा है—

आराध्या परमा शक्तिः, सर्वैरपि सुरासुरैः।
मातुः पर-तरं किञ्चिदधिकं भुवन-त्रये॥
धिग् धिग् धिग् धिक् च तज्जन्म, यो न पूजयते शिवाम्।
जननीं सर्व-जगतः, करुणा-रस-सागराम्॥

अर्थात् वह **परमा शक्ति** देव, दानव सबके द्वारा उपास्या है। **त्रिभुवन की माता** से बढ़कर क्या और कोई है? जो व्यक्ति **सारे जगत् की जननी, दया-मयी मङ्गल-रूपिणी भगवती की पूजा** नहीं करता, उसके जन्म को बारम्बार धिक्कार है।

'**रुद्र-यामल तन्त्र**' में कहा है—

सुखदा मोक्षदा नित्या, सर्व-भूतेषु संस्थिता।
यदा तुष्टा भवेन्माया, तदा सिद्धिमुपा-लभेत्॥
वन्दनीया सदा स्तुत्या, पूजनीया च सर्वदा।
श्रोतव्या कीर्तितव्या च, माया नित्या नगात्मजा॥

अर्थात् सुख और मोक्ष-दायिनी सनातनी **महा-माया** सभी भूतों में विद्यमान है। वह **महा-माया** जब प्रसन्न होती है, तभी जीव सिद्धि प्राप्त करता है। वह पर्वत-नन्दिनी सनातनी **महा-माया** सदैव वन्दनीया व पूजनीया है। सभी समय उसकी **महिमा का श्रवण व कीर्तन** करना चाहिए।

सुरथ व समाधि का तपस्या के लिए प्रस्थान

मार्कण्डेय उवाच॥६॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा, सुरथः स नराधिपः।
प्रणिपत्य महा-भागं, तम् ऋषिं शंसित-व्रतम्॥७॥
निर्विण्णोऽति-ममत्वेन, राज्यापहरणेन च।
जगाम सद्यस्तपसे, स च वैश्यो महा-मुने॥८॥

अर्थ—**मार्कण्डेय मुनि** ने **भागुरि** से कहा—हे महा-मुनि! उन **मेधस ऋषि** के इस उपदेश-वचन को सुनकर प्रगाढ़ ममता और राज्य-अपहरण के कारण अत्यन्त दुःखाकुल वे

राजा सुरथ तथा वे **वैश्य समाधि** अति प्रभाव-शाली एवं तीव्र-व्रत-परायण उन **मेधस ऋषि** को प्रणाम कर तत्क्षण ही तपस्या करने के लिए चल दिए।

व्याख्या—**मार्कण्डेय उवाच**—अभी तक **सुरथ** और **मेधस ऋषि** का वार्तालाप चल रहा था, जो **मेधस ऋषि** के वाक्य से समाप्त हो गया। प्रारम्भ में '**मार्कण्डेय उवाच**' से ही '**श्रीचण्डी**' का श्रीगणेश हुआ था, अब उप-संहार में पुनः '**मार्कण्डेय उवाच**' द्वारा ही आख्यान को पूर्ण करते हैं।

महा-भागं—निरतिशय तप के प्रभाव से युक्त (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

संशित-व्रतं—जिन्होंने तीव्र व्रत का अनुष्ठान किया, जो दूसरों के लिए दुष्कर है (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

निर्विण्णः—दुःख से व्याकुल (**नागो जी**)।

निर्विण्णोऽति-ममत्वेन राज्यापहरणेन च—शत्रु द्वारा राज्य के अपहरण से दुःखी **सुरथ** और दुष्ट स्त्री-पुत्रादि में अत्यन्त ममता होने से दुःखी **समाधि** (**देवी-भाष्य**)।

ऋषि मेधस द्वारा सुरथ व समाधि को दीक्षा—'**देवी-भागवत**', ५।३५ में इस प्रसङ्ग का उल्लेख है। **देवी-माहात्म्य** सुनने के बाद **राजा सुरथ** और **समाधि वैश्य** ने **मेधस ऋषि** को प्रणाम करते हुए प्रार्थना की कि—

गृहाणास्मत्-करो साधो! नय पारं भवार्णवे।
मग्नौ श्रान्तविति ज्ञात्वा, मन्त्र-दानेन साम्प्रतम्।।
तपः कृत्वाति-विपुलं, समाराध्य सुख-प्रदाम्।
सम्प्राप्य दर्शनं भूयो, यास्यावो निज-मन्दिरम्।।
वदनात् तव सम्प्राप्य, देवी-मन्त्रं नवाक्षरम्।
स्मरणं च करिष्यावौ, निराहारौ धृत-व्रतौ।।

अर्थात् हे साधो! हम दोनों संसार-सागर में मग्न होकर थक गए हैं। अतः अब हमारे हाथों को पकड़कर मन्त्र देकर हमें पार लगाइए। हम कठोर तप द्वारा सुख-दायिनी **भगवती की आराधना** कर उसके दर्शन पाकर अपने घर जाएँगे। हम आपके मुख से **नवाक्षर देवी-मन्त्र** को प्राप्त कर **नवरात्र-व्रत** का पालन करते हुए निराहार रह उस मन्त्र का जप करेंगे।

इस पर **मेधस ऋषि** ने उन दोनों को **मन्त्र की दीक्षा** दी। यथा—

इति सञ्चोदितस्ताभ्यां, सुमेधा मुनि-सत्तमः।
ददौ मन्त्रं शुभं ताभ्यां, ध्यान-वीज-पुरस्सरम्।।
तौ च प्राप्य मुनेर्मन्त्रं, सम्मन्त्र्य गुरु-दैवतौ।
जग्मतुर्वैश्य - राजानौ, नदी - तीरमनूत्तमम्।।

अर्थात् इस प्रकार प्रार्थित होकर मुनि-श्रेष्ठ **सुमेधा** ने उन्हें **ध्यान व बीज-सहित शुभ मन्त्र** प्रदान किया। इस प्रकार वे दोनों—**वैश्य** व **राजा**—**मुनि से मन्त्र के ऋषि, छन्द, वीज, शक्ति व देवता का ज्ञान** प्राप्त कर गुरु की अनुमति लेकर पवित्र नदी-तट की ओर चले गए।

सुरथ व समाधि की देवी-आराधना

सन्दर्शनार्थमम्बाया, नदी-पुलिन-संस्थितः।
त च वैश्यस्तपस्तेपे, देवी-सूक्तं परं जपन्॥९॥

अर्थ—वह **राजा सुरथ** और **वैश्य समाधि** जगदम्बा के दर्शन पाने के लिए नदी के तट पर बैठकर श्रेष्ठ **देवी-सूक्त** का जप करते हुए तपस्या करने लगे।

व्याख्या—'**देवी-भागवत**', ५।३५।१५ में बताया है कि वे दोनों नदी किनारे एक निर्जन स्थान में आसन बिछाकर उस पर बैठकर स्थिर-चित्त से **देवी के चरित-त्रय का पाठ** और **मन्त्र का जप** करने लगे।

सन्दर्शनार्थं अम्बायाः—**महा-माया** के सम्यक् दर्शन अर्थात् **तत्त्व-साक्षात्कार** के लिए। **महा-माया** परमात्म-स्वरूपिणी हैं, अतः उनका दर्शन **तत्त्व-साक्षात्कार** ही है **(देवी-भाष्य)**।

नदी-पुलिन-संस्थितः—**नद्याः पुलिने द्वीपे तट-विशेषे वा संस्थितः सैकत-देशे सम्यक् अवस्थितः** अर्थात् नदी के द्वीप में या तट की भूमि में बालू पर समुचित रूप से बैठकर **(शान्तनवी)**।

तपस्या के अनुकूल स्थान—इस सम्बन्ध में '**साधना-रहस्य**' नामक पुस्तक द्रष्टव्य है।

तपस्तेपे—'**तप्**'-धातु सन्ताप-अर्थ में प्रयुक्त होती है। उपवासादि तप तपस्वी को दुःखी करते हैं। तपस्वी लोग इस प्रकार के अनुष्ठान करते हुए अस्थि-चर्म मात्र होकर भी अपने अभीष्ट स्वर्गादि-प्राप्ति के लिए विविध प्रकार के तप किया करते हैं।

देवी-सूक्तं परं जपन्—(१) **परं सर्वत उत्कृष्टं देवी-सूक्तं ऋग्वेदोक्त-मन्त्र-विशेषं जपन्, परं केवलं इति वा** अर्थात् '**पर**'-शब्द का अर्थ है '**सर्व-श्रेष्ठ**' या '**केवल**'। सर्व-श्रेष्ठ **देवी-सूक्त** या केवल **देवी-सूक्त का जप** करते हुए **(तत्त्व-प्रकाशिका)**।

(२) **परं श्रेष्ठं सर्वार्थ-प्रदं केवलं** अर्थात् इसके अनुसार '**पर**'-शब्द का एक अन्य अर्थ है—'**सर्वार्थ-प्रद**' अर्थात् सर्वार्थ-सिद्धि-दायक **(शान्तनवी)**।

देवी-सूक्त—श्रुति, पुराण और तन्त्र के भेद से अनेक '**देवी-सूक्त**' प्रसिद्ध हैं—

(१) **ऋग्वेद, दशम मण्डल** का '**अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चरामि**' इत्यादि अष्ट-मन्त्रात्मक १२५वाँ सूक्त सर्वाधिक प्रचलित है। **दंशोद्धार-टीका** के अनुसार **देवी-माहात्म्य**-सूचक '**श्री-सूक्त**' आदि भी '**देवी-सूक्त**' माने जाते हैं।

(२) '**लक्ष्मी-तन्त्र**' के अनुसार **सप्तशती** के पाँचवें अध्याय में **देव-कृत स्तुति** '**नमो देव्यै महा-देव्यै**' इत्यादि ही '**देवी-सूक्त**' है। **नागो जी भट्ट** भी इसी मत के हैं कि **सुरथ** व **समाधि** ने इसी स्तुति का जप किया था।

(३) **अग्नि-गर्भ देवी-प्रणव** ही '**देवी-सूक्त**' नाम से अभिहित है अथवा **चण्डिका** के **चरित-त्रय** या आचार्य द्वारा उपदिष्ट देवी-विषयक आगमीय सूक्त (**शान्तनवी**)।

(४) '**वृहद्-धर्म पुराण**' में **ब्रह्मा-कृत देवी का बोधन-स्तव** प्रकारान्तर '**देवी-सूक्त**' माना गया है। '**महा-भागवत-पुराण**' का निम्न स्तव भी वैसा ही '**देवी-सूक्त**' कहा गया है—

ॐ नमो विमल - वदनायै भूर्भुवः - स्वः - परमहः—
कलायै केवल - परमानन्द - सन्दोह - रूपायै॥१

मूर्तिमन्ते कोटि-चन्द्र-वदनायै ते दुर्गे देवि! सर्व-वेदोद्भवे!
नारायणि! तैजस-शरीरे परमात्मन्! प्रसीद ते नमो नमः॥२

हुङ्कार - रूपे प्रणव - स्वरूपे ह्रीं - स्वरूपिणि,
अम्बिके भगवत्यम्ब त्रि-गुण-प्रसूस्ते नमो नमः॥३

इति सिद्धि-करे स्फें क्षौं ह्रौं ह्रीं स्वाहा-स्वरूपिणि,
विमुल-मुखि चन्द्र-मुखि कोलाहल-मुखि खर्वे प्रसीद॥४

जप-विधि—इष्ट-देवता के मन्त्र का विधि-पूर्वक बारम्बार उच्चारण करना ही '**जप**' कहलाता है—'**जपः स्यादक्षरावृत्तिः**' (**विशुद्धेश्वर तन्त्र**)। '**गीता**', १०।२५ में **भगवान्** की उक्ति है—'**यज्ञानां जप-यज्ञोऽस्मि**' अर्थात् सब प्रकार के यज्ञों में **जप-यज्ञ** श्रेष्ठ है।

जप तीन प्रकार का होता है—**१ मानस**—मन्त्रार्थ का चिन्तन करते हुए मन-ही-मन में मन्त्र का जप करना। **२ उपांशु**—जिह्वा और ओष्ठ-द्वय के किञ्चित् सञ्चालन के साथ अल्प श्रवण-योग्य स्वर में जप करना। **३ वाचिक**—स्पष्ट उच्चारण करते हुए जप करना।

मन्त्र-जप और उससे सम्बन्धित विषयों—**आसन, माला** आदि के सम्बन्ध में प्रामाणिक ज्ञान के लिए '**मन्त्र-सिद्धि का उपाय**' और '**साधना-रहस्य**' नामक पुस्तकें द्रष्टव्य हैं।

तौ तस्मिन् पुलिने देव्याः, कृत्वा मूर्तिं मही-मयीम्।
अर्हणां चक्रतुस्तस्याः, पुष्प-धूपाग्नि-तर्पणैः॥१०॥

अर्थ—वे दोनों, **राजा सुरथ** व **समाधि वैश्य**, उस नदी के तट पर **भगवती की मृण्मयी मूर्ति** बनाकर पुष्प, धूप, होम व तर्पण द्वारा उसकी पूजा करने लगे।

व्याख्या—**पुष्प-धूपाग्नि-तर्पणैः**—(१) **अग्नि-तर्पण होमः। पुष्प-धूपौ गन्ध-दीपाद्युप-लक्षितौ** अर्थात् अग्नि-तर्पण—होम। '**पुष्प**' व '**धूप**'-शब्दों द्वारा गन्ध, दीपादि उपचारों का भी बोध होता है (**नागो जी**)। (२) अग्नि-शब्द से अग्नि-साध्य **होम** से तात्पर्य है। '**तर्पण**'-शब्द से कर्पूरादि-युक्त जल द्वारा देवी का तर्पण करने की विधि ज्ञात होती है (**तत्त्व-प्रकाशिका**)।

तर्पण—इस क्रिया से देवता शीघ्र तृप्त होकर प्रसन्न हो जाता है। कहा भी है कि—

तर्पणाद् देवता-प्रीतिस्त्वरितं जायते यतः।
अतस्तर्पणं प्रोक्तं तर्पणत्वेन योगिभिः॥

'विशुद्धेश्वर तन्त्र' के अनुसार **कर्पूर-युक्त जल द्वारा गुरूपदिष्ट विधि से तर्पण** करना चाहिए। अथवा **तीर्थ-जल** या **मधु द्वारा तर्पण** करे।

मूर्ति-पूजा—**राजा सुरथ** व **समाधि-वैश्य** ने **मिट्टी की प्रतिमा** बनाकर **देवी की पूजा** की। आज भी उत्तर प्रदेश के उन्नाव जनपद में **बकसर** नामक ग्राम के पास **चण्डिका-क्षेत्र** में एक भव्य मन्दिर में दो प्राचीन प्रस्तर-प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित हैं, जो किंवदन्तियों के अनुसार **सुरथ** व **समाधि** द्वारा पूजिता हैं। (देखें, **'चण्डिका-माहात्म्य'** नामक पुस्तिका)।

प्रतीकोपासना—उपासना के प्रारम्भिक स्तर में **मूर्ति, चित्र, मन्त्र** आदि जैसे **'प्रतीक'** का सहारा लेना आवश्यक है। **'अरुन्धती-न्याय'** से शास्त्रों में इसका प्रतिपादन किया गया है। **'अरुन्धती'** नामक नक्षत्र बहुत सूक्ष्म है। उसे देखने के लिए पहले उसके निकटस्थ एक बड़े नक्षत्र पर दृष्टि जमानी पड़ती है। उस बड़े नक्षत्र पर दृष्टि के स्थिर होने पर उससे छोटे नक्षत्र पर ध्यान जमाना पड़ता है, फिर उसके आगे के और भी सूक्ष्म नक्षत्र को देखने का प्रयत्न करना होता है। इस प्रकार क्रमशः अभ्यास करने पर अत्यन्त सूक्ष्म नक्षत्र **'अरुन्धती'** दृष्टि-गत हो पाता है। इसी प्रकार **सूक्ष्माति-सूक्ष्म ब्रह्म-तत्त्व** को हृदयङ्गम करने के लिए **स्थूल प्रतीकों** के आश्रय से आगे बढ़ना होता है। इसी से **तन्त्रादि शास्त्रों** में अनेक प्रतीकों का उल्लेख है। **'भगवती गीता'**, ९।३।३८-४२ में **मूर्ति, स्थण्डिल** (यज्ञार्थ परिष्कृत भूमि), **सूर्य** व **चन्द्र-मण्डल, जल, वाण-लिङ्ग, मन्त्र, महा-पट** या **हृदय-कमल** जैसे प्रतीकों का निर्देश किया है।

सुरथ-कृत देवी का ध्यान—**'ब्रह्म-वैवर्त-पुराण'**, प्रकृति-खण्ड, ६४वें अध्याय में वर्णित है कि **महाराज सुरथ** ने स्नान कर **आचमन**-पूर्वक **कराङ्गादि** तीन न्यास कर **भूत-शुद्धि, प्राणायाम** द्वारा **शरीर-शोधन** किया। फिर **देवी का ध्यान** कर मृण्मयी मूर्ति में उनका आवाहन कर भक्ति-पूर्वक **देवी के सम्मुख स्थित घट में गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव, शिवा**— इन छः देवों का आवाहन-पूजन किया। तदनन्तर **देवी का विस्तृत-रूप में ध्यान** किया। उस ध्यान का अन्तिम अंश इस प्रकार है—

रत्न-सिंहासनस्थां सद्-रत्न-मुकुटोज्ज्वलाम्।
सृष्टौ सृष्टुः शिल्प-रूपां, दयां पातुश्च पालने॥
संहार-काले संहर्तुः, परां संहार-रूपिणीम्।
निशुम्भ-शुम्भ-मथिनीं, महिषासुर-मर्दिनीम्॥
पुरा त्रिपुर-युद्धे च, संस्तुतां त्रिपुरारिणा।
मधु-कैटभयोर्युद्धे, विष्णु-शक्ति-स्वरूपिणीम्॥
सर्व-दैत्य-निहन्त्रीं च, रक्त-वीज-विनाशिनीम्।
नृसिंह-शक्ति-रूपां च, हिरण्य-कशिपोर्वधे॥
वराह-शक्तिं वाराहीं, हिरण्याक्ष-वधे तथा।
पर-ब्रह्म-स्वरूपां च, सर्व-शक्तिं सदा भजे॥

रक्त-सिंहासन पर विराजमाना, उत्तम **रत्न-मुकुट** से उज्ज्वला भगवती सृष्टि-विषय में **स्त्रष्टा की शिल्प-स्वरूपा**, पालन-कार्य में **दया-रूपा** और संहार-काल में संहार-कर्त्ता की **संहार-शक्ति-रूपा** हैं। वे **शुम्भ-निशुम्भ** और **महिषासुर** की विनाशिका हैं। **त्रिपुरासुर** से युद्ध करते समय **भगवान् शङ्कर** ने उनकी स्तुति की। **मधु-कैटभ** के युद्ध में वे ही **विष्णु की शक्ति-स्वरूपा** रहीं। वे सभी **दैत्यों की संहार-कारिणी** और **रक्त-वीज-नाशिनी** हैं। **हिरण्य-कशिपु** के वध में वे **नृसिंह भगवान् की शक्ति-रूपा** रहीं और **हिरण्याक्ष** के वध में **वराहावतार** की शक्ति **वाराही** रहीं। ऐसी **सर्व-शक्ति-शालिनी पर-ब्रह्म-स्वरूपा देवी** का मैं सदा भजन करता हूँ।

निराहारौ यताहारौ, तन्मनस्कौ समाहितौ।
ददतुस्तौ बलिं चैव, निज-गात्रासृगुक्षितम्॥११॥

अर्थ—उपवासी, अल्पाहारी और भगवती के ध्यान में मग्न रहते हुए उन दोनों ने अपने शरीर के रक्त द्वारा सिक्त **बलि** प्रदान की।

व्याख्या—**राजा सुरथ** व **समाधि** ने किस प्रकार नियम पालन करते हुए **देवी की आराधना** की, उसका वर्णन किया गया है।

१. रसना-जय

निराहारौ यताहारौ—(१) **आदौ यताहारौ अल्पाहारौ ततो निराहारौ। अनेन हठ-योगः सूचितः** अर्थात् पहले अल्पाहार कर बाद में निराहार रहे। इससे **हठ-योग** की क्रिया का बोध होता है **(नागो जी)**। (२) '**शान्तनवी**' **टीका** में बताया है कि तपस्वी लोग पहले **हविष्यान्न** भोजन करते हैं, फिर उसे त्याग कर केवल फल-मूल से जीवन धारण करते हैं, तब उसे भी छोड़कर मात्र पत्रों से निर्वाह करते हैं, उसके बाद उसका भी त्याग कर केवल जल पीकर रहते हैं और अन्त में उसे भी छोड़कर मात्र वायु के सहारे कठिन '**कृच्छ्र**'-**व्रत** का पालन करते हैं। (३) '**तत्त्व- प्रकाशिका**' के अनुसार उक्त पदों से '**रसना-जय**' का तात्पर्य है। साधना में सिद्धि के लिए यह अति आवश्यक है क्योंकि '**रसना-जय**' के बिना कोई जितेन्द्रिय नहीं हो सकता।

२. मनो-निग्रह

तन्मनस्कौ—(१) देवी में ही मन को मग्न किए हुए। यह मन के निग्रह का सूचक है **(तत्त्व-प्रकाशिका)**। (२) वे दोनों देवी के ध्यान में रत हो गए **(शान्तनवी)**।

समाहितौ—(१) सब प्रकार की बाह्य-चेष्टाओं को छोड़कर उपासना में लगे हुए **(नागो जी)**। (२) गुरूपदिष्ट विषय में सावधान, संशय-रहित, सभी विघ्नों के दूरीकरण में यत्न-शील और नियम-परायण **(शान्तनवी)**। (३) मन व रसना के अतिरिक्त शेष सभी इन्द्रियों को जय करते हुए **(तत्त्व-प्रकाशिका)**।

३. बलिदान

ददतुस्तौ बलिं चैव निज-गात्रासृगुक्षितं—यहाँ '**बलि**' की विशेष विधि वर्णित है, अतः विविध व्याख्याएँ मननीय हैं—

(१) **उक्षितं प्रोक्षितं निज-गात्रासृक् स्व-गात्र-रुधिरं बलिं च ददतुः दत्तवन्तौ** अर्थात् '**प्रोक्षित**'–मन्त्र द्वारा संस्कृत अपने शरीर के **रक्त** एवं **पशु-कूष्माण्डादि की बलि** दी (**तत्त्व-प्रकाशिका**)। (२) **तौ बलिं च पशु-कूष्माण्डाद्युपहारं ददतुः निज-रुधिर-सिक्तं** अर्थात् उन दोनों ने अपने **रक्त से सिक्त पशु-कूष्माण्ड की बलि** दी (**नागो जी**)। (३) **बलिं उपहारं निज-गात्रासृजा स्व-देह-शोणितेन उक्षितं प्रोक्षितं** अर्थात् अपने **देह के रक्त से अभिसिञ्चित बलि** दी (**दंशोद्धार**)। (४) **तौ सुरथ-वैश्यौ निज-गात्रासृगुक्षितं तपश्चरण-काले पर-हिंसा-पराङ्-मुखत्वात् स्व-शरीरोद्भव-रक्तमेव अन्न-मयं बलिं च ददतुः** अर्थात् तपोऽनुष्ठान-काल में पर-हिंसा न कर सकने के कारण उन दोनों—**सुरथ** और **समाधि** ने अपने शरीर से उत्पन्न रक्त को ही **अन्न-मय (पुरोडाश आदि) बलि** प्रदान की (**शान्तनवी**)। '**शान्तनवी**' के अनुसार इससे '**शरीरं वा पातयामि मन्त्रं वा साधयामि**' अर्थात् या तो शरीर-पात होगा, या मन्त्र ही सिद्ध होगा—इस प्रकार का दृढ़ निश्चय सूचित होता है।

रुधिर-बलि की विधि—शास्त्र में कहा है कि '**सहस्रं तर्पिता देवी, स्व-देह-रुधिरेण च**' अर्थात् अपने शरीर के रक्त द्वारा बलि देने से **देवी** सहस्र-गुणा अधिक तृप्ति लाभ करती हैं। '**शान्तनवी टीका**' में उद्‌धृत वचन है—

उरुजं बाहुजं वापि, रक्त-मांस-मयं बलिम्।
भक्त्यावेशान्महा-शूरो, महा-मायार्थमुत्सृजेत्॥

अर्थात् महा-वीर साधक भक्ति के आवेश में जङ्घा से या भुजा से निकालकर **रक्त-मांस-मय बलि महा-माया** को अर्पित करे।

'**गुप्तवती**' **टीका** के अनुसार ब्राह्मणेतर जाति के लिए ही **रुधिर-बलि** विहित है। ब्राह्मण के लिए ऐसी **बलि** देना निषिद्ध है।

'**कालिका-पुराण**', ६७वें अध्याय में **रुधिर-बलि** की विधि विस्तार से दी है।

जगज्जननी चण्डिका का आविर्भाव

एवं समाराधयतोस्त्रिभिर्वर्षैर्यतात्मनोः।
परितुष्टा जगद्धात्री, प्रत्यक्षं प्राह चण्डिका॥१२॥

अर्थ—तीन वर्षों तक इसी प्रकार विधि-पूर्वक आराधना करनेवाले संयत-चित्त उन दोनों से प्रसन्न होकर **जगन्माता चण्डिका** ने साक्षात् दर्शन देकर कहा—

व्याख्या—**देवी-भागवत**, स्कन्ध ५ में **राजा सुरथ** व **वैश्य समाधि** की तीन वर्ष-व्यापी साधना का विस्तृत विवरण दिया है। प्रथम वर्ष में वे फलाहार करते हुए **देवी-माहात्म्य का पाठ**

व **मन्त्र-जप** करते रहे। प्रति-दिन वे **सुमेधा मुनि का दर्शन** करने जाते थे और लौट कर पुनः **देवी के ध्यान में निमग्न होकर जप** करने लगते। द्वितीय वर्ष में फलाहार छोड़कर वे सूखे पत्तों के आहार पर निर्भर होकर उपासना करते। दो वर्षों के पूर्ण होने पर उन्हें स्वप्न में **रक्त-वस्त्र-धारिणी, चारु-भूषण-भूषिता, मनोहर-स्वरूपा जगदम्बा के दर्शन** मिले। तृतीय वर्ष में उन्होंने पत्ते भी छोड़ दिए और केवल जल पीते हुए पूर्व-वत् साधना की। अन्त में **भगवती के दर्शनों हेतु व्याकुल** होकर उन्होंने **एक हाथ विस्तृत त्रिकोण कुण्ड** का निर्माण किया और उसमें अग्नि की स्थापना कर भक्ति-पूर्वक अपने शरीर से मांस काट-काटकर रक्त-सहित उसमें **आहुति** देने लगे। फलतः **देवी** ने प्रकट होकर उन्हें कृतार्थ किया।

जगद्धात्री—(१) **भगवती चण्डिका** सारे जगत् की जननी हैं, जगत् की आधार-रूपा हैं, जगत्-कर्त्री हैं, सभी की अभिलाषा पूर्ण करती हैं—इसी से उन्हें '**जगद्धात्री**' कहा है **(तत्त्व-प्रकाशिका)**। (२) जगत् की धारण-कर्त्री होने से ही **तपस्वी सुरथ** व **समाधि** के समक्ष **चण्डिका देवी** प्रकट हुईं, अन्यथा उनकी तपस्या-रूपी अग्नि द्वारा सारा जगत् भस्म हो जाता। इसी भाव को सूचित करने के लिए '**जगद्धात्री**' नाम से सम्बोधित किया गया है **(शान्तनवी)**।

प्रत्यक्षं प्राह—**प्रकटीभूय प्राह** अर्थात् भगवती प्रकट होकर बोलीं **(शान्तनवी)**। '**ब्रह्म-वैवर्त-पुराण**', प्रकृति-खण्ड, ६५।१४-१६ में इस प्रसङ्ग का वर्णन इस प्रकार है—

स्तोत्रेण परितुष्टा सा, तस्य साक्षाद् बभूव ह।
स ददर्श पुरो देवीं, ग्रीष्म-सूर्य-सम-प्रभाम्॥
तेजः-स्वरूपां परमां, सगुणां निर्गुणां वराम्।
दृष्ट्वा तां कमनीयां च, तेजो-मण्डल-मध्यतः॥
स्वेच्छा-मयीं कृपा-रूपां, भक्तानुग्रह-कातराम्।
पुनस्तुष्टाव राजेन्द्रो, भक्ति-नम्रात्म-कन्धरः॥

अर्थात् **राजा सुरथ** के स्तव से प्रसन्न होकर **तेजस्विनी भगवती** साक्षात् प्रकट हुईं। उन्हें सामने देखकर भक्ति से झुके हुए **राजा** पुनः स्तुति करने लगे।

श्री श्रीचण्डी-तत्त्व

चण्डिका—**चण्ड (ब्रह्म) + स्त्री-लिङ्गे ङीष— चण्डी (ब्रह्म-शक्ति)**। **चण्डी + स्वार्थे कण् + स्त्री-लिङ्गे टाप्— चण्डिका**। भास्कर राय ने '**गुप्तवती टीका**' में लिखा है—'**चण्डी**'-नाम **पर-ब्रह्म की पट्ट-महिषी** देवता का वाचक है। '**चण्ड-भानु**', '**चण्ड-वाद**' जैसे शब्दों में '**चण्ड**'-पद असीम असाधारण-गुण-शालित्व के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। देश, काल, वस्तु—इन तीन परिच्छेदों से परे **पर-ब्रह्म** ही का आशय '**चण्ड**'-शब्द से है। अतः **चण्डी**— **ब्रह्म-शक्ति**। विशेष व्याख्या हेतु देखें, '**श्रीदुर्गा-कल्पतरु**'।

देवी द्वारा वर-दान

देव्युवाच ॥१३॥

यत् प्रार्थ्यते त्वया भूप! त्वया च कुल-नन्दन!

मत्तस्तत् प्राप्यतां सर्वं, परि-तुष्टा ददामि तत्॥१४॥

अर्थ—**जगज्जननी चण्डिका देवी** ने **राजा सुरथ** व **वैश्य समाधि** से कहा—हे **राजन् सुरथ!** और हे **वैश्य-वंश-गौरव समाधि!** तुम्हारे द्वारा जो प्रार्थित है, वह सब मुझसे प्राप्त होगा। मैं प्रसन्न होकर उसे प्रदान करती हूँ।

व्याख्या—**भगवती चण्डिका** अन्तर्यामिनी होने से **सुरथ** व **समाधि** के कुछ माँगने के पूर्व ही जानती थीं कि वे क्या चाहते हैं? उनकी अभिलाषा के अनुरूप ही सम्बोधन में '**भूप**' और '**कुल-नन्दन**' जैसे गूढ़ शब्दों का प्रयोग हुआ है।

भूप—इस शब्द से बोध होता है कि **सुरथ** राज्य को खोकर दुखी थे, अत: उन्हें पृथ्वी का स्वामित्व ही नहीं, उससे अधिक ऐश्वर्य प्रदान किया जा रहा है **(तत्त्व-प्रकाशिका)**।

कुल-नन्दन—**ब्रह्म-ज्ञान** के प्रार्थी होने से **समाधि** विशेष प्रशंसा के पात्र थे, अत: उन्हें **वंश का गौरव** कहा गया है। '**देवी-भागवत**', ७।३६।१९ में कहा है—

कुलं पवित्रं तस्यास्ति, जननी कृत-कृत्यका।

विश्वम्भरा पुण्यवती, चिल्लयो यस्य चेतस:॥

अर्थात् जिसका चित्त **चैतन्य-रूप ब्रह्म-ज्ञान** में लीन होता है, उसका कुल पवित्र हो जाता है, उसकी जननी धन्य हो जाती है और सारी पृथ्वी पुण्यवती हो जाती है।

मत्तस्तत् प्राप्यतां सर्वं—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—जो भी प्रार्थित है, वह सब मुझसे प्राप्त करोगे।

परितुष्टा ददामि तत्—साधना से प्रसन्न होकर **देवी** साधक को वाञ्छित भोग या मोक्ष प्रदान करती हैं। '**देवी-सूक्त**' में स्वयं भगवती का कथन है—

यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि, तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्।

अर्थात् जो जिसकी इच्छा करता है, उसे उसी को श्रेष्ठ रूप में देती हूँ। उसे (साधक को) **ब्रह्मा, ऋषि** या **उत्तम प्रज्ञा-शाली** बना देती हूँ।

'**सूत-संहिता**', ४।१३।३३ में भी कहा है—

उपासते ये परमां, सर्व-लोकैक-मातरम्।

तेऽभीष्टं सकलं यान्ति, विद्यां मुक्ति-प्रदामपि॥

अर्थात् जो सब लोकों की **एक-मात्र श्रेष्ठ माता की उपासना** करते हैं, वे समस्त अभीष्टों को, यहाँ तक कि **मुक्ति-दायिनी ब्रह्म-विद्या** को भी प्राप्त कर लेते हैं।

सुरथ की वर-प्रार्थना—अभ्युदय

मार्कण्डेय उवाच॥१५॥

ततौ वव्रे नृपो राज्यमविभ्रंश्यन्य-जन्मनि॥१६॥

अत्रैव च निजं राज्यं, हत-शत्रु-बलं बलात्॥१७॥

अर्थ—**मार्कण्डेय मुनि** ने **भागुरि** से कहा—तब **राजा सुरथ** ने अगले जन्म में अखण्ड राज्य और इस जन्म में शत्रु-सेना को बल-पूर्वक मारकर अपना राज्य पाने की प्रार्थना की।

व्याख्या—**सुरथ का वंश**—**'ब्रह्म-वैवर्त-पुराण'**, प्रकृति-खण्ड, ६१वें अध्याय में बताया है कि **चन्द्र-पुत्र बुध** ने **कुबेर** की पत्नी **घृताची** की पुत्री **चित्रा** से विवाह किया। **चित्रा से बुध** को **चैत्र** नामक पुत्र प्राप्त हुआ, जो **सात द्वीपवाली पृथ्वी का प्रतापी और दानी राजा** हुआ। **चैत्र** के पुत्र **राजा अधिरथ** हुए, जिनके पुत्र थे **सम्राट् सुरथ**।

हत-शत्रु-बलं बलात्—अपनी सामर्थ्य के बिना, दूसरे की सहायता से राज्य प्राप्त करना क्षत्रिय के लिए गौरव की बात नहीं है। इसी से **सुरथ** ने अपने बल से शत्रु-सेना का विनाश कर राज्य पाने की प्रार्थना की **(तत्त्व-प्रकाशिका)**।

सुरथ द्वारा राज्य की प्रार्थना—समस्त धर्म राजा पर ही निर्भर रहता है। राजा ही धर्म का धारक होता है। **सुरथ** इसी प्रकार के आदर्श **धर्म-निष्ठ राजा** थे (देखें, **'सप्तशती'**, १।५)। उन्होंने भोग-सुख के लिए राज्य की प्रार्थना नहीं की, अपितु उसके द्वारा **अधर्म को दूर कर धर्म-राज्य की प्रतिष्ठा** करने के पवित्र उद्देश्य से इस जन्म में अपने राज्य और अगले जन्म में अखण्ड राज्य हेतु वर माँगा था।

प्रवृत्ति-धर्म व निवृत्ति-धर्म—**भगवती चण्डिका** अभ्युदय व निःश्रेयस दोनों प्रदान करती हैं। **प्रवृत्ति**-लक्षणवाले धर्म की उपासना से **सुरथ** ने **'अभ्युदय'** का और **निवृत्ति**-लक्षणवाले धर्म की उपासना से **समाधि** ने **'निःश्रेयस'** का वर प्राप्त किया।

समाधि की वर-प्रार्थना—तत्त्व-ज्ञान

सोऽपि वैश्यस्ततो ज्ञानं, वव्रे निर्विण्ण-मानसः।

ममेत्यहमिति प्राज्ञः, सङ्ग-विच्युति-कारकम्॥१८॥

अर्थ—तब विषय-भोगों से विरक्त मनवाले, प्रज्ञावान् उन **वैश्य समाधि** ने भी **'यह मेरा है'**, **'यह मैं हूँ'** इस प्रकार की आसक्ति से छुड़ानेवाले **तत्त्व-ज्ञान** की प्रार्थना की।

व्याख्या—**समाधि की वर-प्रार्थना**—**'देवी-भागवत'**, ५।३५।३७-३९ में इस प्रसङ्ग में निम्न प्रकार वर्णन है—

वैश्यस्तामप्युवाचेदं, कृताञ्जलि-पुटः शुचिः।

न मे गृहेण कार्यं वै, न पुत्रेण धनेन वा॥

सर्वं बन्ध-करं मातः! स्वप्न-वन्नश्वरं स्फुटम्।

ज्ञानं मे देहि विशदं, मोक्षदं बन्ध-नाशनम्॥

अर्थात् **वैश्य** ने हाथ जोड़कर **भगवती** से कहा—हे मात:! मुझे न घर चाहिए, न पुत्र या सम्पत्ति क्योंकि ये सब बन्धन में डालनेवाले हैं और स्वप्न के समान नाशवान् हैं। मुझे तो वह **निर्मल ज्ञान** दीजिए, जो बन्धनों का नाश कर **मोक्ष** देता है।

निर्विण्ण-मानस:—निर्विण्णं विरक्तं विषय-सुख-विमुखं मानसं अन्त:करणं यस्य स: अर्थात् जिसका अन्त:करण विषय-भोगों से विरक्त है **(तत्त्व-प्रकाशिका)**।

प्राज्ञ:—(१) सार व असार अर्थात् नित्य व अनित्य को जाननेवाला विवेकवान् व्यक्ति **(तत्त्व-प्रकाशिका)**। (२) मुक्ति की इच्छा और अति बुद्धि-मत्ता के कारण '**प्राज्ञ**' कहा है **(नागो जी)**।

सुरथ के समान **समाधि** ने भी भोग-सुख हेतु प्रार्थना नहीं की। '**निर्विण्ण-मानस**' से वैराग्य का और '**प्राज्ञ**' से विवेक का बोध होता है। **समाधि** ने विवेक और वैराग्य के बल से ही अभ्युदय हेतु प्रार्थना न कर '**नि:श्रेयस**'-दायक **तत्त्व-ज्ञान** के लिए प्रार्थना की।

ममेत्यहमिति सङ्ग-विच्युति-कारकं—(१) 'यह मेरा है, यह मैं हूँ'—इस प्रकार की जो आसक्ति है, उसे नष्ट करनेवाला **(नागो जी)**। (२) 'स्त्री-पुत्रादि मेरे हैं' और 'यह देह मैं हूँ'—इस प्रकार की जो आसक्ति या अभिमान है, उसका विनाशक **(तत्त्व-प्रकाशिका)**।

ममता, अहन्ता—जो वस्तु जिसकी नहीं है, उसमें बुद्धि का आरोप होना '**अध्यास**' कहलाता है। इसी '**अध्यास**' के कारण असङ्ग आत्मा में ममता-अभिमान उत्पन्न होता है। यही सब दु:खों का कारण है। **ममता** व **अहङ्कार** ही '**सङ्ग**' या '**संसर्ग**' हैं। इन्हीं से **भेद-बुद्धि** का कारण **द्वैत-ज्ञान** होता है। जिस ज्ञान के द्वारा यह **द्वैत-बुद्धि** नष्ट होती है, वही '**तत्त्व-ज्ञान**' कहलाता है। **तत्त्व-ज्ञान** से '**अहन्ता**' और '**ममता**' का समूल नाश हो जाता है **(शान्तनवी)**।

ज्ञानं—(१) **तत्त्व-ज्ञान (नागो जी)**। (२) आत्म-साक्षात्कार का साधन **(तत्त्व-प्रकाशिका)**। **तत्त्व-ज्ञान** के बिना मुक्ति नहीं मिलती।

'**हिन्दी महा-निर्वाण तन्त्र**', पृष्ठ १२१ में '**तत्त्व-ज्ञान**' की व्याख्या द्रष्टव्य है।

सुरथ को स्व-राज्य व मनुत्व-लाभ का वर

देव्युवाच॥१९॥

स्वल्पैरहोभिर्नृपते! स्वं राज्यं प्राप्स्यते भवान्॥२०॥

हत्वा रिपूनस्खलितं, तव तत्र भविष्यति॥२१॥

अर्थ—**देवी चण्डिका** ने कहा—हे **राजन् सुरथ!** बहुत ही कम दिनों में तुम शत्रुओं का संहार कर अपने राज्य को प्राप्त करोगे। उस राज्य में तुम्हारा अखण्ड शासन रहेगा।

व्याख्या—(१) **अस्खलितं तव तत्र भविष्यति**—उस (स्व-राज्य में) तुम्हारा '**अस्खलन**' होगा अर्थात् कभी राज्य-च्युति नहीं होगी। अथवा '**तत्र**'—तत् अर्थात् वह तुम्हारा राज्य अचञ्चल होगा या '**अ-स्खलित**'—कभी स्खलित नहीं होगा।

पाठान्तर—तव तत्र : तव राज्यं, तव तच्च (शान्तनवी)।

सुरथ को वर-प्रदान—'देवी-भागवत', ५।३५।३४-३६ में इस प्रसङ्ग का वर्णन निम्न प्रकार है—

तमुवाच तदा देवी, गच्छ राजन्निजं गृहम्।
शत्रवः क्षीण-सत्त्वास्ते, गमिष्यन्ति पराजिताः॥
मन्त्रिणस्ते समागम्य, ते पतिष्यन्ति पादयोः।
कुरु राज्यं महा-भाग! नगरे स्वं यथा-सुखम्॥
कृत्वा राज्यं सु-विपुलं, वर्षानामयुतं नृप।
देहान्ते जन्म सम्प्राप्य, सूर्याच्च भविता मनुः॥
मृतश्च भूयः सम्प्राप्य, जन्म देवाद् विवस्वतः॥२२॥
सावर्णिको नाम मनुर्भवान् भुवि भविष्यति॥२३॥

अर्थ—और देहान्त होने पर पुनः तुम **सूर्य-देव** से जन्म प्राप्त कर पृथिवी पर **सावर्णि** नामक मनु होगे।

व्याख्या—**सावर्णिकः—सवर्णायाः छायायाः अपत्यं सावर्णिः** अर्थात् सवर्णा—छाया के पुत्र सावर्णि (**नागो जी**)। '**विष्णु-पुराण**' में बताया है कि **विश्वकर्मा** की पुत्री **संज्ञा** से **सूर्य** ने विवाह किया, जिससे **मनु, यम** व **यमी** नामक तीन सन्तानें हुईं। कुछ समय बाद **सूर्य** का तेज सहन न कर पाने से **संज्ञा** अपने स्थान पर **छाया** नामक एक कन्या को अपने पति की सेवा में नियुक्त कर तप हेतु चली गई। **छाया** संज्ञा के ही अनुरूप थी। **सूर्य** ने उसे संज्ञा ही समझा और उससे **शनैश्चर, सावर्णि मनु** नामक दो पुत्र और **तपती** नामक पुत्री उत्पन्न की। **सावर्णि** मनु अपने ज्येष्ठ भ्राता **मनु** के ही वर्ण का था, इसी से उसका नाम '**सावर्णि**' पड़ा। आठवाँ मन्वन्तर इन्हीं का होने से **सावर्णिक मन्वन्तर** कहलाता है। एक मत यह भी है कि **छाया संज्ञा** के समान वर्णवाली थी, जिससे वह '**सवर्णा**' कही गई और उससे उत्पन्न **आठवें मनु** का नाम तदनुसार '**सावर्णि**' पड़ा। **भगवती चण्डिका** से वर प्राप्त कर **सुरथ** ही **सूर्य** के इस पुत्र-रूप में उत्पन्न हुए थे।

मनु और **मन्वन्तर**—देखें, पृष्ठ ५२। प्रत्येक कल्प में **१४ मनु** आविर्भूत हुए हैं। ४३,२०,००० वर्षों में सत्य, त्रेता, द्वापर, कलि का '**चतुर्युग**' समाप्त होता है। प्रत्येक मनु ने चतुर्युग के ७१ आवर्तन-काल तक अर्थात् ४३,२०,००० × ७१ = ३०,६७,२०,००० वर्षों तक पृथ्वी का शासन किया। इसी काल का नाम है '**मन्वन्तर**'। ऐसे **१४ मन्वन्तरों** का एक '**कल्प**' होता है और कल्पान्त में **महा-प्रलय** होकर पुनः सृष्टि-कार्य प्रारम्भ होता है।

उक्त **१४ मन्वन्तरों** के प्रत्येक मन्वन्तर में भगवान् के विभिन्न अवतारों, एक-एक **इन्द्र**, पृथक्-पृथक् **देव-गण, सप्तर्षि, मनु** व **मनु-पुत्रों** का आविर्भाव होता है। **इन्द्र** स्वर्ग-लोक के

और **मनु** पृथिवी-लोक के राजा या शासक माने गए हैं। **देव-गण** प्रजा द्वारा अनुष्ठित यज्ञादि कर्मों से प्रसन्न होकर कर्मों के अनुसार फल देते हैं। **सप्तर्षि-गण** धर्म-शास्त्र को प्रकाशित करते हैं और **भगवान् के विभिन्न अवतार** सबको अपने-अपने कर्मों में नियुक्त करते हैं तथा **धर्म-द्रोही असुरों का संहार** कर **धर्म की संस्थापना** करते हैं। पहले पृथिवी के राजा **मनु** हुए, बाद में उनकी मृत्यु होने पर उनके पुत्र-पौत्रादि मन्वन्तर-काल के शेष समय तक क्रमश: शासक रहे। इसी प्रकार मन्वन्तर का निश्चित समय बीतने पर दूसरे **इन्द्र, मनु, देवता, ऋषि** आदि सभी अन्य रूप से आविर्भूत होकर अपने-अपने निर्दिष्ट कार्य करते हैं।

सुरथ के मनुत्व-लाभ का रहस्य—यदि उपासना करे, तो महत् की ही उपासना करनी चाहिए क्योंकि **महत् की उपासना** करने से जो अभीष्ट कामना होती है, वह तो पूरी होती ही है, उससे बढ़कर भी कल्याण मिलता है। उदाहरण के लिए **सुरथ** का अभीष्ट राज्य था। भगवती ने उसे तो प्रदान किया ही, साथ ही अति ऐश्वर्य-शाली **मनु** का पद भी दे दिया। यह उच्च पद बड़े पुण्य से ही प्राप्य है क्योंकि यह **विष्णु** के सत्वांश से उत्पन्न होता है। मन्वन्तर की समाप्ति होने पर **मनु** को परम पद या मोक्ष स्वत: प्राप्त हो जाता है।

महाराज सुरथ भोग-वासना से रहित नहीं थे, इसी से उन्हें सीधे मोक्ष नहीं मिला। मोक्ष ही परम श्रेय है, यह **सुरथ** समझते नहीं थे, किन्तु पुत्र का कल्याण किसमें है, यह **जगन्माता** से छिपा नहीं है। अत: **भगवती चण्डिका** ने **सुरथ** को भोग का ऐसा मार्ग दिया, जो उन्हें मोक्ष तक पहुँचा दे **(देवी-भाष्य)**।

मोक्ष-लाभार्थ समाधि को तत्त्व-ज्ञान का वर

वैश्य-वर्य! त्वया यश्च, वरोऽस्मत्तोऽभि-वाञ्छित:॥२४॥
तं प्रयच्छामि संसिद्ध्यै, तव ज्ञानं भविष्यति॥२५॥

अर्थ—हे श्रेष्ठ **वैश्य समाधि!** तुम्हारे द्वारा जो वर मुझसे चाहा गया है, उसे प्रदान करती हूँ। सम्यक् सिद्धि अर्थात् मुक्ति के लिए तुम्हें **तत्त्व-ज्ञान** प्राप्त होगा।

व्याख्या—**यश्च वर:**—तत्त्व-ज्ञान-रूप वर **(तत्त्व-प्रकाशिका)**।

अस्मत्त:—अपनी सर्वात्मकता को सूचित करने के लिए भगवती ने बहु-वचन शब्द का प्रयोग किया है **(नागो जी)**। **'शान्तनवी'** के अनुसार पाठान्तर है—**अस्मत्त:-मत्त:**।

संसिद्ध्यै—(१) मुक्ति के लिए **(नागो जी)**। (२) सम्यक् सिद्धि अर्थात् निर्वाण मोक्ष के लिए **(तत्त्व-प्रकाशिका)**। (३) संसिद्धि अर्थात् परमात्मा-रूप सङ्गति-लाभ के लिए। इससे ज्ञान मिलेगा। मोक्ष-विषयक बुद्धि को **'ज्ञान'** कहते हैं **(शान्तनवी)**।

कर्म व ज्ञान—वैध कर्मों को **सकाम-भाव** से करने से इस लोक में भोगैश्वर्य और पर-लोक में स्वर्ग मिलता है। **निष्काम-भाव** से उन्हें करने से **तत्त्व-ज्ञान** व **मुक्ति** मिलती है। **'देवी-भाष्य'** के अनुसार यह नास्तिकों का मत है कि वैध होने पर भी सभी कर्मों का त्याग कर

देना चाहिए क्योंकि उनसे बन्धन में पड़ना होता है। **गीता** में उपदेश द्वारा और **चण्डी** में इति-वृत्त द्वारा इसी मत का खण्डन किया गया है।

संसिद्धि या **मोक्ष**—'**कौलोपनिषद्**', १४ में कहा है कि '**पञ्च-बन्धा ज्ञान-स्वरूपाः**' अर्थात् मिथ्या-ज्ञान-मूलक पाँच बन्धनों में पड़कर जीव संसार-चक्र में पड़ा रहता है। इन बन्धनों को तोड़कर ही जीव **संसिद्धि** या **मोक्ष** को प्राप्त कर सकता है। **श्रीमद् भास्कर राय** ने उक्त सूत्र की व्याख्या की है—

'**अनात्मनि आत्मता-बुद्धिः, आत्मनि अनात्म-बुद्धिः इत्यादि ज्ञानान्येव बन्ध-रूपाणि। जीवानां परस्परं भेदं, ईश्वराद् भेदः, चैतन्याद् भेदः इति ज्ञान-त्रयेण सह पञ्च।**'

अर्थात् **(१) अनात्मा में आत्म-बुद्धि**—देह या मन आत्मा नहीं है, किन्तु जीव इन्हें आत्मा मानता है। **(२) आत्मा में अनात्म-बुद्धि**—पर-ब्रह्म ही आत्मा है, किन्तु उसे जीव आत्मा नहीं मानता। **(३) जीवों का परस्पर-भेद**—यद्यपि सब प्राणियों में एक ही ब्रह्म विराजमान है, किन्तु जीव एक-दूसरे को भिन्न मानते हैं। **(४) ईश्वर से आत्मा का भेद**—ईश्वर व आत्मा अभिन्न हैं, किन्तु जीव ईश्वर को आत्मा से भिन्न मानता है। **(५) चैतन्य या ब्रह्म से आत्मा का भेद**—शिव, विष्णु आदि **सगुण ब्रह्म** का नाम '**ईश्वर**' है और **निर्गुण ब्रह्म** का नाम '**चैतन्य**' है। **आत्मा** व **चैतन्य** अभिन्न हैं, किन्तु जीव **चैतन्य (ब्रह्म)** को **आत्मा** से भिन्न मानता है।

'**एष मोक्षः**'—**(कौलोपनिषद्, १३)**—**आत्म-सत्ता, जगत्-सत्ता** व **ब्रह्म-सत्ता**—इन तीनों सत्ताओं में **एकत्व की धारणा** ही मुक्ति है। यही **परम ज्ञान** है, यही **पर-ब्रह्म की प्राप्ति** है। **आत्म-सत्ता**— अहन्ता, **जगत्-सत्ता**—इदन्ता। उक्त ज्ञान होने से '**अहन्ता**' और '**इदन्ता**' का **ब्रह्म-सत्ता** में लय हो जाता है। इसी से मुक्ति प्राप्त होती है।

देवी का अन्तर्धान

मार्कण्डेय उवाच॥२६॥

इति दत्वा तयोर्देवी, यथाऽभिलषितं वरम्॥२७॥
बभूवाऽन्तर्हिता सद्यो, भक्त्या ताभ्यामभिष्टुता।

अर्थ—**महर्षि मार्कण्डेय** ने **क्रोष्टुकि** से कहा—**भगवती चण्डिका सुरथ** व **समाधि** दोनों को इस प्रकार उनकी इच्छा के अनुसार वर देकर उन दोनों द्वारा भक्ति-पूर्वक संस्तुता होकर अकस्मात् अन्तर्धान हो गईं।

व्याख्या—**मार्कण्डेय उवाच—मृकण्डोः अपत्यं पुमान् मार्कण्डेयः। सप्त-कल्पान्त-जीविनो महर्षिः उवाच क्रोष्टुकिं इति शेषः** अर्थात् **मृकुण्डु मुनि** के पुत्र **मार्कण्डेय**। ये **सप्त-कल्पान्त-जीवी महर्षि** हैं। इन्होंने अपने शिष्य **क्रोष्टुकि** से कहा **(देवी-भाष्य)**।

'**नरसिंह-पुराण**' के अनुसार **भृगु** के पुत्र **मृकुण्डु** थे, उनके जब पुत्र हुआ, तो ज्योतिर्गणना से ज्ञात हुआ कि वह १२ वर्ष ही जीवित रहेगा। इससे माता-पिता बड़े दुःखी हुए। वही पुत्र **मार्कण्डेय** जब कुछ बड़े हुए और उन्हें यह बात मालूम हुई, तो उन्होंने अपने माता-पिता को

आश्वासन दिया कि मैं तपस्या कर दीर्घ-जीवी बनूँगा। तप के कारण छः मन्वन्तर बीत गए, किन्तु मृत्यु उनके पास नहीं आ सकी। **सातवें मन्वन्तर** में **इन्द्र** ने उनके तप को खण्डित करना चाहा, किन्तु वे सफल नहीं हुए, उल्टे **नर-नारायण**-रूप में भगवान् ने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिए और वर माँगने को कहा। **मार्कण्डेय** ने यह वर माँगा कि '**ब्रह्मादि लोक-पालों सहित समस्त लोक जिसके द्वारा कारण-वस्तु में भेद देखते हैं, आपकी उसी माया को मैं देखना चाहता हूँ।**' इस पर उन्हें **विष्णु-माया के अभूत-पूर्व दर्शन** प्राप्त हुए, जिसका विवरण '**श्रीमद्-भागवत**', द्वादश स्कन्ध में द्रष्टव्य है। फिर उन्होंने **शिव-पार्वती के दर्शन** प्राप्त कर उनसे **कल्पान्त-जीवी** होने का वर पाया। '**कालिका-पुराण**' में बताया है कि **महर्षि मार्कण्डेय** वेद-पुराणादि समस्त वाङ्मय के पारदर्शी थे।

अभिष्टुता—त्वं जगतां स्रष्ट्री रक्षित्री संहत्री जननी चेति संस्तुता सती अर्थात् हे देवि! तुम जगत् की सृष्टि-कारिणी, पालन-कारिणी, संहार-कारिणी हो और तुम्हीं जगज्जननी हो—इस प्रकार **सुरथ-समाधि** ने **देवी की स्तुति** की (**शान्तनवी**)।

सुरथ का अष्टम-मनुत्व-लाभ

एवं देव्या वरं लब्ध्वा, सुरथः क्षत्रियर्षभः॥२८॥

सूर्याज्जन्म समासाद्य, सावर्णिर्भविता मनुः॥२९॥

अर्थ—इस प्रकार क्षत्रिय-श्रेष्ठ **सुरथ भगवती चण्डिका** से वर-प्राप्त कर सूर्य से जन्म पाकर **सावर्णि** नामक मनु होंगे।

व्याख्या—**भविता—भविष्यति** होंगे। **१४ मनुओं** में से—**स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष**—इन **छः मनुओं** का काल व्यतीत हो चुका है। इस समय **सातवें मनु वैवस्वत** का अधिकार-काल चल रहा है। आगामी **सात मनु** हैं—**१ सूर्य-सावर्णि, २ दक्ष-सावर्णि, ३ ब्रह्म-सावर्णि, ४ धर्म-सावर्णि, ५ रुद्र-सावर्णि, ६ रौच्य** या **देव-सावर्णि, ७ भौत्य** या **इन्द्र-सावर्णि।** स्वारोचिष अर्थात् **द्वितीय मनु** के अधिकार-काल में **राजा सुरथ** ने **भगवती चण्डिका** की आराधना की थी। उन्हें यह वर मिला कि वे आठवें मन्वन्तर के '**सावर्णि**' नामक अधिपति होंगे।

सावर्णिर्भविता मनुः—इत्यस्य पुनरावृत्तिः आचारात्, कात्यायनी-तन्त्राच्च (नागो जी)। **कात्यायनी-तन्त्र** के अनुसार '**सावर्णिर्भविता मनुः**' इस अन्तिम वाक्य का दो बार पाठ करना चाहिए। अन्यत्र भी कहा है कि '**स्तोत्रेषु संहितायां च अन्त्य-श्लोकं पठेत् द्विधा।**' स्तोत्रों और संहिता के अन्तिम श्लोक का पाठ दो बार करना चाहिए। इस अन्तिम वाक्य को '**महा-माला-मन्त्र**' कहते हैं। '**रुद्र-यामल तन्त्र**' में कहा है—

पठेदारभ्य सावर्णिः, सूर्य-तनय आदितः।

समापयेत् तु यस्यान्ते, सावर्णिर्भविता मनुः॥

अर्थात् **'सावर्णिः सूर्य-तनयः'** इस मन्त्र को आदि में रखकर **सप्तशती का पाठ** आरम्भ करे और **'सावर्णिर्भविता मनुः'** इस मन्त्र को अन्त में रखकर पाठ का समापन करे।

चण्डी-पाठ के **सङ्कल्प**-वाक्य में **'सावर्णिः सूर्य-तनय इत्यादि सावर्णिर्भविता मनुरित्यन्तं देवी-माहात्म्यं'**—इत्यादि पाठ दिखाई देता है और कहीं-कहीं इसके स्थान पर **'ॐ मार्कण्डेय उवाच सावर्णिः सूर्य-तनयः'** इत्यादि पाठ स्वीकार किया गया है क्योंकि **'कात्यायनी-तन्त्र'** में **देवी-माहात्म्य** की जो मन्त्र-संख्या निर्दिष्ट हुई है, उसमें पहला मन्त्र **'ॐ मार्कण्डेय उवाच'** ही है। **'तत्त्व-प्रकाशिका' टीका** में **रुद्र-यामलोक्त पाठ** को ठीक ठहराया है, किन्तु तब यह प्रश्न उठता है कि क्या उस दशा में **चण्डी-पाठ** के प्रारम्भ में **'ॐ मार्कण्डेय उवाच'** और प्रति अध्याय के अन्त में **'इति मार्कण्डेय-पुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवी-माहात्म्ये'** इत्यादि पुष्पिका का पाठ नहीं करना होगा? इस प्रश्न के उत्तर में उक्त टीका का कथन है कि जिस प्रकार **'सहस्त्र-नाम'** के पाठ में केवल नामों का ही पाठ नहीं किया जाता, अपितु उसके आदि की **पूर्व-पीठिका** और अन्त की **फल-श्रुति** का भी पाठ करना आवश्यक है, उसी प्रकार **सप्तशती** के आदि और अन्त में उक्त दोनों का पाठ अवश्य कर्त्तव्य है। अतः **सङ्कल्प**-वाक्य में उल्लेख न होने पर भी इनका पाठ करना होता है।

सप्तशती महा-माला-मन्त्र—'लक्ष्मी-तन्त्र' में कहा है—

सम्यक् हृदि स्थिता सेयं, जन्म-कर्मावलि-स्तुतिः।
एतां द्विज-मुखराज् ज्ञात्वा, अधीयानो नरः सदा॥
निधूय निखिलां मायां, सम्यक् ज्ञानं समश्नुते।
सर्व-सम्पद आप्नोति, धुनोति सकलापदः॥

अर्थात् **देवी** को जन्म-कर्मावलि-रूपी यह स्तुति साधक के हृदय में सर्वथा अवस्थित रहती है। इसे **द्विज-मुख** से जानकर जो व्यक्ति **नित्य पाठ** करता है, वह समस्त **माया-जाल** को छिन्न-भिन्न कर सब सम्पत्तियों को प्राप्त करता है और सभी विपत्तियों को पार कर जाता है।

'देवी-भागवत', ५।३५।५०-५२ में कहा है—

यः शृणोति नरो नित्यमेतमाख्यानमुत्तमम्।
स प्राप्नोति नरः सत्यं, संसार-सुखमद्भुतम्॥
ज्ञानदं मोक्षदं चैव, कीर्तिदं सुखदं तथा।
पावनं श्रवणान्नूनमेतदाख्यानमद्भुतम्॥
अखिलार्थ-प्रदं नृणां, सर्व-धर्म-समावृतम्।
धर्मार्थ-काम-मोक्षाणां, कारणं परमं मतम्॥

अर्थात् जो व्यक्ति इस **श्रेष्ठ कथा** को नित्य सुनता है, वह निश्चय ही संसार-सुख को प्राप्त करता है। यह **अद्भुत कथा** ज्ञान, मुक्ति, कीर्ति, सुख और पवित्रता देनेवाली है। यह **सर्व-धर्म-**

समन्वित कथा मनुष्यों की सभी कामानाओं को पूर्ण करती है; **धर्म-अर्थ, काम-मोक्ष की कारण-भूता सर्वोत्तमा** है।

सुरथ व समाधि का पर-वर्ती इतिहास

'देवी-भागवत', पञ्चम स्कन्ध, अध्याय ३५ में बाद का इतिहास वर्णित है। यथा—

राजा सुरथ—देवी के अन्तर्धान होने के बाद **राजा सुरथ मुनि सुमेधा** को प्रणाम कर घोड़े द्वारा चलने को उद्यत हुए। इसी समय उनके मन्त्री और प्रजा-जन वहीं आ पहुँचे। उन्होंने हाथ जोड़कर उनसे निवेदन किया कि **'हे राजन्! आपके शत्रु अपने पाप-वश युद्ध में विनष्ट हो गए हैं। अब आप अपनी राजधानी में पधारें और निर्विघ्न रूप से राज-कार्य सम्पन्न करें।'** इस पर **मुनि** की अनुमति लेकर **राजा सुरथ** उनके साथ स-सम्मान अपनी राजधानी को चले गए और अपनी पत्नी, आत्मीय बन्धुओं के साथ चिर-काल तक सारी पृथ्वी पर शासन करते हुए सुख-भोग किया।

समाधि वैश्य—देवी से दिव्य-ज्ञान का वर प्राप्त कर **समाधि** वैश्य आसक्ति-शून्य हो **भगवती का गुण-कीर्तन** करते हुए **तीर्थाटन** में अपना समय आनन्द-पूर्वक बिताने लगे।

चतुर्दश मनुओं की देवी-आराधना—केवल **राजा सुरथ** ने ही **देवी** की कृपा से मनुत्व नहीं प्राप्त किया, शेष **तेरह मनु** भी इसी प्रकार इस **महत् पद** के अधिकारी हुए हैं। **'देवी-भागवत'**, १०।९-१३ में इसका विस्तृत वर्णन है।

१. प्रथम मनु स्वायम्भुव ने **क्षीर-सागर** के तट पर **देवी की मृण्मयी मूर्ति** की प्रतिष्ठा कर वाग्भव-वीज **'ऐं'** का जप करते हुए आराधना की। देवी के वर से वे प्रजा की सृष्टि करने में समर्थ हुए।

२. द्वितीय मनु स्वारोचिष स्वायम्भुव मनु के ज्येष्ठ पुत्र **प्रियव्रत** के पुत्र थे। **स्वारोचिष** ने **कालिन्दी** के तट पर **तारिणी देवी की मृण्मयी मूर्ति** स्थापित कर १२ वर्ष कठोर तपस्या की, जिससे प्रसन्न होकर देवी ने उन्हें मन्वन्तराधिपत्य प्रदान किया।

३. तृतीय मनु उत्तम प्रियव्रत के ही पुत्र थे। इन्होंने **गङ्गा** किनारे तीन वर्षों तक **वाग्भव-वीज** का जप करते हुए तप किया और **देवी की कृपा** प्राप्त की।

४. चतुर्थ मनु तामस भी **प्रियव्रत** के ही अन्य पुत्र थे। इन्होंने **नर्मदा** के दक्षिण तट पर **काम-वीज 'क्लीं'** का जप करते हुए आराधना की एवं **शरत्** व **वसन्त-काल** में **नवरात्र-व्रत का अनुष्ठान** किया, जिसके फल-स्वरूप **देवी के कृपा-पात्र** हुए।

५. **पञ्चम मनु रैवत** तामस के कनिष्ठ भ्राता थे। इन्होंने **कालिन्दी** के किनारे **काम-वीज** के जप द्वारा देवी को प्रसन्न कर **मनुत्व** लाभ किया था।

६. **षष्ठ मनु चाक्षुष** ने **महर्षि पुलह** के उपदेश से **विरजा नदी** के तट पर **वाग्भव-वीज** का १२ वर्ष तक जप किया था।

७. **सप्तम मनु वैवस्वत** ने **परा देवी** को तपस्या से प्रसन्न कर **मनुत्व** लाभ किया।

८. **अष्टम मनु सावर्णि** सूर्य-पुत्र थे। उन्हीं की कथा **श्री चण्डी** में वर्णित है।

९. **नवम मनु नरपति, १० दशम मनु पृषध्र, ११ एकादश मनु नाभाग १२ द्वादश मनु दिष्ट, १३ त्रयोदश मनु शर्याति, १४ चतुर्दश मनु त्रिशंकु**—ये छहों **वैवस्वत मनु** के पुत्र थे। इन सभी ने **कालिन्दी नदी** के तट पर जाकर प्रत्येक ने **भ्रामरी देवी** की मृण्मयी मूर्ति प्रतिष्ठित कर १२ वर्ष तक आराधना की, जिससे प्रसन्न होकर देवी ने इन सबको अभीष्ट वर प्रदान किया। ये सभी ऐश्वर्यों का भोग कर बाद में **मनु** बने।

तेरहवें अध्याय के पाठान्तर

श्लोक-संख्या	'विशुद्ध चण्डी' का पाठ	प्रचलित पाठ
३	तथैव	तयैव
५	तामुपैहि	तामुपेहि
७	स नराधिप:	क्षत्रियर्षभ
९	संस्थित:	मास्थित
११	निराहारौ यताहारौ	यताहारौ यतात्मनो
११	तन्मनस्कौ समाहितौ	तन्मनस्कौ जितेन्द्रियौ
१४	प्राप्यतां	प्रार्थ्यतां
१४	ददामि तत्	१. ददामि वाम्, २. ददामि ते
१७	अत्रैव च	१. अत्र चैव, २. अत्रापि च
२१	तव तत्र भविष्यति	तव राज्यं भविष्यति
२३	सावर्णिको नाम मनुर-	सावर्णिको मनुर्नाम
२४	यश्च वरोऽस्मत्तोऽभि-वाञ्छित:	मत्तोवरो यश्चाभि-वाञ्छित:

❋ ❋ ❋

वैदिक देवी-सूक्त

ऋग्वेद के दशम मण्डल का १२५वाँ सूक्त **'देवी-सूक्त'** नाम से प्रख्यात है। इसकी आठ ऋचाओं में **भगवती देवी का स्वरूप व महिमा** वर्णित है। **'सूक्त'**-शब्द का अर्थ है—शोभन शैली में कही उक्ति (सु-वच् धातु + क्त)। **वैदिक स्तोत्रों** को **'सूक्त'** कहते हैं। **महर्षि अम्भृण** की पुत्री **ब्रह्म-विदुषी वाक्** इस **'सूक्त'** की **ऋषि** या **मन्त्र**-द्रष्ट्री हैं। इसी से इसे **'वाक्-सूक्त'** भी कहते हैं। **सायणाचार्य** ने कहा है कि '**वाक्** ने परमात्मा से तादात्म्य स्थापित कर यह अनुभव किया कि मैं ही सब कुछ हूँ और इस प्रकार अपनी ही आत्मा की स्तुति की (**स्वात्मानं अस्तौत**)।' दूसरे शब्दों में **ब्रह्म-रूपिणी आद्या-शक्ति भगवती** ने स्वयं ही **ब्रह्म-विदुषी वाक्** के माध्यम से आत्म-परिचय प्रदान किया है।

यह **'देवी-सूक्त'—श्रीचण्डी-तत्त्व का प्रवेश-द्वार** है क्योंकि **श्रीचण्डी** में जिस तत्त्व का प्रकाशन हुआ है, वही वीज-रूप में इसमें निहित है। इसी से इसका इतना महत्त्व है।

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्व - देवैः।

अहं मित्रा-वरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥१॥

अर्थ—मैं **रुद्रों** व **वसुओं** के रूप में विचरण करती हूँ। मैं **आदित्यों** व **विश्वदेवों** के रूप में विचरण करती हूँ। मैं **मित्र** व **वरुण** दोनों को धारण करती हूँ। मैं **इन्द्र, अग्नि** और **दोनों अश्विनी-कुमारों** को धारण करती हूँ।

व्याख्या—**रुद्रेभिः**—वैदिक गण-देवताओं में **रुद्र** अन्यतम हैं। ये **प्राकृतिक दुर्योगों के अधिदेवता** हैं। इनकी संख्या ११ है—**१ अज, २ एक-पात्, ३ अहिब्रध्न, ४ विरूपाक्ष, ५ रैवत, ६ हर, ७ बहु-रूप, ८ त्र्यम्बक, ९ सावित्र, १० जयन्त, ११ पिनाकी।** पुराणों के अनुसार **रुद्र—शिव के अवतार** हैं, **चन्द्र-कला**-युक्त और **जटा-जूट**-धारी हैं।

वसुभिः—आठ वसु—**१ भव, २ ध्रुव, ३ सोम, ४ विष्णु, ५ अनिल, ६ अनल, ७ प्रत्यूष, ८ प्रभव।**

आदित्यैः—सूर्य के १२ अंश ही **१२ आदित्यों** के नाम से सम्बोधित होते हैं, जो १२ महीनों में क्रमशः उदित होते हैं—१ माघ में **अरुण**, २ फाल्गुन में **सूर्य**, ३ चैत्र में **वेदज्ञ**, ४ वैशाख में **तपन**, ५ ज्येष्ठ में **इन्द्र**, ६ आषाढ़ में **रवि**, ७ श्रावण में **गभन्ति**, ८ भाद्र में **यम**, ९ आश्विन में **हिरण्य-रेता**, १० कार्तिक में **दिवाकर**, ११ मार्गशीर्ष में **चित्र**, १२ पौष में **विष्णु**।

विश्व-देवैः—ये भी वैदिक गण-देवता हैं। **इष्टि-श्राद्ध, नान्दीमुख, नैमित्तिक** व **काम्य** में एवं **पार्वण** में इनकी पूजा का विधान है। **पञ्च-यज्ञों** में से **देव-यज्ञ** में इनको बलि दी जाती है। इनकी संख्या १३ से २८ है।

मित्रावरुण—मित्र व **वरुण** क्रमशः **दिवा** व **रात्रि** के अभिमानी देव हैं।

अश्विनौ—दो अश्विनीकुमार। ये स्वर्ग के वैद्य हैं और अति रूपवान् हैं।

बिभर्मि—मैं इन सभी देवताओं को अधिष्ठान-रूप से धारण करती हूँ। ये मुझ में ही अधिष्ठित हैं। मैं ही देवताओं की आत्मा-स्वरूप हूँ।

श्रीचण्डी, १०।८ में **देवी** ने कहा है कि **'मैं अपनी विभूति द्वारा बहु देव-देवी-रूप में विराजती हूँ।'** ११।३० के अनुसार **देवी** ने आत्म-स्वरूप को अनेक मूर्तियों में बहु प्रकार से प्रकट किया है। १०।५ में भी स्पष्ट कहा है कि **'इस जगत् में एक मैं ही हूँ। मेरे सिवा दूसरा कौन है?'**

ब्रह्म-स्वरूपिणी आद्या शक्ति देवी भगवती ही **सर्व देव-देवी-रूप** में विराजमाना हैं, यही इस पहली ऋचा का प्रतिपाद्य विषय है।

अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम्।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सु-प्राव्ये यजमानाय सुन्वते॥२॥

अर्थ—मैं शत्रु-नाशक **सोम** को धारण करती हूँ। **मैं त्वष्टा, पूषा** और **भग** को धारण करती हूँ। हवि-युक्त, देवों को तृप्ति-कारक और सोम-रस प्रस्तुत-कर्त्ता **यजमान को मैं** यज्ञ का फल प्रदान करती हूँ।

व्याख्या—**सोम—ऋग्वेद** के अनुष्ठानों में **'सोम-याग'** का विशेष स्थान है। इसी से वैदिक देवताओं में **सोम देव प्रधान** हैं। **ऋग्वेद** के कुछ सूक्तों में **'सोम'** का वर्णन **चन्द्र**-रूप में मिलता है।

आहनसं सोमं विभर्मि—आचार्य सायण ने इसके अर्थ दो प्रकार किए हैं—१ देवारि-विनाशक आकाशस्थ **सोम-देव** को धारण करती हूँ, २ अभिषवनीय **सोम-रस** को धारण करती हूँ। **सोम-लता** को दो काष्ठ-फलकों के मध्य में रखकर ऊपरी फलक के ऊपर प्रस्तर द्वारा दबाया जाता है, जिससे **सोम-रस** निकल आता है। इस वैदिक प्रक्रिया का नाम है **'सोमाभिषव'**।

त्वष्टा—देवों के अस्त्रादि-निर्माता। **पुराणोक्त विश्वकर्मा**।

पूषा—यास्क के अनुसार सब प्राणियों के रक्षा-कर्त्ता **आदित्य**। **सायण** के मत से जगत्-पोषक **पृथ्वी के अभिमानी देवता**।

भग—द्वादश आदित्यों में से एक। ये उपासकों को धन देते हैं।

हविष्मते सुप्राव्ये सुन्वते यजमानाय—यजमान के तीन गुण—१ जो **हवि** से युक्त है अर्थात् आहुति हेतु जिसके पास **यज्ञ-सामग्री** है, २ जो यथोचित **हवि** से देवों को तृप्त करता है, ३ जो विधि-पूर्वक **सोम-रस** प्रस्तुत करता है। ऐसे गुणी यजमान को **देवी** यज्ञ का फल देती हैं।

अहं द्रविणं दधामि—देवी भोग, स्वर्ग व मोक्ष देती हैं। देखें, **श्रीचण्डी**, १३।५।

अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्य्यावेशयन्तीम्॥३॥

अर्थ—मैं **जगदीश्वरी, धन-दायिनी, पर-ब्रह्म-ज्ञान-वती** और **यज्ञ** के पूज्यों में प्रधाना हूँ। बहु-रूपों में अवस्थिता, सर्व-भूतों में प्रविष्टा उस मुझको देव-गण सर्वत्र पूजते हैं।

व्याख्या—**अहं राष्ट्री**—भगवती की ही शक्ति से ब्रह्माण्ड की सृष्टि, स्थिति व संहृति है। देखें, **श्रीचण्डी,** ११।११।

वसूनां सङ्गमनी—देवी पार्थिव व अपार्थिव सभी प्रकार के धन प्रदान करती हैं। **निष्काम** को **आत्म-ज्ञान** और **सकाम** को ऐहिक व पारलौकिक भोगैश्वर्य देती हैं (**श्रीचण्डी** १२।३१)।

चिकितुषी—जिस ज्ञान से जीव आत्म-स्वरूप को प्राप्त करता है, वही **ब्रह्म-विद्या-स्वरूपिणी देवी** हैं।

भूरि स्थानां—एका अद्वितीया होते हुए भी प्रपञ्च-रूप में बहु-भाव से अवस्थिता।

भूर्यावेशयन्ती—मैं सब प्राणियों में जीवात्मा-रूप से प्रविष्ट रहती हूँ।

तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा—**सायण** लिखते हैं कि 'उक्त प्रकार से मैं विश्व-रूप में रहती हूँ। अतः **देव-गण** जो कुछ करते हैं, वह सब मेरे ही उद्देश्य से अर्थात् जो साधक जिस देवता की आराधना करता है, उसकी वह सारी पूजा मुझे ही मिलती है।' यहाँ **'देव'**-शब्द का अर्थ है **दैवी सम्पद् से युक्त यजमान**।

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति यः ईं श्रृणोत्युक्तम्।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि॥४॥

अर्थ—जो व्यक्ति अन्न खाता है, जो देखता है, जो श्वास लेता है, जो कथा सुनता है, वह मेरी शक्ति द्वारा ही सब कुछ कर पाता है। ऐसी मुझको जो नहीं जानता, वह क्षीण हो जाता है। हे कीर्तिमान् सखे! सुनो, तुम्हें श्रद्धा से प्राप्य **ब्रह्म-तत्त्व** बताती हूँ।

व्याख्या—**मया सो**"**श्रृणोत्युक्तं**—जीव सभी इन्द्रियों के कर्म भगवती की ही शक्ति से करता है क्योंकि वे ही **इन्द्रियों की अधिष्ठात्री** हैं (**श्रीचण्डी**, ५।७७)।

अमन्तवो मां त उप-क्षियन्ति—**उप-क्षियन्ति उप-क्षीणाः संसारेण हीना भवन्ति** अर्थात् **ब्रह्म-ज्ञान** के बिना जन्म-मृत्यु-रूप संसृति से मुक्ति पाना असम्भव है। संसार-चक्र में पड़ा जीव हीन दशा को पहुँच जाता है (**सायण भाष्य**)।

श्रुत—**हे विश्रुत सखे!** जीवात्मा को यहाँ सखा-रूप में कहा है (**सायण**)। जीवात्मा व परमात्मा **सखा-भावापन्न दो पक्षी** के समान हैं—**'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषष्वजाते'** अर्थात् दो परस्पर-संयुक्त सख्य-भावापन्न पक्षी एक वृक्ष का आश्रय कर रहते हैं। (**ऋग्वेद**, १।१६४।१, **मुण्डकोपनिषत्**, ३।१।१)

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्॥५॥

अर्थ—देवों व मनुष्यों द्वारा सेवित इस **ब्रह्म-तत्त्व** को मैं स्वयं ही बताती हूँ। जो जिसकी इच्छा करता है, उसे मैं वही श्रेष्ठ बनाती हूँ। उसे **ब्रह्मा, ऋषि** या उत्तम प्रज्ञावाला बना देती हूँ।

व्याख्या—**जुष्टं देवेभिरुत मानषेभिः**—**ब्रह्म-ज्ञान** के बिना मुक्ति नहीं मिलती, इसी से देवता व मनुष्य सभी **ब्रह्म-ज्ञान** के लिए तपस्या करते हैं।

यं कामये···कृणोमि—देवी की इच्छा या प्रसन्नता से ही जीव को अभ्युदय या निःश्रेयस मिलता है। (देखें, **श्रीचण्डी**, ४।१५ और १।५१)।

सु-मेधां—शोभन-प्रज्ञ **(सायण)**। जिसके द्वारा सब शास्त्रों का मर्म ज्ञात हो जाए, उसे **'मेधा'** कहते हैं। **भगवती मेधा-स्वरूपिणी** हैं (**श्रीचण्डी**, ४।११)।

अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्म-द्विषे शरवे हन्तवा उ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावा-पृथिवी आ विवेश॥६॥

अर्थ—ब्रह्म-द्वेषी हिंसक असुर के वध के लिए मैं **रुद्र** के धनुष को ज्या से जोड़ती हूँ। सज्जन की रक्षा के लिए मैं संग्राम करती हूँ। मैं स्वर्ग व मर्त्य-लोक में प्रविष्ट होकर रहती हूँ।

व्याख्या—**अहं रुद्राय···उ**—पुरा-काल में **ब्राह्मण-द्वेषी, त्रि-पुर-निवासी** असुर के वध के लिए उद्यत **रुद्र** के धनुष को ज्या से मैंने ही जोड़ा था **(सायण)**। पौराणिक कथा है कि **तारकासुर** के तीन पुत्र थे—**१ तारकाक्ष, २ कमलाक्ष, ३ विद्युन्माली**। उनके लिए **मय दानव** ने स्वर्ग में **काञ्चन-मय**, अन्तरीक्ष में **रजत-मय** और मृत्यु-लोक में **लौह-मय**—ये तीन पुर बनाए थे। **ब्रह्मा** ने उक्त तीन असुरों को यह वर दिया था कि जो एक ही वाण से तीनों पुरों का भेद कर सके, वही उन्हें मार सकेगा। **रुद्र** ने तीन पुरों को एक वाण से ध्वंस कर उनका नाश किया।

ब्रह्म-द्विषे—ब्राह्मणों से द्वेष करनेवाला **(सायण)**।

शरवे—शृ धातु (हिंसार्थक) + **उ** = **शरु**, चतुर्थी विभक्ति से **'शरवे'**।

हन्तवै—हन् धातु + तुम् अर्थ में **तवै**।

अहं जनाय समदं कृणोमि—साधु-जनों के परित्राण के लिए मैं उनके उत्पीड़क असुरों से संग्राम करती हूँ। **श्रीचण्डी** के चरितों से इसकी पुष्टि होती है।

अहं द्यावा-पृथिवी आ विवेश—मैं **अन्तर्यामिनी**-रूप से **द्यु-लोक** व **भू-लोक** में प्रविष्ट होकर रहती हूँ। देखें, **श्रीचण्डी** ५।७८-८०।

अहं सुवे पितरमस्य मूर्द्धन् मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे।
ततो वितिष्ठे भुवनानु विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप-स्पृशामि॥७॥

अर्थ—मैं इस भू-लोक के ऊपर अवस्थित **द्यु-लोक** को उत्पन्न करती हूँ। परमात्मा में व्यापन-शील बुद्धि-वृत्ति के मध्य-स्थित जो **ब्रह्म-चैतन्य** है, वही मेरा कारण या प्रकाश-स्थान है। इसी से मैं सभी भुवनों में अनु-प्रविष्ट होकर विविध रूपों में विद्यमान हूँ। यही नहीं, मैं अपनी देह से इस **द्यु-लोक** को स्पर्श करती हूँ।

व्याख्या—**अहं पितरं सुवे**—मैं पिता अर्थात् द्यु-लोक को प्रसव करती हूँ (**सायण**)। श्रुति-वचन है—'**द्यौः पिता**'। **द्यु-लोक** से तात्पर्य है पृथ्वी आदि पञ्च-भूतों के आदि आकाश या व्योम-तत्त्व का।

अस्य मूर्द्धन्—**सायण** ने इसके दो अर्थ किए हैं—(१) **अस्य भूलोकस्य मूर्द्धन् मूर्द्धनि उपरि** अर्थात् इस भू-लोक के ऊपर। (२) **अस्य परमात्मनः मूर्द्धन्** अर्थात् परमात्मा हिरण्य-गर्भ-रूप में समस्त सृष्ट वस्तुओं का आधार-स्वरूप है। आकाशादि उसी में अधिष्ठित हैं। उस परमात्मा के ऊपर।

मम योनिः अप्सु अन्तः समुद्रे—**सायण** के अनुसार यहाँ '**अप्**'-शब्द का अर्थ है **व्यापन-शीला धी-वृत्ति**। जिससे भूत-वर्ग उत्पन्न होता है, वही '**समुद्र**' अर्थात् **परमात्मा** है। **योनि**— **प्रकाश-स्थान**। साधक की परिशुद्ध सूक्ष्म बुद्धि के भीतर ही **ब्रह्म-मयी आत्म-प्रकाश** करती है।

यह आत्मा सब भूतों में प्रच्छन्न है, प्रकट नहीं है। सूक्ष्म-दर्शी लोग ही तीक्ष्ण या सूक्ष्म बुद्धि द्वारा उसका दर्शन कर पाते हैं।

ततो वितिष्ठे भुवनानु विश्वा—विश्व-भुवनों के सभी पदार्थों में प्रविष्ट होकर मैं ही विविध नाम-रूप धारण कर रहती हूँ।

अमुं द्यां वर्ष्मणा उप-स्पृशामि—मैं अपने कारण-भूत मायात्मक देह द्वारा (**वर्ष्मणा**) इस **द्यु-लोक** को स्पर्श करती हूँ। '**द्यु-लोक**' से यहाँ समस्त कार्य-वस्तुओं का बोध होता है।

अहमेव वात इव प्रवाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा।
परो दिवा पर एना पृथिव्यै तावती महिना सम्बभूव॥८॥

अर्थ—मैं ही सभी भुवनों का निर्माण करती हुई वायु के समान प्रवाहित होती हूँ। मैं ही **द्यु-लोक** व **पृथिवी** का अति-क्रमण करती हूँ। अपनी महिमा से मैं ही यह सब—**जगन्मय-रूप-धारिणी** होती हूँ।

व्याख्या—**अहमेव वात इव प्रवामि**—जिस प्रकार बिना किसी प्रेरणा के वायु स्वतः प्रवाहित होती है, उसी प्रकार मैं अन्य किसी के द्वारा अधिष्ठित न होकर सृष्ट्यादि कार्य में प्रवृत्त होती हूँ (**सायण**)।

परो दिवा...सम्बभूव—'**द्यु-लोक**' व '**पृथिवी**' से समस्त कार्य-वस्तुओं का बोध होता है। यद्यपि मैं सभी सृष्ट पदार्थों से अतीत, असङ्ग, उदासीन, निर्विकार **ब्रह्म-चैतन्य-रूपिणी** हूँ, तथापि अपनी महिमा से सर्व-जगत्-रूप में भी आविर्भूत होती हूँ (**सायण**)।

आद्या शक्ति स्वरूपतः **नाम-रूपातीता** हैं, फिर भी वे ही **माया**-रूपी महिमा द्वारा समस्त वस्तु-रूपों में उत्पन्न होती हैं। '**महा-निर्वाण तन्त्र**', ४।१५ में कहा है—

त्वमेव सूक्ष्मा स्थूला त्वं, व्यक्ताव्यक्त-स्वरूपिणी।
निराकाराऽपि साकारा, कस्त्वं वेदितुमर्हति॥

❋ ❋ ❋

रहस्य-त्रय

प्राधानिक-रहस्य

॥ ॐ राजोवाच॥

भगवन्नतारा मे चण्डिकायास्त्वयोदिताः।
एतेषां प्रकृतिं ब्रह्मन्! प्रधानं वक्तुमर्हसि॥१॥
आराध्यं यन्मया देव्याः, स्वरूपं येन च द्विज!
विधिना ब्रूहि सकलं, यथा-वत् प्रणतस्य मे॥२॥

राजा सुरथ ने कहा—हे **भगवन्!** आपने **चण्डिका** के अवतार मुझे बताए। हे **ब्रह्मन्!** अब इनकी प्रधान प्रकृति बताइए॥१॥ हे **द्विज!** मुझे **देवी** के जिस स्वरूप की जिस विधि से आराधना करनी है, वह सब यथार्थ रूप से मुझ विनम्र से कहिए॥२॥

॥ ऋषिरुवाच॥

इदं रहस्यं परममनाख्येयं प्रचक्षते।
भक्तोऽसीति न मे किञ्चित्, तवावाच्यं नराधिप!॥३॥
सर्वस्याद्या महा-लक्ष्मीस्त्रिगुणा परमेश्वरी।
लक्ष्यालक्ष्य-स्वरूपा सा, व्याप्य कृत्स्नं व्यवस्थिता ॥४॥
मातु-लिङ्गं गदां खेटं, पान-पात्रं च बिभ्रती।
नागं लिङ्गं च योनिं च, बिभ्रती नृप! मूर्द्धनि ॥५॥
तप्त-काञ्चन-वर्णाभा, तप्त-काञ्चन-भूषणा।
शून्यं तदखिलं स्वेन, पूरयामास तेजसा ॥६॥
शून्यं तदखिलं लोकं, विलोक्य परमेश्वरी।
बभार परमं रूपं, तमसा केवलेन हि ॥७॥
सा भिन्नाञ्जन-सङ्काशा, दंष्ट्राञ्चित-वरानना।
विशाल-लोचना नारी, बभूव तनु-मध्यमा ॥८॥
खड्ग - पात्र - शिरः - खेटैरलंकृत - चतुर्भुजा।
कबन्ध-हारं शिरसा, बिभ्राणा हि शिरः-स्रजम् ॥९॥
सा प्रोवाच महा-लक्ष्मीं, तामसी प्रमदोत्तमा।
नाम कर्म च मे मातर्देहि तुभ्यं नमो नमः॥१०॥

मेधस ऋषि ने कहा—हे **राजन्!** यह परम रहस्य अकथनीय है, किन्तु तुम मेरे भक्त हो, तुम्हारे लिए कुछ भी अकथनीय नहीं है॥३॥ **त्रिगणा परमेश्वरी महा-लक्ष्मी** सबकी आद्या हैं,

दृश्य-अदृश्य-रूपोंवाली वे सबको व्याप्त कर विद्यमान हैं॥४॥ हे **राजन्!** मातुलिङ्ग, गदा, खेट और पान-पात्र लिए हुए वे मस्तक पर नाग, लिङ्ग व योनि को धारण किए हैं॥५॥ तपे हुए सोने की कान्तिवाली, तपे सोने के भूषणों से भूषिता उन्होंने अपने तेज से इस सारे शून्य जगत् को भर दिया है॥६॥ इस सारे लोक को शून्य देखकर केवल तम से **परमेश्वरी** ने श्रेष्ठ रूप धारण किया है॥७॥ उज्ज्वल काजल-समान कान्तिवाली वह स्त्री दाढ़ों से सुशोभित सुन्दर मुखवाली, बड़े-बड़े नेत्रोंवाली और पतली कमरवाली थी॥८॥ चार हाथों में **खड्ग, पात्र, मुण्ड** व **खेट** लिए थी। धड़ की माला और शिर पर मुण्डों की माला पहने थी॥९॥ स्त्रियों में श्रेष्ठ वह तामसी **महा-लक्ष्मी** से बोली—हे मातः! मेरे नाम व काम बताइए, तुम्हें बारम्बार नमस्कार है॥१०॥

तां प्रोवाच महा-लक्ष्मीस्तामसीं प्रमदोत्तमाम्।
ददामि तव नामानि, यानि कर्माणि तानि ते॥११॥
महा-माया महा-काली, महा-मारी क्षुधा तृषा।
निद्रा तृष्णा चैक-वीरा, काल-रात्रिर्दुरत्यया॥१२॥
इमानि तव नामानि, प्रतिपाद्यानि कर्मभिः।
एभिः कर्माणि ते ज्ञात्वा, योऽधीते सोऽश्नुते सुखम्॥१३॥

उस **नारी-श्रेष्ठा तामसी** से **महा-लक्ष्मी** ने कहा—तुम्हारे नाम व कर्म जो हैं, उन्हें बताती हूँ॥११॥ **महा-माया, महा-काली, महा-मारी, क्षुधा, तृषा, निद्रा, तृष्णा, एक-वीरा, काल-रात्रि, दुरत्यया**॥१२॥ ये तुम्हारे नाम कर्मों द्वारा प्रतिपादित हैं। इनसे तुम्हारे कर्मों को जानकर जो मनन करता है, वह सुख पाता है॥१३॥

तामित्युक्त्वा महा-लक्ष्मीः, स्वरूपमपरं नृप!
सत्त्वाख्येनाति-शुद्धेन, गुणेनेन्दु-प्रभं दधौ॥१४॥
अक्ष-मालांकुश-धरा, वीणा-पुस्तक-धारिणी।
सा बभूव वरा नारी, नामान्यस्यै च सा ददौ॥१५॥
महा-विद्या महा-वाणी, भारती वाक् सरस्वती।
आर्या ब्राह्मी काम-धेनुर्वेद-गर्भा सुरेश्वरी॥१६॥
अथोवाच महा-लक्ष्मीर्महा-कालीं सरस्वतीम्।
युवां जनयतां देव्यौ, मिथुने स्वानुरूपतः॥१७॥

इस प्रकार उससे कहकर हे **राजन्! महा-लक्ष्मी** ने अति शुद्ध सत्त्व नामक गुण से चन्द्र जैसा दूसरा रूप धारण किया॥१४॥ वह रूप **अक्ष-माला, अंकुश, वाणी व पुस्तक-धारिणी सुन्दरी नारी** बना और इसे भी उन्होंने नाम बताए॥१५॥ **महा-विद्या, महा-वाणी, भारती, वाक्, सरस्वती, आर्या, ब्राह्मी, काम-धेनु, वेद-गर्भा, सुरेश्वरी**॥१६॥ अब **महा-लक्ष्मी** ने **महा-काली** व **महा-सरस्वती** से कहा—**देवियों!** तुम दोनों अपने अनुरूप जोड़े उत्पन्न करो॥१७॥

इत्युक्त्वा ते महा-लक्ष्मीः, ससर्ज मिथुनं स्वयम्।
हिरण्य-गर्भौ रुचिरौ, स्त्री-पुंसौ कमलासनौ॥१८॥
ब्रह्मन् विधे विरिञ्चेति, धातरित्याह तं नरम्।
श्रीः पद्मे कमले लक्ष्मीत्याह माता च तां स्त्रियम्॥१९॥
महा-काली भारती च, मिथुने सृजतः सह।
एतयोरपि रूपाणि, नामानि च वदामि ते॥२०॥
नील-कण्ठं रक्त-बाहुं, श्वेताङ्गं चन्द्र-शेखरम्।
जनयामास पुरुषं, महा-काली सितां स्त्रियम्॥२१॥
स रुद्रः शङ्करः स्थाणुः, कपर्दी च त्रिलोचनः।
त्रयी विद्या काम-धेनुः, सा स्त्री भाषा स्वराऽक्षरा॥२२॥
सरस्वती स्त्रियं गौरीं, कृष्णं च पुरुषं नृप!
जनयामास नामानि, तयोरपि वदामि ते॥२३॥
विष्णुः कृष्णो हृषीकेशो, वासुदेवो जनार्दनः।
उमा गौरी सती चण्डी, सुन्दरी सुभगा शिवा॥२४॥

उन्हें ऐसा कहकर **महा-लक्ष्मी** ने स्वयं निर्मल ज्ञान-सम्पन्न, सुन्दर, कमलासीन **स्त्री-पुरुष का जोड़ा** उत्पन्न किया॥१८॥ माता ने उस पुरुष को '**ब्रह्मन्, विधे, विरिञ्च, धातः**' और उस स्त्री को '**श्रीः, पद्मे, कमले, लक्ष्मि**' कहा॥१९॥ **महा-काली** व **महा-सरस्वती** ने साथ ही दो जोड़े उत्पन्न किए। इन दोनों के भी रूप व नाम तुम्हें बताता हूँ॥२०॥ **महा-काली** ने **नील-कण्ठ**, **रक्त-बाहु, श्वेताङ्ग, चन्द्र-शेखर पुरुष** को और **गौर-वर्णा स्त्री** को उत्पन्न किया॥२१॥ वह **रुद्र, शङ्कर, स्थाणु, कपर्दी, त्रिलोचन** और वह स्त्री **त्रयी, विद्या, काम-धेनु, भाषा, स्वरा, अक्षरा** है॥२२॥ हे **राजन्! सरस्वती** ने **गोरी स्त्री** व **काले पुरुष** को उत्पन्न किया, उन दोनों के नाम भी तुम्हें बताता हूँ॥२३॥ **विष्णु, कृष्ण, हृषीकेश, वासुदेव, जनार्दन** और **उमा, गौरी, सती, चण्डी, सुन्दरी सुभगा, शिवा**॥२४॥

एवं युवतयः सद्यः, पुरुषत्वं प्रपेदिरे।
चक्षुष्मन्तोऽनुपश्यन्ति, नेतरेऽतद्विदो जनाः॥२५॥
ब्रह्मणे प्रददौ पत्नीं, महा-लक्ष्मीर्नृप! त्रयीम्।
रुद्राय गौरीं वरदां, वासुदेवाय च श्रियम्॥२६॥
स्वरया सह सम्भूय, विरिञ्चोऽण्डमजीजनत्।
विभेद भगवान् रुद्रस्तद् गौर्या सह वीर्यवान्॥२७॥
अण्ड-मध्ये प्रधानादि, कार्य-जातमभून् नृप!
महा-भूतात्मकं सर्वं, जगत् स्थावर-जङ्गमम्॥२८॥

पुपोष पालयामास, तल्लक्ष्म्या सह केशवः।
सञ्जहार जगत् सर्वं, सह गौर्या महेश्वरः॥२९॥
महा-लक्ष्मीर्महा-राज! सर्व-सत्त्व-मयीश्वरी।
निराकारा च साकारा, सैव नानाऽभिधान-भृत्॥३०॥
नामान्तरैर्निरूप्यैषा, नाम्ना नान्येन केनचित्॥३१॥

इस प्रकार युवतियों ने तत्काल पुरुषत्व को प्राप्त किया। ज्ञानी ही देखते हैं, अज्ञानी लोग नहीं॥२५॥ हे **राजन्! महा-लक्ष्मी** ने **ब्रह्मा** को '**त्रयी**' पत्नी प्रदान की, **रुद्र** को '**गौरी**' और **वासुदेव** को '**श्री**'॥२६॥ '**स्वरा**' के साथ **विरिञ्च** ने ब्रह्माण्ड को उत्पन्न किया। पराक्रमी **भगवान् रुद्र** ने '**गौरी**' के साथ उसका भेदन किया॥२७॥ हे **राजन्!** ब्रह्माण्ड के मध्य में प्रधान (**महत् तत्त्व**) आदि कार्य-समूह—महा-भूतात्मक सारा **स्थावर-जङ्गम जगत्** उत्पन्न हुआ॥२८॥ '**लक्ष्मी**' के साथ **केशव** ने उसका पालन-पोषण किया और '**गौरी**' के साथ **महेश्वर** ने सारे जगत् का संहार किया॥२९॥ हे **महा-राज! महा-लक्ष्मी** सर्व-सत्त्व-मयी, ईश्वरी, निराकारा और साकारा है, वही विविध नामवाली है॥३०॥ विभिन्न नामों से यही प्रतिपाद्या है, अन्य कोई नहीं॥३१॥

❋❋❋

वैकृतिक रहस्य

॥ॐ ऋषिरुवाच॥

त्रिगुणा तामसी देवी, सात्त्विकी या त्रिधोदिता।
सा शर्वा चण्डिका दुर्गा, भद्रा भगवतीर्यते॥१॥
योग-निद्रा हरेरुक्ता, महा-काली तमो-गुणा।
मधु-कैटभ-नाशार्थं, यां तुष्टावाम्बुजासनः॥२॥
दश-वक्त्रा दश-भुजा, दश-पादाञ्जन-प्रभा।
विशालया राजमाना, त्रिंशल्लोचन-मालया॥३॥
स्फुरद्-दशन-दंष्ट्रा सा, भीम-रूपाऽपि भूमिप!
रूप-सौभाग्य-कान्तीनां, सा प्रतिष्ठा महा-श्रियः॥४॥
खड्ग-वाण-गदा-शूलं, पाश-चक्र-भुशुण्डि-भृत्।
परिघं कार्मुकं शीर्षं, निश्च्योतद्-रुधिरं दधौ॥५॥
एषा सा वैष्णवी माया, महा-काली दुरत्यया।
आराधिता वशी-कुर्यात्, पूजा-कर्तुश्चराचरम्॥६॥

ऋषि मेधस ने कहा—जो देवी सात्त्विकी, तामसी त्रिगुणा तीन प्रकार की हैं, वही **शर्वा, चण्डिका, दुर्गा, भद्रा, भगवती** कही जाती हैं।।१।। तमो-गुण **'महा-काली'** विष्णु की **योग-निद्रा** कही गई हैं, जिन्हें **मधु-कैटभ-नाश** के लिए **ब्रह्मा** ने प्रसन्न किया था।।२।। दश-मुखा, दश-भुजा, दश-पादा, कज्जल-कान्तिवाली, तीस नेत्रों की माला से विभूषिता, चमकते दाँतों व दाढ़ोंवाली वे भयङ्कर-रूपा होती हुई भी हे राजन्, रूप-सौभाग्य-कान्ति-महद् ऐश्वर्य की अधिष्ठान हैं।। ३-४।। **खड्ग, वाण, गदा, शूल, पाश, चक्र, भुशुण्डि, परिघ, धनुष** और **रक्त-स्रावी मुण्ड** लिए हैं।।५।। ऐसी दुस्तरा वह **विष्णु-माया महा-काली** पूजित होने पर सारे जगत् को पूजक भक्त के अधीन कर देती हैं।।६।।

सर्व-देव-शरीरेभ्यो, याऽऽविर्भूताऽमित-प्रभा।
त्रिगुणा सा महा-लक्ष्मीः, साक्षान्महिष-मर्दिनी।।७।।
श्वेतानना नील-भुजा, सुश्वेत-स्तन-मण्डला।
रक्त-मध्या रक्त-पादा, नील-जङ्घोरुरुन्मदा।।८।।
सुचित्र-जघना चित्र-माल्याम्बर-विभूषणा।
चित्रानुलेपना कान्ति-रूप-सौभाग्य-शालिनी।।९।।
अष्टादश-भुजा पूज्या, सा सहस्र-भुजा सती।
आयुधान्यत्र वक्ष्यन्ते, दक्षिणाधः-कर-क्रमात्।।१०।।
अक्ष-माला च कमलं, वाणोऽसिः कुलिशं गदा।
चक्रं त्रिशूलं परशुः, शङ्खो घण्टा च पाशकः।।११।।
शक्तिर्दण्डश्चर्म चापं, पान-पात्रं कमण्डलुः।
अलंकृत-भुजामेभिरायुधैः कमलासनाम्।।१२।।
सर्व-देव-मयीमीशां, महा-लक्ष्मीमिमां नृप!
पूजयेत् सर्व-देवानां, स लोकानां प्रभुर्भवेत्।।१३।।

सब देवों के शरीरों से जो अति कान्तिवाली त्रिगुणा उत्पन्न हुईं, वे साक्षात् **'महा-लक्ष्मी' महिषासुर-नाशिनी** हैं।।७।। श्वेतानना, नील-हस्ता, उज्ज्वल-पयोधरा, रक्त-कटि-भागा, रक्त-चरणा, नील-जङ्घा, नीलोरु, रङ्ग-विरङ्गे वस्त्रों से ढँके जघन-भागवाली, बहुरङ्गी माला, वस्त्र व अलङ्कारों से विभूषिता, विलक्षण अङ्गराग से लिप्ता, कान्ति-रूप-सौभाग्य से शोभिता और गर्व-युक्ता हैं।।८-९।। सहस्र-भुजा होती हुई भी **अष्टादश-भुजा** वे पूज्या हैं, जिनमें दाएँ निचले हाथ के क्रम से अस्त्रों को कहूँगा।।१०।। **अक्ष-माला, कमल, वाण, खड्ग, वज्र, गदा, चक्र, त्रिशूल, परशु, शङ्ख, घण्टा, पाश, शक्ति, दण्ड, ढाल, धनुष, पान-पात्र, कमण्डलु**—इन अस्त्रों से विभूषित-हस्ता, कमलासना, सर्व-देव-मयी, ईश्वरी इन **महा-लक्ष्मी** की जो पूजा करता है, हे **राजन्!** वह सब देवों व लोकों का स्वामी होता है।।११-१३।।

गौरी-देहात् समुद्भूता, या सत्त्वैक-गुणाश्रया।
साक्षात् सरस्वती प्रोक्ता, शुम्भासुर-निबर्हिणी॥१४॥
दधौ चाष्ट-भुजा बाण-मुसले शूल-चक्र-भृत्।
शङ्खं घण्टा लाङ्गलं च, कार्मुकं वसुधाधिप॥१५॥
एषा सम्पूजिता भक्त्या, सर्वज्ञत्वं प्रयच्छति।
निशुम्भ-मथिनी देवी, शुम्भासुर-निबर्हिणी॥१६॥

गौरी के शरीर से जो एक-मात्र सतो-गुणाश्रिता उत्पन्न हुईं, वे **शुम्भासुर-नाशिनी** साक्षात् '**सरस्वती**' कही गई हैं॥१४॥ हे **पृथ्वी-पते!** वे अष्ट-भुजा—**बाण, मुसल, शूल, चक्र, शङ्ख, घण्टा, लाङ्गल, धनुष** लिए हैं॥१५॥ **निशुम्भ-मर्दिनी** व **शुम्भासुर-नाशिनी** ये भक्ति से पूजिता होने पर सर्वज्ञता देती हैं॥१६॥

इत्युक्तानि स्वरूपाणि, मूर्तीनां तव पार्थिव!
उपासनं जगन्मातुः, पृथगासां निशामय॥१७॥
महा-लक्ष्मीर्यदा पूज्या, महा-काली सरस्वती।
दक्षिणोत्तरयोः पूज्ये, पृष्ठतो मिथुन-त्रयम्॥१८॥
विरञ्चिः स्वरया मध्ये, रुद्रो गौर्या च दक्षिणे।
वामे लक्ष्म्या हृषीकेशः, पुरतो देवता-त्रयम्॥१९॥
अष्टादश-भुजा मध्ये, वामे चास्या दशानना।
दक्षिणेऽष्ट-भुजा लक्ष्मीर्महतीति समर्चयेत्॥२०॥
अष्टादश-भुजा चैषा, यदा पूज्या नराधिप!
दशानना चाष्ट-भुजा, दक्षिणोत्तरयोस्तदा॥२१॥
काल-मृत्यू च सम्पूज्यौ, सर्वारिष्ट-प्रशान्तये।
यदा चाष्ट-भुजा पूज्या, शुम्भासुर-निबर्हिणी॥२२॥
नवास्याः शक्तयः पूज्यास्तदा रुद्र-विनायकौ।
नमो देव्या इति स्तोत्रैर्महा-लक्ष्मीं समर्चयेत्॥२३॥

हे **राजन्!** इस प्रकार मूर्तियों के स्वरूप तुमसे कहे गए। **जगन्माता** के इन स्वरूपों की उपासना को अलग-अलग सुनो॥१७॥ जब **महा-लक्ष्मी** पूज्या हों, तो दाएँ **महा-काली**, बाँएँ **महा-सरस्वती** व पीछे **तीनों जोड़े** पूजनीय हैं॥१८॥ मध्य में **स्वरा के सहित ब्रह्मा**, दाईं ओर **गौरी-सहित रुद्र**, बाँईं ओर **लक्ष्मी-सहित विष्णु** तथा सामने **तीन देवता**—॥१९॥ मध्य में **अष्टादश-भुजा**, इनके बाँईं ओर **दशानना**, दाईं ओर **अष्ट-भुजा**—इस प्रकार **महा-लक्ष्मी**

की पूजा करे॥२०॥ हे राजन्! जब ये **अष्टादश-भुजा, दशानना** और **अष्ट-भुजा** पूज्या हों, तो इनके दाएँ व बाँएँ सब अरिष्टों की शान्ति के लिए क्रमश: **काल** व **मृत्यु** पूजनीय हैं। जब **शुम्भासुर-नाशिनी अष्ट-भुजा** पूज्या हों, तब उनकी **नौ शक्तियाँ** और **रुद्र** व **विनायक** पूज्य हैं॥२१-२२॥ **'नमो देव्यै०'**—इस स्तोत्र से **महा-लक्ष्मी का पूजन** करना चाहिए॥२३॥

अवतार-त्रयार्चायां, स्तोत्र-मन्त्रास्तदाश्रया:।
अष्टादश-भुजा चैषा, पूज्या महिष-मर्दिनी॥२४॥
महा-लक्ष्मीर्महा-काली, सैव प्रोक्ता सरस्वती।
ईश्वरी पुण्य-पापानां, सर्व-लोक-महेश्वरी॥२५॥
महिषान्त-करी येन, पूजिता स जगत्-प्रभुः।
पूजयेज्जगतां धात्रीं, चण्डिकां भक्त-वत्सलाम्॥२६॥

तीन अवतारों की पूजा में उनसे सम्बन्धी **स्तोत्र-मन्त्रों से पूजा** करनी चाहिए। ये **अष्टादश-भुजा महिष-मर्दिनी** पूज्या हैं॥२४॥ वे ही **महा-लक्ष्मी, महा-काली, महा-सरस्वती**—पुण्य-पापों की अधीश्वरी, सर्व-लोक-महेश्वरी कही गई हैं॥२५॥ जो **महिष-नाशिनी की पूजा** करता है, वह जगत् का स्वामी होता है। **जगत्-धारिणी भक्त-वत्सला चण्डिका की पूजा** करनी चाहिए॥२६॥

अर्घ्यादिभिरलङ्कारैर्गन्ध - पुष्पैस्तथाऽक्षतैः।
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्नाना-भक्ष्य-समन्वितैः॥२७॥
रुधिराक्तेन बलिना, मांसेन सुरया नृप!
प्रणामाचमनीयेन, चन्दनेन सुगन्धिना॥२८॥
स-कर्पूरैश्च ताम्बूलैर्भक्ति-भाव-समन्वितैः।
वाम-भागेऽग्रतो देव्याश्छिन्न-शीर्षं महाऽसुरम्॥२९॥
पूजयेन्महिषं येन, प्राप्तं सायुज्यमीशया।
दक्षिणे पुरतः सिंहं, समग्रं धर्ममीश्वरम्॥३०॥
वाहनं पूजयेद् देव्या, धृतं येन चराचरम्।
कुर्याच्च स्तवनं धीमांस्तस्या एकाग्र-मानसः॥३१॥
ततः कृताञ्जलिर्भूत्वा, स्तुवीत चरितैरिमैः।
एकेन वा मध्यमेन, नैकेनेतरयोरिह॥३२॥
चरितार्धं तु न जपेज्जपंश्छिद्रमवाप्नुयात्।
प्रदक्षिणा-नमस्कारान्, कृत्वा मूर्ध्नि कृताञ्जलिः॥३३॥

क्षमापयेज्जगद्-धात्रीं, मुहुर्मुहुरतन्द्रितः।
प्रति-श्लोकं च जुहुयात्, पायसं तिल-सर्पिषा॥३४॥
जुहुयात् स्तोत्र-मन्त्रैर्वा, चण्डिकायै शुभं हविः।
नमो नाम-पदैर्देवीं, पूजयेत् सु-समाहितः॥३५॥
प्रयतः प्राञ्जलिः प्रह्वः, प्राणानारोप्य चात्मनि।
सुचिरं भावयेद् देवीं, चण्डिकां तन्मयो भवेत्॥३६॥

अर्घ्यादि से, आभूषणों से, गन्ध-पुष्पों और अक्षतों से, धूपों से एवं दीपों से, विविध खाद्य पदार्थों से युक्त नैवेद्यों से, रक्त-युक्त बलि-मांस से, मद्य से। हे **राजन्!** प्रणाम से, आचमन-जल से, सुगन्धित चन्दन से, कर्पूर-युक्त ताम्बूलों से भक्ति-भाव-सहित पूजन करे। देवी के सामने बाँईं ओर **कटे सिरवाले महा-दैत्य महिष का पूजन** करे, जिसने **ईश्वरी का सायुज्य** पाया है। सामने ही दाईं ओर **देवी के वाहन समस्त धर्म व ईश्वर-रूप सिंह की पूजा** करे, जिसने चराचर-जगत् को धारण किया है। तब विज्ञ साधक **देवी की स्तुति** एकाग्र-चित्त से करे॥२७-३१॥ फिर हाथ जोड़कर इन **(तीन) चरितों** द्वारा या **केवल मध्यम चरित द्वारा स्तवन** करे, अन्य दोनों **(प्रथम-उत्तम)** में से किसी एक का पाठ न करे॥३२॥ **आधे चरित** का भी पाठ न करे, वैसा पाठ दोष-युक्त होता है। आलस्य न कर बारम्बार **प्रदक्षिणा** व **नमस्कार** कर मस्तक पर हाथ जोड़कर **जगद्धात्री से क्षमा-प्रार्थना** करे और प्रत्येक श्लोक से **तिल-घृत-युक्त पायस का होम** करे।॥३३-३४॥ या स्तोत्र के मन्त्रों से **चण्डिका के लिए हवि** का होम करे। फिर **नाम-मन्त्रों** से एकाग्र-चित्त हो **देवी की पूजा** करे॥३५॥ सुस्थिर होकर हाथ जोड़कर आत्मा में प्राणों को प्रतिष्ठित कर विनम्रता-पूर्वक **देवी चण्डिका** का देर तक ध्यान कर उन्हीं में तन्मय हो जाए॥३६॥

एवं यः पूजयेद् भक्त्या, प्रत्यहं परमेश्वरीम्।
भुक्त्वा भोगान् यथा-कामं, देवी-सायुज्यमाप्नुयात्॥३७॥
यो न पूजयते नित्यं, चण्डिकां भक्त-वत्सलाम्।
भस्मी-कृत्यास्य पुण्यानि, निर्दहेत् परमेश्वरी॥३८॥
तस्मात् पूजय भूपाल! सर्व-लोक-महेश्वरीम्।
यथोक्तेन विधानेन, चण्डिकां सुखमाप्स्यसि ॥३९॥

इस प्रकार जो प्रति-दिन भक्ति से **परमेश्वरी की पूजा** करता है, वह यथेच्छ भोगों को भोग कर **देवी का सायुज्य** पाता है॥३७॥ जो **भक्त-वत्सला चण्डिका की पूजा** नित्य नहीं करता, उसके पुण्यों को परमेश्वरी जलाकर भस्म कर देती हैं॥३८॥ अतः हे **राजन्!** बताई गई विधि से **सर्व-लोक-महेश्वरी चण्डिका की पूजा** करो, तुम सुख पाओगे॥३९॥

❋ ❋ ❋

मूर्ति-रहस्य

॥ॐ ऋषिरुवाच॥

नन्दा भगवती नाम, या भविष्यति नन्दजा।
स्तुता सा पूजिता भक्त्या, वशी-कुर्याज्जगत्-त्रयम्॥१॥
कनकोत्तम-कान्तिः सा, सु-कान्ति-कनकाम्बरा।
देवी कनक-वर्णाभा, कनकोत्तम-भूषणा॥२॥
कमलांकुश - पाशाब्जैरलंकृत - चतुर्भुजा।
इन्दिरा कमला लक्ष्मीः, सा श्रीरुक्मामबुजाऽऽसना॥३॥

ऋषि मेधस ने कहा—**नन्द** से उत्पन्न '**नन्दा**' नाम की जो भगवती होंगी, वे भक्ति-पूर्वक प्रार्थिता व पूजिता होकर तीनों लोकों को वश में कर देती हैं॥१॥ स्वर्ण की उत्तम कान्तिवाली, सुन्दर सुनहले वस्त्र-धारिणी वे देवी स्वर्ण-वर्णाभा व उत्तम स्वर्णाभूषणा हैं॥२॥ चार भुजाएँ **कमल, अंकुश, पाश** व **कमल** से शोभिता हैं। वे **इन्दिरा, कमला, लक्ष्मी, श्री, रुक्माम्बुजासना** हैं॥३॥

या रक्त-दन्तिका नाम, देवी प्रोक्ता मयाऽनघ!
तस्याः स्वरूपं वक्ष्यामि, श्रृणु सर्व-भयापहम्॥४॥
रक्ताम्बरा रक्त-वर्णा, रक्त-सर्वाङ्ग-भूषणा।
रक्तायुधा रक्त-नेत्रा, रक्त-केशाति-भीषणा॥५॥
रक्त-तीक्ष्ण-नखा रक्त-दशना रक्त-दन्तिका।
पतिं नारीवानुरक्ता, देवी-भक्तं भजेज्जनम्॥६॥
वसुधेव विशाला सा, सुमेरु-युगल-स्तनी।
दीर्घौ लम्बावति-स्थूलौ, तावतीव-मनोहरौ॥७॥
कर्कशावति-कान्तौ तौ, सर्वानन्द-पयोनिधी।
भक्तान् सम्पाययेद् देवी, सर्व-काम-दुघौ स्तनौ॥८॥
खड्गं पात्रं च मुसलं, लाङ्गलं च बिभर्ति सा।
आख्याता रक्त-चामुण्डा, देवी योगेश्वरीति च॥९॥
अनया व्याप्तमखिलं, जगत् स्थावर-जङ्गमम्।
इमां यः पूजयेद् भक्त्या, स व्याप्नोति चराचरम्॥१०॥
अधीते य इमं नित्यं, रक्त-दन्त्या वपुः-स्तवम्।
तं सा परिचरेद् देवी, पतिं प्रियमिवाङ्गना॥११॥

हे निष्पाप! मैंने '**रक्त-दन्तिका**' नाम की जो देवी कही हैं, उनका सर्व-भय-हारी स्वरूप कहूँगा, सुनो।।४।। रक्त-वस्त्रा, रक्त-वर्णा, सब अङ्गों में रक्त-भूषणा, रक्त-शस्त्रा, रक्त-नेत्रा, रक्त-केशा, तीखे रक्त-नखा, रक्त-दन्ता, अति-भयङ्करी **रक्त-दन्तिका देवी** पतिव्रता स्त्री के समान भक्त का पोषण करती हैं।।५-६।। वे पृथ्वी-वत् दीर्घाकारा, सुमेरु-पर्वत-वत्-दीर्घ, लम्बे, अति-स्थूल व अत्यन्त मनोहर दो स्तनोंवाली हैं।।७।। कठोर, अति सुन्दर, पूर्णानन्द-सागर, सर्व-काम-प्रद उन दोनों स्तनों को देवी भक्तों को पिलाती हैं।।८।। **खड्ग, पात्र, मुशल** और **लाङ्गल** को वे लिए हैं। वे देवी **रक्त-चामुण्डा** और **योगेश्वरी** कहलाती हैं।।९।। इनके द्वारा स्थावर-जङ्गम सारा जगत् व्याप्त है। इन्हें जो भक्ति से पूजता है, वह चराचर में प्रसिद्ध होता है।।१०।। जो **रक्त-दन्ती** के इस शरीर-स्तवन का नित्य पाठ करता है, देवी उसकी सेवा उसी प्रकार करती हैं, जैसे पतिव्रता स्त्री प्रिय पति की करती है।।११।।

शाकम्भरी नील-वर्णा, नीलोत्पल-त्रिलोचना।
गम्भीर - नाभिस्त्रिवली - विभूषित - तनूदरी।।१२।।
सु - कर्कश - समोत्तुङ्ग - वृत्त - पीन - घन-स्तनी।
मुष्टिं शिलीमुखापूर्णं, कमलं कमलालया।।१३।।
पुष्प-पल्लव-मूलादि-फलाढ्यं शाक-सञ्चयम्।
काम्यानन्त-रसैर्युक्तं, क्षुत्-तृणमृत्यु-भयापहम्।।१४।।
कार्मुकं च स्फुरत्-कान्तिं, बिभ्रती परमेश्वरी।
शाकम्भरी शताक्षी सा, सैव दुर्गा प्रकीर्तिता।।१५।।
विशोका दुष्ट-दमनी, शमनी दुरितापदाम्।
उमा गौरी सती चण्डी, कालिका साऽपि पार्वती।।१६।।
शाकम्भरीं स्तुवन् ध्यायञ्जपन् सम्पूजयन् नमन्।
अक्षय्यमश्नुते शीघ्रमन्न-पानामृतं फलम्।।१७।।

'**शाकम्भरी**' नील-वर्णा, नील-कमल-नेत्रा, गम्भीर नाभि और त्रिवलि-विभूषित-उदर-वाली हैं।।१२।। अति कठोर, समान, ऊँचे, गोल, स्थूल सघन स्तनोंवाली हैं और कमल-वासिनी हैं। **परमेश्वरी** अपने हाथों में **बाणों से भरी मुट्ठी, कमल, सुधा-प्यास-मृत्यु-भय-निवारक** एवं **मनोवाञ्छित रसों से युक्त शाक-समूह** और **प्रकाश-मान धनुष** लिए हैं। वे ही **शाकम्भरी, शताक्षी, दुर्गा** कहलाती हैं।।१३-१५।। शोक-रहिता, दुष्ट-दलनी, पाप और विपत्ति को शान्त करनेवाली, **उमा, गौरी, सती, चण्डिका, कालिका** व **पार्वती** भी वे ही हैं।।१६।। **शाकम्भरी का स्तवन, ध्यान, जप-पूजन** करनेवाला शीघ्र ही अन्न, पान एवं अमृत-रूप अक्षय फल को पाता है।।१७।।

भीमाऽपि नील-वर्णा सा, दंष्ट्रा-दशन-भासुरा।
विशाल-लोचना नारी, वृत्त-पीन-पयोधरा॥१८॥
चन्द्र-हासं च डमरुं, शिरः पात्रं च बिभ्रती।
एक-वीरा काल-रात्रिः, सैवोक्ता कामदा स्तुता॥१९॥

'**भीमा**' भी नील-वर्णा हैं, वे दाढ़ों व दाँतों से प्रकाशमाना, विशाल-नेत्रा, गोल-स्थूल-स्तना स्त्री हैं॥१८॥ **चन्द्रहास, खड्ग, डमरु, मुण्ड** और **पात्र** लिए हैं। वे ही **एक-वीरा, काल-रात्रि, कामदा** कहलाती हैं और वन्दिता होती हैं॥१९॥

तेजो-मण्डल-दुर्धर्षा, भ्रामरी चित्र-कान्ति-भृत्।
चित्रानुलेपना देवी, चित्राभरण-भूषिता॥२०॥
चित्र-भ्रमर-पाणिः सा, महा-मारीति गीयते।
इत्येता मूर्तयो देव्या, या ख्याता वसुधाधिप!॥२१॥
जगन्मातुश्चण्डिकायाः, कीर्तिताः काम-धेनवः।
इदं रहस्यं परमं, न वाच्यं कस्यचित् त्वया॥२२॥

'**भ्रामरी**' **देवी** तेजो-मण्डल से प्रचण्डा हैं, रङ्ग-बिरङ्गी कान्ति से युक्ता, रङ्ग-बिरङ्गे अङ्गराग से लिप्ता और रङ्ग-बिरङ्गे आभूषणों से विभूषिता हैं॥२०॥ रङ्ग-बिरङ्गे भौंरों से युक्त हाथोंवाली वे **महा-मारी** कहलाती हैं। हे **राजन्!** इस प्रकार देवी की जो मूर्तियाँ प्रसिद्ध हैं, वे **जगन्माता चण्डिका** की काम-धेनु कहलाती हैं। यह परम रहस्य है, तुम्हें किसी को न बताना चाहिए॥२१-२२॥

व्याख्यानं दिव्य-मूर्तीनामभीष्ट-फल-दायकम्।
तस्मात् सर्व-प्रयत्नेन, देवीं जप निरन्तरम्॥२३॥
सप्त जन्मार्जितैर्घोरैर्ब्रह्म - हत्या - समैरपि।
पाठ-मात्रेण मन्त्राणां, मुच्यते सर्व-किल्विषैः॥२४॥
देव्या ध्यानं मया ख्यातं, गुह्याद् गुह्य-तरं महत्।
तस्मात् सर्व-प्रयत्नेन, सर्व-काम-फल-प्रदम्॥२५॥

दिव्य मूर्तियों की व्याख्या अभीष्ट फल-प्रद है, अतः सब उपायों से **देवी का निरन्तर जप** करो॥२३॥ सात जन्मों के किए ब्रह्म-हत्या-समान सभी पापों से, मन्त्रों के पाठ मात्र से मुक्ति मिल जाती है॥२४॥ इसी से मैंने प्रयत्न करके **देवी के गुप्त से भी गुप्त, सर्व-काम-फल-प्रद ध्यान** का वर्णन किया है॥२५॥

❋ ❋ ❋

रहस्य-त्रय की व्याख्या

सप्तशती के छः अङ्गों में उक्त **तीन रहस्यों** की गणना की गई है। इनके सम्बन्ध में **गीता प्रेस** आदि के संस्करणों में समष्टि **विनियोग** मिलता है—

ॐ अस्य श्री सप्तशती-रहस्य-त्रयस्य नारायण ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, महा-काली-महा-लक्ष्मी-महा-सरस्वत्यो देवताः, यथोक्त-फलावाप्त्यर्थ जपे विनियोगः।

इस **विनियोग** के अनुसार **ऋष्यादि-न्यास** होना चाहिए, जो वहाँ नहीं दिया गया है। **'विशुद्ध चण्डी'** में प्रत्येक रहस्य को **अलग-अलग विनियोग ऋष्यादि-न्यास** सहित प्रकाशित किया गया है, जो अधिक समीचीन और प्रामाणिक है। देखें, **'विशुद्ध-चण्डी'**।

१. **'प्राधानिक' रहस्य** को **'प्राकृतिक' रहस्य** भी कहते हैं क्योंकि उसमें **परा-शक्ति महा-लक्ष्मी** के स्वरूप का वर्णन है और **महा-लक्ष्मी** ही **'प्रधान प्रकृति'** हैं। उन्हीं की विकृति से अवतारों का आविर्भाव होता है। वे **चतुर्भुजा** हैं। उनके चार हाथों में स्थित १ **मातुलिङ्ग**—कर्म-राशि का, २ **गदा**—क्रिया-शक्ति का, ३ **खेट**—ज्ञान-शक्ति का और ४ **पान-पात्र**—तुरीय वृत्ति अर्थात् सच्चिदानन्द-मय स्थिति का द्योतक है (**भुवनेश्वरी-संहिता**)। इसी प्रकार **नाग**—काल, **योनि**— प्रकृति, **लिङ्ग**—पुरुष। **'प्राधानिक रहस्य'** के अनुसार **महा-लक्ष्मी** के अवतारों का क्रम निम्न प्रकार है—
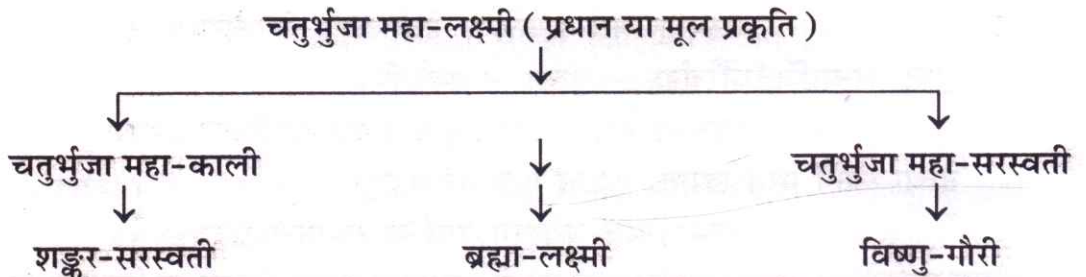
२. **'वैकृतिक' रहस्य** में **प्रधान प्रकृति** और उसकी विकृतियों (अवतारों) के ध्यान, पूजनादि का वर्णन है। **१० भुजा महा-काली, १८ भुजा महा-लक्ष्मी** और **८ भुजा महा-सरस्वती** के साथ **४ भुजा महा-काली, ४ भुजा महा-सरस्वती** और **रुद्र-गौरी, ब्रह्मा-सरस्वती, विष्णु-लक्ष्मी** का **समष्टि-पूजन**-विधान मननीय है। **व्यष्टि-पूजन** में **१० भुजा** या **१८ भुजा** स्वरूप के साथ **काल** और **मृत्यु** की पूजा का निर्देश है; **८ भुजा-स्वरूप** के पूजन में **ब्राह्मी** आदि **९ शक्तियों** और **रुद्र-विनायक** व **काल-मृत्यु** पूजनीय हैं।

'**वैकृतिक रहस्य**' के अनुसार **समष्टि-स्वरूपों** की स्थिति निम्न प्रकार है—

रुद्र-गौरी	ब्रह्मा-सरस्वती	विष्णु-लक्ष्मी
चतुर्भुजा महा-काली	चतुर्भुजा महा-लक्ष्मी	चतुर्भुजा महा-सरस्वती
दशानना दश-भुजा	अष्टादश-भुजा	अष्ट-भुजा
महा-काली	महा-लक्ष्मी	महा-सरस्वती

व्यष्टि-स्वरूपों की स्थिति इस प्रकार है—

अष्टादश-भुजा	दशानना	अष्ट-भुजा
काल महा-लक्ष्मी मृत्यु	काल महा-काली मृत्यु	काल महा-सरस्वती मृत्यु
सिंह महिष		रुद्र नौ शक्तियाँ विनायक

३. '**मूर्ति-रहस्य**' में **देवी की अङ्ग-भूता छः मूर्तियों** (स्वरूपों)—**१ नन्दा, २ रक्त-दन्तिका, ३ शाकम्भरी, ४ दुर्गा, ५ भीमा** और **६ भ्रामरी** के ध्यान और माहात्म्य का वर्णन है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि '**सप्तशती**' के मूल रूप '**नव-शती**' के **१८ अध्याय** थे और ये **तीन रहस्य** उसमें अध्याय-रूप में निर्दिष्ट थे। **सात सौ मन्त्र** निर्दिष्ट करने की प्रक्रिया में ये अध्याय '**रहस्य-त्रय**' के रूप में अलग कर दिए गए।

❋❋❋

सिद्ध कुञ्जिका-स्तोत्रम्

काम्य प्रयोग के लिए **सप्तशती** के पाठ करनेवाले को पहले **उत्कीलन** और **कुञ्जिका-मन्त्र** तथा **स्तोत्र का जप** करना चाहिए। '**कुञ्जिका-मन्त्र**' दो प्रकार के हैं। एक **गुप्तावतार बाबा** से प्राप्त है, दूसरा **प्रचलित** है। दोनों क्रमशः निम्न प्रकार हैं—

कुञ्जिका-मन्त्र—(१) **ॐ श्लैं हूं क्लीं ग्लौं जूं सः ज्वलोज्ज्वल ज्वल, प्रज्वल प्रज्वल, प्रबल प्रबल, हं सं लं क्षं फट् स्वाहा।**

(२) ॐ ग्लौं हुं क्लीं जूं सः ज्वालय ज्वालय, ज्वल, प्रज्वल प्रज्वल, ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे, ज्वल, हं सं लं क्षं फट् स्वाहा।

गुरु-देव से पूछकर **किसी एक मन्त्र का यथा-शक्ति जप** करे। तब '**कुञ्जिका स्तोत्र**' का पाठ करे। **गुप्तावतार बाबा श्री** से प्राप्त स्तोत्र निम्न प्रकार है—

कुञ्जिका स्तोत्र

नमस्ते रुद्र-रूपायै, नमस्ते मधु-मर्दिनि!
नमः कैटभ-हारिण्यै, नमस्ते महिषासनि!॥१
नमस्ते शुम्भ-हन्त्र्यै च, निशुम्भासुर-घातिनि!
जाग्रतं हि महा-देवि! जप-सिद्धिं कुरुष्व मे॥२
ऐंकारी सृष्टि-रूपायै, ह्रींकारी प्रति-पालिका।
क्लींकारी काल-रूपिण्यै, बीज-रूपे नमोऽस्तु ते॥३
चामुण्डा चण्ड-घाती च, यैकारी वर-दायिनी।
विच्चे नोऽभयदा नित्यं, नमस्ते मन्त्र-रूपिणि!॥४
धां धीं धूं धूर्जटेः पत्नी, वां वीं वागेश्वरी तथा।
क्रां क्रीं श्रीं मे शुभं कुरु, ऐं ॐ ऐं रक्ष सर्वदा॥५
ॐॐॐकार-रूपायै, ज्रां ज्रां ज्रम्भाल-नादिनि।
क्रां क्रीं क्रूं कालिका देवि! शां शीं शूं मे शुभं कुरु॥६
हूं हूं हूङ्कार-रूपिण्यै, ज्रं ज्रं ज्रम्भाल-नादिनी।
भ्रांभ्रींभ्रूं भैरवी भद्रे! भवानि ते नमो नमः॥७
ॐ अं कं चं टं तं पं यं शं बिन्दुराविर्भवा—
विर्भव, हं सं लं क्षं मयि जाग्रय जाग्रय॥

त्रोटय त्रोटय, दीप्तं दीप्तं, कुरु कुरु, स्वाहा।
पां पीं पूं पार्वती पूर्णा, खां खीं खूं खेचरी तथा॥८
म्लां म्लीं म्लूं दीव्यती पूर्णा, कुञ्जिकायै नमो नमः।
सां सीं सप्तशतीं सिद्धिं, कुरुष्व जप-मात्रतः॥९

प्रचलित स्तोत्र के प्रारम्भ में **पूर्व-पीठिका** के चार श्लोक हैं, जिनसे '**कुञ्जिका स्तोत्र**' की महिमा ज्ञात होती है। यथा—

शृणु देवि! प्रवक्ष्यामि, कुञ्जिका-स्तोत्रमुत्तमम्।
येन मन्त्र-प्रभावेण, चण्डी-जपः शुभं भवेत्॥१
न कवचं नार्गला-स्तोत्रं, कीलकं न रहस्यकम्।
न सूक्तं नापि ध्यानं च, न न्यासो न च वाऽर्चनम्॥२
कुञ्जिका-पाठ-मात्रेण, दुर्गा-पाठ-फलं लभेत्।
अति गुह्य-तरं देवि! देवानामपि दुर्लभम्॥३
मारणं मोहनं वश्यं, स्तम्भनोच्चाटनादिकम्।
पाठ-मात्रेण संसिद्ध्येत्, कुञ्जिका-स्तोत्रमुत्तमम्॥४

मूल स्तोत्र में **प्रचलित पाठ** के अनुसार अनेक पाठान्तर हैं—**१ रुद्र-रूपायै : रुद्र-रूपिण्यै, २ महिषासनि : महिषार्दिनि, ३ जप-सिद्धिं : जपं सिद्धं, ४ काल-रूपिण्यै : काम-रूपिण्यै, ५ नोऽभयदा : चाभयदा, ६ वां वीं वागेश्वरी तथा : वां वीं वूं वागधीश्वरी, ७ हूं हूं...नादिनी : हुं हुं हुङ्कार-रूपिण्यै जं जं जं जम्भ-नादिनी, ८ भवानि : भवान्यै, ९ ॐ अं...जाग्रय : अं कं चं टं तं पं यं शं वीं दुं ऐं वीं हं क्षं धिजाग्रं धिजाग्रं।**

१० नवें श्लोक की प्रथम पंक्ति '**म्लां म्लीं**' इत्यादि प्रचलित पाठ में नहीं है।

११ सां सीं...जप-मात्रतः : सां सीं सूं सप्तशती-देव्या मन्त्र-सिद्धिं कुरुष्व मे।

प्रचलित पाठ के अन्त में दो श्लोक और हैं, जो '**फल-श्रुति**' के समान हैं। साथ ही पुष्पिका भी दी है। यथा—

इदं तु कुञ्जिका-स्तोत्रं, मन्त्र-जागर्ति-हेतवे।
अभक्ते नैव दातव्यं, गोपितं रक्ष पा[illegible]ति!॥१
यस्तु कुञ्जिकया देवि! हीनां सप्तशतीं पठे[illegible]
न तस्य जायते सिद्धिररण्ये रोदनं तथा॥२

॥ इति श्रीरुद्र-यामले गौरी-तन्त्रे शिव-पार्वती-संवादे कुञ्जिका-स्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

***

क्षमा-प्रार्थना

'**पाठ**' में हुई भूल-चूक के लिए अन्त में **क्षमा-प्रार्थना** की जाती है। '**विशुद्ध चण्डी**' में दी गई '**क्षमा-प्रार्थना**' के अन्तिम श्लोक के सम्बन्ध में कुछ विशेष बातें इस प्रकार हैं—

ॐ यदक्षरं परि-भ्रष्टं, मात्रा-हीनं तु यद् भवेत् ।
तत् सर्वं क्षम्यतां, देवि! प्रसीद परमेश्वरि ॥

अर्थ—हे **महेश्वरि**! (**चण्डी-पाठ** में) जो अक्षर छूट गया हो और जो मात्रा से हीन रह गया हो, उस सबको क्षमा करो। हे **परमेश्वरि**! प्रसन्न होओ।

व्याख्या—उक्त श्लोक के **द्वितीय चरण** के **दो पाठान्तर** हैं—

१. पूर्णं भवतु तत् सर्वं, त्वत्-प्रसादान्महेश्वरि॥
२. क्षन्तुमर्हसि तद् देवि! कस्य न स्खलितं मनः॥

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य श्लोक उक्त '**क्षमा-प्रार्थना**' से सम्बन्धित और हैं। यथा—

यदत्र-पाठे जगदम्बिके! मया, विसर्ग-विन्द्वक्षर-हीनमीरितम्।
तदस्तु सम्पूर्ण-तमं प्रसादतः, सङ्कल्प-सिद्धिश्च सदैव जायताम्॥१॥
यन्मात्रा - विन्दु - विन्दु - द्वितय - पद - पद - द्वन्द्व - वर्णादि - हीनम्,
भक्त्या भक्त्यानुपूर्वं प्रवचन-वचनाद् व्यक्तमव्यक्तमम्ब!
मोहादज्ञानतो वा पठितमपठितं साम्प्रतं ते स्तवेऽस्मिन्,
तत्-सर्वं साङ्गमास्तां भगवति वरदे! त्वत्-प्रसादात् प्रसीद॥२॥
प्रसीद भगवत्यम्ब! प्रसीद भक्त-वत्सले,
प्रसादं कुरु मे देवि! दुर्गे देवि! नमोऽस्तु ते॥३॥

अन्य किसी के कल्याण के लिए '**चण्डी-पाठ**' किया जाए, तो अन्त में निम्न श्लोक का भी पाठ करना उचित है—

यस्यार्थं पठितं स्तोत्रं, तवेदं शङ्कर-प्रिये।
तस्य देहस्य गेहस्य, शान्तिर्भवतु सर्वदा॥

***

सार्थ चण्डी (श्रीदुर्गा सप्तशती) की विशेषता

'**सप्तशती**' का '**पाठ**' करना हम सभी के लिए कितना श्रेयस्कर है, यह हम सबको भलीभाँति ज्ञात है। इसके '**पाठ**'-मात्र से लोगों की सभी कामनाएँ पूरी हो जाती हैं। कठिनाई केवल यह है कि '**सप्तशती**' नामक स्तव प्रसिद्ध '**मार्कण्डेय-पुराण**' का अंश है, जो हजारों वर्ष प्राचीन है। इसके विभिन्न शब्दों एवं विशिष्ट सन्दर्भों का ठीक-ठीक अर्थ हमें ज्ञात नहीं होता और हम इसका **भाव-पूर्ण** '**पाठ**' नहीं कर पाते, जिसका परिणाम यह होता है कि हमें जितनी सफलता मिलनी चाहिए, वह नहीं मिल पाती।

प्रस्तुत **सार्थ चण्डी (श्रीदुर्गा सप्तशती)** द्वारा उक्त कठिनाई दूर हो जाती है, क्योंकि इसमें अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण '**सप्तशती**'-**स्तव** के विभिन्न शब्दों एवं विशिष्ट सन्दर्भों पर सरल हिन्दी भाषा में प्रामाणिक रूप से प्रकाश डाला गया है। इसके अध्ययन द्वारा हम लोग प्रसिद्ध '**सप्तशती**'-**स्तव** का **भाव-पूर्ण** '**पाठ**' कर सकते हैं, इसमें सन्देह नहीं। **सार्थ चण्डी (श्रीदुर्गा सप्तशती)** की यही सबसे बड़ी विशेषता है।

सार्थ चण्डी (श्रीदुर्गा सप्तशती) में '**सप्तशती**'-**स्तव** की विभिन्न बातों को स्पष्ट करने के लिए जिन प्रामाणिक ग्रन्थों के उद्धरण प्रस्तुत हुए हैं, उनके नाम नीचे अ-कारादि क्रम में दिए जा रहे हैं। इससे भी यह स्पष्ट हो जाता है कि यह **सार्थ-चण्डी (श्रीदुर्गा सप्तशती)** हम सबके लिए कितना महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थ है–

१. अमर-कोष, २. आगम, ३. आयुर्वेद, ४. ईशोपनिषत्, ५. उपनिषद्, ६ कात्यायनी तन्त्र, ७. कालिका-पुराण, ८. कुमार-सम्भव, ९. कौटिल्य का अर्थशास्त्र, १०. गीता, ११. गुप्तवती टीका, १२. चिदम्बर-संहिता, १३. चतुर्धरी टीका, १४. तन्त्र-शास्त्र, १५. तत्त्व-प्रकाशिका-टीका, १६. दुर्गा-प्रदीप टीका, १७. देवी-पुराण, १८. देव्यथर्व-शीर्ष, १९. देवी-भाष्य, २०. देवी-कवच, २१. धनुर्वेद (वैशम्पायन), २२. धनुर्वेद (शार्ङ्धर), २३. नागो जी भट्ट की टीका, २४. नील-कण्ठ की टीका, २५. पुराण, २६. ब्रह्म-वैवर्त्त-पुराण, २७. बह्वृच्-उपनिषद्, २८. ब्रह्म-सूत्र, २९. ब्रह्माण्ड-पुराण, ३०. भरत मुनि रचित नाट्य शास्त्र, ३१. भुवनेश्वरी संहिता, ३२. मत्स्य-सूक्त, ३३. मत्स्य-पुराण, ३४. मधुसूदन सरस्वती का प्रस्थान-भेद, ३५. मनु-स्मृति, ३६. महा-भारत, ३७. महा-निर्वाण तन्त्र, ३८. मारीच कल्प, ३९. मार्कण्डेय-पुराण, ४०. मुण्डकोपनिषद्, ४१. मेदिनी-कोष, ४२. योग-रत्नावली, ४३. युक्ति-कल्पतरु, ४४. रहस्य तन्त्र, ४५. रहस्यागम, ४६. लक्ष्मी तन्त्र, ४७. लघु चण्डी, ४८. वराह-पुराण, ४९.वृहत्-संहिता, ५०. वृहदारण्य उपनिषद्, ५१. विश्व-प्रकाश-कोष, ५२. वामन-पुराण, ५३. वासिष्ठ-रामायण, ५४. वाराही-तन्त्र, ५५. शान्तनवी टीका, ५६. शिशुपाल-वध, ५७. शुक्र-नीति, ५८. षट्-कर्म-दीपिका, ५९. सूत्र-संहिता, ६०. सुश्रुत कल्प, ६१. हरिवंश-पुराण, ६२. हितोपदेश, ६३. श्रीमद्-देवी-भागवत, ६४. श्रुति।